प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नग
बरेली (उ० प्र०)

❊

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आच

❊

❊

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

❊

प्रथम संस्करण
१९७१

❊

मूल्य ७)५०

भूमिका

"ब्रह्म पुराण" का यह दूसरा खण्ड विशेष रूप से तीर्थों के वर्णन और माहात्म्य से युक्त है और विशेपता यह है कि ये सभी तीर्थ गौतमी-गङ्गा (गोदावरी) से सबन्धित हैं। तीर्थों के नाम भी एक खास तरह के हैं जैसे मातृतीर्थ, आत्मतीर्थ, यमतीर्थ, सोमतीर्थ, आपस्तम्बतीर्थ मन्यु-तीर्थ, चक्षुतीर्थ आदि, ये सब तीर्थ आज कल लोगो को ज्ञात है या नही यह कह सकना तो कठिन है, पर इनके उपलक्ष्य मे पुराणकार ने जो कथाएँ लिखी हैं, वे सब आकर्पक और धर्म-शिक्षासे युक्त हैं।

कथाओ के पढने से प्रतीत होता है कि उन्हे जानबूझ कर इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि लोगो का झुकाव धार्मिक प्रवृत्तियो की तरफ हो और साथ ही गोदावरी नदी का माहात्म भी लोक मे अधिकाधिक प्रसिद्ध हो। इन्ही कथाओ को देख कर हमने प्रथम खण्ड की भूमिका मे लिखा था कि सभवत. इस पुराण का लेखक गोदावरी के निकटवर्ती भूभाग का निवासी है, और उसने अपने प्रदेश के महत्त्व को बढाने के लिये ऐसी कथाएँ रची हैं। कुछ भी हो गोदावरी भारत की एक महत्त्व-पूर्ण नदी है, और भगवान राम के सम्पर्क के कारण उसकी महिमा और भी बढ़ गई है। इसलिए इस प्रकार कथाओ द्वारा जन साधारण मे उसका प्रचार किया गया हो तो इसमे कोई दोष की बात नही।

इस सम्बन्ध मे आवश्यकता यही है कि हम पौराणिक कथानको को यह समझ कर न पढें कि उनका एक-एक-शब्द पुराण और यथार्थ घटनाओ को देख कर ही लिखा गया है। मगर

ऐसी यथार्थ घटनाऐं लिखी भी जायं तो वे न बहुत आकर्षक होगी और न शिक्षाप्रद। यथार्थ घटनाओ से अभीष्ट उपदेश दे सकना व आदर्श उपस्थिति कर सकना शायद ही कभी सम्भव होता है। इस लिये कथाकार उन घटनाओ को आवश्यकता अनुसार घटा-बढा कर अथवा काल्पनिक कहानी रच कर इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

"ब्रह्म पुराण" मे गोदावरी की जो महिमा बतलाई है वह ठीक ही है। अब तक करोडो व्यक्ति उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति रख कर सुफल प्राप्त कर चुके हैं। इस दृष्टि से जो स्थिति गङ्गा और नर्मदा की है, वही आन्ध्र और महाराष्ट्र के एक बडे भाग मे गोदावरी की है। और किसी भी बडी नदी से जनता का जो उपकार होता है, जीवन रक्षा के लिये खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने मे जो सहयोग मिलता है, उसके कारण उसके प्रति पूज्य भाव रखना उचित ही है। विदेशो के निवासी भी जो देवी॰ देवताओ में हमारी तरह विश्वास नही रखते अपनी प्रमुख सरिताओ के प्रति ऐसी ही पूज्य भावना रखते है, जर्मनी के निवासी अपनी राइन नदी को अत्यन्त पूज्य दृष्टि से देखते हैं और अपने राष्ट्रीय गीत मे बडे उत्साह से गाते हैं 'हे राइन, हे पावन राइन तू जर्मन राइन मेरी।" रोम के निवासी भी "टाइबर' नदी को माता टाइबर ही कहते थे जैसे हम 'गङ्गा-मैया" की जय जयकार करते हैं।

इसलिये यदि 'ब्रह्म पुराण" के लेखक ने अपनी पूज्य 'गोदावरी" की महिमा को बढाने के लिये उसके चमत्कारो की कथाऐं रच डाली तो इसमे हानि की क्या बात हुई? आवश्यकता इतनी ही है कि हम कुछ समझदारी से काम लें और कथाओं के सम्बन्ध मे बाल की खाल निकालने के बजाय उनसे

सत्य-रक्षा, धर्म-प्रेम, परोपकार, पतिव्रत, सेवा-भाव आदि के जो उपदेश मिलते हो उनको ग्रहण करें। जब मनुष्य आज कल के काल्पनिक उपन्यासो से सत् शिक्षाएँ ग्रहण करने की बात कहते हैं, तो पुराणो की धर्म-कथाओ से लाभ क्यो नही उठाया जा स ा ?

इतना हम मानते हैं कि अनेक कथाओ मे बडी अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। आज कल के पाठक जब पढते है कि अमुक नदी मे एक बार स्नान करने से समस्त जन्म के बडे-बडे पाप तुरन्त नष्ट होगये और स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ का दर्जा प्राप्त हो गया तो उसके लिये "गपोडा" का शब्द अनायास ही मुँह से निकल पडता है। पर इसका रहस्य यही है कि लेखक अनपढ और मूढ जनता को नदी का भक्त बना कर उससे लाभ उठाने की प्रेरणा देना चाहता है। वह जानता है कि इस श्रेणी के लोग ऐसी बढा-चढा कर कही हुई चमत्कारी बातो को ही चाव से सुनते और उस तरफ ध्यान देते हैं। यह कोई बडी बात नही कि उस पुण्य के फल से हम दस वर्ष स्वर्ग मे रहेंगे या दस लाख वर्ष तक ! अथवा इसके फल से हमारे कितने सौ पूर्वजो का उद्धार हो जायगा।

जब वे चार पाँच पीढी से ज्यादा का नाम भी नही जानते तब उनके वैकुण्ठ प्राप्त होने से उनको क्या लाभ हानि हो सकती है।'

पुराणो मे अद्वैत ज्ञान से लेकर वृक्षो और नदी-नालो तक अनेक जड पदार्थों को पूजने का विधान पाया जाता है। उनका कहना है कि सतयुग से लेकर कलियुग तक चारो युगो मे 'धर्म' रूपी वृषभ का एक एक पैर टूटता जाता है इसलिये धर्म के

स्वरूप मे भी परिवर्तन होता रहता है, कलियुग मे लोगों को धर्म की तरफ आकर्षित करने और जितना भी सभव हो उतने अशो मे धार्मिक-कृत्यो, सत्कर्मों का पालन करने के लिये प्रेरित किया जाय, वह ठीक ही है। यद्यपि आजकल शिक्षित लोगो के विचार इस सम्बन्ध मे निरन्तर बदलते जाते है, पर यहाँ की ८० प्रतिशत अशिक्षित जनता ऐसी ही धर्म कथाओ को सुन कर ईश्वर और धर्म पर थोडा बहुत विश्वास बनाये रखती है। मनुष्य के भीतर श्रद्धा और विश्वास एक ऐसा आवश्यक तथ्य है जिसकी उपयोगिता से कोई इनकार नही कर सकता। इसी दृष्टि से हम पुराणो के उपयोगी विषयो का सकलन करके प्रकाशित कर रहे हैं, जिससे अध श्रद्धा के स्थान पर लोगो मे धर्म श्रद्धा की वृद्धि होती रहे।

—प्रकाशक

ब्रह्मपुराण द्वितीयखण्ड की

विषय सूची

—:०:—

ब्रह्मपुराण

(द्वितीय खण्ड)

—※—

नागतीर्थवर्णन

नागतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् ।
यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम् ॥१
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः ।
सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२
पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह ।
तस्य पुत्रश्चिरादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३
पुत्रं त गोपयामास शूरसेनो महीपतिः ।
राज्ञः पुत्रः सर्प इति न कश्चिद्विन्दते जनः ॥४
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना ।
धात्रेय्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभार्यो नृपसत्तमः ।
संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्वरमपुत्रता ॥६
एतदस्ति महासर्पो वक्ति नित्य मनुष्यवत् ।
स सर्पः पितरं प्राह कुरु चूडामपि क्रियाम् ॥७
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च ।
यावद्वेदं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८

श्री ब्रह्माजी से कहा—एक नागतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है जो सब कामनाओं का प्रदान करने वाला परम शुभ है जहाँ पर नागेश्वर देव

विराजमान रहा करते हैं । अब आप उसका भी विस्तार पूर्वक श्रवण करिए ।।१।। प्रतिष्ठितपुर मे एक राजा शूरसेन विश्रुत हुआ था । वह राजा सोमवश मे समुत्पन्न होने वाला श्री सम्पन्न-मतिमान् और गुणो का सागर था ।।२।। उस राजा ने अपनी प्रिया के साथ पुत्र की प्राप्ति के लिये वडा भारी प्रयत्न किया था । उसके जो पुत्र वहुत अधिक सयम के पश्चात् हुआ था वह परम भीषण आकृति वाला सर्प था ।।३।। शूरसेन राजा ने उस पुत्र को छिपा लिया था जिससे कोई भी मनुष्य यह न जान सके कि राजा का पुत्र सर्प है ।।४।। अन्दर रहने वाला अथवा कोई दूसरा माता-पिता के बिना और आत्रेयी भी नही जानती थी । इस तथ्य को अमात्य एव पुरोहित कोई भी नही जान पाया था ।।५।। उस महान् भीषण सर्प को भार्या के सहित उस श्रेष्ठ नृप ने देखकर बहुत ही अधिक अपने हृदय मे नित्य सन्ताप प्राप्त किया था और यह विचार किया करता था कि इससे अच्छा तो पुत्र का न होना ही कही अच्छा था क्योकि ऐसे सर्प से क्या लाभ है ।।६।। यह महान् सर्प की आकृति वाला तो था किन्तु वह नित्य ही मनुष्य के ही समान भाषण किया करता था । उस सर्प ने अपने पिता से कहा था कि मेरी चूड़ा क्रिया करो अर्थात् चूडा सस्कार करिए ।।७।। तथा मेरा उपनयन सस्कार और वेदाध्ययन सस्कार भी करिए क्योकि जिस समय तक द्विज वेदो का अध्ययन नही करता है वह एक शूद्र के ही तुल्य हुआ करता है ।।८।।

एतच्छ्रुत्वा पुत्रवच. शूरसेनोऽतिदुःखितः ।
ब्राह्मण वचनाऽऽनीय सस्कारादि तदाऽकरोत् ।।
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं चाब्रवीदिदम् ।।६

विवाहं कुरु मे राजन्स्त्रीकामोहं नृपोत्तम ।
अन्यथाऽपि च कृत्य ते न सिध्येदिति मे मतिः ।।१०

जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसस्कृतीः ।
न कुर्याद्यः पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृतिः ।।११

विस्मितः स पिता प्राह सुत तमस्याकृतिम् ।।१२

यस्य शब्दादपि त्रास यान्ति शूराश्च पूरुषाः ।
तस्मै कन्या तु को दद्याद्वद पुत्र करोमि किम् ॥१३
तत्पितुर्वचन श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने उस सर्पाकृति पुत्र का यह वचन सुनकर राजा शूरसेन अत्यन्त दु खित हुआ था और उसी समय मे किसी ब्राह्मण को बुलाकर सब सस्कार आदि उस राजा ने करा दिया था जब उस सर्प ने वेदो का अध्ययन कर लिया था तो फिर वह अपने पूज्य पिता से यह वचन बोला ॥९॥ सर्प ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! हे राजन् ! मेरी कामना अब स्त्री के प्राप्त करने की है अतएव अब आप मेरा विवाह कर दीजिए। अन्यथा अर्थात् मेरा विवाह आदि न करने पर आपका कृत्य सिद्ध नही होगा—ऐसा मेरा विचार है ॥१०॥ जो पिता अपने पुत्रो को समुत्पन्न करके वेदो मे बनाये हुए विधान से सब सस्कार नही किया करता है उसका कभी भी नरको से विस्तार नही होता हैं अर्थात् वह सदा ही नरको मे ही पडा रहता है ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पिता उसका यह कथन सुनकर बहुत ही विस्मित हो गया था और फिर उस सर्प की आकृति वाले पुत्र से वह कहने लगा ॥१२॥ राजा शूरसेन ने कहा—बडे २ शूर और सभी पुरुष जिसके शब्द से भी त्रास (भय) प्राप्त किया करते हैं उसको कौन व्यक्ति अपनी कन्या दे देगा ? हे पुत्र ! तुम ही यह मुझे बतलादो कि मैं क्या करूँ ? ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने पिता के उस वचन का श्रवण करके वह परम विचक्षण सर्प बोला था ॥१४॥

विवाहा बहवो राजन्राज्ञा सन्ति जनेश्वर ।
प्रसह्याऽऽहरण चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च ॥१५
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत् ।
नो चेदनेव गङ्गाया मरिष्ये नात्र सशय ॥१६
तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तम ।
विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेद वचोऽब्रवीत् ॥१७

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः ।
गुणवान्मतिमाञ्शूरो दुर्जयः शत्रुतापनः ॥१८
रथे नागे स धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते ।
विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं वृद्धस्तथैव च ॥१९
राज्यभारं सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः ।
न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः ॥२०
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च ।
विवाहायाथ कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः ॥२१

सर्प ने कहा—हे जनेश्वर ! हे राजन् ! राजाओं के तो बहुत प्रकार के विवाह हुआ करते हैं । बलात् किसी कन्या का आहरण कर लेना तथा शास्त्रों के द्वारा भी विवाह राजा किया करते हैं । अपने पुत्र का विवाह हो जाने पर ही पिता कृतकृत्य अर्थात् सफल होता है अभिप्राय यही है कि पुत्र का विवाह कर देने पर ही पिता के सब कृत्य समाप्त होते हैं । यदि ऐसा नहीं किया गया तो मैं यहीं पर गङ्गा में डूब कर मर जाऊँगा—इसको निश्चित ही समझिये और कुछ भी संशय नहीं है ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस पुत्र का ऐसा निश्चय जान कर पुत्रहीन वह श्रेष्ठ नृप बहुत चिन्तित हो गया और फिर उसने उसके विवाह के कराने के लिये मन्त्रियों को बुलाकर यह वचन उनसे बोला ॥१७॥ शूरसेन नृप ने कहा—मेरा यह पुत्र नागेश्वर है और यह युवराज गुणगणों का सागर है । यह परमाधिक गुणों वाला है—बुद्धिमान्-शूर-दुर्जय और अपने शत्रुओं को संताप देने वाला है ॥१८॥ रथ में-नाग में और धनुर्विद्या में यह अनुपम है तथा इस पृथिवी में इसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी नहीं है । इसका अब विवाह करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो अब वृद्ध हो गया हूँ ॥१९॥ इसीलिये मैं सम्पूर्ण अपने राज्य का भार इस पुत्र को सौंपकर निश्चित होना चाहता हूँ । जिस समय तक मेरा प्रिय पुत्र है तब तक दाराओं का संग्रह नहीं करता है । यह बालभाव को नहीं त्यागता है अतएव आप सब अपनी सम्मति देकर मेरे ही हित में रति रखते हुए इसके विवाह के लिये यत्न करिए ॥२०-२१॥

न मे काचित्तदा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽत्मजः ।
सुते न्यस्तभरा यान्ति कृतिनस्तपसे वनम् ॥२२
अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम् ॥२३
तव पुत्रो गुणज्येष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः ।
विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किंतु चिन्त्यते ॥२४
अमात्येषु तथोक्ते च गम्भीरो नृपसत्तमः ।
पुत्रं सर्पं त्वमात्यानां च चाऽऽख्याति न ते विदुः ॥२५
राजा पुनस्तानुवाच का स्यात्कन्या गुणाधिका ।
महावंशभवः श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रया ॥२६
सबन्धयोग्यः शूरश्च यत्सबन्धः प्रशस्यते ।
तद्राजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः ॥२७
कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः ।
राज्ञो मतिं विदित्वा तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीदिदम् ॥२८

फिर उस समय मे मुझे अन्य कोई भी चिन्ता नही रहेगी जब मेरा यह पुत्र विवाह करने वाला हो जायगा अर्थात् विवाहित हो जायगा कृती पुरुष अपने पुत्र पर सब भार डाल कर ही वन मे तपस्या करने के लिये जाया करते हैं ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन राजा के समस्त अमात्यो ने राजा के ये वचन सुनकर सबने परम विनम्र होकर हाथ जोडकर बहुत ही हर्ष के साथ अत्यधिक तेजस्वी राजा से प्रार्थना की थी ॥२३॥ मन्त्रिगण ने कहा—हे राजन् ! आपका पुत्र तो गुणो मे बहुत ही बढा-चढा हैं और आप सर्वत्र प्रसिद्ध है आपके पुत्र के विवाह के विषय मे क्या मन्त्रणा करने की आवश्यकता है और इसकी आपके द्वारा क्यो चिन्ता की जा रही है ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मन्त्रियो के इस प्रकार से कहने पर यह श्रेष्ठ नृप बहुत गम्भीर हो गया था। और वह अपने पुत्र को सर्प बतलाता है क्योकि वे इस बात को नहीं जानते थे ॥२५॥ फिर उस राजा ने उनसे कहा था कि कौन सी कन्या गुणों मे अधिक है ? गुणो का आश्रय-महान् वंश मे समुत्पन्न और

श्री सम्पन्न कौन सा राजा है जो सम्बन्ध को करने के योग्य हो और शूर हो तथा जिसके साथ सम्बन्ध करना प्रशस्त माना जावे ? राजा के इस वचन का श्रवण करके अमात्यो मे जो महान् मतिमान् था–परम कुलीन-अत्यन्त साधु और राजा के हितप्रद कार्यों में रति रखने वाला था उसने जो इङ्गित को जानने वाला था राजा के उस विचार को समझ कर यह कहा था ॥२६-२८॥

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः ।
वाजिवारणरत्नाना यस्य सख्या न विद्यते ॥२६
अष्टौ पुत्रा महेष्वासा महाराजस्य धीमतः ।
तेषा स्वसा भोगवती साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥
तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता ॥३०
वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा त प्रत्यभाषत ॥३१
सुता तस्य कथ मेऽस्य स्याद्वदस्व तत् ॥३२
लक्षितोऽसि महाराज यत्तो मनसि वर्तते ।
यच्छूरसेन कृत्य स्यादनुजानीहि मा ततः ॥३३
वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूषणाच्छादनोक्तिभिः ।
सपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह ॥३४
स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च ।
सपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसभवैः ॥३५

अमात्य ने कहा—पूर्वदेश मे हे महाराज ! एक विजय नामधारी भूपति है जिसके पास इतने अश्व हाथी और रत्नों का समुदाय है कि जिनकी सख्या ही नहीं की जा सकती है ॥२६॥ उस राजा के आठ तो पुत्र हैं जो बड़े भारी धनुर्धारी हैं उस महान् धीमान् महाराज के ये सभी पुत्र बड़े बलवान् हैं। उन सब भाइयों की एक भोगवती बहिन है और वह साक्षात् दूसरी लक्ष्मी के ही समान है। हे राजन् ! वह आपके पुत्र की भार्या होने के योग्य है। हे राजन् ! मैंने आपको यह बतला दिया है ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस अपने वृद्ध मन्त्री के इस

वचन को सुनकर राजा ने उससे कहा था ॥३१॥ राजा ने कहा—उस राज की पुत्री मेरे पुत्र की भार्या कैसे होगी—यह मुझे बतलाइए ॥३२॥ उस वृद्ध मन्त्री ने कहा—हे महाराज ! जो आपके मन मे वर्त्तमान है उसको मैं ने जान लिया है। हे शूरसेन ! मेरा जो भी कर्तव्य हो उसके लिये मुझे आप आज्ञा प्रदान कीजिए ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस राजा ने अपने वृद्ध मन्त्री का निवेदन सुनकर उसका भूषण-वस्त्र और मनोज्ञ मधुर वचनो के द्वारा बडा सत्कार करके उसको बड़ी भारी सेना के साथ वहा पर भेज दिया था ॥३४॥ वह मन्त्री पूर्व देश मे आ गया और महाराज के समीप मे पहुँच गया था। उस मन्त्री ने अनेक वचनो के द्वारा तथा नीतियुक्त उपायो के द्वारा राजा का अभ्यर्चन एव सत्कार समादर किया था ॥३५॥

महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः ।
शूरसेनस्य नृपतेः सूनोर्नागस्यधीमत· ॥३६
विवाहायाकरोत्संधि मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभि· ।
पूजयामास नृपतिं भूषणाच्छादनादिभिः ॥३७
अवाप्य पूजा नृपतिर्ददामीत्यवदत्तदा ।
तत आगत्य राज्ञेऽसौ वृद्धामात्यो महामतिः ॥३८
शूरसेनाय तद्वृत्त वैवाहिकमवेदयत् ।
ततो बहुतिथे काले वृद्धामात्यो महामतिः ॥३९
पुनर्बलेन महता वस्त्रालकारभूषितः ।
जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः ॥४०
विवाहाय महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान् ।
सर्व प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्यः सचिवैर्वृतः ॥४१

फिर उस महान् मतिमान मन्त्री ने राजा की पुत्री भोगवती का राजा शूरसेन के पुत्र परम बुद्धिमान नाग के साथ विवाह कर देने के लिये मिथ्या और सत्य वचनो की उक्तियो के द्वारा राजा से समझौता कर लिया था। उस राजा का भूषणाच्छादनो के द्वारा बड़ाभारी सत्कार किया था। वह राजा भी उस मन्त्री के द्वारा किये गये सत्कार को प्राप्त कर

उस मन्त्री से उस समय में यही बोला था कि मैं अपनी पुत्री को दे दूंगा। फिर इसके अनन्तर उस महान् मतिमान वृद्ध मन्त्री ने अपने स्वामी राजा से यहा आकर शूरसेन के लिये वह विवाह सम्बन्धी सब समाचार निवेदन कर दिया था। फिर बहुत अधिक समय व्यतीत हो जाने पर वही वृद्ध अमात्य वहाँ पर गमन करने को समुद्यत हो गया था ॥३०-३६॥ फिर वह पहली सेना के बल के साथ सज्जित होकर तथा वस्त्र अलङ्कारों से विभूषित होकर अन्य सभी मन्त्रियों को साथ मे लेकर बडी शीघ्रता से वहाँ गया था ॥४०॥ उस परम बुद्धिमान् महामात्य ने विवाह कर देने के लिये महाराज से सभी कुछ निवेदन कर दिया। वह महामात्य वृद्ध था और अन्य सचिवों से भी समावृत था ॥४१॥

अत्राऽऽगन्तुं न चाऽऽया(चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपतेः।
पुत्रो नाग इति ख्यातो बुद्धिमान्गुणसागरः ॥४२
क्षत्रियाणां विवाहाश्च भवेयुर्बहुधा नृप।
तस्माच्छस्त्रैरलकारैर्विवाहः स्यान्महामते ॥४३
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्यां वाच वदन्ति हि।
तस्माच्छस्त्रैरलकारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४
वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा विजयो राजसत्तमः।
मेने वाच तथा सत्यममात्यं भूपति तदा ॥४५
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्याः सविस्तरम्।
शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुनः ॥४६
स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यतुरगादिकम्।
बहु दत्त्वाऽथ विजयो हर्षेण महता युतः ॥४७
तामादायाथ सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमाः।
प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय ता स्नुषाम् ॥४८
न्यवेदयंस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु।
भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिकं च यत् ॥४९

उस वृद्ध अमात्य ने कहा— भूपति शूरसेन का पुत्र नाग नाम से विख्यात है और महान बुद्धिमान तथा गुणों का सागर है वह स्वयं यहाँ

पर आना ही नही चाहता है। हे नृप ! प्रायः क्षत्रियो के विवाह इस प्रकार से हुआ भी करते हैं। अतएव हे महामते ! वस्त्रो के तथा अलङ्कारो के साथ विवाह हो सकता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय सदा सत्य वाणी ही बोला करते हैं इसी कारण से वस्त्रों तथा उनके अलङ्कारो के साथ विवाह कर देने की आप अनुमति प्रदान कर दीजिए ॥ ४२-४४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— राजाओ मे श्रेष्ठ विजय ने उस वृद्ध मन्त्री के वचन का श्रवण कर उसने उस वचन को उस समय मे सत्य मान लिया था क्यो कि राजा और अमात्य दोनो ही सत्य थे ॥४५॥ राजा ने उस अपनी प्रिय पुत्री भोगवती का विस्तार पूर्वक शास्त्र के साथ विवाह कर दिया था और शास्त्र मे लिखत विधान के ही अनुसार सब कृत्य सम्पन्न करके उस पुत्री को भेज भी दिया अर्थात् अपने गृह से विदा कर दिया था ॥४६॥ उस राजा विजय ने बहुत हर्ष के साथ सयुक्त होकर अपने अमात्यो को उसके साथ मे भेजा था और बहुत-सा सुवर्ण घोडे गौएँ आदि का दहेज दिया था ॥४७॥ वृद्ध अमात्य जिनमे प्रमुख था वे सब सचिव उस भोगवती कोलेकर उस प्रतिष्ठान मे समागत हुए थे तथा राजा शूरसेन को उस स्नुषा (पुत्र वधू) को निवेदित कर दिया। उन्होंने राजा विजय के बहुत से वचन भी उन्होंने कहे थे। राजा विजय के प्रेषित किये हुये अमात्यो ने जो कुछ भी विविध भूषण-दासियाँ और वस्त्र आदिक दिया था वे सभी राजा शूरसेन को समर्पित कर कृत कृत्य हो गये थे ॥४८-४९॥

निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे ।
विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगताः ॥५०
तान्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुरःसरम् ।
विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ॥५१
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी ।
श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्य शुश्रूषन्ती सुमध्यमा ॥५२
भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषणः ।
एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३

सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले ।
स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुनः पुनः ॥५४
मम भार्या राजपुत्री किं मां नैवोपसर्पति ।
तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेतमब्रवीत् ॥५५

राजा विजय ने जो अमात्य (मन्त्रीगण) उस भोगवती के साथ में समागत हुए थे। राजा शूरसेन ने उसका बहुत स्वागत-सत्कार किया था और प्रीति पूर्वक बड़े समादर के साथ उनको राजा विजय के समीप में विदा करके भेज दिया था ॥५०-५१॥ राजा विजय की पुत्री बाला थी और रूप एवं यौवन से सुसम्पन्न थी। वह सुमध्यमा अर्थात् सुन्दर मध्य भाग वाली नित्य ही अपने सास श्वशुर की शुश्रूषा किया करती थी ॥५२॥ भोगवती का जो भर्त्ता था वह महान भीषण सर्प था वह किसी एकान्त देश में जहाँ पर कोई भी मनुष्य नहीं रहा करता था रत्नों से सुशोभित सुगन्धित कुसुमों से समाकीर्ण सुखशीतल छाह में रहा करता था। उस सर्प ने अपनी माता से तथा पिता से बारम्बार कहा था कि वह राजा की पुत्री मेरी भार्या क्या मेरे समीप में नहीं आयेगी ? उस अपने पुत्र के वचन को सुनकर सर्प की माता ने दासी से यह वचन कहा था ॥५३-५५॥

धात्रिके गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवतीं वद ।
तव भर्ता सर्प इति ततः सा किं वदिष्यति ॥५६
धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा ।
रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत् ॥५७
जानेऽहं सुभगे भद्रे भर्तारं तव दैवतम् ।
न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम् ॥५८
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्यब्रवीदिदम् ॥५९
मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् ।
किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते ॥६०
भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत् ।
सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१

रुरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा ता कर्मणो गतिम् ।
भोगवत्यपि ता प्राह उक्तपूर्वा पुन सखीम् ॥६२
कान्त दर्शय भद्र ते वृथा याति वयो मम ॥६३

राज पत्नी ने कहा—हे धात्रिके ! हे सुभगे ! तुम शीघ्र जाकर भोगवती से कह दो कि तुम्हारा स्वामी सर्प है और यह देखो कि वह इस वचन को सुनकर क्या कहेगी ॥५६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस धात्री ने ऐसा ही करती हूँ—यह कह कर उसी समय भोगवती से एकान्त देखकर अपूर्व जैसे विनय पूर्वक यह वचन कहे थे ॥५७॥ धात्रिका ने कहा— हे सुभगे ! हे भद्रे ! मैं तो आपके स्वामी को एक देवता ही समझती हूँ। किन्तु आपको यह कहीं पर भी कभी नहीं कहना चाहिए अर्थात् इसको परम गुप्त ही रखना कि वह सर्प ही है और निश्चित रूप से पुरुष नहीं है ॥५८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस धात्री के ये वचन श्रवण कर उस भोगवती ने यह वचन उत्तर मे कहा था। भोगवती बोली—मानुषी स्त्रियों का साधारणतया भर्ता मनुष्य ही हुआ करता है यदि कोई देव जाति का स्वामी है तो फिर क्या कहने की बात है। ऐसा स्वामी तो बहुत अधिक पुण्य से ही प्राप्त हुआ करता है ॥५९-६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— भोगवती के द्वारा कथित इस वाक्य को उस धात्री ने आकर ज्यों का त्यों सब सर्प से-सर्प की माता से और राजा से यथा क्रम कह दिया था ॥६१॥ राजा ने जब उसका वचन सुना तो वह रुदन करने लगे थे और उन्होंने कर्मों की उस अद्भुत गति का स्मरण किया था कि यह क्या मेरे भाग्य मे बदा था। भोगवती ने भी पुन उसी पहिले आकर कहने वाली सखी को बुलाकर फिर उससे कहा था ॥६२॥ भोगवती ने कहा— हे भद्रे ! मेरे कान्त का दर्शन तो मुझे करा दो, आपका भला होगा, मेरा यह यौवन व्यर्थ ही व्यतीत हो रहा है ॥६३॥

तत सा दर्शयामास सर्प तमतिभीषणम् ।
सुगन्धकुसुमाकीर्णे शयने सा रहोगता ॥६४
स दृष्ट्वा भीषण सर्प भर्तार रत्नभूषितम् ।
कृताञ्जलिपुटा वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवत पति. ॥६६
इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा त सर्प सर्पभावनैः ।
खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चं वाङ्गसगमैः ॥६७
सुगन्धकुसुमै. पानैस्तोपयामास त पतिम् ।
तस्याश्च व प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥
स्मृत्वा सर्व दैवकृत रात्री सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम् ॥६८
राजकन्याऽपि मां दृष्ट्वा न भीताऽसि कथ प्रिये ।
सोवाच दैवविहित कोऽतिक्रमितुमीश्वर ॥
पतिरेव गतिः स्त्रीणा सर्वदैव विशेपतः ॥६९
श्रुत्वेति हृष्टस्तामाह नाग. प्रहसितानन ॥७०

श्री ब्रह्माजी ने कहा— इसके अनन्तर उस धात्री ने उस अत्यन्त भीषण सर्प को उसे दिखा दिया था। वह भोगवती उस परम सुगन्धित पुष्पों से समाकीर्ण ग्रह मे शय्या पर एकान्त मे गयी थी ॥६४॥ उस भोगवती ने अपने भर्त्ता को देखा जो कि रत्नो से भूषित एव महान् भीषण सर्प था। उस भोगवती ने अपने दोनो हाथों को जोडकर तुरन्त ही अपने कान्त से यह वाक्य कहा था ॥६५॥ भोगवती ने कहा--मैं परम धन्य एव अनुगृहीत हूँ कि जिस मेरा दैवता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— इतना कहकर वह शय्या पर बैठ गयी थी और उस तन्वगी ने सर्प की भावना से उस सर्प को गीतो के द्वारा एव अङ्गो के सगमो के द्वारा खिलाया था ॥६७॥ सुगन्धित पुष्पो से-पानो से उस अपने पति को परम सन्तुष्ट किया था। हे मुने ! उसके ही प्रसाद एव सानन्द सगम से उस सर्प को स्मृति उत्पन्न हो गयी थी। उस सर्प ने सब दैव के द्वारा किये हुए का स्मरण करके रात्रि मे अपनी प्रिया से कहा था ॥६८॥ सर्प ने कहा— हे प्रिये ! आप तो राजा की कन्या है फिर भी आप मुझे देखकर भयभीत क्यों नही हुई ? उस भोगवती ने कहा कि जो दैव के द्वारा विहित है उसका अतिक्रमण करने में कौन समर्थ हो सकता है ? स्त्रियों का तो सर्वदा एक पति ही गति हुआ करता है और यह ही उनका विशेष रूप से उद्धारक है ॥६९॥ श्री ब्रह्माजी ने नारद से कहा--

यह श्रवण करके वह नाग बहुत ही हर्षित हुआ था और प्रहसित मुख वाले ने उससे कहा ॥७०॥

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम् ।
तव प्रसादाच्चार्वङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१
शप्तोऽहं देवदेवेन कुपितेन पिनाकिना ।
महेश्वरकरे नागः शेषपुत्रो महाबलः ॥७२
सोऽहं पतिस्त्व च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा ।
उमावाक्याज्जहासोच्चैः शम्भुः प्रीतो रहोगतः ॥७३
ममापि चाऽऽगत भद्रे हास्य तद्देवसंनिधौ ।
ततस्तु कुपितः शम्भुः प्रादाच्छाप ममेदृशम् ॥७४
मनुष्ययोनौ त्व सर्पो भविता ज्ञानवानिति ॥७५
ततः प्रसादितः शम्भुस्त्वया भद्रे मया सह ।
ततश्चोक्तं तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम् ॥७६
कुर्वतो ज्ञानमाधास्ये यदा सर्पाकृतेस्तव ।
तदा विशापो भविता भोगवत्याः प्रसादत. ॥७७

सर्प ने कहा—मैं तुम्हारी भक्ति की भावना से परम सन्तुष्ट हो गया हूँ। बतलाओ, तुम्हारा मनो अभीप्सित तुमको मैं क्या दूँ? हे सुन्दर अङ्गों वाली प्रिये! तुम्हारे ही प्रसाद से मुझे यह सम्पूर्ण स्मृति जागृत हो आई है ॥७१॥ परम कुपित देवों के भी देव श्री शिव ने मुझे शाप दे दिया था। मैं शेष का पुत्र महान् बलवान् नाग महेश्वर प्रभु के कर में रहा करता था ॥७२॥ वही मैं अब तुम्हारा पति हूँ और तुम पहिले मेरी भोगवती नाम वाली भार्या हो। भगवान् शम्भु एकान्त मे स्थित होकर परम प्रसन्न होते हुए उमादेवी के वाक्य से ऊँचे स्वर से हँस उठे थे ॥७३॥ उस समय मे हे भद्रे! उन देव की सन्निधि मे मुझ को भी हँसी आगई थी। तब तो भगवान् शम्भु मुझ पर परम क्रोधित हो गये थे और उन्होंने मुझ को इस प्रकार से शाप दे दिया था ॥७४॥ भगवान् शिव ने कहा था—तू मनुष्य की योनि में सर्प होगा किन्तु ज्ञानवान् रहेगा ॥७५॥ सर्प ने कहा—उस समय में

हे भद्रे ! मेरे साथ मे ही तुमने भगवान् शम्भु को प्रसन्न किया था। हे भद्रे ! तब उन्होने कहा था कि गौतमी गङ्गा मे मेरा पूजन करने पर ज्ञान को प्राप्त करेगा। जब तेरी सर्पाकृति अर्थात् सर्प के समान आकृति होगी। वह उस समय मे भोगवती के प्रसाद से ही शाप रहित होगा ॥७७॥

तस्मादिद ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने।
तस्मान्नीत्वा गौतमीं मा पूजा कुरु मया सह ॥७८
ततो विशापो भविता आवा यावः शिवं पुनः।
सर्वेषा सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९
तच्छ्रुत्वा भर्तृ वचन सा भर्त्रा गौतमी ययौ।
ततः स्नात्वा तु गौतम्या पूजा चक्रे शिवस्य तु ॥८०
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूप ददौ मुने।
आपृच्छ्य पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः॥
शिवलोक ततो ज्ञात्वा पिता प्राह महामतिः ॥८१
युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति।
तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्बहून्॥
याते मयि पर धाम ततो याहि शिव पुरम् ॥८२
एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट्।
कामरूपमवाप्याथ भार्यया सह सुव्रतः ॥८३
पित्रा मात्रा तथा पुत्रै राज्य कृत्वा सुविस्तरम्।
याते पितरि स्वर्लोक पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे ॥८४
भार्यामात्यादिसहितस्ततः शिवपुर ययौ।
तत्त प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५
यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः।
यत्र स्नान च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥८६

हे शुभानने इसी कारण से मुझे यह सब प्राप्त हुआ है और तुम को भी ऐसा ही हुआ है। अतएव अब मुझको गौतमी पर ले जाकर

मेरे ही साथ तुम भी पूजा करो। अब मैं शाप से रहित हो जाऊँगा और फिर हम दोनो पुन: भगवान् शिव के समीप मे चलेगे। सभी परमाधिक आर्त्तों का एक मात्र शिव ही परम गति होते हैं ।।७८-७९।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस भोगवती ने अपने स्वामी के उन वचनों का श्रवण करके वह भर्त्ता के साथ गौतमी पर चली गयी थी। फिर वहीं पर गौतमी मे स्नान करके भगवान् शिव की पूजा की थी ।।-०।। हे मुने ! इसके उपरान्त भगवान् शम्भु प्रसन्न होगये थे और उन्होंने उसको परम दिव्य स्वरूप प्रदान कर दिया था। इसके पश्चात् वह सर्प माता-पिता से पूछ कर अपनी भार्या के साथ ही गमन करने के लिये उद्यत हो गया था। उसको शिव लोक मे जाने की बात जान कर महामति पिता ने उससे कहा था। पिता ने कहा—आप तो युवराज को धारण करने वाले मेरे एक ही ज्येष्ठ पुत्र हो। इस कारण से पूर्ण रूप से राज्य के शासन का सुख भोग कर तथा अपने बहुत से पुत्रों को समुत्पादित करके मेरे गमन कर जाने पर फिर पीछे ही शिवलोक को गमन करना ।।८१-८२।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने पिताजी के इस आदेश वचन का श्रवण करके उस नागराज ने 'ऐसा ही करूँगा'—यह कहा था। उस सुव्रत ने अपनी भार्या के साथ काम रूप प्राप्त करके अपने पिता-माता और पुत्रों के साथ सुविस्तृत राज्य का सुखोप भोग करते जब पिताजी स्वर्गलोक वासी हो गये थे तब अपने पुत्रों को अपने पद पर संस्थापित करके फिर वह माया और अमात्यादि के साथ शिव पुर मे गमन कर गया था। तभी से लेकर वह तीर्थ नागतीर्थ नाम से लोक मे प्रख्यात हो गया था ।।८३-८४।। जहाँ पर नागेश्वर देव भोगवती के साथ प्रतिष्ठित हैं वहाँ पर स्नान करने, दान-करने व समस्त ऋतुओं के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है ।।८५-८६।।

मातृतीर्थवर्णन

मातृतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धि कर नृणाम् ।
आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१
देवानामसुराणा च सगरोऽभूत्सुदारुणः ।
नाशक्नुवस्तदा जेतु देवा दानवसगरम् ॥२
तदाऽहमगमं देवैस्तिष्ठन्त शूलपाणिनम् ।
अस्तव विविधैर्वाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३
समन्व्य देवैरसुरैश्च सर्वै-
यंदाऽऽहृत समथितु समुद्रम् ।
यत्कालकूट समभून्महेश,
तत्का चिन्ता क्षो ग्रसितु समर्थः ॥४
पुष्पप्रहारेण जगत्त्रय य,
स्वाधीनमापादयितु समर्थः ।
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो,
वितायमानो विलय प्रयातः ॥५
विमथ्य वारीशमनङ्गशत्रो,
यदुत्तम तत्तु दिवौकसेभ्य. ।
दत्त्वा विष सहरन्नीलकण्ट,
को वा धर्तु त्वामृते वै समर्थः ॥६
दास्येऽह यदभीष्ट वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक मातृ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है जो कि मनुष्यो की सम्पूर्ण सिद्धियो के कर देने वाला है । उस तीर्थ की ऐसी अद्भुत महिमा है कि मनुष्य उस तीर्थ के केवल स्मरण से ही सब मानसिक व्यथाओ से छुटकारा पा जाया करता है ॥१॥ एक बार देवो का और असुरों का परम दारुण युद्ध हुआ था । उस समय मे देवगण उस दानवों के महान् भीषण युद्ध को जीतने मे असमर्थ हो गये थे ॥२॥

उस समय मे देवों के साथ मैं वहाँ पर स्थित भगवान् शूलपाणि के समीप मे गया था। अपनी अञ्जलि के पुर को बांध करके धीरे से मैंने अनेक वाक्यों के द्वारा स्तवन किया था ॥३॥ हे महेश ! समस्त देवों और असुरों ने आपस मे भली-भाँति मन्त्रणा करके जिन समय में समुद्र के मन्थन करने आरम्भ किया था और जो कालकूट महाविष उससे समुत्पन्न हुआ था उसको आपके बिना ग्रसित करने मे समर्थ था ? अर्थात् आपको छोड़ कर अन्य किसी मे भी ग्रसने की सामर्थ्य नही थी ॥४॥ जो केवल पुष्पो के प्रहार के द्वारा ही तीनों लोकों को अपने अधीन कर लेने की अद्भुत शक्ति रखता है वह कामदेव दूसरे सुरों के द्वारा वन्दित होकर जब भगवान् हर के विषय मे वितायमान हुआ था तो उसी क्षण मे वही पर विलय को प्राप्त हो गया था अर्थात् भस्मीभूत होकर अपने स्वरूप को ही खो बैठा था ॥५॥ हे कामदेव के सहार करने वाले प्रभो ! समुद्र का मन्थन करके जो सर्वोत्तम पदार्थ अमृत था उसको देवगणो को देकर हे नील कण्ठ ! महाविष का सहार करते हुए कण्ठ मे उसको धारण करने मे आपके सिवाय अन्य कौन समर्थ था अर्थात् कोई भी अन्य ऐसी शक्ति रखने वाला नही था ॥६॥ इस रीति से स्तुति किये जाने पर आदिकर्त्ता भगवान् तीन नेत्रधारी शम्भु सन्तुष्ट हो गये थे ॥७॥

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥८
दानवेभ्यो भयं घोरं तन्नेहि वृषभध्वज ।
जहि शत्रूनसुरान्पाहि नायवन्तस्त्वया प्रभो ॥९
निष्कारण. सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि ।
सदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता. सर्वदेहिनः ॥१०
इत्युक्तस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवदानव. ।
तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११
ततस्त्रिलोचनः श्रान्तस्तमोरूपधरः शिवः ।
ललाटाद्व्यपतत्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२

स सहरन्दैत्यगणास्तामसी मूर्तिमाश्रित ।
ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुव ययु ॥१३
स सहरन्सर्वदैत्यास्तदाऽगच्छद्भुव हर. ।
इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वां महीमिमाम् ॥१४

भगवान् शङ्कर ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो मैं परम प्रसन्न हू और आपका जो भी कुछ मन का अभीप्सित होगा उसे ही मैं दे दूँगा, आप बोलो क्या चाहते हो ! ॥८॥ देवो ने कहा था—हे देवेश्वर ! देवो का इस समय मे दानवो से महान् भय उपस्थित हो गया है सो हे वृषभ ध्वज ! आप वहाँ पर आइये । हे प्रभो ! हमारे उन शत्रुओ का सहार कीजिए और देवो की रक्षा करिए । आप ही के द्वारा हम नाथ वाले हैं अर्थात् आप के अतिरिक्त अन्य हमारा कोई भी नाथ नही है ॥६॥ हे शम्भो ! यदि बिना ही किसी कारण के आप सुहृद् न होते तो ये सब देहधारी दु ख से आर्त्त होकर क्या उस समय मे करते ? ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना निवेदन करने पर तुरन्त ही शकर भगवान् वहाँ पर समागत हो गये थे जहाँ देवो के शत्रु दानव विद्यमान थे और फिर वहा पर सुरो के शत्रु दानवो का शकर के साथ महान् घोर युद्ध हुआ था ॥११॥ तब तो भगवान् त्रिलोचन श्रान्त (थके हुए) हो गये थे जो कि तम स्वरूप धारी थे । उस समय म युद्ध करते हुए उनके ललाट से स्वेद (पसीना) की बिन्दु नीचे गिर रहे थे ॥१२॥ उस समय मे दैत्यगणो का सहार करते हुए शिव ने तामसी मूर्त्ति को धारण कर लिया था । उस तामसी मूर्त्ति को देख करके असुरगण मेरुपर्वत के पृष्ठ भाग से भूलोक को चले गये थे ॥१३॥ उस समय मे भगवान् हर दैत्यो का सहार करते हुए भूलोक मे आगये थे । तब वे असुर इधर-उधर भयभीत होकर इस सम्पूर्ण भूमि पर दौड लगाने लगे थे ॥१४॥

तथैव कोपाद्रुद्रोऽपि शत्रू स्ताननुधावति ।
तथैव युध्यत. शभो. पतिता. स्वेदबिन्दवः ॥१५
यत्र यत्र भुव प्राप्तो बिन्दुर्महेश्वरो मुने ।
तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे तत. ॥१६

प्रोचुर्महेश्वर सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति ।
ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७
स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम् ।
अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८
यत्र यत्र द्विपो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः ।
रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भयाद्द्विपः ।
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विपः ॥१६
ताश्च जग्मुर्भुवं भित्वा यत्र ते दैत्यदानवाः ।
ताह्नत्वा मातरः सर्वान्देवारीनतिभीषणान् ॥२०
पुनर्देवानुपाजग्मुः यथा तेनैव मातरः ।
गताश्च मातरो यावद्यावद्व पुनरागताः ॥२१

उसी समय मे भगवान् रुद्र देव भी क्रोध से उन शत्रुओ के पीछेर ही दौड रहे थे। उसी भांति से युद्ध करते हुए शम्भू के पसीने की बूंदें गिरी थी ॥१५॥ हे मुनि नारद ! जहा-जहां पर महेश्वर की पसीने की बिन्दु इस भूमि पर गिरी थी वही-वही पर शिव के ही आकार वाली मातृगण समुत्पन्न हो गयी थीं ॥१६॥ उन सबने भगवान् महेश्वर से प्रार्थना की थी कि हम इन सब असुरो को भक्षित कर लेवें तब तो सुरगणों से समावृत शम्भु ने कहा था। भगवान् शिव बोले—स्वर्ग से तो ये सब राक्षस भाग कर इस भूमिमण्डल पर आगये हैं और यहां से भी वे सब रसातल को अनुप्राप्त होरहे हैं अतएव तुम सब मेरा कथन सुनो ॥१७-१८॥ जहां जहां पर ये दुष्ट शत्रु गमन करें वहीं पर तुम सब माताओ का समुदाय भी गमन करे। इस समय मे मेरे भय से ये शत्रु रसातल को अनुप्राप्त हो गये हैं सो आप सब भी इन शत्रुओं के पीछेर ही रसातल मे अनुगमन करो ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे सब माताएँ इस भू का भेदन करके जहां पर दैत्य दानव थे वहा पर पहुंच गयी थी और उन समस्त देवो के महान् भीषण शत्रुओ का उनने हनन कर दिया था ॥२०॥ फिर उसी मार्ग से जिसके द्वारा उन्होंने

गमन किया था वे सब माताऐं जितनी भी थी देवो के समीप मे पुनः समागत हो गयी थी ॥२१॥

तावद्देवा स्थिता आसन्गौतमीतीरमाश्रिता. ।
प्रस्थानात्तत्र तातृणा सुराणा च प्रतिष्ठिते. ॥२२
प्रतिष्ठान तु मत्क्षेत्र पुण्य विजयवर्धनम् ।
मातृणा यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक् ॥२३
तत्र तत्र बिलान्यासन्रसातलगतानि च ।
सुरास्ताभ्यो वरान्प्रोचुर्लोके पूजा यथा शिव. ॥२४
प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य. पूजा भवतु सर्वदा ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदु ।
सुराणामपि सेव्यानि कि पुनर्मानुपादिभि ॥२६
तेपु स्नानमथो दान पितृणा चैव तर्पणम् ।
सर्व तदक्षय ज्ञेय शिवस्य वचन यथा ॥२७
यस्त्विदं शृणुयान्नित्य स्मरेदपि पठेत्तथा ।
आख्यान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत् ॥२८

उस समय तक वे सब देवता गौतमी के तट का आश्रय ग्रहण करके वहीं पर स्थित हो रहे थे । वहाँ पर मातृगण के प्रस्थान से और सुरों के प्रतिष्ठित होने से यह क्षेत्र परम पुण्यमय एवं विजय को बढ़ाने वाला प्रतिष्ठान हो गया था । जहाँ पर उन माताओं की उत्पत्ति हुई थी वह पृथक्२ मातृतीर्थ बन गया था और वहीं-वहीं पर रसातल को जाने वाले बिल भी थे । सुरगणों ने उन माताओं से वरदानों की याचना की थी कि जिस तरह से भगवान् शिव की पूजा होती है वैसे ही सर्वदा माताओं की पूजा हुआ करे । इतना निवेदन करके देवगण अन्तर्धान को प्राप्त होगये थे और वे माताऐं वहीं पर स्थित हो गयीं थीं ॥२२-२५॥ जहाँ-जहाँ पर वे देवियाँ स्थित हुई थी उन स्थानों को मातृतीर्थ समझा जाता है । वे सभी क्षेत्र एवं तीर्थ सुरों के भी परम सेव्य हैं फिर मनुष्यों के द्वारा सेव्य होने की तो बात ही क्या है ॥२६॥ उन तीर्थों में स्नान

करना-दान देना और पितृगणों का तर्पण करना आदि जो भी सत्कर्म होता है वह अक्षय हो जाता है ऐसा भगवान् शिव का वचन है ॥२७॥ इस मातृतीर्थ की कथा का जो भी कोई श्रवण किया करता है तथा नित्य इसका पाठ करता है और स्मरण भी कर लेता है वह इस मातृतीर्थ के आख्यान के प्रभाव से परम आयुष्मान् और सुखी हो जाता है ॥२८॥

—— ※ ——

शेषतीर्थवर्णन

शेषतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ।
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१
शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः ।
सर्वैर्नागैः परिवृतो रसातलमथाभ्यगात् ॥२
राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रतिष्ठा ये रसातलम् ।
तैर्निरस्तो भोगिपतिर्मामुवाचाथ विह्वलः ॥३
रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां ममापि च ।
ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४
ततोऽहमब्रवं नाम गौतमीं याहि पन्नग ।
तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५
नान्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः ।
मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६

श्री ब्रह्मा जी ने कहा—एक 'शेष तीर्थ'—इस परम शुभ नाम से लोक में प्रख्यात है और वह तीर्थ समस्त कामनाओं के प्रदान कर देने वाला होता है। अब मैं उस तीर्थ के स्वरूप को बतलाता हूँ जो कि मैंने परिभाषित किया है ॥१॥ शेष नाम वाले एक महा नाग हैं जो रसातल लोक के स्वामी और वहाँ के प्रभु हैं। वह अन्य सभी नागों से घिरा

समावृत रहा करते हैं वह रसातल में ही गमन कर गया था ॥२॥ उस रसातल मे राक्षस-दैत्य और दनुज भी प्रविष्ट हो गये थे और उन्होंने उस शेष को वहां से निकाल दिया था तब वह विचारा भोगियो के पतियों से रहित अत्यधिक विह्वल होकर मुझसे आकर बोला था ॥३॥ शेष ने कहा—हे भगवन् आपने मुझको निवास करने के लिये रसातल दिया था और राक्षसो को भी दिया था किन्तु वे मुझको वहाँ पर कोई भी स्थान नहीं देते हैं अतएव अब मैं आपकी शरण गति मे समागत हुआ हूँ ॥४॥ यह सुनकर मैंने उससे कहा था कि हे पन्नगे ! तुम गौतमी गङ्गा पर चले जाओ। वहाँ पर महादेव साक्षात् विराजमान हैं उनका स्तवन करने पर वे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर देंगे और तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे ॥५॥ तीनो लोकों मे अन्य कोई भी इस प्रकार से मनोवाछित को प्रदान करने वाला नहीं है। मेरे वचनों से प्रेरणा प्राप्त करके वह नाग वहाँ पहुँच गया था और गौतमी गङ्गा मे स्नान करके यत्न पूर्वक हाथ जोड़कर उन देवेश्वर प्रभु की उसने स्तुति की थी ॥६॥

नमस्त्रैलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने ।
आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥७
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे ।
सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः ।
पाहि शङ्कर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग ॥
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेप्सितम् ॥९
ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादान्नागेप्सितान्वरान् ।
विनाशाय सुरारीणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०
शेषाय प्रददौ शूलं जघानेनारिपुङ्गवान् ।
ततः प्रीत स्त्रिनागो शेषः शूलेन नागिप ॥११
रसातलगतो गत्वा निजघान रिपून्रणे ।
निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसान् ॥१२

अत्यन्त पुण्य के प्रदान करने वाला गङ्गा का जल वहां पर गया था ॥१०-१४॥

तद्वारि गङ्गामगमद्‌गङ्गायाः सगमस्ततः ।
देवस्य पुरतश्चापि कुण्ड तत्र सुविस्तरम् ॥१५
नागस्तत्राकरोद्धोम यत्र चाग्निः सदा स्थितः ।
सोष्ण तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र सगमः ॥१६
देवदेव समाराध्य नागः प्रीतो महायशाः ।
रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तल ययौ ॥१७
ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम् ।
सर्वकामप्रद पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८
आयुर्लक्ष्मीकरं पुण्यं स्नानदानाच्च मुक्तिदम् ।
शृणुयाद्वा पठेद्भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९
तीर्थं देवेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः ।
एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
शतानि मुनिशार्दूल सर्वसम्पत्प्रदायिनाम् ॥२०

वह जल गङ्गा मे गया था और फिर वहां पर गङ्गा का सङ्गम हुआ था तथा देवेश्वर के आगे वहां पर एक सुविस्तृत कुण्ड बन गया था ॥१५॥ नाग ने वहां पर होम किया था जहां पर अग्नि सदा ही स्थित रहता है। वह जल उष्ण हो गया था। वहां पर गङ्गा का संगम हुआ था ॥१६॥ वह महान् यश वाला परम प्रसन्न नाग देवों के भी देव श्री शिव की समाराधना में परायण हो गया था और आराधन करके शिव से अपने अभीष्ट आश्रय रसातल को चला गया था ॥१७॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ नाग तीर्थ नाम से कहा गया है। यह तीर्थ सब काम-नाओं के प्रदान करने वाला परम पुण्य मय और रोगों तथा दरिद्रता के विनाश करने वाला है। ॥१८॥ आयु तथा लक्ष्मी के देने वाला-पुण्य स्वरूप और स्नान तथा दान करने से यह मोक्ष देने वाला होता है। जो इस नाग तीर्थ के आख्यान का पाठ करता है—श्रवण करता है अथवा स्मरण किया करता है वो भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१९॥ जहां

जहा पर वह तीर्थ है वहाँ पर शेपेश्वर शक्ति प्रद शिव विद्यमान रहते हैं। वहा पर दोनो तटो पर सब सम्पत्तियो के प्रदान करने वाले हे मुनि शार्दूल ! इक्कीस सौ तीर्थ हैं ॥२०॥

—*—

आत्मतीर्थवर्णन

आत्मतीर्थमिति स्यात भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ।
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वर. शिव ॥१
दत्त इत्यभि विख्यात. सोऽत्रिपुत्रो हरप्रिय ।
दुर्वासस प्रियो भ्राता सवज्ञानविशारद ॥
स गत्वा पितर प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२
ब्रह्मज्ञान कथ मे स्यात्क पृच्छामि क यामि च ॥३
तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाक्य ध्यात्वा वचमतब्रवीत् ॥४
गौतमी पुन गच्छ त्व तत्र स्तुहि महश्वरम् ।
स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५
तथेत्युक्त्वा तदाऽऽत्रेयो गङ्गा गत्वा सुविग्रत ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥६
ससारकूपे पतितोऽस्मि देवा-
 न्मोहेन गुप्तो भवदु खपङ्के ।
अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽह,
 पर न विन्दामि सुराधिनाथ ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक तीर्थ आत्मतीर्थ शुभ नाम से लोक म प्रसिद्ध है जो मनुष्यों को सासारिक समस्त उत्तमोत्तम सुखो का उपभोग और जीवन मरण के आवागमन के भव बन्धन से छुटकारा दोनों के प्रदान करने वाला है। अब मैं उस महान् तीर्थ के प्रभाव का वर्णन

करता है जहाँ पर ज्ञानेश्वर शिव विराजमान रहा करते हैं ।।१।। भगवान् शिव का परम प्रिय वह अत्रि मुनि का पुत्र दत्त इस नाम से भी प्रख्यात हुआ है। वह दुर्वासा मुनि का परमाधिक प्यारा भाई था और सभी प्रकार के ज्ञान का महान् मनीषी था। उसने अपने पिताजी की सेवा में उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की थी ।।२।। दत्त ने कहा—हे भगवन्! मुझको ब्रह्म का ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है? इस विषय मे मैं किस से पूछूँ और कहाँ पर गमन करूँ? ।।३।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—अत्रि मुनि ने अपने पुत्र के इस वचन को सुन कर ध्यान किया और वे फिर यह वचन बोले ।।४।। अत्रि ने कहा—हे पुत्र! तुम गौतमी गङ्गा के तट पर चले जाओ और वहाँ महेश्वर प्रभु विराजमान हैं उनका स्तवन करो। वह जिस समय मे ही प्रसन्न हो जायगे तभी तत्क्षण तुम ज्ञान प्राप्त कर लोगे ।।५।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर आत्रेयदत्त उसी समय में गङ्गा पर पहुंच कर स्नान करके शुचि हो गया था और फिर अपनी अञ्जलियो के पुट को जोड कर परम भक्ति की भावना से भगवान् शंकर का स्तवन किया था ।।६।। दत्त ने कहा—दैववश से मैं इस संसार रूपी कूप मे पड़ा हुआ हू—मोह से गुप्त हो रहा हू अर्थात् संसार रूपी दुःख के कीचड मे मोह के कारण छिपा जारहा हू। अज्ञान नामक तम से मैं घिरा हुआ हू अतएव हे सुराधिनाथ! मैं परात्पर ब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर रहा हूँ ।।७।।

भिन्नस्त्रिशूलेन बलीयसाऽहं,
पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।
तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापैः,
श्रान्तोऽस्मि संतारय सोमनाथ ।।८
बद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयैश्च बन्ध-
र्हतोऽस्मि रागानलतीव्रतापैः ।
ग्रस्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजंगमेन,
भीतो भृशं किं करवाणि शम्भो ।।९

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं,
तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
ईदृक्षया जरया चाभिभूतः,
पश्यावस्था कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०

कामेन क्रोधेन च मत्सरेण,
दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
एकैकशः कष्टगतोऽस्मि विद्व-
स्त्व नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११

कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो,
दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
विना भवन्तं मम सोमनाथ,
कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२

तावत्स कोपो भयमोहदुःखा-
न्यज्ञानदारिद्र्य रुजस्तथैव ।
कामादयो मृत्युरपीह याव-
न्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३

न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्ति-
र्नाहं विवेकी कुतो मे ।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते,
निधेहि सोमेति पद मदीये ॥१४

हे सोम नाथ ! मैं बलवान् त्रिशूल से भिदा हुआ हूं और पाप के कारण से मैं चिन्तारूपी क्षुर (उस्तरा) से पाटित हो रहा हूं। पांचो इन्द्रियो के तीव्र तापो से संतप्त हू। मैं बहुत ही श्रान्त हो गया हू आप मेरा सन्तारण कीजिए ॥८॥ हे शम्भो ! मैं दारिद्रय पूर्ण बन्धनो से बंधा हुआ ▮ और रोग रूपी अग्नि के तीव्र तापो से हत हो रहा हूं। मृत्यु-रूपी भुजङ्ग से मैं क्रान्त होता हू और अत्यन्त डरा हुआ हूं। हे प्रभो ! मैं अब क्या करूं? ॥९॥ भव और अभव अर्थात् जन्म तथा मरण से मैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा हू। तृष्णा और क्षुधा से तथा रजोगुण और

करता हूँ जहाँ पर ज्ञानेश्वर शिव विराजमान रहा करते हैं ।।१।। भगवान् शिव का परम प्रिय वह अत्रि मुनि का पुत्र दत्त इस नाम से भी प्रख्यात हुआ है। वह दुर्वासा मुनि का परमाधिक प्यारा भाई था और सभी प्रकार के ज्ञान का महान् मनीषी था। उसने अपने पिताजी की सेवा में उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की थी ।।२।। दत्त ने कहा—हे भगवन् ! मुझको ब्रह्म का ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है ? इस विषय मे मैं किस से पूछूँ और कहाँ पर गमन करूँ ? ।।३।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—अत्रि मुनि ने अपने पुत्र के इस वचन को सुन कर ध्यान किया और वे फिर यह वचन बोले ।।४।। अत्रि ने कहा—हे पुत्र ! तुम गौतमी गङ्गा के तट पर चले जाओ और वहाँ महेश्वर प्रभु विराजमान हैं उनका स्तवन करो। वह जिस समय मे ही प्रसन्न हो जायगे तभी तत्क्षण तुम ज्ञान प्राप्त कर लोगे ।।५।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर आत्रेयदत्त उसी समय में गङ्गा पर पहुच कर स्नान करके शुचि हो गया था और फिर अपनी अञ्जलियो के पुट को जोड कर परम भक्ति की भावना से भगवान् शंकर का स्तवन किया था ।।६।। दत्त ने कहा—दैववश से मैं इस संसार रूपी कूप मे पड़ा हुआ हूँ—मोह से गुप्त हो रहा हूँ अर्थात् संसार रूपी कुल के कीचड़ मे मोह के कारण छिपा जारहा हूँ। अज्ञान नामक तम से मैं घिरा हुआ [redacted] अतएव [redacted] सुराधिनाथ ! मैं परात्पर ब्रह्म की प्राप्ति नही कर रहा हूँ ।।७।।

भिन्नास्थिमूलेन बलीयसाऽहं,
पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।
ततोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापं,
श्रान्तोऽस्मि संतारय सोमनाथ ।।८
बद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयैश्च बन्ध-
र्हतोऽस्मि रागानलतीव्रतापैः ।
ग्रस्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजंगमेन,
भीतो भृशं किं करवाणि शंभो ।।९

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं,
तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
ईदृक्षया जरया चाभिभूतः,
पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०

कामेन कोपेन च मत्सरेण,
दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
एकैकशः कष्टगतोऽस्मि विद्व-
स्त्व नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११

कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो,
दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
विना भवन्त मम सोमनाथ,
कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२

तावत्स कोपो भयमोहदुःखा-
न्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव ।
कामादयो मृत्युरपीह याव-
न्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३

न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्ति-
र्नाहं विवेकी कुतो मे ।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते,
निधेहि सोमेति पदं मदीये ॥१४

हे सोम नाथ ! मैं बलवान् त्रिशूल से भिदा हुआ हूँ और पाप के कारण से मैं चिन्तारूपी क्षुर (उस्तरा) से पाटित हो रहा हूँ। पाँचो इन्द्रियों के तीव्र तापो से संतप्त हू। मैं बहुत ही श्रान्त हो गया हू आप मेरा सनारण कीजिए ॥८॥ हे शम्भो ! मैं दारिद्रय पूर्ण बन्धनो से बँधा हुआ हू और रोग रूपी अग्नि के तीव्र तापो से हत हो रहा हूँ। मृत्यु-रूपी भुजङ्ग से मैं क्रान्त होता हूँ और अत्यन्त डरा हुआ हूँ। हे प्रभो ! मैं अब क्या करूँ ? ॥६॥ भव और अभव अर्थात् जन्म तथा मरण से मैं अत्यधिक पीड़ित हो रहा हूँ। तृष्णा और क्षुधा से तथा रजोगुण और

तमोगुण से एव इस प्रकार की जरावस्था से मैं अभिभूत हू । हे नाथ ! आप कृपा कर के मेरी इस दयनीय दशा को देखिये ॥१०॥ काम-कोप मात्सर्य दम्भ-दर्प आदि अनेक रोगों से विद्ध हुआ मैं एक-एक से कष्ट गत हो रहा हू । हे नाथ ! आप नाथ की ही भाँति मेरे इन शत्रुओं को हटाइए ॥११॥ कोई किसी पतित पुरुष के दु खो का प्रणोदन करने वाला होता है—यह बिल्कुल सत्य है । हे सोम नाथ ! बिना आपके मेरा कही पर भी करुणा पूर्ण वचन वाला भी नही है ॥१२॥ तभी तक वह कोप-भय मोह दु ख-अज्ञान दारिद्रय रोग हैं तथा काम आदि हैं और मृत्यु भी तभी तक है जब तक मैं "नम शिवाय"—इस वाक्य को नही बोलता हूं ॥१३॥ मेरे अन्दर कोई भी धर्म नही है और न मुझ मे भक्ति ही है । मैं विवेकशील भी नही हू तथा करुणा का भाव तो मुझ मे हो ही कैसे सकता है । अतएव हे शरण्य ! आप शीघ्र देन वाले है । अब आप मेरे चित्त 'सोम'—इस पद को रखिए ॥१४॥

याचे न चाह सुरभूपतित्व,
हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
श्रीसोमपादाम्बुजसनिधान,
याचे विचार्यैव च तत्कुरुष्व ॥१५

यथा त्वाह विदितोऽस्मि पाप-
स्तथाऽपि विज्ञापनमाशृणुष्व ।
सश्रूयते यत्र वच शिवेति,
तत्र स्थिति स्यान्मम सोमनाथ ॥१६

गौरीपते शकर सोमनाथ,
विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन् ।
सस्तूयते यत्र सदेति तत्र,
केषामपि स्यात्कृतिना निवास ॥१७

इत्यात्रेयस्तुति श्रुत्वा तुतोष भगवान्हर. ।
वरदोऽस्मीति त प्राह योगिन विश्वकृद्भव. ॥१८

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च विपुलां त्वयि ।
तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशार्चित ॥१९
एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं विदुर्बुधाः ॥
तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह नारद ॥२०

हे सोम नाथ ! मैं सुरो के भूपति का पद नहीं चाहता हूँ अर्थात् इन्द्रासन की अभिलाषा मुझे बिल्कुल नहीं है । मैं तो अपने हृदय के पद्म मध्य मे जो सोम पादाम्बुज का सन्निधान चाहता हूँ और उसकी आपसे याचना भी कर रहा हूँ सो आप विचार कर ही यह करिए ॥१५॥ जैसा मैं पापी हूँ वह आपको विदित ही है आप से मेरे पाप कुछ भी छिपे नहीं हैं तो भी मेरा विज्ञापन है उसके श्रवण करने की आप कृपा कीजिए । जहाँ पर 'शिव'—यह वचन सुना जाता है हे सोमनाथ ! वहाँ पर ही मेरी स्थिति हो जानी चाहिए ॥१६॥ हे गौरीपते ! हे शङ्कर ! हे सोमनाथ ! हे अखिलात्मन् ! आप तो करुणा की खान हैं और इस समस्त विश्व के ईश्वर हैं । जहां पर 'सत्'—यह सुना जाता है वहाँ पर कुछ ही पुण्यात्माओ का निवास होता है । श्री ब्रह्माजी ने कहा— आत्रेय की इस स्तुति को सुन कर भगवान् हर बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे और फिर विश्व के निर्माण करने वाले भगवान् हर ने उस योगी से कहा था कि मैं तुझे वरदान देने वाला हूँ तू अपना अभीष्ट वरदान मुझसे प्राप्त करले ॥१७-१८॥ आत्रेय ने कहा—हे त्रिदशो (देवो) के द्वारा समर्चित भगवान् ! आत्मज्ञान-मुक्ति और आपके अन्दर विपुल भक्ति तथा इस तीर्थ का भी माहात्म्य ये ही मेरे वरदान हैं जिनको मेरा मन प्राप्त करना चाहता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही होगा—यह भगवान् शम्भु कह कर वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे । तभी से आरम्भ करके उस तीर्थ को बुध पुरुष आत्मतीर्थ जानते हैं । हे नारद ! उस तीर्थ मे स्नान करने से और दान देने से मुक्ति हो जाया करती है ॥२०॥

सोमतीर्थवर्णन

सोमतीर्थमिति ख्यात तदप्युक्त महात्मभि.।
तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत् ॥१

जगता मातर पूर्वमोषध्यो जीवसमता.।
ममापि मातरो देव्य पूर्वासा पूर्ववत्तरा' ॥२

आसु प्रतिष्ठितो धर्म स्वाध्यायो यज्ञकर्म च।
आभिरेव धृत सर्व त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३

अशेषरोषोपशमो भवत्याभिरसशयम्।
अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम् ॥
अनौषध्यो जगद्वन्द्या. मामूचुरनह कृता. ॥४
अस्माक त्व पति राजान सुरसत्तम ॥५

तच्छ्रुत्वा वचन तासा मयोक्ता ओषधीरिदम्।
पति प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम् ॥६

राजानमिति तच्छ्रुत्वा ता मामूचु पुनर्मुने।
गन्तव्य क पुनश्चोक्ता गौतमी यान्तु मातर ॥७
तुष्टायामथ तस्या वो राजा स्याल्लोकपूजित.।
ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौतमी नदीम् ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सोम तीर्थ इस शुभ नाम से प्रख्यात है और वह भी महान् आत्मा वालो के द्वारा कहा गया है। वहाँ पर स्नान और दान करने से सोम पान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥१॥ जगतो की माताएँ पूर्व मे ओषधियाँ जीवो के सम्मत थी मेरी माताएँ भी पूर्व मे होने वालियो के भी पूर्व मे होने वाली देवियाँ थी ॥२॥ इनमे ही धर्म प्रतिष्ठित है और स्वाध्याय और यज्ञ कर्म भी इनमे प्रतिष्ठित रहता है। इनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य धारण किया हुआ है ॥३॥ समस्त रोग का उपशम बिना किसी सशय के इनसे ही होता है और इनके ही द्वारा सबके प्राणों की रक्षा करने वाला अन्न होता है।

यहाँ पर ओपधियाँ जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं और उन्होंने निरभिमान होकर मुझसे कहा-॥४॥ ओषधियों ने कहा--हे सुरों मे परम श्रेष्ठ ! आप हमारा पति राजा का प्रदान हमको कर दो ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--उनके उस वचन का श्रवण करके मेरे द्वारा ओषधियों से यह कहा गया था कि आप सब प्रीति का बढाने वाला अपना पति राजा को प्राप्त कर लोगी ॥६॥ हे मुनिवर ! 'राजा को'--यह सुन कर उन्होंने मुझ से पुन कहा था कि कहाँ पर जाना होगा तब उनसे कहा गया था कि हे माताओ ! गौतमी को जाओ ॥७॥ उस गौतमी के तुष्ट हो जाने पर आप लोगो का राजा लोक पूजित हो जायगा। हे मुनिश्रेष्ठ ! वे सब वहाँ पर जाकर गौतमी गङ्गा नदी का स्तवन करने लगी थी ॥८॥

किं वाऽकरिष्यन्भववर्तिना जाना,
नानाघसघाभिभवाच्च दु खिता ।
न चाऽऽगमिष्यद्भवती भुव चे-
त्पुण्योदके गौतमि शभुकान्ते ॥९

को वेत्ति भाग्य नरदेहभाजा,
महीगताना सरितामधीशे ।
एपा महापातकसघहन्त्री,
त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०

न ते विभूति ननु वेत्ति कोऽपि,
त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि,
धत्ते स्मरारि शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११

नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि,
नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनि सृते,
नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनि सृते ॥१२

सोमतीर्थवर्णन

सोमतीर्थमिति ख्यात तदभ्युक्त महात्मभिः ।
तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत् ॥१
जगता मातर पूर्वमोषध्यो जीवसमता. ।
ममापि मातरो देव्य पूर्वासा पूर्वतत्तराः ॥२
आसु प्रतिष्ठितो धर्म स्वाध्यायो यज्ञकर्म च ।
आभिरेव धृत सर्व त्रलोक्य सचराचरम् ॥३
अशेषरोषोपशमो भवत्याभिरसशयम् ।
अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम् ॥
अत्रौपध्यो जगद्वन्द्या. मामूचुरनह कृता. ॥४
अस्माक त्व पति राजान सुरसत्तम ॥५
तच्छ्रुत्वा वचन तासा मयोक्ता ओषधीरिदम् ।
पति प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम् ॥६
राजानमिति तच्छ्रुत्वा ता मामूचु पुनर्मुने ।
गन्तव्य क पुनश्चोक्ता गौतमी यान्तु मातरः ॥७
तुष्टायामथ तस्या वो राजा स्याल्लोकपूजित. ।
ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौतमी नदीम् ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सोम तीर्थ इस शुभ नाम से प्रख्यात है और वह भी महान् आत्मा वालो के द्वारा कहा गया है । वहाँ पर स्नान और दान करने से सोम पान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥१॥ जगतो की माताएँ पूर्व मे औषधियाँ जीवो के सम्मत थी मेरी माताएँ भी पूर्व मे होने वालियो के भी पूर्व मे होने वाली देवियाँ थी ॥२॥ इनमे ही धर्म प्रतिष्ठित है और स्वाध्याय और यज्ञ कर्म भी इनमे प्रतिष्ठित रहता है । इनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य धारण किया हुआ है ॥३॥ समस्त रोग का उपशम बिना किसी सशय के इनसे ही होता है और इनके ही द्वारा सबके प्राणों की रक्षा करने वाला अन्न होता है ।

यहाँ पर ओषधियाँ जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं और उन्होंने निरभिमान होकर मुझसे कहा—॥४॥ ओषधियों ने कहा—हे सुरों मे परम श्रेष्ठ ! आप हमारा पति राजा का प्रदान हमको कर दो ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनके उस वचन का श्रवण करके मेरे द्वारा ओषधियों से यह कहा गया था कि आप सब प्रीति का बढाने वाला अपना पति राजा को प्राप्त कर लोगी ॥६॥ हे मुनिवर ! 'राजा को'—यह सुन कर उन्होंने मुझ से पुन कहा था कि कहाँ पर जाना होगा तब उनसे कहा गया था कि हे माताओ ! गौतमी को जाओ ॥७॥ उस गौतमी के तुष्ट हो जाने पर आप लोगो का राजा लोक पूजित हो जायगा। हे मुनिश्रेष्ठ ! वे सब वहाँ पर जाकर गौतमी गङ्गा नदी का स्तवन करने लगी थी ॥८॥

किं वाऽकरिष्यन्भववर्तिनां जाना,
नानाघसघाभिभवाच्च दु खिता. ।
न चाऽऽगमिष्यद्भवती भुव चे-
त्पुण्योदके गौतमि शभुकान्ते ॥९

को वेत्ति भाग्य नरदेहभाजा,
महीगताना सरितामधीशे ।
एषा महापातकसघहन्त्री,
त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०

न ते विभूति ननु वेत्ति कोऽपि,
त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि,
धत्त स्मरारि शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११

नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि,
नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनि सृते,
नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनिःसृते ॥१२

इत्येव स्तुवतामीशा किं ददामीत्यवोचत ॥१३
पतिं देहि जगन्माता राजानमतितेजसम् ॥१४

ओषधियों ने कहा—हे गौतमि ! हे शम्भुदेव की कान्ते ! यदि आप इस भूलोक में न आई होती तो इस संसार में रहने वाले मनुष्य जो अनेक पापों के समुदाय के अभिभव से अत्यन्त दुःखित हैं क्या कर सकते थे। आप तो परम पुण्यमय जल वाली हैं और आप से ही सबका उद्धार हो जाता है ॥६॥ हे सरिता की अधीश्वरि ! इस भूमि पर रहने वाले मनुष्य देह के धारी पुरुषों के भाग्य को कौन जानता है ? इन मनुष्यों के महान् पातकों के समुदाय का हनन करने वाली हे अम्बे ! आप ही हैं और हे गंगे ! आप सदा ही सुलभ हैं ॥१०॥ कोई भी आपके वैभव की महिमा को नहीं जानता है। हे गंगे ! हे अम्बे ? आप जगत् की माता हैं और त्रिलोकी के द्वारा वन्दना करने के योग्य हैं। कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले भगवान् शिव यद्यपि गौरी के द्वारा समालिङ्गित विग्रह वाले हैं तो भी आपको तो अपने शिर के बल से धारण किये रहा करते हैं ॥११॥ हे अभीष्ट मनोरथों के प्रदान करने वाली ! माता आपकी सन्निधि में प्रणाम है। हे ब्रह्ममये ! आप तो सब अघो के विनाश करने वाली हैं आपको हमारा नमस्कार है। आप साक्षात् भगवान् विष्णु के चरण कमलों से निकल कर समागत हुई हैं और आप फिर भगवान् शम्भु के जटाजूट में विनिःसृत हुई है आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से स्तवन करने वाली ओषधियों से ईश्वरी गौतमी ने कहा था कि क्या आपको दूँ ? ॥१३॥ ओषधियों ने कहा—हे माताजी ! आप तो समस्त जगतो की माता हैं। यदि आप हम पर परम प्रसन्न है तो अत्यधिक तेज के धारण करने वाले राजा को दीजिए जो कि हमारा पति होवे ॥१४॥

तदोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इदं वचः ॥१५
अहं चामृतरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृताः।
ईदृशं चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि वः ॥१६

देवाश्च ऋषयो वाक्य मेनिरे सोम एव च।
ओषध्यश्चापि तद्वाक्य ततो जग्मु स्वमालयम् ॥१७
यत्र चाऽऽपुमहौषध्यो राजानममृतात्मकम्।
सोम समस्तसतापपापसघनिवारकम् ॥१८
सोमतीर्थं तु तत्ख्यात सोमपानफलप्रदम्।
तत्र स्नानेन दानेन पितर स्वर्गमाप्नुयु ॥१६
य इद श्रृणुयान्नित्य पठेद्वा भक्तिन स्मरेत्।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्री धनवान्भवेत् ॥२०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे गङ्गा नदी ने उन औषधियों से यह वचन कहा था ॥१५॥ गङ्गादेवी ने कहा—मैं भी अमृत स्वरूप वाली हू और आप ओषधियाँ भी अमृत रूपिणी माताएँ हैं। अतएव उसी प्रकार का अमृत आत्मा वाला सोम पति आपको देती हूँ ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वाक्य को सब सुरो ने ऋषियों ने और सोम ने भी स्वीकार कर लिया था। ओषधियो ने भी उस वचन को मान लिया था और फिर व सब अपने २ आश्रम स्थन को चली गयीं थीं ॥१७॥ जिस क्षेत्र मे महौषधियों ने अमृतात्मक और सब सन्ताप तथा पापो के सघा का निवारण करने वाले सोम राजा को अपना पति प्राप्त किया था ॥१८॥ वही क्षेत्र सोम तीथ विख्यात हो गया था जो सोम पान करने के फल का प्रदान करने वाला है। वहाँ पर स्नान करने से और दान करने से पितृगण भी स्वग लोक को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥१६॥ जो कोई पुरुष इस आख्यान का नित्यप्रति पाठ करता है—श्रवण किया करता है या भक्ति की भावना से स्मरण करता है वह परमाधिक दीर्घ आयु को प्राप्त कर लेता है और वह पुत्रवान् तथा धन से सुसम्पन्न हो जाया करता है ॥२०॥

धान्यतीर्थवर्णन

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
सुभिक्षं क्षेमदं पुंसां सर्वापद्विनिवारणम् ॥१
ओषध्यः सोमराजानं पतिं प्राप्य मुदाऽन्विताः ।
ऊचुः सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सितं वचः ॥२
वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति यां वै वेदविदो विदुः ।
भूमिं सस्यवतीं कश्चिन्मातरं मातृसम्मिताम् ॥३
गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ।
भूमिं सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वितः ॥४
विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्याद्भक्तिमान्नरः ।
सर्वं तदक्षयं विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५
ओषध्यः सोमराजन्याः सोमश्चाप्योषधीपतिः ।
इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यः प्रदास्यति ॥६
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महीयते ।
ता एव सोमराजन्याः प्रीताः प्रोचुः पुनः पुनः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक तीर्थ है जो धान्य तीर्थ—इस नाम से लोकों में विख्यात है और मनुष्यों को सब कामनाओं के प्रदान करने वाला है यह सुभिक्ष देने वाला-क्षेम का दाता और सभी प्रकार की आपदाओं का निवारण करने वाला होता है ॥१॥ ओषधियाँ सोम राजा को अपना पति प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुई थीं । उन्होंने सम्पूर्ण लोक का और गङ्गा का अभीप्सित वचन बोला था ॥२॥ ओषधियों ने कहा—एक वैदिकी पुण्यमयी गाथा है जिसको सभी वेदों के वेत्ता लोग जानते हैं । जो कोई पुरुष माता के समान सस्यवती भूमि माता को दान में देता है और गङ्गा के समीप में जो दान किया करता है वह पुरुष सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लेता है । सस्यवती भूमि-गौएँ और ओषधियों को जो बहुत आनन्द के साथ जो दान करता है तथा जो

भक्तिमान् मनुष्य विष्णु-ब्रह्मा और ईश स्वरूप वाले विप्र को दान देता है वह सब अक्षय होता है और सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ॥५॥ ये ओषधियाँ सोम राजा वाली हैं तथा सोमदेव भी ओषधियों के स्वामी हैं—यह समझ कर ब्रह्म का ज्ञाता पुरुष जो ओषधियों का दान करेगा वह सब उत्तम लोकों की प्राप्ति कर लेता है और अन्त में ब्रह्म-लोक में पहुँच कर प्रतिष्ठित हुआ करता है। वे ही सोम के राजा वाली ओषधियाँ परम प्रसन्न होकर बारम्बार कहती हैं ॥३-७॥

योऽस्मान्ददाति गङ्गाया त राजन्पारयामसि ।
त्वमुत्तमश्चौषधीश त्वदधीन चराचरम् ॥८
ओषधयः सवदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
योऽस्मान्दाति विप्रेभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥९
वय च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च ।
योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥१०
अस्मान्ददाति यो नित्य ब्राह्मणेभ्यो जितव्रतः ।
उपास्तिरस्ति साऽस्माक त राजन्पारयामसि ॥११
स्थावरं जङ्गम किंचिदस्माभिर्व्यापृत जगत् ।
योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजान्पारयामसि ॥१२
हृव्य कव्य यदमृत यत्किंचिदुपभुज्यते ।
यद्गरीयश्च यो दद्यात्त राजान्पारयामसि ॥१३
इत्येता वैदिकी गाथा य. शृणोति स्मरेत वा ।
पठते भक्तिमापन्नस्त राजन्पारयामसि ॥१४

ओषधियाँ बोलीं—जो हमको हे राजन् ! गङ्गा में अर्थात् गौतमी तट पर दान दिया करता है उसको हम पार कर देवें क्योंकि आप तो उत्तम ओषधियों के स्वामी हैं और आपके यह चराचर जगत् सब आधीन है ॥८॥ ओषधियाँ अपने राजा सोम के साथ कहती हैं हे राजन् ! जो हमको विप्रों के लिये दान करता है उसको पार कर देवें ॥९॥ हम तो ब्रह्म रूप वाली और प्राण स्वरूप वाली हैं। हे राजन् जो हमारा दान विप्रों को करे उसको हम पार कर देवें अर्थात् उसका उद्धार कर दिया

करें ॥१०॥ जो जितव्रत पुरुष नित्य ही हमारा दान किया करता है और ब्राह्मणो को देता है वह तो हमारी एक प्रकार की उपासना ही है। हे राजन्! उसका हम उद्धार कर देवे ॥११॥ इस जगत् मे स्थावर और जङ्गम जो कुछ भी है वह हम से व्यावृत है। हे राजन्! जो हमको विप्रो के लिये प्रदान करता है उसको हम तार दिया करें ॥१२॥ हव्य-कव्य और जो अमृत कुछ भी उपभोग किया जाता है और जो अधिक गुरु हो उसका जो दान करता है हे राजन्! उसका उद्धार हम कर देवें ॥१३॥ इस वैदिकी गाथा को जो स्मरण करता है अथवा सुनता है या पढता है और भक्तिभाव से समापन्न होता है हे राजन्! उसको हम पार कर देवें ॥१४॥

यत्रैषा पठिता गाथा सोमेन सह राज्ञा।
गङ्गातीरे चौषधीभिर्धान्यतीर्थ तदुच्यते ॥१५
तत प्रभृति तत्तीर्थमौषध्य सौम्यमेव च।
अमृत वेदगाथ च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६
एषु स्नान जपोहोमो दान च पितृतर्पणम्।
अन्नदान तु य कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते ॥१७
षट्शताधिकसाहस्र तीर्थाना तीरयोर्द्वयो।
सर्वपापनिहन्तॄणां सर्वसंपद्विवर्धनम् ॥१८

श्री ब्रह्माजी ने कहा— जहाँ पर राजा सोम के साथ यह गाथा पढी गयी थी और गङ्गा के तट पर ओषधियो के द्वारा इसका पाठ किया गया था वह धान्य तीर्थ कहा जाता है ॥१५॥ तभी से वह तीर्थ औषध्य-सौम्य अमृत वेदगाथ और मातृतीर्थ हो गया है ॥१६॥ इन तीर्थों मे जप दान होम पितृगण का तर्पण-अन्न का दान जो कोई किया करता है वह अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१७॥ गङ्गा के दोनो तीरो पर एक सहस्र छै सौ तीर्थ हैं जो समस्त पापो के निहनन करने वाले हैं और वहाँ पर सभी प्रकार की सम्पदा की वृद्धि होती है ॥१८॥

यमतीर्थवर्णन

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ।
दृष्टादृष्टप्रदं सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
अनुह्लाद इति ख्यातः कपोतो बलवानभूत् ॥२
तस्य भार्या हेतिनाम्नी पक्षिणी कामरूपिणी ।
मृत्योः पौत्रो ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च ॥३
कालेनाथ तयोः पुत्राः पौत्राश्चैव बभूविरे ।
तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट् ॥४
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटाः ।
तयोश्च वैरमभवद्बहुकालं द्विजन्मनोः ॥५
गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत् ।
तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट् ॥६
वासं चक्रे तत्र पुत्रैः पौत्रैश्च द्विजसत्तम ।
तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयोः ॥७

यह पितृगण की प्रीति और स्नेह को बढ़ाने वाला यमतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यह तीर्थ दृष्ट और अदृष्ट के प्रदान करने वाला तथा समस्त देवर्षिगणों के द्वारा सेवित है ॥१॥ अब हम उसी का प्रभाव वर्णित करते हैं। वह तीर्थ सब पापों का प्रणाश करने वाला होता है। अनुह्लाद इस नाम से प्रसिद्ध एक बलशाली कपोत हुआ था ॥२॥ उस कपोत की भार्या हेति नाम वाली काम रूपिणी पक्षिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र था और हेति धेवती थी ॥३॥ समय उपस्थित होने पर उसके पुत्र तथा पौत्र समुत्पन्न हुए थे। उसका एक महान् बलवान् शत्रु उलूक नामधारी पक्षियों का राजा था ॥४॥ उसके पुत्र और पौत्र बलोत्कट आग्नेय थे। उन दोनों द्विजन्माओं में बहुत समय पर्यन्त वैरभाव हो गया था ॥५॥ गङ्गा के उत्तर तीर पर उस कपोत का

आश्रम था। उस गङ्गा के दक्षिण तट पर उलूक नाम का पक्षिराज रहा करता था ॥६॥ हे द्विजसत्तम ! वहीं पर पुत्रों तथा पौत्रों के साथ वास किया करता था। उन दोनों का जोकि सब दूसरे के आपस में बहुत ही विरोधी थे बहुत समय तक युद्ध हुआ था ॥७॥

पुत्रैः पौत्रैश्च वृतयोर्बलिनोर्बलिभिः सह ।
उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ ॥८
कपोतो यममाराध्य मृत्युं पैतामहं तथा ।
याम्यमस्त्रमवाप्याथ सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९
तथोलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भृशम् ।
वरैरन्मत्तयोर्युद्धमभवच्चातिभीषणम् ॥१०
तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत् ।
कपोतोऽप्यथ पाशान्वै याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११
उलूकायाथ दण्डं च मृत्युपाशानवासृजत् ।
पुनस्तदभवद्युद्धं पुराऽऽडीबकयोर्यथा ॥१२
हेतिः कपोतको दृष्ट्वा ज्वलन्तं प्राप्तमन्तिके ।
पतिव्रता महायुद्धे भर्तुः सा दुःखविह्वला ॥१३
अग्निना वेष्ट्यमानांश्च पुत्रान्दृष्ट्वा विशेषतः ।
सा गत्वा ज्वलनं हेतिस्तुष्टाव विविधोक्तिभिः ॥१४

ये दोनों बली थे और बलवानों का बलवानों के साथ ही युद्ध होता था। दोनों पुत्रों तथा पौत्रों से भी समावृत थे। इनमें से न तो उलूक ने और न कपोत ने ही जय और पराजय प्राप्त किया था ॥८॥ उस कपोत ने अपने पैतामह मृत्यु यम की आराधना की थी और उसने याम्य मन्त्र को प्राप्त कर लिया, तथा वह सबसे अधिक बलवान् हो गया ॥९॥ उसी भाँति उस उलूक ने अग्निदेव की आराधना की थी और वह भी अत्यधिक बलशाली होगया। दोनों ने वरदानों के द्वारा उन्मत्तता प्राप्त करके फिर उन दोनों का अत्यन्त भीषण घोर युद्ध हुआ ॥१०॥ उस युद्ध में उलूक ने कपोत पर अपने आग्नेय अस्त्र का प्रक्षेप किया। कपोत भी यम के द्वारा प्रदत्त पाशों का अपने शत्रु पर प्रक्षेप

करता था। उस कपोत ने उलूक पर दण्ड तथा मृत्यु पाशों को छोड़ा, फिर उन दोनों का ऐसा भीषण युद्ध हुआ जैसा कि पहले समय मे आडीक और वक का युद्ध हुआ था ॥११-१२॥ हेति कपोतकी ने अपने समीप मे प्राप्त अग्नि को देखा। उस महा युद्ध मे भर्ता की पतिव्रता वह बहुत दुःख से विह्वल हो गयी ॥१३॥ उस अग्नि से वेष्टित अपने पुत्रों को देखकर उस कपोती हेति ने अनेक उक्तियों के द्वारा उस अग्नि का स्तवन किया ॥१४॥

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति,
यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम्।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवा,
स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये ॥१५
मुखभूतं च देवानां देवानां हव्यवाहनम्।
होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च ॥१६
तं देवं शरणं यामि आदिदेवं विभावसुम्।
अन्तःस्थितः प्राणरूपो बहिश्चान्नप्रदो हि यः ॥
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनंजयम् ॥१७
अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्तं युद्धे कपोतकि।
यत्र विश्रमयदस्त्रं तन्मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८
मयि विश्रम्यतामस्त्रं न पुत्रे न च भर्तरि।
सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु ते ॥१९
तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते।
तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं ददाम्यहम् ॥२०
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारं सुतानपि।
न त्वां दहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि ॥२१

हेति ने कहा—जिसका न कोई स्वरूप है और न दान है—न परोक्ष है और समस्त पदार्थ जिसके आत्म-भूत हैं, जिसके द्वारा देवगण हव्यों का अशन किया करते हैं उस स्वाहा के स्वामी यज्ञ को भोक्ता अग्नि को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१५॥ हे अग्ने! आप तो देवों के मुख

भूत हैं–देवों के लिये हव्य का वहन करने वाले हैं–देवों के आप होता हैं तथा देवों के आप दूत भी हैं ॥१६॥ उसी देव की शरणागति में,मैं उपस्थित हो रही हूँ जो आदि देव विभावसु हैं जो अन्दर स्थित रहने वाले प्राण स्वरूप और अन्न के प्रदाता वह्नि, हैं। जो यज्ञो के साधनरूप हैं उन्हीं धनञ्जय की मैं शरणागति मे जाती हूँ ॥१७॥ अग्निदेव ने कहा—हे कपोतकि ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है जो युद्ध मे न्यस्त किया गया है। हे पतिव्रते ! यह अस्त्र बिना गिरे तो रह नहीं सकता क्यों कि इसमे अमोघता (सफलता) विद्यमान है। अतएव मुझे तुम यह स्थल बतलादो जहां पर यह विश्राम प्राप्त करे ॥१८॥ कपोती ने कहा—आपका यह मेरे पति और पुत्र मे न जाकर मुझ पर ही विश्राम कर लेवे। हे हव्येश ! आप सत्य वाणी वाले होवें। हे जातवेदा ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥१९॥ जातवेदा ने कहा—हे पतिव्रते ! मैं तो तुम्हारे वाक्य से बहुत प्रसन्न हो गया हू और पति की भक्ति से मुझे अधिक प्रसन्नता हुई है। हे हेति ! मैं तेरे स्वामी और पुत्रो को भी क्षेम देता हूँ ॥२०॥ हे कपोतकि ! यह मेरा आग्नेय अस्त्र तेरे भर्त्ता-तेरे पुत्र और तुझको भी दाह नहीं करेगा। अब तू सुख पूर्वक गमन कर ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूको ददृशे पतिम् ।
वेद्यमान याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दु:खिता भूत्वा यम प्रायाद्भयातुरा ॥२२

त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जना-
स्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भीताः साधु चरन्ति धीरा-
स्त्वद्भीताः कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३

त्वद्भीता अनाशत्रमाचरन्ति,
ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भीताः सौम्यतामाश्रयन्ते,
त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते ॥

स्वद्भीताश्चाग्रगोदाननिष्ठा-
स्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४
एवं ब्रुवत्यां तस्या तामाह दक्षिणदिक्पतिः ॥२५
वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६
यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७
भर्ता मे वेष्टित. पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव ।
तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्मर्तारमेव च ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी बीच मे वहाँ पर उस उलूकी ने पति को देखा जो यम के पाशों से वेष्टित तथा यम के दण्ड से ताडित हो रहा था। उलूकी अत्यन्त दुखित होकर भय से आतुर हो गई और यमराज के समीप मे उसने गमन किया ॥२२॥ उस उलूकी ने यम से प्रार्थना की थी—हे यमदेव ! आपसे भीत हुए जन भागते हैं तथा आपके भय से युक्त मनुष्य ब्रह्मचर्य्य का समाचरण किया करते हैं। आपसे डरे हुये ही धीर लोग साधु आचरण किया करते हैं तथा आपके दण्ड के भय से मनुष्य कर्मों मे निष्ठा रखते हैं ॥२३॥ आपके ही भय से भीत होकर प्राणी अनाशक का आचरण किया करते हैं और ग्राम से अरण्य की ओर चले जाया करते हैं अर्थात् सांसारिकता का त्याग करके वन-वास करते हुए तपस्या करते हैं। हे यमदेव ! आपका ही ऐसा प्रबल भय होता है कि सब लोग सौम्यता का समाश्रय ग्रहण किया करते हैं। आपके भय से ही सोमरस का पान करते हैं। जो प्राणियों की अन्न दान और जो दान में निष्ठा हुआ करती है वह भी आपके भय के कारण से ही होती है। यह ब्रह्म का वाद जो किया जाता है वह भी आपके ही डर से डर कर ही लोग किया करते हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उलूकी के इन स्तवन के वचनो से परम कृपा से युक्त यम-राज बारम्बार उससे बोला—यम ने कहा—हे शुभानने ! तुम वरदान माँग लो। तेरा कल्याण होगा। तेरे मन का अभीष्ट मैं दूँगा ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यमराज के इन वचनों को सुन कर वह पति-व्रता उन यमराज से बोली ॥२७॥ उलूकी ने कहा—मेरा स्वामी आपके

पाशा से ऽवित हैं और आपके दण्ड से अभिहत हो रहे हैं। अतएव हे सुरश्रेष्ठ ! आप कृपा करके मेरे पुत्रों की और मेरे भर्ता की रक्षा कीजिए ॥२८॥

तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यम. प्राह पुन. पुनः ॥२९
पाशाना चापि दण्डस्य स्थान वद शुभानने ॥३०
सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्त्वमेरिता ।
आविशन्तु जगन्नाथ दण्डो मय्येव सविशेत् ॥
तत. प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन' ॥३१
तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा ॥३२
न्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्र तु हव्यवाट् ।
कपात।लूकयोश्चापि प्रीति च चक्रतु सुरौ ॥
आहतुश्च द्विजन्मानौ व्रियता वर ई।प्सत. ॥ ३
भवतोदर्शन लब्ध वैरव्याजेन दुष्करम् ।
वय च पक्षिण· पापा किं वरेण सुरोत्तमौ ॥३४
अय देयो वरोऽस्माक भवद्भ्या प्रीतिपूर्वकम् ।
नाऽऽत्मार्थमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसके वाक्य से यमराज कृपा से युक्त होकर बारम्बार उससे बोला—यमराज ने कहा—हे शुभ मुख वाली ! मेरे पाशों का और दण्ड का रखने का स्थान बतलाओ ॥२९ ३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसने देव यम से कहा था कि आपके प्रेरित पाश मुझ मे प्रवेश कर जावें और हे जगन्नाथ ! आपका यह दण्ड भी मुझ मे ही प्रविष्ट हो जावें इसके अनन्तर यमराज ने कृपा करके फिर उससे कहा—॥३१॥ भगवान् यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और स्वामी सभी दुःख रहित होकर जीवित रह ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यमराज ने पाशों को निवारित कर दिया, और हव्य वाहअग्नि ने आग्नेयास्त्र को हटा दिया। दोनों देवों ने कपोत तथा उलूक की भी प्रीति कर दी। फिर वे दोनों देव उन दोनों पक्षियों से बोले थे कि तुम दोनों अपना

अभीप्सित वरदान माँग लो ॥३३॥ दोनों पक्षियों ने कहा—हम दोनो ने पारस्परिक वैर के बहाने से आप लोगो के दुष्कर दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। हे सुरोत्तमो ! हम तो महान् पापी पक्षी हैं हमको वरदान से *क्या लाभ होगा ॥३४॥ आप दोनों ही यदि प्रीति के साथ हमको वर-*दान देना चाहते हैं तो हम अपने लिये कुछ भी याचना नही करते हैं आपका वरदान जो दिया जायगा वह तो बहुत ही शुभ होगा ॥३५॥

आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ।
जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा ॥३६
अग्निरापो रविः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च।
परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः ॥ ७
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह।
एवं ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रमः ॥३८
जन्मना सह यत्पुंसा विहितं परमेष्ठिना।
कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा विनश्यन्ति जन्तवः ॥३९
तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगतां शुभम्।
गुणदायि तु सर्वेषां(युवाभ्यां)मनुमन्यताम् ॥४०
तावाहतुरुभौ देवौ पक्षिणौ लोकविश्रुतौ।
धर्मस्य यशसोऽवाप्त्यै लोकानां हितकाम्यया ॥४१

हे सुरेश्वरो ! जो अपने ही लिये याचना करता है वह वास्तव मे शोच करने के योग्य होता है। दूसरो की भलाई के लिये सदा समुद्यत रहा करता है उसका ही जीवन सफल हुआ करता है क्योंकि परोपकार का बडा महत्व होता है ॥३६॥ अग्नि जल-सूर्य-पृथ्वी और अनेक प्रकार के धान्य इन सबका कार्य और बरताव सदा दूसरो के ही भलाई के लिये हुआ करता है और विशेष रूप से सत्पुरुषों का भी कर्म पराये हित के सम्पादन के लिये ही होता है ॥३७॥ ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु के साथ युक्त होते हैं अर्थात् बडे से बडे देवों का भी एक न एक दिन अन्त हो ही जाता है भले ही बहुत अधिक कल्पों के अन्त मे हो किन्तु विनाश होना तो अवश्यम्भावी है। हे देवेशो ! यह समझ कर अपने ही

अर्थ साधन करने की अभिलाषा रखने मे व्यर्थ का ही परिश्रम होता है और परिणाम मे सबका विनाश हो ही जाया करता है ॥३८॥ परमेष्ठी ने जन्म के साथ ही पुरुषों की मृत्यु का भी विधान बना दिया है यह जन्म एव मरण का अटल सिद्धान्त है जो जन्म ग्रहण करेगा वह एक न एक दिन निश्चित रूप से मृत्यु के मुख मे प्रवेश करेगा । यह कभी भी अन्यथा अर्थात् विपरीत नही होता है। अतएव जन्तुगण व्यर्थ ही परिश्रम किया करते हैं और क्लेशित होते हैं। जो अनिवार्य है उसके लिये क्लेश कभी भी नहीं करना चाहिए प्रत्युत स्वागत ही करे ॥३९॥ इस कारण से हम लोग जो कुछ भी आप से याचना करते हैं वह जगत् की ही भलाई के लिये करना चाहते हैं। जो सबके लिये सुख दाता है उसी को आप दोनों अनुमोदित कर दीजिए ॥४०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे दोनो लोक मे प्रसिद्ध पक्षी उन दोनो देवो से बोले और लोकों के हित की कामना से ही धर्म तथा यश की प्राप्ति के लिये उन्होने कहा था ॥४१॥

आवाभ्यामाश्रमो तीर्थं गङ्गाया उभये तटे ।
भवेता जगता नाथावेप एवं परो वर ॥४२
स्नान दान जपो होम पितृणा चापि पूजनम् ।
सुकृती दुष्कृती वाऽपि य करोति यथा तथा ॥
सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येप परो वर. ॥४३
एवमस्तु तथाचान्यत्प्रीतो तु ब्रूवावहे ॥४४
उत्तरे गौतमी तीरे यमस्तोत्र पठन्ति ये ।
तेपा सप्तसु वंशेपु नाकाले मृत्युमाप्नुयात् ॥४५
पुरुषो भाजन च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम् ।
यस्त्विदं पठते नित्य मृत्युस्तोत्र जितात्मवान् ॥४६
अष्टाशीतिसहस्रैश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते ।
अस्मिंस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्गुर्विणी सती ॥४७
अर्वाग्वन्ध्या च षण्मासात्सप्ताह स्नानमाचरेत् ।
वीरसू मा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत् ॥

लक्ष्मीवान्मतिमाञ्शूर-पुत्रपौत्रविवर्धनः ।
तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८
मनोवाक्कायजात्पापात्स्नानान्मुक्तो भवेन्नरः ॥४९

दोनो कपोत और और उलूक पक्षियो ने कहा—हम दोनो के दो आश्रम गङ्गा के दोनो तटो पर तीर्थ हो जावें। हे जगतो के नाथ ! यही हमारा सर्वाधिक वर है। हम यही सब से बडा वरदान चाहते हैं कि उन तीर्थों मे स्नान-दान-जप-होम पितृगण का पूजन जो भी कोई करता है चाहे वह सुकृती पुण्यात्मा हो अथवा दुष्कृती (महापापी) हो और जैसे-तैसे भी करे वह सब अक्षय पुण्य हो जावे ॥४२-४३॥ दोनो देवो ने कहा—ऐसा ही होगा और वे परम-प्रसन्न होते हुए यह अन्य बात बोले ॥४४॥ यमराज ने कहा—गौतमी गङ्गा के उत्तर तट पर जो पुरुष इस यमस्तोत्र का पाठ किया करते हैं उनकी सात पीढियो में कोई भी अकाल मे मृत्यु अर्थात् असमय मे मौत को प्राप्त नही होगा ॥४५॥ वह पुरुष सर्वदा सब प्रकार की सम्पदाओं का पात्र हो जाता है। जो जितात्मा इस मृत्युस्तोत्र का नित्य ही पाठ किया करता है वह अट्ठासी हजार व्याधियो से कभी नही सताया जाया करता है। इस तीर्थ मे हे द्विज श्रेष्ठो ! तीन मास की गर्भवती सती और छैं मास से पूर्व वन्ध्या एक सप्ताह पर्यन्त स्नान करे वह नारी वीर पुत्र के प्रसव करने वाली होती है और उस पुत्र की आयु भी एक सौ वर्ष की हुआ करती है। वह पुत्र लक्ष्मीवान्-मतिमान्-शूरवीर और पुत्रपौत्रों के बढ़ाने वाला होता है। वहाँ पर पिण्ड आदि का दान करने से पितर मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४६-४८॥ मन-वाणी और शरीर से किये गये पापो से भी मनुष्य वहाँ पर स्नान करने से मुक्त हो जाया करता है ॥४९॥

यमयापयशदनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणो ॥५०
मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रता ।
तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मी रूप ददाम्यहम् ॥५१

इद स्तोत्र तु य कश्चिद्यत्र कापि पठेन्नर ।
नैवाग्नितो भय तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते ॥५२
स्नान दान च य कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नर ।
अग्निष्टोमफल तस्य भवेदेत्र न सशय ॥५३
तत प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमाग्नेयमेव च ।
कपोत च तयोलूक हेत्युलूक विदुर्बुधा ॥५४
तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येक मुक्तिभाजनम् ॥५५
तेषु स्नानेन दानन प्रेतीभूताश्च ये नरा ।
पूतास्ते पुत्रवित्ताढ्याआक्रमेयुर्दिव शुभा ॥५६

श्री ब्रह्माजी न कहा--जब यमराज के वचन समाप्त हो गये तो उसके पीछे अग्निदेव ने उन दोनो पक्षियो से कहा ॥५०॥ अग्निदेव बोले--मेरे लिये आपके द्वारा कहे हुए स्तोत्र को जो पुरुष यत व्रत होकर गङ्गा के दक्षिण तट पर पढते है उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य लक्ष्मी और रूप लावण्य दिया करता हू ॥५१॥ इस स्तोत्र को कोई भी मनुष्य जहा कही पर भी पढता है उसका लिखित गृह मे भी स्थित होने पर अग्नि का भय नही होता है ॥५२॥ कोई शुचि मनुष्य इस अग्नि तीर्थ मे स्नान तथा दान किया करता है उसको अग्निष्टोम यज्ञ के यजन करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है--इसमे तनिक सा भी सशय नही है ॥५३॥ श्री ब्रह्माजी न कहा--उसी समय से वह याम्य तथा आग्नेय तीर्थ हो गया है । बुध लोग कपोत-उलूक और हेति उलूक जानते है ॥५४॥ वहाँ पर तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ हैं और प्रत्येक तीर्थ मुक्ति प्रदाता है ॥५५॥ जो मनुष्य प्रेत योनि म प्राप्त हो गये हैं वे उन तीर्थों मे स्नान करन से तथा दान देने से पवित्र होते हुए पुत्रो एव धन से सम्पन्न होकर परम शुभ होते हुए दिवलोक म चले जाया करते हैं ॥५६॥

आपस्तम्वतीर्थवर्णन

आपस्तम्बमिति ख्यात तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
स्मरणादप्यशेषाघसघविध्वसनक्षमम् ॥१
आपस्तम्वो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशा. ।
तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२
तस्य पुत्रो महाप्राज्ञः कर्किनामाऽय तत्त्ववित् ।
तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३
तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर. ।
शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४
त्रयाणा को नु पूज्यः स्याद्देवाना मुनिसत्तमः ।
भुक्तिर्मुक्तिश्च यस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत् ॥५
अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम् ।
यज्ञैः क इज्यते देव. को वेदेष्वनुगीयते ॥
एत मे सशय छेत्तु वदागस्त्य महामुने ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक 'आपस्तम्ब'—इस नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो तीनो लोको मे विख्यात है । इसका केवल स्मरण कर लेने पर भी यह सब अघो के समुदाय का विध्वस करने मे समर्थ होता है ॥१॥ आपस्तम्व एक महान् यश वाले तथा बहुत अधिक प्राज्ञ मुनि थे । उनकी भार्या का नाम अक्षसूत्रा था जो पति के धर्म मे परायण रहा करती है । उसका पुत्र भी महा मनीषी था जिसका नाम कर्कि था तथा वह तत्त्वो का पूर्ण ज्ञाता था । उस महामुनि के आश्रम मे एक बार महामुनीन्द्र अगस्त्य समागत हुए थे । मुनीश्वर आपस्तम्व ने अगस्त्य मुनि का अभ्यर्चन किया था । फिर शिष्यो के द्वारा अनुगत उन परम धीमान् आपस्तम्व ने अगस्त्य मुनि से कुछ पूछने का उपक्रम किया था ॥२-४॥ आपस्तम्व ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! इन परम प्रसिद्ध तीन देवो मे कौन सा देव पूजा के योग्य है ? अथवा किस देव से भोग और मोक्ष दोनों का लाभ होता है तथा इनमे अनादि कौन सा देव है ॥५॥ हे

विप्रवर ! देवों का भी दैवत अनन्त कौन है ? यज्ञों के द्वारा किस देव का यजन किया जाया करता है और वेदों मे किसका गान किया जाता है ? हे महामुने ! हे अगस्त्य जी ! यह मुझे बहुत अधिक संशय हो जाता है । आप इस संशय को वर्णन करके दूर कीजिए ॥६॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रमाण शाब्द उच्यते ।
तत्रापि वैदिकः शब्दः प्रमाण परमं मतः ॥७
वेदेन गीयते यस्तु पुरुषः स परात्परः ।
मूर्तोऽपर. स विज्ञेयो ह्यमूर्तः पर उच्यते ॥८
योऽमूर्तः स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यये ।
गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत् ॥९
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चे त एक एव त्रिधोच्यते ।
त्रयाणामपि देवाना वेद्यमेक परं हि तत् ॥१०
एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः ।
लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितय भवेत् ॥११
यस्तत्त्वं वेत्ति परम स च विद्वान्न चेतरः।
तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते ॥१२
प्रायश्चित्त न तस्यास्ति यश्चैवा व्याहरेद्धिदम् ।
त्रयाणामपि देवाना मूर्तिभेद. पृथक्पृथक् ॥१३
वेदाः प्रमाण सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक् ।
निराकार च यस्त्वेक तत्तेभ्य. परमं मतम् ॥१४

अगस्त्य मुनि ने कहा—धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इनका प्रमाण शब्द होता है—यह कहा जाता है । उसमे भी जो वैदिक शब्द होता है वह ही परम प्रमाण माना गया है ॥७॥ वेद के द्वारा जिसका गान किया जाता है वही पुरुष परात्पर है । दूसरा पुरुष तो मूर्त ही समझना चाहिए जो अमूर्त होता है वही पर होता है—ऐसा ही कहा जाता है ॥८॥ जो अमूर्त्त अर्थात् मूर्ति से रहित है वही पर होता है और जो मूर्त है वह अपर जानना चाहिए—ऐसा कहा जाता है । गुणों (सत्त्व-रज तम) की अभिव्याप्ति के भेद से यह मूर्त तीन प्रकार का होता है

॥६॥ वस्तुतः वह है तो एक ही किन्तु ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीन नामो से तीन प्रकार का होता है ऐसा ही बतलाया जाता है। इन तीनो देवो मे जानने के योग्य वह पर एक ही होता है ॥१०॥ गुणो और कर्मों के विभेद होने से उसी एक की बहुत प्रकार से व्याप्ति होती है और लोको के उपकार के लिये तीन तरह की आकृति हो जाती है ॥११॥ पर परम तत्त्व को जानता है और वह विद्वान् होता है इतर नही होता है। वहाँ पर जो भी कोई भेद की चेष्टा करता है वह लिङ्ग भेदी कहा जाता है ॥१२॥ जो इन तीनो स्वरूपो मे भेद की भावना रखता है तथा भेद को कहता है एव भिन्नता का व्यवहार किया करता है उसको इतना महान् घोर पातक होता है कि शास्त्र मे उसका कोई भी प्रायश्चित्त ही नही है। अतएव इन तीनो (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) मूर्त्तियो मे पृथक् २ भाव होना ही नही चाहिए ॥१३॥ आकारो से युक्त इनमे सर्वत्र पृथक्-पृथक् होने के वेद ही प्रमाण हैं। जो निराकार है वह तो सर्वव्यापक एक ही होता है और वही सर्वोपरि परम होता है ऐसा ही माना गया है ॥१४॥

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् ।
तत्राप्यत्र रहस्य यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम् ॥
नि.सशय निर्विकल्प भाजन सवसपदाम् ॥१५
एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६
यद्यप्येपा न भेदोऽस्ति देवाना तु परस्परम् ।
यथाऽपि सर्वसिद्धि. स्याच्छिवादेव सुखात्मन. ॥१७
प्रपञ्चस्य निमित्त यत्तज्ज्योतिश्च पर शिवः ।
तमेव साधय हर भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्या सकलाघोघसहर्ता दण्डके वने ॥१८
एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्य परा प्रीतिमुपागतः ।
भुक्तिदा मुक्तिदः पु सा साकारोऽय निराकृतिः ॥१९
सृष्ट्याकारस्ततः शस्तः पालनाकार एव च ।
दाता च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०

ब्रह्माकृतिः कर्तृरूपा वैष्णवी पालनी तथा ।
रुद्राकृतिर्निहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते ॥२१

आपस्तम्ब ने कहा—इससे कोई भी निर्णय मेरे द्वारा विदित नहीं होता है तथापि यहाँ पर जो कुछ रहस्य है उसका विमर्श करके शीघ्र ही कीर्तन करो। बिना किसी संशय के जो निर्विकल्पक होता है वह सभी सम्प्रदाओं का भाजन (पात्र या आधार) होता है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना श्रवण करके भगवान् अगस्त्य मुनि यह वाक्य बोले ॥१६॥ अगस्त्य मुनि ने कहा—यद्यपि इन तीनों देवों का परस्पर में कोई भी भेद नहीं होता है तो भी सुखात्मा भगवान् शिव से ही सबकी सिद्धि होती है ॥१७॥ हे मुने ! जो इस प्रपञ्च का निमित्त है और परम ज्योति है वह शिव ही हैं अतएव पराभक्ति के द्वारा उसी की साधना करो। गौतमी गङ्गा पर दण्डक वन में वह समस्त अघों के समुदाय के संहार करने वाले विराजमान हैं ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस महामुनि के वचन को सुनकर वह परमाधिक प्रीति को प्राप्त हो गये थे। वह भोगों के देने वाले-मुक्ति के प्रदाता-आकार से युक्त-बिना आकार वाले-सृष्टि के आकार वाले-शक्ति सम्पन्न-पालन करने वाले और दाता जो सबका हनन किया करते हैं जिससे यह सम्पूर्ण चराचर समाप्त किया जाता है ॥१९-२०॥ अगस्त्य जी ने कहा—ब्रह्मा के आकार वाले वे ही इस सृष्टि के करने वाले हैं अतः यही कर्तृ रूपा शक्ति है। वैष्णु के रूप में वही पालनी शक्ति है तथा रुद्र के आकार वाली यही संहार करने वाली शक्ति है। ऐसी वह शक्ति समस्त वेदों में पढ़ी जाया करती है ॥२१॥

आपस्तम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतव्रतः ।
तुष्टाव शंकरं देवं स्तोत्रेणानेन नारद ॥२२
यागेषु वह्निः कुसुमेषु गन्धो,
बीजेषु वृक्षादि दृषत्सु हेम ।
तेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो यं,
तं सोमनाथं शरणं व्रजामि ॥२३

यो लीलया विश्वमिदं चकार,
धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
यो विश्वरूप. सदसत्परो यः,
सोमेश्वरं त शरण व्रजामि ॥२४
य स्मृत्य दारिद्र्य महाभिशाप-
रोगादिभिर्न स्पृश्यते शरीरी ।
यमाश्रिताश्चे प्सितमाप्नुवन्ति,
सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२५
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं,
ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च ।
एव द्विधा येन कृत शरीरं,
सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥२६
यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूत,
हुतं हविर्या च कृता च पूजा ।
दत्तं हविर्येन सुरा भजन्ते,
सोमेश्वरं त शरण व्रजामि ॥२७
यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्त,
यस्मात्परं नो सुसूक्ष्ममन्यत् ।
यस्मात्परं नो महता महच्च,
सोमेश्वरं त शरण व्रजामि ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय मे आपस्तम्ब मुनि यत वृत होकर गङ्गा तट पर गये थे और वहां स्नान करके हे नारद ! इस नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र से उन्होने भगवान् शङ्कर देव का स्तवन किया था ॥२२॥ आपस्तम्ब जी ने कहा—काष्ठों मे जो अग्नि के स्वरूप मे व्यापक है—पुष्पो मे जो गन्ध के रूप मे वर्तमान है—बीजों में जो विशाल वृक्ष आदि के रूप में विद्यमान है—पाषाणों में जो हेम के रूप मे स्थित है तथा समस्त भूतो में जो व्यापक रहते हैं उन्हीं भगवान् सोम नाथ की शरणागति मे मैं गमन करता हूं ॥२३॥ जो लीला ही से चराचर

विना किसी आभास के इस विश्व की रचना करने वाले हैं और तीनो भुवनो के धाता एव विधाता हैं। जो इस विश्व के स्वरूप वाले सत् और असत् से परे हैं उन्ही सोमेश्वर प्रभु के चरण कमलो की मैं शरणागति मे जाता हूँ ॥२४॥ जिसका स्मरण करके शरीर धारी जीव दरिद्रता महाभिशाप और रोगादि के द्वारा स्पर्श नही किया जाता है और जिसका समाश्रय ग्रहण करने वाले प्राणी अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लिया करते हैं उन सोमेश्वर प्रभु के शरण मे मैं गमन करता हू ॥२५॥ जिसने पूर्व मे क्रयोधर्म का अवेक्षण करके वहा पर ब्रह्मा आदि को समीहित किया था और इस प्रकार से जिसने दो प्रकार का शरीर बना दिया था उन्ही सोमेश्वर प्रभु के शरण मे मैं जाता हूँ ॥२६॥ जिसके लिय नम कार पहुँचता है—मन्त्रो से पूत हुआ हुत हवि पहुँचती है और जो पूजा की गयी है वह प्राप्त होती है तथा दिये हुए हवि को सुरगण भोगते हैं उन्ही सोमेश्वर प्रभु की मैं शरणागति मे जाता हूँ ॥२७॥ जिनसे परे कोई भी प्रशस्त नही है और जिससे पर कुछ अन्य सूक्ष्म भी नही है एव जिससे पर महानो से भी महान् कोई नही है उन्ही सोमेश्वर स्वामी के चरण कमलो की मैं शरणागति मे इस समय मे प्राप्त होता हूँ ॥२८॥

यस्याऽऽज्ञया विश्वमिद विचित्र-
मचिन्त्यरूप विविध महत्व ।
ऐश्वर्य यद्वदनुप्रयाति,
सोमेश्वर शरण व्रजामि ॥२६

यस्मिन्विभूति सकलाधिपत्य,
यत्तु ऽऽद्दात् वमहत्त्वमेव ।
प्रीतिर्मदा सौख्यमनादिधर्म ,
सोमेश्वर त शरण व्रजामि ॥३०

नित्य शरण्य सकलस्य पूज्यो,
नित्य प्रियो य शरणागतस्य ।

नित्यं शिवो यः सकलस्य रूपं,
सोमेश्वर तं शरण व्रजामि ॥३१
ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं-
मुनि(न्वरं वृण्विति चाऽऽह त)म् ।
आत्मार्थं च परार्थं च आपस्तम्बोऽब्रवोच्छिवम् ॥३२
सर्वान्कामानाप्नुयुस्ते ये स्नात्वा देवमीश्वरम् ।
पश्येयुर्जगतामीशमस्त्वित्याह शिवो मुनिम् ॥३३
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् ।
अनाद्यविद्यातिमिरव्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४

जिसकी आज्ञा से ही यह विश्व परम विचित्र अचिन्तनीय स्वरूप वाला-अनेक प्रकार का और महान् है तथा एक क्रिया से युक्त जिसके समान ही अनुसार प्रयाण किया करता है उन सोमेश्वर प्रभु की मैं शरणागति मे जाता हूं ॥२९॥ जिनमे विभूति सबका आधिपत्य-स्तृंब्य दातृव्य और महत्त्व है। जिनमे प्रीति-यश-मोक्ष्य और अनादि धर्म विद्यमान है उन सोमेश्वर प्रभु की शरण मे मैं जाता हूं ॥३०॥ जो नित्य शरणागति मे प्राप्त प्राणियो की रक्षा करने वाले हैं—जो सबके पूजने के योग्य हैं और जो शरण मे समागत के नित्य ही परम प्रिय हैं—जो नित्य शिव अर्थात् मङ्गल स्वरूप हैं तथा जो सकल का स्वरूप हैं उन सोमेश्वर स्वामी की मैं शरण मे प्राप्त होता हूं ॥३१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उसी समय मे भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न होकर उस मुनिवर आपस्तम्ब से बोले थे कि कोई भी वरदान की याचना कर लो। अपने लिये और दूसरो के लिये। आपस्तम्ब ने भगवान् शिव से कहा था ॥३२॥ जो यहाँ पर स्नान करके ईश्वर देव का दर्शन करें वे सभी मनोरथो को प्राप्त कर लिया करें-यही जगतो के ईश से प्रार्थना की थी। तब तो भगवान् शिव ने उस मुनि से कहा था कि ऐसा ही होगा ॥३३॥ तभी से यह तीर्थ आपस्तम्ब के द्वारा उदाहृत हुआ जो अनादि अविद्या के अन्धकार के समुदाय का निर्मूल करने मे समर्थ है ॥३४॥

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथन

यक्षिणीसगम नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम् ।
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः ।
तत्र च स्नानमात्रेण सत्रयागफल लभेत् ॥२॥
विश्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी ।
ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनम् ॥३॥
दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगर्विता ।
या गत्वाऽऽभावय वोपडस्तु श्रौपदिति स्थिरम् ॥४॥
विस्वरेणव्रुवनी ता तें शेपुः स्राविणी भव ।
ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता ॥५॥
ततो विश्वावसुः पूज्य ऋषीन्देव त्रिलोचनम् ।
संगम्य चैव गौतम्या ता विशापामथाकरोत् ॥६॥
तत. प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसगम स्मृतम् ।
तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयत् ॥७॥
विश्ववासो. प्रसन्नोऽभूद्यत्र शंभुः शिवान्वितः ।
दीर्थं तत्परम तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८
सर्वपापापहरण सर्वदुर्गतिनाशनम् ।
सर्वेषां तीर्थमुख्याना तद्धि सार महामुने ॥
तीर्थं मुनिवरैः स्यात सर्वसिद्धिप्रद नृणाम् ॥९

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक यक्षिणी सङ्गम नाम वाला तीर्थ है जो सबके फलों का प्रदान करने वाला है। वहाँ पर स्नान तथा दान करने से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ जहां पर यक्षों के ईश्वर देव केवल दर्शन करने ही से भुक्ति और मुक्ति दोनों को दिया करते हैं और केवल स्नान करने से सत्रयाग के यजन करने का फल प्राप्त कर लिया जाता है ॥२॥ एक विश्वावसु की बहिन थी

जिसका नाम पिप्पला गुरु हासिनी था। वह एक बार गौतमी गङ्गा के तट पर निवास करने वाले ऋषियों के सत्र में गयी ॥३॥ वहाँ पर उसने अत्यन्त दुर्बल पतले-दुबले ऋषियों को देखा था और वह अत्यधिक गर्व वाली उनको देखकर हँस उठी थी। उसने यहाँ जाकर वौपट् इसको श्रौपत् ऐसा स्थिर करके श्रवण कराया था ॥४॥ उन ऋषियों ने विस्वर बोलने वाली उसको शाप दे दिया था कि श्राविणी हो जा। उसके उपरान्त ही वह नदी हो गयी थी जो यक्षिणी—इस नाम से विख्यात हो गयी थी ॥५॥ उसके पश्चात् विश्वावसु ने वहा पर ऋषियों का अभ्यर्चन किया और भगवान् त्रिलोचन देव की पूजा की थी तथा गौतमी का सङ्गम करके उस अपनी बहिन को विगत शाप वाली कर दिया था ॥६॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ यक्षिणी सङ्गम कहा गया है। वहा पर स्नान तथा दान आदि सत्कर्म करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है ॥७॥ जहा पर शिव (मङ्गल) से समन्वित भगवान् शम्भु प्रसन्न हुए थे वह शैव तीर्थ और दुर्गा तीर्थ नाम से विख्यात है ॥८॥ सब मुख्य तीर्थों में वह तीर्थ सब पापों के समूह का विनाश करने वाला तथा सब महान् कष्टों को दूर भगा देने वाला है। हे महामुने ! वह समस्त मुख्य तीर्थों का सार है। मुनिवरों के द्वारा वह तीर्थ विख्यात किया गया है और मनुष्यों को सब सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ॥९॥

—:※:—

शुक्लतीर्थवर्णन

शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१
भरद्वाज इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः ।
तस्य पैठीनसी नाम भार्या सर्वसुलक्षणा ॥२

गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा ।
अग्नीषोमीयमैन्द्राग्नं पुरोडाशमकल्पयत् ॥३
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत ।
पुरोडाशं भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषणः ॥४
प्रोवाच सत्वरं क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तमः ॥५
तद्वेर्वचनं श्रुत्वा राक्षसः प्रत्युवाच तम् ॥
हव्यघ्न इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् ।
संध्यासुतोऽहं ज्येष्ठश्च पुनः प्राचीनबर्हिषः ॥६
ब्रह्मणा मे वरो दत्तो यज्ञान्खाद यथासुखम् ।
ममानुजः कलिश्चापि बलवानतिभीषणः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक शुक्ल तीर्थ—इस नाम से विख्यात है जो मनुष्यों को समस्त सिद्धियों को देने वाला है। जिस तीर्थ के केवल स्मरण से ही मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ एक भारद्वाज नाम से प्रसिद्ध मुनि थे जो बहुत ही अधिक धार्मिक थे। इन मुनिवर की पैठीनसी नाम वाली भार्या थी जो सुकुल की भूषण स्वरूपा थी ॥२॥ वह पातिव्रत धर्म में तत्पर रहने वाली गौतमी गङ्गा के तट पर रहा करती थी। उसने आग्नीषोमीय ऐन्द्राग्न पुरोडाश को कल्पित किया था ॥३॥ पुरोडाश के श्रप्यमाण होने पर धूम से कोई समुत्पन्न हो गया था। उसने उस पुरोडाश का भक्षण कर लिया था और वह तीनों लोकों में अत्यन्त भीषण रूप वाला था ॥४॥ उस समय में द्विजोत्तम भरद्वाज मुनि ने अत्यन्त क्रोध से तू कौन है जो मेरे यज्ञ का यहाँ पर हनन कर रहा है—ऐसा उससे कहा था। ऋषि के इस वचन का श्रवण करके वह राक्षस उन मुनिवर से बोला ॥५॥ राक्षस ने कहा—हे भरद्वाज! मुझको हवि के हनन करने वाला समझ लो जो कि मैं परम विख्यात हूँ। मैं सन्ध्या का ज्येष्ठ पुत्र हूँ और फिर प्राचीन बर्हिष हूँ ॥६॥ ब्रह्माजी ने मुझे वरदान दिया है कि तू सुख पूर्वक यज्ञों का भक्षण किया कर। मेरा एक छोटा कलि भी है जो महान् बलशाली और अत्यन्त भीषण है ॥७॥

अहं कृष्णः पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुजः ।
अहं मखं हनिष्यामि यूपं छेद्मि कृतान्तकः ॥८
रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञ प्रियो धर्मः सनातनः ।
जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥९
भरद्वाज निबोधेदं वाक्यं मम समासतः ।
ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो मया देवो लोकपितामहः ।
अमृतैः प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वां मुनिसत्तमाः ॥११
तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा ।
एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति ॥
यद्यदाकाङ्क्षितं ब्रह्मन् तन्मिथ्या कदाचन ॥१२
भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते ।
मखसंरक्षणं येन स्यान्मे वद करोमि तत् ॥१३
संभूय देवा दैतेया ममन्थुः क्षीरसागरम् ।
अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४

मैं कृष्ण हूँ–मेरा पिता भी कृष्ण है–माता कृष्णा है तथा अनुज (छोटा भाई) भी कृष्ण है । मैं मख का हनन करूँगा और कृतान्तक मैं यूप का छेदन किया करता हूँ ॥८॥ भरद्वाज मुनि ने कहा—आपको मेरे इस यज्ञ की सुरक्षा करनी चाहिए । देखो, सनातन धर्म परम प्रिय होता है । हाँ, मैं आपको यज्ञों का हनन करने वाला जानता हूँ । मेरे सद् द्विज यज्ञ की आप रक्षा कीजिए ॥९॥ उस यज्ञों के हन्ता ने कहा—हे भरद्वाज ! मेरे इस वाक्य को आप संक्षेप में समझ लो । प्राचीन काल में पहिले देवों और दानवों की सन्निधि में ब्रह्माजी ने मुझे शाप दिया था ॥१०॥ उसके अनन्तर मैंने पितामह देव को प्रसन्न किया था । तब ब्रह्माजी ने कहा था कि जिस समय में श्रेष्ठ मुनिगण अमृतों के द्वारा तेरा प्रोक्षण करेंगे उस समय में हे हव्यघ्न ! तू शाप से रहित होगा, अन्यथा नहीं होगा । अर्थात् दूसरे किसी भी उपाय से तेरा शाप नहीं जाएगा । इस प्रकार से जब करोगे तब ही सब कुछ होगा जो-जो भी

आप अभिषिञ्चन करिए अथवा इन तीनों से मेरा प्रोक्षण करो। गङ्गा का जल-घृत और हेम से अभिषिञ्चन करो। इन सब में सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी गङ्गा का जल ही होता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि ने जब यह वचन सुना तो उनको विशेष सन्तोष प्राप्त हो गया था। फिर उन ऋषिवर ने बड़े ही समादर के साथ अपने हाथ में गौतमी गङ्गा के जल को ग्रहण किया था ॥१८॥ उसी जल से उसी समय में मख में ऋषि ने उस राक्षस को अभिषिक्त किया था और फिर यूपपर पशुपर-ऋत्विजों पर और मख मण्डल पर अभिषिचन किया था उस महात्मा के अभिषेक से सभी कुछ शुक्ल हो गये थे। वह राक्षस भी उस समय में शुक्ल होकर महान् बलवान् उत्तम हो गया था ॥१९-२०॥ जो पहिले कृष्ण रूप वाला था वह तुरन्त ही उसी क्षण में शुक्ल रूप वाला हो गया था। प्रताप वाले भरद्वाज ने सम्पूर्ण यज्ञ को समाप्त कर दिया था ॥२१॥

ऋत्विजोऽपि विसृज्याथ यूप गङ्गोदकेऽक्षिपत्।
गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते ॥२२
अभिषिक्त चामृतेन अभिज्ञान नु तन्महत्।
तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३
अहं यामि भरद्वाज कृतः शुक्लस्त्वया पुन.।
तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४
कुर्युस्तेषामभीष्टानि भवेयुर्यत्फल मखे।
स्मरणादपि पापानि नाश यान्तु सदा मुने ॥२५
ततः प्रभृति तत्तीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम्।
गौतम्या दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६
उभयोस्तीरया. सप्तसहस्राण्यपराणि च।
तीर्थाना मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७

सब ऋत्विजों को विदा करके यूप को गङ्गाजी के जल में डाल दिया था। हे महामते! वह यूप गङ्गा के मध्य में आज भी विद्यमान है ॥२२॥ अमृत के द्वारा अभिषिक्त वह बड़ा भारी अभिज्ञान है। उस

तीर्थ मे फिर राक्षस ने भरद्वाज से कहा था ॥२३॥ राक्षस बोला—हे भरद्वाज ! मैं अब जाता हूँ आपने मुझे शुक्ल बना दिया है। इस कारण से इस तीर्थ मे जो स्नान दान-पूजन आदि करते हैं, मख मे जो फल है वह प्राप्त होगा और उनके अभीष्ट मनोरथ भी सफल हो जायगे। हे मुने ! इसक स्मरण से भी सर्वदा पाप नष्ट हो जायगे ॥२४-२५॥ तभी से आरम्भ करके यह तीर्थ शुक्ल तीर्थ कहा गया है। गौतमी मे दण्डकारण्य मे स्वर्गलोक का द्वार खुला हुआ है ॥२६॥ हे मुनिशार्दूल ! गौतमी के दोनो तटो पर सर्व सिद्धियो के प्रदान करने वाले सात हजार दूसरे भी तीर्थ विद्यमान हैं ॥२७॥

वाणीसंगमतीर्थवर्णन

वाणीसगममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः।
तत्तीर्थं सर्वपापाना मोचन सर्वकामदम् ॥१
तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम्।
ब्रह्मविष्ण्वाश्च सवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२
तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल।
तत्रैव वागुवाचेद देवी पुत्र तयो. शुभाः ॥३
अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मीति वैमिथ:।
देवो वाताबुभौ प्राह यस्त्वस्यान्त तु पश्यति ॥४
स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वाद कर्तुमर्हथ.।
तच्छ्रुत्वाद्विष्णुरगमदधोऽह चोर्ध्वमेव च ॥५
ततो विष्णुः श्रोघ्रमेत्य ज्योति.पार्श्वं उपाविशत्।
अप्राप्यान्तमह प्राया दूराद्दूरतर मुने ॥६
तत. श्रान्तो निवृत्तोऽह द्रष्टुमीश तु त प्रभुम्।
तदैव मम धीरासीद्दरश्रान्तो मया भृशम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक 'वाणी सङ्गम' नामक तीर्थ प्रख्यात है जहा पर वाणीश्वर हर विराजमान हैं। वह तीर्थ समस्त कामनाओ को प्रदान करने वाला तथा सब पापों का मोचन करने वाला है ॥१॥ वहा पर स्नान तथा दान करने से ब्रह्महत्या आदि का भी विनाश हो जाता है। ब्रह्मा और विष्णु के सम्वाद मे तथा महत्व मे परस्पर मे वार्त्तालाप हुआ था ॥२॥ उन दोनो के मध्य मे महादेव ज्योति मूर्त्ति हुए थे। वहां पर ही शुभ वाक् देवी ने कहा था हे पुत्र ! तुम दोनो मे कौन बड़ा है ॥३॥ वहां पर 'मैं महान् हूँ—मैं महान् हूँ'—यही परस्पर मे विवाद चल रहा था। दैवी वाणी ने उन दोनो से कहा था जो इसका अन्त देखता है वह ज्येष्ठ है। इस कारण से विवाद करने के लिये आप योग्य नही होते हो। उसके वाक्य से विष्णु नीचे की ओर गये थे और मैं ऊर्ध्वभाग मे गया था ॥ ॥ इसके अनन्तर विष्णु बहुत शीघ्र ही आकर ज्योति के पार्श्व मे बैठ गये थे। हे मुने ! मैं उसका अन्त न प्राप्त करके दूर से भी अधिक दूर तक गया था ॥६॥ इसके उपरान्त मैं थक गया था और उस प्रभु को देखने के लिये मैं वापिस लौट आया था। उस समय मे मेरी बुद्धि ऐसी होगई थी कि मैंने अन्त देख लिया है ॥७॥

अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्येष्ठत्व स्फुट भवेत् ।
पुनश्चापि मम त्वेव मतिरासीन्महामत ॥८
सत्यैर्वक्त्रैः कथ वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृत वच ।
नानाविधेषु पापेषु मानृतात्पातक परम् ॥९
सत्यैर्वक्त्रैरसत्या या वाच वक्ष्ये कथ त्विति ।
ततोऽह पञ्चम वक्त्र गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०
कृत्वा तेनानृत वक्ष्य इति ध्यात्वा चिर तदा ।
अग्र त हरि तत्र आसीन जगता प्रभुम् ॥११
अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्येष्ठ्य जनार्दन ।
ममेति वदत पार्श्वे उभौ वौ हरिशङ्करौ ॥१२

एकरूपत्वमापन्नो सूर्याचन्द्रमसाविव ।
तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तव तावुभावपि ।।
ततः क्रुद्धो जगन्नाथो वाच तामिदमूचतुः ।।१३
दुष्टे त्वं निम्नगा भूया नानृतादस्ति पातकम् ।।१४

तब तो इस देव विष्णु से मेरी ज्येष्ठता स्पष्ट ही हो जायगी। हे महामते ! फिर मेरी बुद्धि ऐसी हो गई थी कि सत्यमुखों से मैं पीड़ित होता हुआ अनृत वचन कैसे कहूँगा। यों पाप तो अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु उनमें मिथ्या भाषण से बड़ा कोई भी पाप नहीं होता है। झूठ बोलना सबसे बड़ा पाप है ।।८-९।। इन सत्यमुखों से मैं असत्य वचन कैसे कहूँगा। इससे मैं एक पाँचवा मुख गर्दभ की आकृति वाला अत्यन्त भीषण बना कर उसके द्वारा अनृत वचन बोलूँगा—ऐसा चिरकाल तक उस समय में ध्यान किया था और वहाँ पर समासीन जगतों के प्रभु हरि से मैं बोला था ।।१०-११।। हे जनार्दन ! इसका अन्त मैंने देखा है इस कारण से मेरी ज्येष्ठता है। मेरी ज्येष्ठता है यह कहने वाले के पार्श्व में हरि और शङ्कर दोनों सूर्य चन्द्रमा के समान एक रूपता को प्राप्त होगये थे। उन दोनों को देखकर मैं भीत तथा विस्मित हो गया था और उन दोनों का स्तवन किया था। तब तो जगत् के नाथ वे दोनों क्रुद्ध हो गये थे और वे दोनों यह वाणी से कहने लगे थे ।।१२-१३।। हरि और हर ने कहा— हे दुष्टे ! तू निम्न अर्थात् नीचे की ओर गमन करने वाली नदी होजा क्यों कि मिथ्या भाषण से अधिक पातक नहीं होता है ।।१४।।

ततः सा विह्वला भूत्वा नदीभावमुपागता ।
तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामब्रवमहं तदा ।।१५
यस्मादसत्यमुक्तासि ब्रह्मयाचि स्थिता सती ।
तस्माद्दरया त्वं भूयाः पापरूपाऽस्यसत्यम् ।।१६
एतच्छाप विदित्वा तु तौ देवौ प्रणता तदा ।
विशापस्य प्रार्थयन्ती तुष्टाव च पुनः पुनः ।।१७

ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ त्रिदशार्चितौ ।
प्रीत्या हरिहरावेवं वाच वाचमथोचतुः ॥१८

गङ्गया संगता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी ।
तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१६
तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गया सगताऽभवत् ।
भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वक वपुः ॥२०

देवी सा व्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम् ।
गौतम्या सैव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह विह्वल होकर नदी भाव को प्राप्त हो गई थी। यह देख कर आश्चर्य से युक्त और डरा हुआ मैं उस समय मे उससे बोला था ॥१५॥ क्योंकि तुमने ब्रह्मा की वाणी मे स्थित होकर असत्य कहा है कि बिना किसी सशय के तुम पाप रूप वाली हो गई हो ॥१६॥ इस शाप को जान कर वह वाणी उस समय मे उन देवो के आगे प्रणत हो गई थी और शाप रहित होने के लिये प्रार्थना करती हुई ने बारम्बार स्तवन किया था ॥१७॥ इसके उपरान्त वे देवो के द्वारा समर्चित दोनो देव प्रार्थित होने पर सन्तुष्ट हो गये थे और हरि-हर उस वाणी से यह वचन बोले ॥१८॥ हरि और हर दोनो ने कहा—हे भद्रे ! हे सुशोभने ! तुम जब गङ्गा साथ में मङ्गन होगी उस समय मे लोकों को पावन करने वाली हो जाओगी और फिर तुम्हारा शरीर पवित्र हो जायगा ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा-ऐसा ही करूँगी-यह कह कर वह देवी भी गङ्गा के साथ मे सङ्गत हो गई थी। भागीरथी गौतमी और उन दोनो से अपना शरीर धारण करने वाली हो गई थी। हे ब्रह्मन् ! वह देवी देवों को भी दुर्लभ हो गई थी ॥२०॥ वाणी-इस नाम से वह पुण्य देने वाली गौतमी में ही विख्यात हो गई थी ॥२१॥

भागीरथ्यां सैव देवी सरस्वत्यभिधीयते ।
उभयत्रापि विख्यातः सगमो लोकपूजित. ॥२२

सरस्वतीसगमश्च वाणीसगम एव च ।
गौतम्या सगता देवो वाणी वाचा सरस्वती ॥२३
सर्वत्र पूजित तीर्थं तत्र वाचा शिव प्रभुम् ।
देवेश्वरं पूजयित्वा विशापमगमद्यतः ॥२४
ब्रह्मा विधूय वाग्दौष्ट्य स्व च धामागमत्पुनः ।
तस्मात्तत्र शुचिर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च सगमे ॥२५
वागीश्वरं ततो दृष्ट्वा तावता मुक्तिमाप्नुयात् ।
दानहोमादिक किंचिदुपवासादिका क्रियाम् ॥२६
यः कुर्यात्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुनः ।
एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो. ॥
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम् ॥२७

वही देवी भागीरथी गङ्गा मे 'सरस्वती' इस नाम से कही जाया करती है। दोनो ही स्थलो पर लोको के द्वारा वन्दित सङ्गम प्रख्यात हो गया था ॥२२॥ एक सरस्वती का सङ्गम था और दूसरा वाणी सङ्गम था। गौतमी गङ्गा के साथ सङ्गत होने वाली वह वाणी देवी थी तथा भागीरथी के साथ सङ्गत होने वाली सरस्वती थी ॥२३॥ यह तीर्थ सर्वत्र पूजित है। यहाँ पर वाणी के द्वारा भगवान् शिव प्रभु पूजित हुए हैं। यहाँ पर देवेश्वर का पूजन करके वह शाप से रहित हो गयी थी ॥२४॥ ब्रह्माजी ने वाणी की दुष्टता को दूर करके फिर वे स्वय अपने धाम को चले गये थे। इस कारण से उस सङ्गम मे स्नान करके और परम शुचि होकर भगवान् वागीश्वर देव का दर्शन करे, बस उतने ही सत्कर्म के करने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है। दान-होम और उपवास आदि की क्रिया को कुछ करके जो प्राणी उस सगम मे जो कि परम पुण्यमय है अपना उद्धार करता है वह इस ससार मे फिर जन्म ग्रहण नही किया करता है। उसके दोनो तटो पर उन्नीस सौ तीर्थ हैं जो अनेक जन्मो मे सञ्चित किये हुए पापो के समुदाय को समस्त रूप से क्षय कर दिया करते हैं ॥२५-२७॥

विष्णुतीर्थवर्णन

विष्णुतीर्थमिति ख्यात तत्र वृत्तमिद शृणु ।
मौद्गल्य इति विख्यातो मुद्गलस्य सुतो ऋषि ॥१
तस्य भार्या तु जाब ला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी ।
पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुद्गलो लोकविश्रुतः ॥२
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा ।
स मौद्गल्यः प्रातरेव गङ्गा स्नाति यतव्रतः ॥३
नित्यमेव त्विद कर्म तस्याऽऽसीन्मुनिसत्तम ।
गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भिः शमीपुष्पैरहर्निशम् ॥४
गुरूदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे ।
आवाहन नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः ॥५
तेनाऽऽहूतस्त्वरन्नेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः ।
वैनतेयमथाऽऽरुह्य शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥६
पूजितस्तेन ऋषिणा स मौद्गल्येन यत्नतः ।
प्रब्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गलाय जगत्प्रभु ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक विष्णु तीर्थ—इस शुभ नाम से विख्यात है। वहा पर जो वृत्त हुआ है उसको अब आप सुनिये। मुद्गल ऋषि का पुत्र मौद्गल्य इस नाम से प्रसिद्ध था ॥१॥ उसकी भार्या जाबाला-इस नाम से विख्यात थी जो सुन्दर पुत्र वाली थी। उसका पिता लोकों में प्रसिद्ध तथा वृद्ध मुद्गल ऋषि था ॥२॥ उसकी भार्या परम शुभ भागीरथी नाम से प्रसिद्ध थी। वह मौद्गल्य प्रातःकाल में ही यत व्रत होकर नित्य गङ्गा मे स्नान किया करता था ॥३॥ हे मुनिसत्तम ! नित्य प्रति उस मुनि का यह कर्म होता था कि मौद्गलि मुनि उस गङ्गा के तट पर कुशाओं से—मृत्तिकाओं से—शमी के पुष्पो से अहर्निश गुरु के द्वारा कथित मार्ग से अपने मन के कमल मे नित्य ही भगवान् विष्णु का आवाहन किया करता था ॥४-५॥ उस मुनि के द्वारा आवाहन किये हुए जगतो के स्वामी

जगत् के पति शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् विष्णु गरुड़ पर समारूढ होकर शीघ्रता से वहाँ पर समागत हो गये थे ॥६॥ उस मौद्गल्य ऋषि के द्वारा यत्न पूर्वक समर्चित हुए उन जगत् के प्रभु ने मौद्गल्य के लिये अद्भुत कथाऐं बतलाई थी ॥७॥

ततोऽपराह्णसमये विष्णु: प्राह स मौद्गलिम् ।
याहि वत्स स्वभवन श्रान्तोऽसीति पुन. पुनः ॥८
एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः ।
जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९
मौद्गल्योऽपि तथाऽभ्येत्य किंचिदादाय नित्यशः ।
स्वमेव भवन विद्वान्भार्याय स्वार्जित धनम् ॥१०
ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायणः ।
मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११
शाक मूल फल वाऽपि भर्त्राऽऽनीत तु यत्नत. ।
सुसंस्कृत्याप्यतिथीना बालानां भर्तुरेव च ॥१२
दत्त्वा तु भोजन तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता ।
भुक्तवत्स्वथ सर्वेषु रात्री नित्य स मौद्गलिः ॥१३
विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्त्यथ हर्षितः ।
एव बहुतिथे काले व्यतीते चातिविस्मिता ॥
मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तार वाक्यमब्रवीत् ॥१४

इसके उपरान्त दोपहर के बाद वह भगवान् विष्णु उस मौद्गलि से बोले थे कि हे वत्स ! अब तुम बहुत श्रान्त हो गये हो अपने घर चले जाओ । ऐसा उन्होंने बारम्बार कहा था ॥८॥ भगवान् विष्णु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह द्विज गमन करते है । फिर जगत् के प्रभु भी देवों से समन्वित हुए अपने भवन को चले जाते हैं ॥९॥ मौद्गल्य भी उसी भांति आकर नित्य ही कुछ लाकर वह विद्वान् अपने ही भवन में अपना अर्जित धन अपनी भार्या को दिया करता था और वह महा विष्णु के चरण कमलो में तत्पर रहा करता था । मौद्गल्य की जो प्रिय पत्नी थी वह भी पतिव्रत धर्म में परायण रहने वाली थी ॥१०-११॥ शाक–

मूल अथवा फल जो भी कुछ यत्न पूर्वक अपने भर्ता के द्वारा लाया जाता था उसी का भली भाँति सस्कार करके बालको को और अपने पति देव को तथा अतिथियो को समर्पित करके अर्थात् उन सबको भोजन करा कर उनसे जो शेष रहता था उसको पीछे यत व्रत वाली वह खाया करती थी। सबके भोजन कर लेने पर रात्रि मे वह मौद्गलि नित्यही परम हर्षित होकर भगवान् विष्णु से सुनी हुई विचित्र कथाओ को उन सबको कहा करता था। इस रीति से बहुत सा-समय चले जाने पर अत्यन्त विस्मित होती हुई मौद्गल्य को भार्या ने एकान्त मे अपने भर्त्ता यह वाक्य कहा था ॥१२-१४॥

यदि ते विष्णुरभ्येति समीप त्रिदशार्चित ।
तथाऽपि कष्टमस्माक कस्मादिति जगत्प्रभुम् ॥१५
तत्पृच्छ त्व महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च ।
यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः ॥
नाश यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पृच्छ जगत्पतिम् ॥१६
तथेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मौद्गल्यो नित्यवद्धरिम् ।
पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलि ॥१७
त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्य्रदुष्कृतम् ।
नाश याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथ स्थिता ॥१८
स्वकृत भुज्यते भूतै सर्वे. सर्वत्र सर्वदा ।
न कोऽपि कस्यचित्किंचित्करोत्यत्र हिताहिते ॥१६
यादृश चोप्यते बीज फल भवति तादृशम् ।
रसाल. स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जातवपि कुत्रचित् ॥२०
न श्रुता गौतमीसेवा नार्चितो हरिश्चवरो ।
न दत्त यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथ भाजन श्रिय. ॥२१

जाबाला ने कहा—हे भगवन् ! यदि देवो के द्वारा समर्चित भगवान् विष्णु आपके समीप मे नित्य पदार्पण किया करते हैं तो भी हमको किस कारण से ऐसा कष्ट रहा करता है ?—यही बात हे महाप्राज्ञ ! उन जगत् के प्रभु से आप [illegible] मे भगवान् विष्णु आपके समीप

में पधारा करते हैं। जिनके स्मरण मात्र से ही जरा (वृद्धता)-जन्म-रोग और मृत्यु सभी विनष्टता को प्राप्त हो जाया करते हैं फिर साक्षात् उनके दर्शन प्राप्त कर लेने पर ऐसा क्यों होता है— यह आप उन जगत् के प्रभु से पूछने का कष्ट करिए ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— अच्छा, ऐसा ही करूंगा—यह उससे कहकर अपनी प्रिय दासी के वचन से मौद्गल्य ने नित्य की भाँति श्री हरि भगवान् का अभ्यर्चन करके परम विनम्र होकर हाथ जोड़ते हुए उसने उनसे पूछा था ॥१७॥ मौद्गल्य ने कहा—हे जगन्नाथ ! आपके केवल स्मरण के करने पर ही घोर—दारिद्रय और दुष्कृत सब नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं फिर साक्षात् आपके दर्शन करने पर भी मेरे ऊपर यह विपत्ति क्यों स्थित रहा करती हैं ? ॥१८॥ श्री विष्णु भगवान् ने कहा—सब प्राणी अपने किये हुये कर्मों का फल सर्वत्र एवं सर्वदा भोगा करते हैं। यहाँ पर हित तथा अहित के विषय में कोई भी किसी का कुछ नहीं किया करता है ॥१९॥ जैसा बीज भूमि में बोया जाया करता है वैसा ही उसका फल भी होता है। कभी भी नीम के बीज से आम का फल कहीं पर भी कभी नहीं होता है ॥२०॥ जिन्होंने न तो कभी गौतमी गङ्गा का सेवन किया है और न कभी हरि तथा शङ्कर प्रभु का अभ्यर्चन ही किया है तथा न कभी कुछ विप्रों को दान ही दिया है वे किस प्रकार से श्री के पात्र (अधिकारी) हो सकते हैं ? ॥२१॥

त्वया न दत्त किंचिन्न ब्राह्मणेभ्यो ममापि च ।
यद्दीयते तदेवेद परस्मिश्चोपतिष्ठति ॥२२
मृद्भिर्वाभि कुशैर्मन्त्रैः शुचिकर्म सदैव यत् ।
करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३
विना दानेन च क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् ।
सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नर. ॥२४
ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् ।
सर्वेषा सुलभा मुक्तिर्गङ्गाकया चेह पूतत. ॥२५

भुक्तिर्दानादिका सर्वभूतदुःखनिवर्हणात् ।
अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या मुक्तिं न लप्स्यसे ।।२६
भक्त्या मुक्तिः कथं भूयाद्भुक्तेर्मुक्तिः सुदुर्लभा ।
जातः चेद् हिना मुक्तिः किमन्येन प्रयोजनम् ।।२७
भक्त्या मुक्तिः सवपूज्या तामिच्छेयं जगन्मय ।।२८

हे विप्र ! तुमने भी कभी कुछ भी ब्राह्मणों को तथा भुक्षकों भी अर्पित नहीं किया है। जो कुछ यहाँ पर दिया जाता है वही परलोक मे उपस्थित होता है अर्थात् मिला करता है ।।२२।। तुम नित्य मृत्तिका से-कुशाओं से और मन्त्रों के द्वारा पवित्र कर्म सदा ही जो किया करते हो तो उस शरीर के शोषण करने से तुम पूतात्मा हो गये हो ।।२ ।। किन्तु दान के बिना मनुष्यों को भोगों की प्राप्ति कभी भी कहीं पर नहीं होती है। सत्कर्मों के आचरण से मनुष्य शुद्ध हो जाता है और फिर वह विरक्त भी हो जाता है। इसके अनन्तर उसका ज्ञान अप्रतिहत होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् जीवित रहते हुए मुक्त के समान रहने वाला हो जाता है। सबको यहाँ पर मेरी भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति परम सुलभ हो जाया करती है। और दान आदि से समस्त प्राणियों के दुःखों के निवर्हण से भुक्ति का लाभ होता है अथवा भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है किन्तु मुक्ति का लाभ नहीं करोगे ।।२४-२६।। मौद्गल्य ने कहा—भक्ति से मुक्ति कैसे होती है ? भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। यदि देहधारियों की मुक्ति हो गई तो फिर अन्य से क्या लाभ है ।।२७।। हे जगन्मय ! भक्ति के द्वारा होने वाली सर्व पूज्या है। मैं उसी को चाहता हूँ ।।२८।।

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् ।
ब्राह्मणायाथवार्थिभ्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत् ।।२९
मामभ्यार्च्याज्य यद्द्यात्तत्तु मात्रफलप्रदम् ।
तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते ।।३०
तस्माद् हि महाबुद्धे भोज्यं किंचिन्मम ध्रुवम् ।
अथवा विप्रमुख्याय गौतमीतीरमाश्रित ।।३१

मौद्गल्यः प्राह तं विष्णुं देयं मम न विद्यते ।
नान्यत्किंचन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२
ततो विष्णुर्गरुत्मन्तं प्राह शीघ्रं जगत्पतिः ।
इहाऽऽनयस्व कणिशं ममायं चार्पयिष्यति ॥३३
ततो योग्यानयं भोगान्प्राप्स्यते मनसः प्रियान् ।
आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्टं तथा चक्रे स पक्षिराट् ॥३४
विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रतः ।
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥३५

भगवान् विष्णु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! केवल यही अन्तर है जो कुछ भी दिया जाता है वह मेरा अनुस्मरण करते हुए ही दिया जावे। चाहे वह किसी ब्राह्मण के लिये अथवा किसी अतिथि के लिये दिया जावे। ऐसा दान अक्षय हो जाता है ॥२९॥ मेरा ध्यान न करके जो भी कुछ देवे वह उतना ही फल देने वाला होता है। वह पुनः यहाँ पर दिया हुआ भोग के लिये नहीं होता है ॥३०॥ इस कारण से हे महाबुद्धिवाले ! कुछ भोज्य का दान करो वह मेरा होता है यह निश्चित है। अथवा गौतमी के तट पर समाश्रित होकर मुख्य प्रिय के लिये देवे ॥३१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर उस मौद्गल्य ने उन भगवान् विष्णु से कहा था कि देने के योग्य मेरे पास कुछ भी विद्यमान नहीं है। मेरा अपना देहादि कुछ भी नहीं है जो कुछ भी है वह सब आपको समर्पित किया हुआ है ॥३२॥ इसके पश्चात् जगत् के पति भगवान् विष्णु ने गरुड से शीघ्र ही कहा था कि यहाँ पर कणिशलाओ। यह मुझे अर्पण करेगा ॥३३॥ इसके अनन्तर यह अपने मन के प्रिय भोगों का प्राप्त कर लेगा। स्वामी के द्वारा आदेश को सुनकर उस पक्षियों के राजा ने उसी प्रकार से किया था ॥३४॥ उस यतव्रत मौद्गल्य ने भगवान् विष्णु के हाथ कणों को दे दिया था। इसी बीच में विष्णु भगवान् ने विश्वकर्मा से कहा था ॥३५॥

यावन्नास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु ।
भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनीषिताः ॥
गावो हिरण्य धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६
यच्च किंचिन्मनःप्रीत्यै लोके भवति भूषणम् ।
तत्सर्वमाप मौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः ॥३७
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ ।
आश्रमे स्वस्य सर्वर्धि दृष्ट्वा ऋषिरभाषत ॥३८
अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः ।
अहो गङ्गाप्रभावश्च कैर्विचार्यो महानयम् ॥३९
मौद्गल्यो भार्यया सार्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः ।
पितृभ्यां बुभुजे भोगान्भुक्तिं मुक्तिमवाप च ॥४०
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा ।
तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिमुक्तिप्रदम् ॥४१
तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाऽपि तीर्थस्य स्यात्कथंचन ।
तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेद् ॥४२
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः ।
सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३

भगवान् विष्णु बोले—जब तक इसके सात पुरुष हों तभी पर्यन्त है ! महाबुद्धे ! इसके मनीषित काम जो भी हो वे सब पूर्ण होवें। गौएँ-सुवर्ण धान्य-वस्त्र और आभरण ये सभी हो जावें ॥३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो भी कुछ मन की प्रीति के लिये लोक में भूषण होता है वह सभी कुछ भगवान् विष्णु और गौतमी गङ्गा के प्रभाव से उस मौद्गल्य ने प्राप्त कर लिया था ॥३७॥ फिर भगवान् विष्णु के द्वारा मौद्गल्य से कहा गया था कि अपने घर पर जाओ और इसके उपरान्त वह वहाँ से चला गया था। फिर अपने आश्रम में पहुँच कर समस्त ऋद्धि को देखकर ऋषि ने कहा था ॥३८॥ ऋषि ने कहा—अहो ! यह दान का महान् प्रभाव है और भगवान् विष्णु की अनुस्मृति का कैसा अद्भुत प्रभाव है ! ओहो, बहुत आश्चर्य होता है गङ्गा का ऐसा

प्रभाव है। यह महान् ही है। किनके द्वारा विचार करने के योग्य हो सकता है अर्थात् कोई भी इनके विषय मे विचार नही कर सकते हैं ॥३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह मौद्गल्य ऋषि अपनी भार्या पुत्र पौत्र-बन्धुगण तथा माता-पिता के साथ विविध भोगों के सुख को भोगकर अन्त मे उसने मोक्ष प्राप्त कर ली थी ॥४०॥ तभी से लेकर वह तीर्थ मौद्गल्य एव वैष्णव के नाम से विख्यात हो गया था। वहाँ पर स्नान करना तथा दान का देना भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करने वाला है ॥४१॥ वहाँ पर उस तीर्थ का किसी भी प्रकार से श्रवण एव स्मरण किया जावे तो उस व्यक्ति पर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हो जाया करते हैं। वह पापो से मुक्त हो जाता है और सुखी हो जाता है ॥४२॥ दोनो तटो पर स्नान-दान और जप आदि के द्वारा सभी अर्थों के प्रदान करने वाले ग्यारह सहस्र तीर्थ हैं ॥४३॥

लक्ष्मीतीर्थवर्णन

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम् ।
अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१
संवादश्च पुरा ह्यासीलक्ष्म्या पुत्र दरिद्रया ।
परस्परविरोधिन्यावुभे विश्वं समीयतुः ॥२
ताभ्यामव्याप्तं वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये ।
मम ज्येष्ठ्यं मम ज्येष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मिथः ॥
ाह पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियमोजसा ॥३
ल शील जीवितं वा देहिनामहमेव तु ।
ाया विना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४
रिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् ।
ुक्तिर्मदाश्रिता नित्यं दरिद्रेव वचोऽब्रवीत् ॥५

काम: क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च ।
यत्राहमस्मि यत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६
न भयोद्भूतिरुन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता ।
यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७
दरिद्राया वच श्रुत्वा लक्ष्मीस्ता प्रत्यभाषत ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक तीर्थ का शुभ नाम लक्ष्मी तीर्थ विख्यात है और यह तीर्थ साक्षात् लक्ष्मी का वर्धन करने वाला है एवं अलक्ष्मी का विनाश करने वाला है। हे नारद ! इसके परम पुण्यमय आख्यान को सुनो ॥१॥ प्राचीन समय मे हे पुत्र ! लक्ष्मी का दरिद्रा का सम्वाद हुआ था। ये दोनो परस्पर मे विरोध करने वाली हैं और ये दोनो ही इस विश्व मे समागत हुई थीं ॥२॥ तीनो भुवनो मे ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी जो उन दोनो से व्याहृत न हो। ये दोनो परस्पर मे मेरी ज्येष्ठता है—ऐसा कह रहीं थी। मैं सबसे पूर्व मे समुत्पन्न हुई हूँ—यह क्रोध के साथ श्री को कहा था ॥३॥ श्री लक्ष्मी ने कहा—देह धारियो का कुल-शील अथवा जीवित मैं ही हू। मेरे बिना ये देहधारी प्राणी जीवित रहते हुए भी मरे हुए के ही समान होते हैं ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस दरिद्रा ने उस लक्ष्मी से कहा था कि सबसे अधिक मैं ही हू। दरिद्रा ने इस प्रकार से कहा था कि मुक्ति तो नित्य ही मेरे समाश्रित रहा करती है ॥५॥ जहाँ पर मेरा निवास होता है वहां पर काम क्रोध लोभ-मद और मात्सर्य ये दुर्गुण कभी भी नहीं ठहरा करते हैं ॥६॥ वहां न तो भय उत्पन्न होता है—न उन्माद है ईर्ष्या भी नहीं रहा करती है और जहा मेरा वास है वहाँ पर उद्धत वृत्ति भी नहीं ठहरा करती है ॥७॥ दरिद्रा के इस वचन को सुनकर लक्ष्मी ने उसको उत्तर में कहा था ॥८॥

अलङ्कृतो मया जन्तु: सर्वो भवति पूजित: ।
निर्धन: शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९
देहीति वचनद्वारा देहस्था: पञ्च देवता: ।
सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तय: ॥१०

तावद्गुणा गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत्पुरुषो जातः क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११

तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालयः ।
नमस्यः सर्वलोकाना यावन्नाथयते परम् ॥१२

कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् ।
न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधन जनः ॥१३

अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच. ॥१४

लक्ष्मी ने कहा—मेरे द्वारा भूषित सभी जन्तु पूजित हो जाया करते हैं अर्थात् समाज मे उनका बडा समादर होता है। जो धन से हीन होता है वह चाहे साक्षात् शिव के समान भी क्यो न हो किन्तु उसका सभी के द्वारा तिरस्कार ही समाज मे किया जाया करता है ॥६॥ कुछ हमको दो—जिस समय में किसी के मुख से यह वचन निकलता है उसी वचन के साथ देह मे निवास करने वाले पाँच देवता तुरन्त निकल कर चले जाया करते हैं तथा धी-श्री शान्ति और कीर्ति भी चली जाया करती हैं ॥१०॥ तभी तक गुणो की स्थिति और गौरव मनुष्य मे रहता है जब तक वह किसी दूसरे से याचना नही करता है। यदि पुरुष उत्पन्न होकर याचक बन गया तो फिर उसमे गुण और गौरव यहा से रह सकता है ? अर्थात् याचक मे ये रह ही नही सकते हैं ॥११॥ तभी तक मनुष्य उत्तम जन्तु समझा जाया करता है और वह समस्त गुणगण से युक्त हो सकता है एव सब लोकों के द्वारा नमस्कार करने के द्वारा नमस्कार करने के योग्य होता है जब तक वह दूसरे से किसी भी वस्तु की याचना नही किया करता है ॥१२॥ देहधारियों की निधनता का होना महान् पाप ही समझना हुए और यह एक सबसे बडा कष्ट ही होता है। धनरहित पुरुषवान कोई भी व्यक्ति मान-समादर किया करता है और न उस निर्धन कोई स्पर्श ही करता है ॥१३॥ हे दरिद्रे ! इसलिये मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हू—यह मेरा वचन तुम श्रवण करो ॥१४॥

तल्लक्ष्मीवचन श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥१५
वक्तु न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वं लज्जसे मुहु ।
पापेपु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६
विश्वस्तवञ्चका नित्य भवती श्लाघसे कथम् ।
सुख न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरु ॥१७
न तथा जायते पु सा सुरया दारुणो मद ।
त्वत्स निधानमात्रेण यथा वं विदुपामपि ॥१८
सदैव रमसे लक्ष्मी प्रायस्त्व पापकारिपु ।
अह वसामि योग्येपु धर्मशीलेपु सवदा ॥१९
शिवविष्ण्वनुरक्तेपु कृतज्ञेपु महत्सु च ।
सदाचारेपु शान्तेपु गुरसेवोद्यनेपु च ॥२०
सत्सु विद्वत्सु शूरेपु कृतबुद्धिपु साधुप ।
निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माज्ज्येष्ठ्य मयि स्थितम् ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—लक्ष्मी के उस वचन को सुन कर दरिद्रा ने यह वाक्य कहे थे ॥१५॥ दरिद्रा बोली—हे लक्ष्मी ! तुमको यह कहते हुए लज्जा भी नही आ रही है कि तुम बारम्बार यही करती हो कि मैं बडी हूँ। लक्ष्मीमान् पुरुष ही तो भगवान् पुरुषोत्तम का भजन ध्यान सबका त्याग करके अहर्निश पापो म रमण किया करता है ॥१६॥ तुम्हारे प्राप्त होने से तो लोग विश्वस्तो को ही ठाग करते हैं अर्थात् जो लक्ष्मीमान् पुरुषो मे विश्वास करते हैं उन्हीं का प्रतारण व करते है यह तुम्हारा ही तो प्रभाव है फिर भी तुम अपनी बडी भारी श्लाघा कर रही हो कि मैं बडी हू। तुम्हारे प्राप्त होने पर वैसा सुख कभी भी नही होता है प्रत्युत मनुष्य को महान् पश्चात्ताप ही होता है ॥१७॥ मनुष्यों का सुरापान से भी उस प्रकार का दारुण मद नहीं होता है जैसा कि तुम्हारे समीप म होने ही से विद्वानो को भी मद उत्पन्न हो जाया करता है ॥१८॥ हे लक्ष्मी ! तुम तो सदा ही प्राय पापो के करने वालों म ही रमण किया करती हो। मैं तो जो योग्य और धर्मशील होते हैं उन्हीं पुरुषों में निवास किया करती हू। मेरे निवास मे जो

आश्रय पुरुष हैं वे सदा धर्मशील ही होते हैं ॥१६॥ जो शिव विष्णु मे अनुराग रखने वाले हैं-कृतज्ञ हैं-महान् हैं-सदाचारी हैं-विद्वान्-शूर-दृत बुद्धि एव साधु पुरुष है मैं उन्ही मे सर्वदा निवास किया करती हूँ। हे लक्ष्मी ! इस कारण से ज्येष्ठता तो मुझ मे ही स्थित होती है।२०-२१॥

ब्राह्मणेपु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु ।
निर्भयेषु वसिष्यामिलक्ष्मीस्त्व शृणुते स्थितिम् ॥२२
राजवर्तिपु पापेपु निष्ठुरेपु खलेषु च ।
पिशुनेपु च लब्धेपु विकृतेपु शठेपु च ॥२३
अनार्येपु कृतघ्नेपु धर्मघातिपु सर्वदा ।
मित्रद्रोहिष्वनिष्टेपु भग्नचित्तेषु वर्तसे ॥२४
एव विवदमाने ते जग्मतुर्मामुभे अपि
तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५
मत्तः पूर्वतरा पृथ्वी आप. पूर्वतरास्ततः ।
स्त्रीणा विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे ॥२६
विशेपतः पुनस्ताभ्यः कमण्डलुभवाश्च याः ।
तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७
सैव सर्वार्तिसहर्त्री सैव सदेहकर्तरी ।
ते मद्वाक्याद्भुव गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८

हे लक्ष्मी ! मैं ब्राह्मणो मे पवित्रता रखने वालो मे-उत्तम व्रतो का समाचरण करने वालो मे भिक्षुओ मे और भय रहित पुरुषो मे रहा करती हू। अब आप अपनी स्थिति के विषय मे भी श्रवण कर लीजिए ॥२२॥ जो राजवर्ती पापात्मा निष्ठुर-खल-पिशुन लुब्धक-विकृत-शठ-अनार्य-कृतघ्न-सदा धर्म का घात करने वाले मित्र द्रोही-अनिष्ट और भग्न चित्त वाले पुरुष होते हैं उन्ही मे आप रहा करती हैं तात्पर्य यह है कि लक्ष्मीमान् लोगो मे उपयुक्त दुर्गुण निश्चित् रूप से विद्यमान रहा करते हैं ॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— इसी प्रकार से वे दोनो विवाद करती हुई और अपनी २ श्लाघा करती हुई मेरे समीप मे उपस्थित हुई थी। उन दोनो के वचनों को

सुन कर मैंने उन दोनो ही से कहा था ॥२५॥ देखो, मुझसे भी पूर्व मे होने वाली एव बडी पृथ्वी है उस पृथ्वीसे भी पूर्व मे होने वाले जल हैं अतएव वे दोनो ही स्त्री जाति हैं। यह है तुम दोनो स्त्रियो का विवाद उसको वे ही स्त्रिया जानती हैं दूसरे कोई भी नही जानते हैं ॥२६॥ विशेष रूप से उन दोनो से भी अधिक वे जल हैं जो कमण्डलु से समुत्पन्न हुए हैं। उनमे भी जो गौतमी गङ्गा देवी हैं वह तो निश्चित रूप से कह देंगी अर्थात् आप दोनो के विवाद का निर्णय ठीक २ बता देंगी ॥२७॥ वही देवी ऐसी हैं जो समस्त पीडाओ का सहार करने वाली और सन्देहो को काट देने वाली हैं। दोनों मेरे इस वचन से भूमण्डल मे चली गयी थी और भूमि को भी अपने साथ मे उन्होने ले लिया था ॥२८॥

अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमी वपुरापगाम् ।
भूमिरापस्तयोर्वाक्य गौतम्यं क्रमश स्फटम् ॥२९
सर्व निवेदयामासुर्यथावृत्त प्रणम्य ताम् ।
दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्य मध्यस्थवत्तदा ॥३०
शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्या भुवि नारद ।
शृण्वतीष्वप्सु सा गगा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मी गौतमी वाक्यमब्रवीत् ॥३१
ब्रह्मश्रीश्च तप श्रीश्च यज्ञश्री कीर्तिसज्ञिता ।
धनश्रीश्च यशश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृति क्षमा ।
सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टि शान्तिरापस्तथा मही ॥३३
अहशक्तिरथौषध्य श्रुति शुद्धिर्विभावरी ।
द्यौर्ज्योत्स्ना आशिष स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उषा शिवा ॥३४
यत्किचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्त चराचरम् ।
ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वथ साधुषु ॥३५
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु ।
यद्यद्रम्य सुन्दर वा तत्तल्लक्ष्मीविजृम्भितम् ॥३६

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत् ।
यस्मिन्कस्मिंश्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७

जलो के भी साथ मे लेकर वे सबकी सब गौतमी नदी पर प्राप्त हो गयी थी। भूमि तथा जलो ने उन दोनो लक्ष्मी और दरिद्रता की जो वचनावली थी वह सब स्पष्ट रूप से गौतमी से कह दी थी और क्रम से दोनो के बड़े ही नेक जो प्रमाण दिये गये थे वे भी सब समझा दिये थे ॥२६॥ उन गौतमी देवी को प्रणाम करके इन दोनो का जो उपेक्षता होने का विवाद था वह सब जैसा घटा था निवेदन कर दिया था। उस समय मे दरिद्रता और लक्ष्मी के वाक्यो मे मध्यस्थ होने के समान होकर सब लोकपालो के सुनते हुए और हे नारद ! भूमि के भी श्रवण करते हुए उस गङ्गा ने दरिद्रता से यह वाक्य कहा था तथा लक्ष्मी देवी की भली भाँति प्रशसा करके गौतमी ने यह वचन कहा था ॥३०-३१॥ गौतमी देवी बोली—ब्रह्म श्री- तपः श्री-यज्ञ श्री-कीर्त्ति सज्ञा वाली श्री-धन श्री यश. श्री विद्या-प्रज्ञा-सरस्वती-भुक्ति श्री-मुक्ति-स्मृति-लज्जा-धृति-क्षमा सिद्धि तुष्टि-पुष्टि-शान्ति आप (जल)-मही-अहं-शक्ति-ओषधियाँ-श्रुति-शुद्धि-विभावरी-द्यौ-ज्योत्स्ना-आशीष स्वास्ति-व्याप्ति माया-उषा-शिवा जो कुछ भी लोक मे विद्यमान् हैं वह सम्पूर्ण चराचर लक्ष्मी से ही व्याप्त है। ब्राह्मणो मे-धीरो मे-क्षमा वालो मे-साधुओ मे-विद्या से युक्तो मे और भुक्ति तथा मुक्ति के अनुसारी अन्यो मे जो-जो भी रम्य हैं अथवा सुन्दर हैं वह सब जगत् लक्ष्मी से ही परिपूर्ण है जिस किसी मे भी जो भी कुछ उत्कृष्ट दिखलाई यहाँ पर दिखलाई दिया करता है वह सभी लक्ष्मी का ही निजृम्भित है ॥३२-३७॥

लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किंचन ।
अत्रेमा सुन्दरी देवी स्पर्धयन्तो न लज्जसे ॥३८
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ।
ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत् ॥३९
तावद्दरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०

तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यतान्भवेत् ।
तीर्थानां षट्सहस्राणि तस्मितीर्थे महामते ॥
देवर्षिमुनिजुष्टाना सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१

इस जगत् मे जो कुछ भी है वह सभी लक्ष्मी से ही परिपूर्ण है और उसके बिना कुछ भी नहीं है। यहां पर इस सुन्दरी देवी के साथ स्पर्धा करती हुई तुमको लज्जा नहीं आती है ? ॥३८॥ गङ्गा ने उस दरिद्रा से जाओ–जाओ–यह वाक्य कहा था। तभी से लेकर गङ्गा का जल दरिद्रा के साथ वैर करने वाला हो गया था ॥३९॥ तभी तक इस दरिद्रा के द्वारा होने वाला तिरस्कार होता है जब तक गङ्गा का सेवन नहीं किया जाता है। तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ लक्ष्मी का विनाश कर देने वाला परम शुभ हो गया है ॥४०॥ वहां पर स्नान करने से तथा दान करने से मनुष्य पुण्य वाला और लक्ष्मी वाला हो जाया करता है। हे महामते ! वहां पर उस तीर्थ मे छँ हजार तीर्थ हैं जो देवर्षियो के द्वारा सेवित हैं और समस्त सिद्धियो के प्रदान करने वाले हैं ॥४१॥

—※—

भान्वादित्रिसहस्रतीथवर्णन

भानुतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१
शर्यातिरिति विख्यातो राजापरमधार्मिकः ।
शर्यातिरिति विख्यातो राजापरमधार्मिक ।
तस्य भार्या स्थविष्ठेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२
मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्वामित्रो द्विजोत्तमः ।
पुरोधास्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः शमिना प्रभु ॥३
दिशो विजेतुं स जगाम राजा,
पुरोधसा तेन नृपप्रवीरः।

पुरोधस प्राह महानुभाव,
जित्वा दिशश्चाध्वनि सन्निविष्टः ॥४
पप्रच्छेद केन खेदं गतोऽसि,
हेतुं वदस्वेति महानुभाव ।
त्वमेव राज्ये मम सवमान्य,
समस्तविद्यानिरवद्यबोध. ॥५
विधूतपाप परितापशून्य,
किमन्यचेता इव लक्ष्यसे त्वम् ।
जितेयमुर्वी विजिता नरेन्द्रा,
हर्षस्य हेतो महतीह जाते ॥६
किं त्व कृशो मे वद सत्यमेव,
द्विजातिवर्यातिमहानुभाव ।
सबोध्य शर्यातिमुवाच विप्र-
श्छन्दोमधु प्रेममयी प्रियोक्तिम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक महान् तीर्थ का नाम भानुतीर्थ है और वह इसी नाम से विख्यात् है जो कि मनुष्यो की सब सिद्धियो को पूर्ण कर देने वाला है। इस विषय मे एक आख्यान का मैं वर्णन करता हूँ जो महान् पातको का विनाश कर देने वाला है ॥१॥ एक शर्याति नाम वाला परम धार्मिक राजा विख्यात हुआ था। उसकी भार्या स्थविष्ठा नाम वाली थी जो इस भूमण्डल मे रूप लावण्य से अनुपम थी अर्थात् अत्यधिक सुन्दरी थी जिसकी समानता रखने वाली अन्य कोई भी नही थी ॥२॥ मधुच्छन्दा इस नाम से विख्यात वैश्वमित्र उत्तम द्विज था जो दम धारियों का प्रभु ब्रह्मर्षि उस राजा का पुरोहित था ॥३॥ वह राजा उस पुरोहित के ही साथ मे दिशाओ को जीत कर मार्ग मे सन्निविष्ट महानुभाव पुरोहित जी से कहा था ॥४॥ यह पूछा था कि हे महानुभाव ! किस कारण से खेद को प्राप्त हो गये हो ? आप उसका हेतु बतलाइये। क्यो कि आप ही मेरे राज्य मे सबके द्वारा सम्मान करने के योग्य पुरुष हैं और आप सम्पूर्ण विद्याओ के द्वारा निर्दोष ज्ञान से सुसम्पन्न भी हैं

॥५॥ आपने तो अपने समस्त पापों को विधूत कर दिया है और परितापों से आप रहित हैं फिर अन्य चित्त की भाँति क्यों दिखलाई दे रहे हैं। समस्त राजा जिस के जीत लिये हैं ऐसी जीती हुई यह भूमि है और यहा पर तो महान् हर्ष का हेतु उपस्थित है फिर भी आपकी यह खिन्नता क्यों है ? ॥६॥ आप कृश क्यों हैं—मुझे यह सत्य-सत्य बतलाइये। हे द्विजातियों मे परम श्रेष्ठ ! हे महानुभाव ! विप्र छन्दोमधु ने राजा शर्याति को सम्बोधित करके प्रेम से परिपूर्ण प्रिय उक्ति कही थी ॥७॥

शृणु भूपाल मद्वाक्यं भार्यया यदुदीरितम् ।
स्थिते यामे वयं यामो यामिनी चार्धगामिनी ॥८
स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी मा प्रतीक्षते ।
स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९
विहस्य चाब्रवीद्राजा पुराधसमरिंदम. ॥१०
त्वं गुरुर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे ।
किमनेन महाप्राज्ञ मम वाक्येन मानद ॥
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्था महात्मनाम् ॥११
एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२
यथाऽऽनुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते ।
न चेद् दूषणं राजन्भूषणं चातिमन्यताम् ॥१३

मधुच्छन्दा ने कहा—हे भूपाल ! आप मेरे वाक्य का श्रवण करिये जो कि भार्या ने कहा था। याम के स्थित होने पर हम चले जायेंगे। अब यामिनी अर्धगामिनी हो गई है ॥८॥ इस देह की स्वामिनी कामिनी मेरी प्रतीक्षा करती है। उस कामिनी के वाक्य का स्मरण करके मेरा यह शरीर शोष को प्राप्त हो रहा है। कामदेव के विकार होने पर यह कमल मुखी जीवित रहे ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—शत्रुओं का दमन करने वाला वह राजा हँसकर पुरोहित जी से बोला ॥१०॥ राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं और मेरे मित्र भी हैं। आप क्यों अपनी आत्मा

विडम्बित करते हैं ? हे महाराज ! हे मानद ! मेरे वचनों पर ध्यान दीजिए। महात्माओं को क्षण मात्र में विध्वंस होने वाले सुख में क्या आस्था है ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह सुनकर मतिमान् मधुच्छन्दा यह वचन बोला ॥१२॥ मधुच्छन्दा ने कहा—जहाँ पर दम्पतियों की अनुकूलता होती है वहां पर त्रिवर्ग की वृद्धि होती है। हे राजन् ! यह कोई दोष नहीं है इसको भूषण ही मानो ॥१३॥

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतः ।
परीक्षार्थं च तत्प्रेम पुर्यां वार्तामदीदिशत् ॥१४
दिशो विजेतुं शार्यातो याते राक्षसपुंगवः ।
हत्वा रसातलं यातो राजानं सपुरोधसम् ॥१५
राज्ञा भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम ।
वार्तां श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्द प्रिया पुनः ॥१६
तदैवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत् ।
तस्या वृत्तं तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञेन्यवेदयम् ॥१७
यत्कृतं राजपत्नीभिः प्रियया च पुरोधसः ।
विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत ॥१८
शीघ्रं गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम् ।
रक्षन्तु वार्तां कुरुत राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९
इति चिन्तातुरे राज्ञि वागुवाचाशरीरिणी ॥२०
विधास्यखिलं गङ्गा राजस्तव समीहितम् ।
सर्वाभिपङ्कशमनी पावनी भुवि गौतमी ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—महान् सेना से युक्त वह अपने देश में आ गया था। उसके प्रेम की परीक्षा करने के लिये पुरी में ऐसी बात भेज दी थी ॥१४॥ सब दिशाओं को जीतने के लिये राजा शार्याति के चले जाने पर एक राक्षस ने पुरोहित के सहित राजा को मार दिया है और वह फिर रसातल को मार कर चला गया है ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा के द्वारा भार्या ने विशेष निश्चय के लिये अपनी प्रवृत्ति की थी। और मधुच्छन्दा की जो प्रिया थी उसने दूत के मुख से यह बात सुनकर,

उसी समय मे वह गत प्राण वाली हो गयी थी। यह एक बहुत हीं अद्भुत सी घटना हो गयी थी। उसके समाचार को उन दूतो ने देखकर फिर उन्होने राजा से यह सब आकर निवेदन कर दिया था ॥१६-१७॥ राजा की पत्नियो ने जो कुछ भी किया था और पुरोहित की प्रिया ने जो क्रिया था। राजा यह सुनकर बहुत ही विस्मित हो गया था। राजा ने फिर उन दूतो से कहा था ॥१८॥ राजा बोला—हे दूतो! तुम लोग बहुत ही शीघ्र गमन करो और उस ब्रह्माजी के शरीर की रक्षा करो। यह बात वहाँ पर पहुंचा दो कि पुरोहित जी के साथ राजा हो गये हैं ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से चिन्ता से आतुर राजा के हो जाने पर आकाशवाणी ने कहा— ॥२०॥ आकाशवाणी बोली—हे राजन्! तुम्हारा यह सम्पूर्ण अभीष्ट गङ्गा कर देंगी। भूमण्डल मे समस्त अभिसङ्गो के शमन करने वाली पावनी गौतमी गंगा हैं ॥२१॥

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रितः।
ब्राह्मणेभ्यो धन दत्त्वा तर्पयित्वा पितृन्द्विजान् ॥२२
पुरोहित द्विजश्रेष्ठ प्रेषयित्वा धनान्वितम्।
अन्यत्र तं र्थ सार्थेन दान देहि(ददौ) प्रयत्नतः ॥२३
एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्य पुरोहितः।
गते तस्मिन्गुरौ राजा वैश्वमित्रे महात्मनि: ॥२४
सर्वं बल प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्।
इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गा भानु सुरानपि ॥२५
यदि दत्त यदि हुत यदि त्रातः प्रजा मया।
तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु ॥२६
इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातौ नृपसत्तमे।
तदैव जीविता भार्या राज्ञस्तस्य पुरोधसः ॥२७
अग्निप्रविष्ट राजान श्रुत्वा विस्मयकारणम्।
पतिव्रता तथा भार्या मृता जीवान्विता पुनः ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह श्रवण करके वह राजा शर्याति राजा गौतमी गंगा के तट पर समाश्रित हो गया था। उसने ब्राह्मणों का धन

का दान किया था और पितृगण का तरण किया था ॥२२॥ फिर उस राजा ने द्विजो मे श्रेष्ठ तथा धन से समन्वित पुरोहित को प्रेषित किया था और कह दिया था कि अन्यत्र तीर्थो मे प्रयत्न पूवक दान देवें ॥२३॥ वह पुरोहित राजा के सम्पूण कृत्य को नही जानता था। उस गुरु महात्मा वैश्वामित्र के चले जाने पर राजा ने रुन सेना को ले जाकर गगा के तीर पर अग्नि मे प्रवेश कर लिया था। जिस समय मे वह अग्नि मे प्रवेश कर रहा था उसने कहा था कि यदि मैंने कुछ दान दिया है–हवन किया है और यदि मैंने प्रजा का त्राण किया है जो कि गगाजी को सूय को और सुरो को उद्देश्य करके किया है तो वह साध्वी उस सत्य से अथवा मेरी आयु से जीवित हो जावे ॥२४-२६॥ इतना कह कर उस नृप श्रेष्ठ शार्याति के अग्नि मे प्रविष्ट होने पर उसी समय मे उस राजा की भार्या जीवित हो गयी थी ॥२७॥ विस्मय का कारण अग्नि मे प्रविष्ट हुआ राजा का श्रवण करके तथा अपनी पतिव्रता मरी हुई भार्या को पुन जीवित हुई उस पुरोहित ने सुना था ॥२८॥

सदर्थ चापि राजान त्यक्तात्मान विशेषत ।
आत्मनश्च पुन कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरु ॥२९
अहमप्यग्निमाविक्ष्य उन यास्ये प्रियान्तिकम् ।
अथवह तपस्तप्स्ये तनो निश्चययान्द्विज ॥३०
एतदेवाऽऽत्मन कृत्य मन्य सुकृतमेव च ।
जीवयामि च राजान ततो यामि प्रिया पुन ॥३१
एतदेव शुभ मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्वरम् ।
न ह्यन्य कोऽपि देवाऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवे ॥३२
नमोऽस्तु तस्म सूर्याय मुक्तयेऽमिततजस ।
छदामयाय देवाय आनारार्याय ते नम. ॥३३
विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूतय ।
स्थित्युत्पत्तिविनाशाना हेतवे प्रभविष्णवे ॥३४
तत प्रसन्न सर्वोऽसुद्वरयस्वत्यभाषत ॥३५

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम् ।
आत्मनश्च शुभान्पुत्राञ्राज्ञश्चैव शुभान्वरान् ॥३६

उसी के लिये विशेष रूप से राजा के आत्म त्याग को उस पुरोहित ने सुना तो फिर नृपति के गुरु ने अपने कर्त्तव्य कर्म का स्मरण किया था ॥२६॥ क्या मैं भी अग्नि मे प्रवेश कर जाऊँ अथवा अपनी प्रिया के समीप मे गमन करूं या यहा पर तपश्चर्या करूँ—ऐसे विभिन्न विचारो के उत्पन्न होने के पश्चात् उस द्विज ने निश्चय किया था ॥३०॥ उस पुरोहित जी ने यही अपना कर्त्तव्य एव सुकृत मान लिया था कि पूर्व में राजा को जीवित करूं और प्रिया के पास पीछे जाऊं ॥३१॥ मेरे लिये यही शुभ कर्म होगा । इसके अनन्तर उसने भगवान् भास्करदेव का स्तवन किया था । रवि के सिवाय अन्य कोई भी ऐसा देवता नही है जो सब अभीष्टो का प्रदाता हो ॥३२॥ मधुच्छन्दा ने कहा—अपरिमित तेज वाले-मोक्ष स्वरूप-छन्दोमय-उन सूर्य देव के लिये मेरा नमस्कार है और ओङ्कारार्थ देव के लिये प्रणाम है ॥३ ॥ त्रिरूप सुरूप-त्रिमूर्ति,-स्थिति, उत्पत्ति और विनाश के हेतु और प्रभविष्णु प्रभु के लिये नमस्कार है ॥३४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् सूर्य देव प्रसन्न हो गये थे और सामने उपस्थित होकर उन्होंने कहा था कि वरदान माँग लो ॥३५॥ मधुच्छन्दा ने कहा—हे देवेश्वर ! राजा और प्रिय बोलने वाली भार्या को प्रदान करो और अपने शुभ पुत्रो को प्रदान करो तथा राजा के परम शुभ वरो को प्रदान कीजिए ॥-६॥

तत प्रादाज्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम् ।
तां च भार्यां वरानन्यान्सर्वं क्षेममय तथा ॥३७
ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा ।
ययौ सुखी स्वकं देशं तत तीर्थ शुभ स्मृतम् ॥३=
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ।
तत: प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३६
मृतसजीवनं चैव शार्यातं चेति विश्रुतम् ।
माधुच्छन्दसमाख्यातं

तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्
मृत सजीवन तत्स्यादारोग्यवर्धनम् ॥४१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त जगत् के स्वामी ने रत्नो से विभूषित शर्याति को दिया था और उस भार्या को—अन्य वरदानो को और सब क्षेममय का प्रदान किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर प्रिया से आविष्ट तथा प्रीति युक्त पुरोहित जी के साथ वह अपने देश को रवाना हो गया था। वह तीर्थ परम शुभ कहा गया है ॥३८॥ वहाँ पर परम गुणो वाले तीन सहस्र तीर्थ हैं तभी से लेकर वह तीर्थ भानु तीर्थ कहा गया है ॥३९॥ मृत को सजीवित करने वाला और शर्यात वह तीर्थ विख्यात है। हे मुने ! मधुच्छन्द भी कह गया है जिसके केवल स्मरण करने से ही पाप दूर हो जाते हैं ॥४०॥ उन तीर्थों मे स्नान तथा दान करने से समस्त क्रतुओ के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है। वह मृत सजीवन और आयु तथा आरोग्य के वर्धन करने वाला है ॥४१॥



खड्गतीर्थवर्णन

खड्गतीर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे।
यत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी भवेन्नर ॥१
तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत ।
पैलूष इति विख्यात कवषस्य सुतो द्विज ॥२
कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्थी परिधावति।
न किमप्यासमादासौ ततो वैराग्यमास्थित ॥३
अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थीभूते तु पौरुषे।
न वैराग्यादन्यदस्ति पण्डितस्यावलम्बनम् ॥४

इति सचिन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः ।
क्रमागत धन नास्ति पोष्याश्च बहवो मम ॥५
मानो चाऽऽत्मा न कष्टार्हो हा धिग्दुदवचेष्टितम् ।
स कदाचिद्वृत्तियुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६
न लेभे तद्धनं वृत्तोविरागमगमत्तदा ।
सेवा निषिद्धा या काचिद्गहना दुष्करं तपः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतमी गङ्गा के तीर पर खग तीर्थ इस नाम से एक तीर्थ विख्यात है । वहां पर स्नान करने से तथा दान करने से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करने वाला हो जाया करता है ॥१॥ हे नारद ! वहां पर जो कुछ भी हुआ था उसको मैं बतलाता हूँ-तुम श्रवण करो। एक कवष का पुत्र शैलूष द्विज प्रसिद्ध था । वह कुटुम्ब के भार से घिरा हुआ था और अर्थार्थी अर्थात् धन को प्राप्त करने की इच्छा वाला इधर उधर दौड़ लगाया करता था किन्तु इसने कुछ भी प्राप्त नही किया था अतएव फिर यह वैराग्य को प्राप्त हो गया था ॥२-३॥ दैव के अत्यधिक विपरीत हो जाने पर अर्थात् भाग्य के बिल्कुल भी काम न देने तथा पुरुषार्थ के व्यर्थ हो जाने पर पण्डित पुरुष को वैराग्य का ही एक मात्र सहारा रह जाता है । अन्य कुछ भी नही है ॥४॥ उस समय मे बार बार निःश्वास लेते हुए इसने यही सोचा था । क्रम से समागत धन नहीं है और मुझे पोषण करने के योग्य बहुत हैं ॥५॥ यह आत्मा मानी है अर्थात् आत्मा के अन्दर स्वाभिमान भरा हुआ है तथा अधिक कष्टों के सहने के योग्य भी नही है । हाय ! दुदवत् चेष्टा करने को धिक्कार है । वह किसी समय मे वृत्ति से युक्त भी होता था तो अपनी वृत्तियों को बदलना रहा करता था । अर्थात् एक काम का त्याग कर दूसरा को अन्य कार्य किया करता था ॥६॥ किन्तु वृत्ति से भी उसने कभी भी धन की प्राप्ति नही की थी । उसी समय मे उसको वैराग्य हो गया था । जो कोई किसी की सेवा भी की जावे तो वह भी एक निषिद्ध कर्म है और बड़ी कठिनाओं होती है । तपश्चर्या करूं तो यह भी बहुत कठिन कर्म है ॥७॥

बलदाकर्षतीयं मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते ।
त्वयाऽपकृतमज्ञानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८
एवं विचिन्त्य मेधावी तृष्णाछेदाय किं भवेत् ।
इत्यालोच्य स पैलूपः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥९
ज्ञानासिना क्रोधलाभौ संसृतिं चातिदुस्तराम् ।
छेद्मीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
तस्मादाराधयेशानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११
तथेत्युक्त्वा स पैलूपो ज्ञानायेश्वरमार्चयत् ।
ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये ॥
प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः ॥१२
क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः ।
ज्ञानखड्गेन तं छित्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी ।
छित्वैतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४

यह तृष्णा मुझको बरवश बलपूर्वक दुष्कृत करने में सर्वत्र आकर्षण किया करती है । अज्ञान से तेरे द्वारा अपकार किया गया है । हे तृष्णे ! तुम्हारे लिये मेरा नमस्कार है ॥८॥ उस मेधावी द्विज ने यह विचार किया था कि इस तृष्णा के छेदन करने के लिये क्या करना चाहिए ! यह सब विचार करके उस पैलूप ने अपने पिता के समीप में जाकर यह वचन कहा था ॥९॥ पैलूप ने कहा—हे तात ! हे प्रभो ! वह कौन सा उपाय है जिसके द्वारा ज्ञान रूपी खड्ग से क्रोध और लोभ का तथा इस अति दुस्तर संसृति (संसार) का मैं छेदन कर दूँ ॥१०॥ कवष ने कहा—वैदिकी श्रुति यही है अर्थात् वेद यही आदेश देता है कि ईश्वर से ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए । इसलिये तुम ईशान प्रभु की समाराधना करो फिर उन्हीं से तुमको ज्ञान की प्राप्ति हो जायगी ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर उस पैलूप ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये ईश्वर का अर्चन किया था । इसके

पश्चात् भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उस द्विज के लिये ज्ञान का प्रदान कर दिया था। जब उसे ज्ञान प्राप्त हो गया था तो महान् बुद्धिमान् वह मुक्ति के प्रदान करने वाली गाथाओं को बोला करता था ॥१२॥ शैलूप ने कहा—यह क्रोध सबसे प्रथम शत्रु है तथा देह का नाश करना निष्फल ही होता है। ज्ञानरूपी खड्ग के द्वारा उस क्रोध का विनाश करके परम सुख की प्राप्ति करनी चाहिए ॥१३॥ यह तृष्णा बहुत प्रकार की होती है—यह बन्धन में डालने वाली माया है तथा पापों के कराने वाली है। ज्ञानरूपी खड्ग से इसका छेदन करके ही मनुष्य सुखपूर्वक स्थित रह सकता है ॥१४॥

सङ्गस्तु परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुति ।
असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽय परमो रिपु ॥१५
छित्त्वैन ज्ञानखड्गेन शिवकत्वमवाप्नुयात् ।
सशय. परमो नाशो धर्मार्थाना विनाशकृत् ॥१६
छित्त्वैन सशय जन्तु परसेप्सितमाप्नुयात् ।
पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम् ॥
पूर्णाहन्तासिना छित्वा जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७
ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीर समाश्रितः ।
ज्ञानखड्गेन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप स. ॥१८
तत. प्रभृति तत्तीर्थं खडगतीर्थमिति स्मृतम् ।
ज्ञानतीर्थं च वचप सर्वकामदम् ॥१९
इत्यादिपट्सहस्राणि तीर्थान्याहुमहर्षयः ।
अशेषपापतापौघहरणोष्टप्रदानि च ॥२०

श्रुति यह कहती है कि देवादिक का भी सङ्ग परम अधर्म होता है। सङ्ग से रहित इस आत्मा का यह सग ही परम शत्रु होता है ॥१५॥ ज्ञानरूपी खग से इसका छेदन करके मनुष्य शिवकत्व को प्राप्त किया करता है। धर्म और अर्थ का विनाश करने वाला संशय परम अर्थात् सबसे बड़ा नाश है ॥१६॥ जन्तु का यही कर्त्तव्य है कि इस संशय का छेदन कर डाले फिर इसके छेदन करने के बाद वह अपने परम अभी-

प्सित को प्राप्त कर लिया करता है। यह आशा एक पिशाचिनी के ही समान मन मे प्रवेश किया करती है और सम्पूर्ण सुख का निर्दघ कर दिया करती है। इसका ज्ञान रूपी खग से पूर्णतया हनन कर देने वाला पुरुप जीव-मुक्त हो जाया करता है अर्थात् जीवित रहते हुए ही एक मुक्त पुरुप के तुल्य हो जाता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस शैलूप ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया था और वह फिर गगा के तट पर समाश्रित हो गया था। ज्ञानरूपी खग के द्वारा वह मोह से रहित होकर फिर उसने मुक्ति की प्राप्ति कर ली थी ॥१८॥ तभी से लेकर यह तीर्थ 'खग तीर्थ'—इस नाम स कहा गया है। ज्ञानतीर्थ-कनप और शैलूप भी इसके नाम हैं जो समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाले हैं ॥१९॥ महर्पिगण इन तीर्थों को छै सहस्र बतलाते है जो कि समस्त पापो के तापो के समुदाय के हरण करने वाले हैं और अभीष्टो के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२०॥

— :※:

नारसिंहतीर्थवर्णन

नारसिंहमिति ख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे।
तस्यानुभाव वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१
हिरण्यकशिपु· पूर्वमभवद्‌बलिना वर।
तपसा विक्रमणापि देवानामपराजित· ॥२
हरिभक्तात्मजद्वेपकलुपीकृतमानस·।
आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्वात्मत्व प्रदर्शयन् ॥३
त हत्वा नरसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा।
सर्वान्हत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृग ॥४
रसातलस्थान्दैत्यां श्च जित्वा स्वर्लोकमीयिवान्।
तत्र जित्वा भुव गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान् ॥५

समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः ।
नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मृगाकृतिः ॥६
आकाशगान्वायुसंस्थान्ज्योतिर्लोकमुपागतान् ।
वज्रपाताधिकनख. समुध्दूतमहासटः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गङ्गा के उत्तर तीर पर एक तीर्थ है जो 'नारसिंह'—इस नाम से प्रख्यात है । उस तीर्थ का अनुभाव का मैं वर्णन करूँगा जो सब प्रकार से रक्षा का विधायक होता है ॥१॥ पूर्व काल मे एक बलवानो मे भी महान् बली हिरण्यकशिपु राजा हुआ था । वह तप के द्वारा और विक्रम से भी देवो का भी अपराजित था । अर्थात् उस तप तथा विक्रम के कारण उसे पराजित नहीं कर सकते थे ॥२॥ श्री हरि भगवान् के परम भक्त अपने पुत्र के साथ द्वेषभाव रखने के कारण उसका मन कलुषित हो गया था । उसके हनन करने के लिये सभा के एक स्तम्भ से श्री हरि ने आविर्भाव किया था और यह प्रदर्शित कर दिया था कि समस्त विश्व के कण-कण मे मैं विराजमान हू ॥३॥ नरसिंह भगवान् ने उस हिरण्यकशिपु को मार गिराया था तथा उस समय मे उसकी सेना को भी मार भगाया था । इन महामृग ने उस समय समस्त दैत्यो को युद्ध मे क्रम से मार डाला था ॥४॥ रसातल में स्थित शत्रुओ को जीत कर यह स्वर्गलोक मे गये थे वहाँ पर जो शत्रु थे उन पर विजय प्राप्त करके फिर भूलोक मे पहुच कर पर्वतो मे स्थित दैत्यों का भी हनन किया था ॥५॥ जो समुद्र मे जा छिपे थे उनको नदियों मे रहने वालो को ग्रामो मे स्थितो को और वनवासी अनेक रूपधारी दैत्यो का इन मृग के आकार धारण करने वाले प्रभु ने सब मार डाला था ॥६॥ जो आकाश मे स्थित थे—जो वायु मे निवास करते थे तथा जो ज्योतिर्लोक मे उपागत हो गये थे उन सभी को वज्रपात से भी अधिक नखों वाले और समुद्धूत सटाओ वाले भगवान् नरसिंह जी ने मार दिया था ॥७॥

दैत्यगर्भस्राविगर्जो निर्जिताशेषराक्षस. ।
महानादैर्वीक्षितैश्च प्रलयानलसन्निभः ॥८

चपेटैरङ्गविक्षेपैरसुरान्पर्यचूर्णयत् ।
एव हत्वा बहुविधान्गौतमामगमद्धरि. ॥६
स्वपदाम्बुजसभूता मनोनयननन्दिनीम् ।
तत्राम्बर्य इति ख्यातो दण्डकाधिपते रिपुः ॥१०
देवाना दुर्जयो योद्धा बलेन महताऽऽवृत. ।
तेनाभवन्महारौद्र भीषण लोमहर्षणम् ॥११
शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना ।
निजघान हरि. श्रीमांस्त रिपु ह्युत्तरे तटे ॥१२
गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
स्नानदानादिक तत्र सर्वपापग्रहार्दनम् ॥१३
सर्वरक्षाकर नि य जरामरणवारणम् ।
यथा सुराणा सर्वेषा न कोऽपि हरिणा सम. ॥१४

दैत्यो के गर्भो के स्रवण करने वाली गर्जना से युक्त जीत लिये समस्त राक्षस जिन्होने प्रलयकालीन अग्नि के समान महान् नाद, वीक्षण, चपेट और अङ्गो के विक्षेपो से नरसिंह भगवान् ने असुरो का चूर्ण कर दिया था। इस प्रकार से अनेक असुरो का हनन करके श्री हरि गौतमी पर चले गये थे ॥८-६॥ वह गौतमी गङ्गा अपन ही चरण कमलो से समुत्पन्न हुई थी तथा मन और नेत्रो को आनन्द प्रदान करने वाली थी वहा पर दण्डक के अधिपति का रिपु अम्बर्ण—इस नाम से विख्यात हुआ था ॥१०॥ जो देवो का भी दुर्जय योद्धा था और महान् बल विक्रम से युक्त था। उसके साथ इनका बडा भीषण और लोम हर्षण युद्ध हुआ था। उस दैत्य के पुत्र के साथ श्री हरि का शस्त्रों एव अस्त्रो के वर्षा होने वाला युद्ध हुआ था ॥११॥ वह युद्ध महान् रौद्ररूप वाला था। उस उत्तर तट पर श्रीमान् हरि ने उस शत्रु का हनन किया था ॥१२॥ गङ्गा पर वह तीर्थ नारसिंह—इस नाम से विख्यात है जिसका नाम तीनो लोकों मे प्रसिद्ध है। वहा पर स्नान तथा दान आदि के करने से सब पापो और ग्रहो का अर्दन हो जाया करता है ॥१३॥ वह तीर्थ सबसे

रक्षा करने वाला और नित्य ही जरा तथा मरण का वारण करने वाला है। युगो मे श्री हरि भगवान् के समान अन्य कोई भी नही है ॥१४॥

तीर्थानामप्यशेषाणा तथा तत्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम् ॥१५
स्वर्गे मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किंचिन्न दुर्लभम् ।
इत्याद्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६
पृथक्पृथक्तीर्थकोटिफलभाहुर्मनीषिणः ।
अश्रद्धयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसक्षयः ॥१७
भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सवदा यत्र सस्थितः ।
तत्तीर्थसेवासजात फल कैरिह वर्ण्यते ॥१८
यथा न देवो नृहरेरधिकः क्वापि वर्तते ।
तथा नृसिंहतीर्थेन सम तीर्थं न कुत्रचित् ॥१९

समस्त तीर्थों मे भी वह तीर्थ उत्तम है । उस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके भगवान् नृसिंह देव का पूजन करे ॥१५॥ स्वर्ग मर्त्य और तल मे उस पुरुष को फिर कुछ भी दुर्लभ नही रहता है । हे नारद ! हे मुने ! मे यहाँ पर आठ महातीर्थ है ॥१६॥ मनीषी लोग पृथक् २ तीर्थों के कोटि फल कहते हैं । बिना श्रद्धा के भी जिन भगवान् के नाम का स्मरण करने पर समस्त अघो का सक्षय हो जाता है ॥१७॥ वहाँ पर भगवान् नृसिंह सर्वदा विराजमान रहा करते हैं और साक्षात्कार उनका होता है । उस तीर्थ का सेवन करने से जो पुण्य-फल होता है उसको यहाँ पर कौन वर्णन कर सकता है अर्थात् किसी मे भी ऐसी शक्ति नहीं है जो उसका वर्णन कर देवे ॥१८॥ जिस प्रकार से नृसिंह भगवान् से बड़ा अन्य कोई भी देव कही पर भी नही है उसी भाँति नृसिंह तीर्थ के भी तुल्य अन्य कही पर भी कोई तीर्थ नही है ॥१९॥

—※—

भावतीर्थवर्णन

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षाद्भवः स्थितः ।
अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृतिः ॥१
तत्रेमां शृणु वक्ष्यामि कथां पुण्यतमां शुभाम् ।
सूर्यवंशकरः श्रीमान्क्षत्रियाणां धुरंधरः ॥२
प्राचीनबर्हिराख्यातः सर्वधर्मेषु पारगः ।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च वर्षाणां राज्य आस्थितः ॥३
तस्येदृशं व्रतं चाऽऽसीद्यद्यहं यौवनच्युतः ।
भवेयं प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभिः ॥४
वियुज्येय ततो राज्यं त्यक्ष्येऽहं नात्र संशयः ।
विवेकिनां कुलीनानामिदमेवोचितं नृणाम् ॥५
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तं विभवक्षये ।
तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोगः प्रियैः क्वचित् ॥६
नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्षं न बन्धुकलहो नृणाम् ।
तस्मिञ्शासति राज्यं तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भावतीर्थ–इस शुभ नाम से जहाँ पर जो तीर्थ कहा गया है वहाँ पर साक्षात् भव स्थित रहा करते हैं। यह भगवान् भव सम्पूर्ण जगत् के अन्त करने वाले सब भूतों का आत्मा और सत्-चित् की आकृति वाले हैं ॥१॥ वहा पर जो कथा है वह परम शुभ और पुण्यतम है उसका मैं वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनो। सूर्य वंश मे होने वाला, क्षत्रियो मे धुरन्धर तथा सब धर्मों मे पारगामी एक प्राचीन बर्हि नृप विख्यात था। वह राजा साढ़े तीन करोड वर्षों तक राज्य पर स्थित रहा था ॥२॥ उसका ऐसा व्रत था कि यदि मैं यौवन से च्युत हो जाऊँगा अथवा अपनी प्रिया-पुत्रगण और प्रिय वस्तुओं से वियुक्त हो जाऊँगा तो मैं राज्य का परित्याग कर दूँगा–इसमे कुछ भी संशय नहीं है। जो विवेकी और कुलीन हैं उन मनुष्यों का यही उचित भी है

॥४-५॥ विभव के क्षीण हो जाने पर विरक्तों को कहीं पर विजन प्रदेश में स्थित हो जाना चाहिए। उस राजा ने जब तक इस भूमि पर प्रशासन किया था तब तक यहीं पर भी किसी का अपने प्रियों से वियोग नहीं हुआ था ॥६॥ न तो उसके राज्य में कोई रोग था और न कोई मानसिक व्याधि ही थी—कभी भी दुर्भिक्ष (अकाल) नहीं होता था और मनुष्यों में परस्पर बन्धुओं या कलह भी नहीं था। उस राजा के शासन करने पर कोई भी किसी से वियुक्त नहीं हुआ करता था ॥७॥

ततः पुत्रार्थमकरोद्यज्ञं राजा महामतिः ।
ततः प्रसन्नो भगवान्वरं प्रादाद्यथेप्सितम् ॥८
गौतमीतीरसस्थाय राज्ञे देवो महेश्वरः ।
पुत्रं देहीति राजा वै भवं प्राह स भार्यया ॥९
भवः प्राह नृप प्रीत्या पश्य नेत्रं तृतीयकम् ।
ततः पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुतः ।
येनाकारि स्तुतिः पुण्या महिम्न (?) इति विश्रुता ॥११
किमलभ्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके ।
य नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादयः सुराः ॥१२
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठमयाचत ।
महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम् ॥१३
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये ।
प्रादाज्ज्येष्ठं भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिषः ॥१५
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते ।
तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६

उस महान् बुद्धिमान् राजा ने पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ किया था। इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने यथेप्सित वरदान दिया था ॥८॥ गौतमी के तट पर संस्थित राजा के लिये

भावतीर्थवर्णन

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षाद्भवः स्थितः ।
अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृतिः ॥१
तत्रेमां शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम् ।
सूर्यवंशकरः श्रीमान्क्षत्रियाणां धुरंधरः ॥२
प्राचीनबर्हिराख्यातः सर्वधर्मेषु पारगः ।
तिस्रः कोट्यर्धकोटिश्च वर्षाणां राज्य आस्थितः ॥३
तस्येदृशं व्रतं चाऽऽसीद्यद्यहं यौवनच्युतः ।
भवेयं प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभिः ॥४
वियुज्येय ततो राज्यं त्यक्ष्येऽहं नात्र संशयः ।
विवेकिना कुलीनानामिदमेवोचितं नृणाम् ॥५
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तं विभवक्षये ।
तस्मिन्प्रशासति मही न वियोगः प्रियैः क्वचित् ॥६
नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्षं न बन्धुकलहो नृणाम् ।
तस्मिञ्शासति राज्यं तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भावतीर्थ–इस शुभ नाम से जहाँ पर जो तीर्थ कहा गया है वहाँ पर साक्षात् भव स्थित रहा करते हैं। यह भगवान् भव सम्पूर्ण जगत् के अन्त करने वाले सब भूतो का आत्मा और सत्-चित् की आकृति वाले है ॥१॥ वहा पर जो कथा है वह परम शुभ और पुण्यतम है उसका मैं वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनो। सूर्य वश मे होने वाला, क्षत्रियो मे धुरन्धर तथा सब धर्मों मे पारगामी एक प्राचीन बर्हि नृप विख्यात था। वह राजा साढ़े तीन करोड वर्षों तक राज्य पर स्थित रहा था ॥३॥ उसका ऐसा व्रत था कि यदि मैं यौवन से च्युत हो जाऊँगा अथवा अपनी प्रिया-पुत्रगण और प्रिय वस्तुओ से वियुक्त हो जाऊँगा तो मैं राज्य का परित्याग कर दूँगा–इसमे कुछ भी सशय नहीं है। जो विवेकी और कुलीन हैं उन मनुष्यो का यही उचित भी है

॥४-५॥ विभव के क्षीण हो जाने पर विरक्तों को कहीं पर विजन प्रदेश में स्थित हो जाना चाहिए। उस राजा ने जब तक इस भूमि पर प्रशासन किया था तब तक कहीं पर भी किसी का अपने प्रियों से वियोग नहीं हुआ था ॥६॥ न तो उसके राज्य में कोई रोग था और न कोई मानसिक व्याधि ही थी—कभी भी दुर्भिक्ष (अकाल) नहीं होता था और मनुष्यों में परस्पर बन्धुओं का कलह भी नहीं था। उस राजा के शासन करने पर कोई भी किसी से वियुक्त नहीं हुआ करता था ॥७॥

ततः पुत्रार्थमकराद्यज्ञं राजा महामतिः ।
ततः प्रसन्नो भगवान्वरं प्रादाद्यथेप्सितम् ॥८
गौतमीतीरसस्थाय राज्ञे देवो महेश्वरः ।
पुत्रं देहीति राजा वै भव प्राह स भार्यया ॥९
भवः प्राह नृप प्रीत्या पश्य नेत्रं तृतीयकम् ।
तत. पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुतः ।
येनाकारि स्तुतिः पुण्या महिम्न (?) इति विश्रुता ॥११
किमलभ्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके ।
य नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादय सुराः ॥१२
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठमयाचत ।
महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम् ॥१३
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये ।
प्रादाज्ज्येष्ठ्य भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिष. ॥१५
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते ।
तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६

उस महान् बुद्धिमान् राजा ने पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ किया था। इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने यथेप्सित वरदान दिया था ॥८॥ गौतमी के तट पर संस्थित राजा के लिये

देवेश्वर महेश ने प्रसन्न होकर वरदान के लिये कहा था। उस समय में भार्या के सहित राजा ने भगवान् भव से प्रार्थना की थी कि मुझे पुत्र प्रदान कीजिए ॥८॥ भगवान् महेश ने प्रीतिपूर्वक राजा से कहा था मेरा तृतीय नेत्र देखो। हे मान के देने वाले! इसके अनन्तर भगवान् भव का नेत्र राजा के देखने पर चक्षु की दीप्ति से महिमा–इस नाम से विख्यात पुत्र हुआ था जिसने पुण्यमयी स्तुति की थी जो "महिम्न"–इस नाम से प्रसिद्ध हुई थी ॥१०-११॥ भगवान् त्रिपुरासुर के वध करने वाले प्रभु के प्रसन्न हो जाने पर क्या वस्तु अलभ्य हो सकती है अर्थात् कुछ भी अलभ्य नहीं रहा करता है जिसके नित्य ही हरि और ब्रह्मा आदि सुरगण अनुवर्त्ती रहा करते हैं ॥१२॥ पुत्र को प्राप्त करने वाले राजा ने उस तीर्थों में परम श्रेष्ठ से याचना की थी कि महान् पाप-महान् रोग और महान् व्यसन वाले जो मनुष्य हैं तथा जो अनेक विपदाओं के समुदाय से आर्त्त हैं उनके समस्त अभिमतों की प्राप्ति के लिये यह तीर्थ हो जावे। भगवान् भव ने भी उस तीर्थ को ज्येष्ठता प्रदान की थी। इसी लिये वह भावतीर्थ–इस नाम से कहा जाता है ॥१३-१४॥ वहाँ पर मनुष्य स्नान करने से तथा विप्रों को दान देने पर अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है। भगवान् भव के प्रसाद से राजा प्राचीन बर्हि के पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ गौतमी के तीर पर महिमा जो है वही भावतीर्थ–इस नाम से कहा जाता है। वहा पर सत्तर तीर्थ हैं जो परम पुण्यमय हैं और सब कुछ देने वाले है ॥१६॥

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णन

सहस्रकुण्डमाख्यात तीर्थं वेदविदा विदुः।
यस्य स्मरणमात्रेण सुखी सपद्यते नरः ॥१
पुरा दाशरथी रामः सेतुं बद्ध्वा महार्णवे।
लङ्का दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीमणे दारैः ॥२

वैदेही च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ।
पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्ये पुरः स्थिते ॥३
अग्नौ शुद्धिगतां सीता रामो लक्ष्मणसंनिधौ ।
एहि वैदेहि शुद्धाऽसि अङ्कमारोढुमर्हसि ॥४
नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा ।
अयोध्यायां तु वैदेहि सार्धं याम. सुहृज्जनैः ॥५
तत्र शुद्धिमवाप्याथ पुनर्भ्रातृषु मातृषु ।
लौकिकेष्वपि पश्यत्सु तत. शुद्धा नृपात्मजा ॥६
अयोध्यायां सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि ।
अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सहस्रकुण्ड नाम वाला एक तीर्थ विख्यात है जिसको वेदो के वेत्ता पुरुष जानते है। जिस तीर्थ के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सुखी हो जाया करता है ॥१॥ प्राचीन समय मे राजा दशरथ के पुत्र श्री राम ने महा सागर मे सेतु बांधा था और लङ्का का दहन करके रण मे बाणो के द्वारा रावण आदि शत्रुओ का हनन किया था ॥२॥ लङ्का से अपनी प्रिया वैदेही को प्राप्त करके श्री राम ने यह वचन कहा था। उस समय मे सभी लोकपाल देख रहे थे और उनके आचार्य भी सामने स्थित थे ॥३॥ श्रीराम ने लक्ष्मण की सन्निधि मे अग्नि मे विशुद्धि मे प्राप्त होने वाली सीताजी से कहा था—हे वैदेहि ! अब तुम विशुद्ध हो गयी हो। आओ, अब तुम मेरी गोद मे बैठन के योग्य होती हो ॥४॥ उस समय मे श्रीमान् अङ्गद और हनुमान ने 'यह नही है'—ऐसा कहा था। हे वैदेहि ! सुहृज्जनो के साथ अयोध्या मे चलते हैं वहा पर पुन भाइयो और माताओ के उपस्थित होने पर शुद्धि को प्राप्त कर सब लोको को भी देखने पर नृपात्मजा विशुद्ध होती हुई अयोध्या मे सुपुण्य दिन मे अङ्क पर समारूढ होने के योग्य होती हो। इनके चरित्र के विषय मे किसको सन्देह हो सकता है ॥५-७॥

लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि ।
तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥८

रामश्च जाम्बवांश्चैव तामाह्वयन्नृपात्मजाम् ।
स्वस्तीत्युक्ता देवताभी राज्ञोऽङ्कं चाऽऽरुरोह सा ॥६
मुदितास्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता ।
अयोध्या नगरी प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०
मुदितास्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः ॥
ततः कतिपयाहेषु अनार्येभ्यो विरूपिकाम् ॥११
वाच श्रुत्वा स तत्याज गुर्विणी तामयोनिजाम् ।
मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२
वाल्मीकेर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपत ।
तत्याज लक्ष्मण सीतामदुष्टा रुदती रुदन् ॥१३
नोल्लङ्घ्याऽऽज्ञा गुरूणामित्यसौ तदकरोद्भिया ।
तत. कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मज. ॥१४

तो भी स्वजनो मे लोको का अपवाद निरस न करने के योग्य है। उन दोनो के वाक्य को न मानकर लक्ष्मण-विभीषण-श्रीराम और जाम्बन्त ने उस नृपात्मजा को बुलाया था। देवों के द्वारा "स्वति" — यह कही गयी वह देवी राजा के अङ्क मे समारूढ हुई थी ॥८-६॥ वे सब प्रसन्न होते हुए परम शोभित पुष्पक विमान के द्वारा शीघ्र वहा से रवाना हो गय थे। फिर अपने राज्य की राजधानी अयोध्या नगरी मे प्राप्त होकर वे सब बहुत हो अधिक प्रसन्न हुए थे। और सब सदा श्रीराम के अनुवर्ती होकर रह रहे थे। इसके पश्चात् कुछ दिनो मे अनार्यों के द्वारा निरूपिका वाणी कही थी ॥१०-११॥ उस वचन को श्रवण करके उन श्रीराम ने अयोनिजा उस जानकी देवी का जो कि गर्भिणी थी त्याग दिया था। जो कुल मे उन्नत होते हैं वे कभी भी मिथ्या अपवाद को सहन नही करते हैं ॥१२॥ मुनियो मे मुख्य वाल्मीकि के आश्रम के समीप मे लक्ष्मण ने स्वय रुदन करते हुए करुण क्रन्दन करने वाली और दोष रहित उस सीता देवी का त्याग कर दिया था। गुरुओं की आज्ञा उल्लङ्घन करने के योग्य नही हुआ करती है इसी कारण से भय से उसने ऐसा यह कार्य किया था। इसके अनन्तर कुछ दिन व्यतीत हो

जाने पर नृपात्मज श्रीराम ने यज्ञ का यजन करने की इच्छा प्रकट की थी ॥१३-१४॥

रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः ।
तत्रैवाऽऽजग्मतुरुभौ रामपुत्रौ यशस्विनौ ॥१५
लवः कुशश्च विख्यातौ नारदाविव गायकौ ।
रामायणं समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरौ ॥१६
रामस्य चरितं सर्वं गायमानौ समीयतुः ।
यज्ञवाटं राजसुतौ हेतुभिर्लक्षितौ तदा ॥१७
रामपुत्रावुभौ शूरौ वैदेह्यास्तनयाविति ।
तावानीय ततः पुत्रावभिषिच्य यथाक्रमम् ॥१८
अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः ।
संसारदुःखखिन्नानामगतीनां शरीरिणाम् ॥१९
पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम् ।
मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्रौ मुहुः स्वजति चुम्बति ॥२०
किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि वै मुहुः ।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कावासिनः ॥२१

श्रीराम सौमित्रि लक्ष्मण के साथ अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित हो गये थे । वहाँ पर परम यशस्वी दोनों श्रीराम के पुत्र वहीं पर समागत हो गये थे जिनका नाम लव और कुश विख्यात था और ये दोनों नारद मुनि के ही समान गायक थे अर्थात् गान विद्या में विशारद थे वे सम्पूर्ण रामायण को बहुत सुन्दर स्वर वाले गन्धर्वों के समान समस्त राम के चरित्र का गान करते हुए वहाँ पर यज्ञवाट में आ गये थे । उस समय में हेतुओं के द्वारा लक्षित राजा के पुत्र प्रतीत हो रहे थे वे दोनों शूर वैदेही के तनय श्रीराम के ही पुत्र है—ऐसा विदित हो गया था । उन दोनों पुत्रों का वहाँ लाकर यथाक्रम अभिषेक किया गया था ॥१५-१८॥ इसके उपरान्त उन दोनों पुत्रों को श्रीराम ने अपनी गोद में समारूढ़ करके उनका आलिङ्गन किया था

और वारम्वार प्रेमालिङ्गन किया। संसार के दुःखो से खिन्न अगति वाले शरीर धारियो का पुत्र का आलिङ्गन करना ही परम विश्रान्ति का कारण होता है। श्रीराम उन दोनो पुत्रो का बार-बार आलिङ्गन करके बारम्बार चुम्बन करते थे ॥१९-२०॥ उस समय मे श्रीराम अपने मन मे कुछ ध्यान करते जाते थे और वारम्वार लम्बी श्वास भी लेते जा रहे थे। इसी बीच मे लङ्का के निवासी राक्षस वहा पर आकर प्राप्त हो गये थे ॥२१॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा।
अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरःसराः ॥२२
ते चाऽऽगत्य नृप प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम्।
सीतामादृष्ट्वा हनुमानङ्गद. कनकाङ्गदः ॥२३
क गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते।
रामेण सा परित्यक्ता इत्यूचुर्द्वारपालकाः ॥२४
पश्यत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवादिनि।
अग्नौ शुद्धिगता(ता)सीता(ता)किंतु राजा निरङ्कुशः ॥२५
उत्पन्नं लौकिकैर्वाक्यै रामस्त्यजति ता प्रियाम्।
मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमी पुनरीयतुः ॥२६
रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह।
आगत्य गौतमी तत्राकुर्वंस्ते परम तप. ॥२७
स्मारं स्मारं निश्वसन्तस्ता सीता लोकमातरम्।
ससारास्थाविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः ॥२८

सुग्रीव-हनुमान-अङ्गद और जाम्बवान तथा अन्य सब वानर जिनके अग्रणी विभीषण थे वे सब आ गये थे और सिंहासन पर समवस्थित नृप के समीप मे प्राप्त हुए थे। वहाँ पर सीता माता को न देखकर हनुमान और कनकाङ्गद अङ्गद ने कहा था कि अयोनिजा सीता माता कहाँ चली गयी हैं ? यहा पर जो केवल अकेले श्रीराम ही दिखलाई दे रहे हैं। द्वारपालो ने कह दिया था कि उनका परित्याग श्रीराम ने करा दिया है। उन्होने कहा—हे आर्ये! हे प्रवादिनी! लोकपालो के देखते

हुए अग्नि मे शुद्धि को प्राप्त हुई सीता का उत्पन्न लौकिक वचनों से ही श्रीराम त्याग कर देते हैं निश्चय ही राजा निरंकुश हैं। हम सब तो मर जायेंगे—यह कहकर वे गौतमी पर चले गये थे ॥२२-२६॥ श्रीराम भी अयोध्या वासियो के साथ पीछे से वहा आ गये थे और गौतमी पर आकर उन्होने परम दुश्चर तप किया था ॥२७॥ बारम्बार स्मरण करके और निश्वास छोडते हुए उस लोक माता सीता की स्मृति कर रहे थे। सभी इस ससार की आस्था से रहित हो गये थे और केवल गौतमी की सेवा करने मे ही उत्सुक बने हुए थे ॥२८॥

लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः।
प्रातः स्नात्वा च गौतम्या शिवाराधनतत्परः ॥२६
परितापं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः।
यत्र चाऽऽसीत्स वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०
दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च।
तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१
यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः।
सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम् ॥३२
सहस्रसंख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारया।
सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३
गौतम्याः सरिदम्बायाः प्रसादाद्राक्षसान्तकः।
सहस्रकुण्डाभिधं तदभूत्तीर्थं महाफलम् ॥३४

तीनो लोको के स्वामी अनुज के सहित साक्षात् श्रीराम प्रातः काल मे गौतमी मे स्नान करके भगवान् शिव की आराधना मे परायण हो गये थे ॥२६॥ वे सहस्रो से परिवारित थे और उन्होने सब परिदार का त्याग कर दिया था। जहां पर यह वृत्तान्त हुआ था वह सहस्रकुण्ट कहा जाता है ॥३०॥ वहा पर दश दूसरे भी तीर्थ हैं जो सर्वार्थो के प्रदान करने वाले हैं। वहा पर स्नान तथा दान करना सहस्र गुना फल देने वाला होता है ॥३१॥ जहा पर श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनि वरों के द्वारा सब आपदाओ से तारण करने वाला और अघो का अन्त

करने वाला होम कराया था ॥३२॥ एक सहस्र सख्या से युक्त कुण्डो मे वसुधारा के द्वारा ही यह होम कराया था। महा तपस्वी ने समस्त अपेक्षित मनोरथो को प्राप्त किया था ॥३३॥ सरिताओ की अम्बा गौतमी के प्रसाद से राक्षसो का अन्त किया था। यह तीर्थ महान् फल देने वाला सहस्र कुण्ड नाम वाला हो गया है ॥३४॥

— ※ —

वजरासगमतोर्थवर्णन

वजरासगम नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
ऋषिभि सेवित नि,य सिद्धं राजर्षिभिस्तथा ॥१
दासत्वमगमत्पूर्वं नागाना गरुड खग ।
मातृदास्यात्तदा दु खपरिसतप्तमानस ॥
कदाचिच्चिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्वसन् ॥२
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि ।
नान्यसेवा कृता यैस्तु न येषा व्यसनागम ॥३
सुख तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च ॥
स्वदेहप्रभवो धन्या घिग्धिगन्यवशे स्थितान् ॥४
इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दु खित ।
पयपृच्छदमेयात्मा वैनतेयोऽथ मातरम् ॥५
यस्यापराधान्मातस्त्व पितुर्वा मम वाऽन्यत ।
दासीत्वमाप्ता वद तत्कारण मम पृच्छत ॥६
साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुज प्रियम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वजरा सङ्गम नाम वाला तीर्थ तीनो लोकों में प्रसिद्ध है। वह तीर्थ नित्य ही ऋषियों के द्वारा सेवित होता है तथा सिद्ध और राजर्षिगण भी उसका सेवन किया करते हैं ॥१॥ पहिले किसी समय मे गरुड पक्षी नागो की दासता को प्राप्त हो गया था। उस समय मे माता की दासता से वह दु:ख से सतप्त

सतप्त मन वाला हो गया था। किसी समय मे एकान्त मे स्थित होकर लम्बी श्वास छोड़ते हुए उसने सोचा था ॥२॥ गरुड़ ने कहा—वे ही मनुष्य इस लोक मे परम धन्य हैं और ये ही प्राणी पुण्यो के करने वाले भी हैं जिन्होंने दूसरो की सेवा नही की है और जिनको व्यसनो का आगम भी नही हुआ है ॥३॥ जो सुख पूर्वक स्थित हैं–गान करते हैं–सोते हैं और हँसते हैं जो अपने देह के प्रभु हैं वे ही धन्य हैं। जो दूसरों के वश मे रहने वाले हैं उनको तो धिक्कार है–धिक्कार है ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से इस चिन्ता मे समाविष्ट होता हुआ वह अपनी जननी के समीप आकर बहुत ही दुःखित हो गया था उस अभयात्मा वैनतेय ने माता से पूछा था ॥५॥ गरुड़ ने कहा—हे माता! किसका यह अपराध है, मेरा है या पिता का है अथवा अन्य किसी का है कि तुम दासीपने को प्राप्त हो गई हो? मैं आप से पूछता हूँ आप मुझको बतलाइये कि इसका कारण क्या है? ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस गरुड़ की माता ने अरुण के छोटे भाई परम प्रिय अपने पुत्र से कहा था ॥७॥

नैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदितः।
यस्या वाक्य विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८
कद्रूश्चापि तथैवाह सा मया सयुता ययौ।
कद्रुवा ममाभवद्वादश्छद्मनाऽहं तया जिता ॥६
विधिर्हि बलवास्तात का का चेष्टां न चेष्टते।
एवं दासीत्वमगम कद्रूवाः कश्यपनन्दन ॥
यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्व द्विजन्मज ॥१०
तूष्णी तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः।
न किंचिदूचे जननी चिन्तयन्भवितव्यताम् ॥११
कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणा हितमिच्छती।
आत्मनो भूतिमिच्छन्तो विनता खगमातरम् ॥१२
पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः।
अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि बत दास्यपि ॥१३

विनता बोली—इसमें किसी का भी अपराध नहीं है। मेरा अपना ही अपराध उदित हुआ है। मैंने कहा था कि जिसका वाक्य विपरीत होगा वह दासी होगी ॥८॥ कद्रू और मैं दोनो थी और वह मेरे साथ सयुत होकर गयी थी। कद्रू के साथ मेरा विवाद हो गया था उससे मुझ को छल से जीत लिया था ॥९॥ हे तात! विधि बडा बलवान् होता है और किस २ चेष्टा को किया करता है यह कुछ समझ मे नहीं आता है। हे कश्यपनन्दन! इसी प्रकार से कद्रू की दासता को मैं प्राप्त हो गई हूँ। जब मैं दासी हो गयी तो हे द्विजन्मज! तुम भी दास बन गये हो ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे गरुड चुप हो गया था और वह अत्यन्त दु खित हुआ था। भवितव्यता का चिन्तन करते हुए उसने अपनी माता से कुछ भी नही कहा था ॥११॥ अपने पुत्रों के हित की इच्छा करने वाली कद्रू किसी समय मे आत्मा की विभूति की अभिलाषा रखने वाली गरुड की माता विनता से बोली थी ॥१२॥ कद्रू ने कहा—तेरा पुत्र भगवान् सूर्य देव को नमस्कार करने के लिये अनिवारित रूप से जाया करता है। अहो! तीनो लोको मे तू दासी होकर भी परम धन्य है ॥१३॥

स्वदु ख गूहमाना सा कद्रू प्राह सुविस्मिता ॥१४
तव पुत्रास्तु किमिति रवि द्रष्टु न यान्ति च ॥१५
पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालय प्रति।
समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतल सर ॥१६
सुपर्णस्त्ववहन्नागान्कद्रू च विनता तथा।
तत प्रोवाच मुदिता वैनतेयस्य मातरम् ॥१७
सुराणा नेतु निलय गरुडो मत्सुतानिति।
पुन प्राह सर्पमाता गरुड विनयान्वितम् ॥१८
पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हस त्रिजगता गुरुम्।
नमस्कृत्वा तत सूयमेष्यन्ति निलय मम ॥
हण्डे त्व नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम् ॥१९
सा वेपमाना विनता दीना कद्रूमभाषत ॥२०

नाहं क्षमा सर्पमातः पुत्रो मे नेष्यते सुतान् ।
दृष्ट्वा दिनकरं देव पुनरेव प्रयान्तु ते ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने हार्दिक दुःख को छिपाते हुए ही सुविस्मित होती हुई उसने कद्रू से कहा, विनता बोली—क्या तुम्हारे पुत्र रविदेव के दर्शन करने को नहीं आया करते हैं ? ॥१४-१५॥ कद्रू ने कहा—हे सुभगे ! मेरे पुत्रो को नागालय की ओर ले जा। समुद्र के समीप मे वहा पर एक शीतल सरोवर है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सुपर्ण ने नागो का वहन किया था तथा विनता ने कद्रू का वहन किया था। उसके अनन्तर वह मुदित होकर वैनतेय की माता से कहने लगी थी कि गरुड मेरे पुत्रो को सुरो के निवास स्थान को ले जावे। फिर सर्पों की माता विनम्र गरुड से बोली ॥१७-१८॥ सर्पमाता बोली—मेरे पुत्र तीनो जगत् के गुरु इस को देखना चाहते हैं और वहा पर सूर्यदेव को नमस्कार करके वापिस मेरे घर मे ही आ जायगे। हे दण्डे ! तुम प्रतिदिन मेरे पुत्रो को सूर्यमण्डल मे ले जाया कर ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह कांपती हुई विनता अत्यन्त दीन होकर कद्रू से बोली ॥२०॥ विनता ने कहा—हे सर्पों की माता ! मैं तो इस कार्य के करने मे समर्थ नही हूं मेरा पुत्र ही तेरे पुत्रो को ले जायगा। वे दिनकर देव का दर्शन करके पुनः आ जावें ॥२१॥

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधीश्वरम् ।
नमस्कर्तुमथेच्छन्ति नागाः स्वामिस्त्वमागताः ॥२२
भास्वन्तमित्युवाचेयं मा सर्पजननी हठात् ।
तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगाः ॥२३
तदाऽऽरूढं सर्पसैन्य गरुडं विहगाधिपम् ।
शनैः शनैरुपगमद्यत्र देवो दिवाकरः ॥
ते दह्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्यथुः ॥२४
निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः ।
अलं सूर्यस्य सदन दग्धाः सूर्यस्य तेजसा ॥
यामस्त्वया वा गरुड विहाय त्वामथापि वा ॥२५

एव नारुगंच्यमान आदित्य दर्शयामि व ।
इत्युक्त्वा गगन शीघ्र जगामाऽऽदित्यसमुख. ॥२६
दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीप त वीरण प्रति ।
बहव शतसाहस्रा पीडिता दग्धविग्रहा: ॥२७
पुत्राणामार्तसनाद पतिताना महीतले (?) ।
आश्वासितु समायाता तान्सा कद्रू सुविह्वला ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—विनता ने विहगो के स्वामी अपने पुत्र से कहा था कि स्वामित्व भाव को प्राप्त हुए ये नाग सूर्यदेव को नमस्कार करने की इच्छा रखते हैं । यह सर्पों की माता हठात् मुझ से यह कहती है । ऐसा ही करूँगा—यह कहकर गरुड ने कहा था कि पन्नग मुझ पर समारोहण करें ॥२२-२३॥ विहगो के अधिप गरुड पर समारूढ हुए वे सर्पों का बल(सेना) धीरे २ वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर दिवाकर देव विराजमान थे । वे भानु के ताप से जो अत्यन्त तीक्ष्ण था दह्यमान होकर बहुत ही अधिक नाग व्यथित हो गये थे ॥२४॥ सर्पों ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! वापिस लौट चलो । पतङ्ग देव के लिये बारम्बार यहीं से नमस्कार है । सूय के सदन तक मत चलो । हम तो सूय के तेज से सदग्ध हो गये हैं । हे गरुड ! तेरे साथ वापिस जाते है अथवा तुमको भी छोडकर हम जा रहे हैं ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से नागो के द्वारा कहे गये भी गरुड ने कहा हम तो आप लोगो को आदित्य देव के दर्शन करायेंगे । यह कहकर वह बहुत ही शीघ्र आदित्य के सम्मुख चला गया था ॥२६॥ वे नाग दग्ध भोग वाले होकर उस वीरण द्वीप की ओर गिर पडे थे । सैकडो और सहस्रो ही बहुत से जले हुए शरीर वाले पीडित हो गये थे ॥२७॥ पुत्रो के उस आर्त्त ध्वनि को सुनकर जो महीतल मे निपतित हो गये थे उनको आश्वासन देने के लिये अत्यन्त विह्वल होती हुई कद्रू वहाँ पर समागत हो गयी थी ॥२८॥

उवाच विनता कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम् ।
कृतवान तिदुर्मेधा येषा शान्तिर्न विद्यते ॥२९

नान्यथा कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणीश्वरः ।
स काश्यपो वृहत्तेजा यत्तत्र स्यादनामयम् ॥३०
भवेच्चैव कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि ।
कद्रूवास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यति भीतवत् ॥३१
पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम् ॥३२
नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि ।
वर्तितु युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते ॥३३
नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्मं कदाचन ।
श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते ॥३४
कुर्वन्त्यनिष्टं कपटैस्त एव मम पुत्रक ।
प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः ॥३५

कद्रू ने विनता से कहा था कि तुम्हारे पुत्र ने अत्यन्त दुष्कृत किया है। वह अत्यन्त दुष्ट-बुद्धि वाला है वे ऐसे दुष्कृत हैं जिनकी कोई भी शान्ति नही है ॥२६॥ अन्यथा फणीश्वर स्वामि वाक्य को करने को नही आता है। वह काश्यप वृहत् तेज वाला है यदि यहाँ पर अनामय हो। इस प्रकार से कैसे शान्ति होवेगी, हे भामिनि ! मेरे पुत्रो की शान्ति का कोई भी उपाय नही है। कद्रू के इस वचन का श्रवण करके विनता अत्यन्त भीत की भाँति विहगो मे स्वामी महात्मा गरुड से बोली। विनता ने कहा—हे पुत्र ! यह अधिक युक्त नही है। विनय के द्वारा ही भूषित होता है। अतः विनय का ही वर्ताव करना उचित है और इसके व्यवहार करना युक्त नही है ॥३०-३३॥ जो कोई अमित्र हो उनके साथ भी सत्पुरुषो को कुटिलता का व्यवहार कभी भी नही करना चाहिए। चाहे कोई वेदो का ज्ञाता श्रोत्रिय हो या कोई अन्त्यज हो सबके घर मे चन्द्रमा समान रूप से ही प्रकाश दिया करता है ॥३४॥ हे मेरे पुत्र ! जो कपट के द्वारा व्यवहार किया करते हैं अथवा अनिष्ट करते हैं ऐसे वे ही पुरुष होते हैं जो पुरुषाधम साक्षात् रूप से बलपूर्वक करने मे असमर्थ होते हैं ॥३५॥

विनता च तत: प्राह कद्रूं ता सर्पमातरम् ॥३६
किं कृत्वा शान्तिरस्येति पुत्राणा ते करोमि तत् ।
जरया तु गृहीतास्ते वद शान्ति करोमि तत् ॥३७
कद्रूरप्याह विनता रसातलगत पयः ।
तेनाभिषेचिताना मे पुत्राणा शान्तिरेष्यति ॥३८
कद्रूवास्तद्वचन श्रुत्वा रसातलगत पयः ।
क्षणेनैव समानीय नागास्तानभ्यषेचयत् ॥
तत: प्रोवाच गरुडो मघवान शतक्रतुम् ॥३९
मेघाश्चाप्यन वर्षन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिण. ॥४०
तथा ववर्ष पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम् ।
रसातलभव गाङ्ग नागसजीवन पय. ॥४१
जराशोकविनाशार्थमानीत गरुडेन यत् ।
यत्राभिषेचिता नागास्तत्रागालयमुच्यते ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त विनता ने सर्पों की माता कद्रू से कहा था ॥३६॥ विनता बोली—क्या करने से तेरे पुत्रो की शान्ति प्राप्त होगी वही मैं करूँ वे जरा से गृहीत हुए हैं । मुझे बतलाओ वही मैं शान्ति का उपाय करूँ ॥३७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—कद्रू ने भी विनता से कहा था कि पय रसातल गत है । उसके द्वारा अभिषिञ्चत किये जाने पर मेरे पुत्रो को शान्ति की प्राप्ति होगी ॥३८॥ कद्रू के उस वचन का श्रवण करके विनता ने एक ही क्षण मे रसातल मे गये हुए पय को लाकर उससे नागो को अभिषिञ्चन किया था । इसके पश्चात् गरुड ने शतक्रतु मघवा से कहा था ॥३९॥ गरुड बोला—त्रैलोक्य के उपकार करने वाले मेघा यहाँ पर वर्षा करें ॥४०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी भाति मेघ ने वर्षा की थी और नागों का कल्याण हुआ था । रसातल मे रहने वाला गङ्गाजी का जल नागो को सजीवन प्रदान करने वाला है ॥४१॥ जरा और शोक के विनाश के लिये गरुड के द्वारा वह लाया गया था । जहा पर नागो का अभिषेक हुआ है वह नागालय कहा जाता है ॥४२॥

गरुडेन यतो वारि आनीत तद्रसातलात् ।
तद्गाङ्गं वारि सर्वेषा सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३
जराया वारण यस्मान्नागानामभवच्छिवम् ।
रसातलभव गाङ्ग नागसजीवन यत ॥४४
जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे ।
साक्षादमृतस वाहा वजरा साऽभवन्नदी ॥४५
जरादारिद्र्यसतापहारिणी क्लेशवारिणी ।
रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६
तयोश्च सगमो य स्यात्किं पुनस्तत्र वर्ण्यते ।
यस्यानुस्मरणादेव नाश यान्त्यघसचया ॥४७
तत्र च स्नानदानाना फल को वक्तुमीश्वरः ।
सपाद तत्र तीर्थाना लक्षमाहुर्मनीषिणः ॥४८
सर्वसपत्तिदातृणा सर्वपापौघहारिणाम् ।
वजरासगमसम तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तय ॥४९

गरुड के द्वारा जहाँ रसातल से जल लाया गया था वह गगा का जल है जो सबके सम्पूर्ण पापो का प्रणाश करने वाला है ॥४३॥ जिससे नागो की जरा का वारण हुआ है और उनका कल्याण हुआ वह रसातल मे रहने वाला गङ्गा का नाम सजीवन है ॥४४॥ गङ्गा के दक्षिण तट पर जरा और शोक के विनाश के लिये साक्षात् अमृत के सवाह वाली वजरा है वह नदी हो गयी है ॥४५॥ रसातल मे उत्पन्न होने वाली अथवा मनुष्य लोक मे उद्भव प्राप्त करने वाली जो गगा है वह जरा-दारिद्र्य और सन्ताप को हरण करने वाली हैं तथा क्लेशो को हटा देने वाली है ॥४६॥ उन दोनो का यदि सङ्गम हो जावे तो फिर उसके माहात्म्य के विषय मे वर्णन ही क्या किया जा सकता है। अर्थात् अत्यधिक महिमा है। जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से अघो के समुदाय नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥४७॥ वहाँ पर जो स्नान होवे

अथवा दान होवे उसके पुण्य-फल को कौन कहने की सामर्थ्य रख सकता है। मनीषीगण वहाँ पर सवा लाख तीर्थ बतलाते हैं ॥४८॥ सर्व सम्पत्तियों के प्रदान करने वाला समस्त पापों के समूहों का नाश करने वाली वजरा सङ्गम के समान अन्य कहीं भी कोई भी तीर्थ नहीं है जिसके स्मरण से ही विपत्तियाँ नष्ट हो जाती है ॥४६॥

देवागमतीर्थवर्णन

देवागम नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शिवम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां पितृणां तृप्तिकारकम् ॥१
तत्र वृत्तं समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद ।
देवानामसुराणां च स्पर्धाऽभूद्धकहेतवे ॥२
स्वर्गः सुराणामभवदसुराणामिलाऽभवत् ।
कर्मभूमिमवष्टभ्य असुराः सर्वतोऽभवन् ॥३
देवानां यज्ञभागांश्च दातॄन्घ्नन्त्यसुरास्ततः ।
ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः ॥४
व्यथिता मामुपाजग्मुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन् ।
मया चोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात् ॥५
भुव प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च ।
तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः ॥६
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः ।
एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥७

हे नारद ! वहाँ पर जो भी घटित हुआ मैं उसको तुम्हारे कर्ण गोचर करूँगा और यत्नपूर्वक बताऊँगा। एक बार धन के लिये देवों और असुरों की स्पर्द्धा (होड़ा होड़ी) हो गई थी ॥१॥ सुरों का स्वर्ग

हो गया था और असुरो की इला पृथ्वी हो गई थी । कर्मों के करने की भूमि है—इस की लालसा से युक्त असुर सर्वत्र हो गये अर्थात् हर जगह अधिकार जमा लिया था ॥२-३॥ इसके अनन्तर तो यह हुआ था कि जो देवो के लिये यज्ञ भाग दिया करते हैं उनको असुर मार दिया करते थे । इसका यह परिणाम हुआ कि तब से सब देवगण यज्ञ भागो से रहित कर दिये गये थे ॥४॥ समस्त देवगण अपना भोजनीय भाग न मिलने पर बहुत ही अधिक व्यथित हुए और मेरे पास दौडकर आये थे । वे मुझसे बोले—कि अब क्या कार्य करना चाहिए । मैंने उन सुरो से कहा था कि युद्ध मे बलपूर्वक असुरो के ऊपर विजय प्राप्त करना ही परम आवश्यक है ॥५॥ तभी तुम सब लोग सुख को प्राप्त करोगे तथा भू को कर्मों को हवियो को और यज्ञ को भी प्राप्त करोगे । ऐसा ही किया जायेगा—यह स्वीकार करके देवगण युद्ध करने की अभिलाषा वाले होकर भूमि पर चले गये थे ॥६॥ उधर दैत्य-दानव-राक्षस जो अपने बल का दर्प रखते थे सब इकट्ठे होकर जय का लाभ पाने वाले युद्ध की इच्छा से वे सभी पहुँच गये थे ॥७॥

अहिर्वृ ध्नो बलिस्त्वाष्ट्रिर्नमुचि. शम्बरो मयः ।
एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिता. ॥८
अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ ।
मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदा ॥६
ते दानवा. सर्व एव याम्या वै दिशि सगरे ।
अकुर्वन्त महायत्न दक्षिणार्णवसस्थिता ॥१०
त्रिकूट: पर्वतश्रेष्ठो राक्षसाना पुराऽभवत् ।
तद्वनेन ययु सर्वे तै साधँ दक्षिणार्णवम् ॥११
सर्वेषा मेलन यत्र पर्वतो मलयस्तु स ।
मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा ॥१२
देवाना गौतमीतीरे तत्र सनिहित. शिव ।
इति तेषा समायोगो देवानामभवत्किल ॥१३

देवाः स्वरथमारूढास्तत्र तत्र समागमन् ।
गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशया ।।१४
प्रसन्नाऽभीष्टदा या स्यात्पितॄणामखिलस्य तु ।
अभय चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम् ।।१५

अहि-वृत्र बलि त्वाष्ट्रि नमुचि-शम्बर-मय ये सब और कुछ अन्य भी बहुत से ऐसे उनमे योद्धा थे जिन को अपने बल-विक्रम का बड़ा ही गर्व था ।।८।। अग्नि-इन्द्र-वरुण त्वष्टा-पूषा अश्विनी कुमार दोनो–मरुत और लोकपाल गण अनेक प्रकार के युद्धो के विशारद देवगण थे ।।९।। वे सब दानव दक्षिण सागर मे संस्थित होते हुए याम्य दिशा मे ही युद्ध मे महान् यत्न कर रहे थे ।।१०।। पहिले प्राचीन समय मे राक्षसो का त्रिकूट ही श्रेष्ठ पर्वत था । उस बल के द्वारा उनके साथ वे सब दक्षिणार्णव को गये थे ।।११।। जहा पर प्रलय पर्वत है वही पर सबका मिलन हो गया था । उस समय मे असुरो का मलय का यह देश भी हो गया था ।।१२।। यहाँ पर देवो के गौतमी के तीर पर भगवान् शिव सन्निहित थे इस तरह का उन देवो का समायोग हो गया था ।।१३।। देवगण भी अपने रथों पर चढ़े हुए यहीं पर आ गये थे । स्वच्छ आशय वाले देवगण सरिताओ की अम्बा गौतमी के पुलिन पर थे ।।१४।। जो गौतमी पितृगणो की तथा सबकी अभीष्टो की दात्री थी और प्रसन्न थी । इसके अनन्तर सब देवो ने महेश्वर देव की स्तुति करके वे सब परस्पर में अभय के विषय मे चिन्तन करने लगे थे ।।१५।।

अत्राप्युपाय कोऽस्माकं निर्जितानां परैर्हठात् ।
एवमेवात्र न श्रेयो विजयो वाऽथवा मृति. ।।
शत्रुभिरभिभूताना जीवित धिङ्मनस्विनाम् ।।१६
एतस्मिन्नन्तरे पुन वागुवाचाशरीरिणी ।।१७
यत्नेनास्य सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत ।
तत्र वा हरिहरौ तत्र समाराधयतेश्वरौ ।।१८
तोषयध्वं स्तुवथोर्वा य प्रसादादिवतु दुष्करम् ।।१९

प्रसन्नाभ्यां हरीशाभ्या देवा जयमभीप्सितम् ।
अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः ॥२०
यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थ तेन विश्रुतम् ।
देवागम प्रशसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२१
तत्राशीतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद ।
देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय इत्यपि कथ्यते ॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२

देवो ने कहा— दूसरो के द्वारा निर्जित हमारा क्या उपाय यहाँ पर भी हो सकता है ? यहां पर हमारा एक ही श्रेय है कि हमारा विजय हो अथवा मरण ही हो। यदि जीत नही होती है तो शत्रुओ के द्वारा तिरस्कृतो का जीवन जीना धिक्कार ही है। मनस्वी होकर ही जीना उत्तम होता है पराधीन रहकर जीवन किस काम का है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! बिना शरीर वाली वाणी ने कहा— ॥१७॥ आकाश वाणी बोली—हे सुरगणो ! क्लेशित मत होइये और शीघ्र गौतमी के समीप मे चले जाओ। वहा पर परम भक्ति की भावना से हरि हर भगवानो की आराधना करो। गोदावरी के और उन दोनो के प्रसाद से कुछ भी दुष्कर नही रहता है ॥१८-१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहा पर देवो ने प्रसन्न हुए श्री हरि और श्री हर के द्वारा अभीष्ट विजय प्राप्त किया था और देवगण पालन करते हुए सब ओर चले गये थे ॥२०॥ जहा पर देवो का आगम हुआ था वह तीर्थ भी उसी नाम से विख्यात हो गया था। तत्त्वदर्शी मुनिगण उस देवागम की प्रशसा किया करते है ॥२१॥ वहा पर हे नारद ! अस्सी हजार शिव लिङ्ग हैं, यह देवागम पर्वत इसलिये भी प्रिय है-ऐसा कहा जाता है। तभी से लेकर यह तीर्थ देव प्रियतम जाना गया है ॥२२॥

—:※:—

कुशतर्पणतीर्थवर्णन

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगमं तथा ।
तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम् ।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे सह्यो नाम महागिरि ॥२
यदङ्घ्रिभ्योऽभवन्नद्यो गोदाभीमरथीमुखाः ।
यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा ॥३
न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम् ।
तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत ॥४
गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदित शुभम् ।
यन्न जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुराः ॥५
तदह प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम् ।
परः स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु ॥६
क्षपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वितः एव च ।
निराधारात्सवयवः पुरुष. समजायत ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी भाँति प्रणीता सङ्गम भी कुश तर्पण-
के नाम से तीर्थ विख्यात है । यह सब लोकों में समस्त तीर्थों में प्रसिद्ध
और भुक्ति एव मुक्ति दोनों के देने वाला है ॥१॥ उसके स्वरूपका
मैं भली भाँति वर्णन करूँगा जो कि परम शुभ एव पापों का हरण करने
वाला है । उसका तुम श्रवण करो । विन्ध्य पर्वत के दक्षिण पार्श्व में
एक सह्य नाम का महान् पर्वत है ॥२॥ जिस पर्वत के चरणों से गोदा-
वरी-भीमरथी जिनमें प्रमुख है ऐसी बहुत ही नदियाँ उद्भूत हुई थी ।
वहाँ पर वह विरज हुआ था और जहाँ वह एक वीरा हुई थी ॥३॥
उसकी महिमा तो इतनी विशाल है कि वह किसी के द्वारा भी वर्णन
नहीं की जा सकती है । हे नारद ! आप सुनिये और प्रयत्न पूर्वक
ध्यान देकर श्रवण कीजिए । वह गिरि परम पुण्य देश है उसमें भी जो

गोपनीय से भी गोपनीय है उसे मैं आपको बतलाऊँगा। यह साक्षात् वेदों के द्वारा उदित हैं और परम शुभ है। जिसको समस्त मुनिगण देवता पितृगण और असुर कोई भी नहीं जानते हैं। यह एक अत्यन्त रहस्यमय है ॥४-५॥ मेरी आप पर परम प्रीति है इसीलिये मैं आपको बतलाऊँगा। इसका श्रवण मात्र करने ही से यह सब मनोरथों का परिपूर्ण कर देता है। वह पर पुरुष अव्यक्त और अक्षर ही समझ लेना चाहिए ॥६॥ दूसरा क्षर है इसी कारण से यह प्रकृति में समन्वित होता है। निराकार से ही अवयवों वाला पुरुष अर्थात् साकार प्रभु समुत्पन्न हो गये थे ॥७॥

तस्मादापः समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरुषस्तया ।
ताभ्यामब्जं समुद्भूतं तत्राहममथं मुने ॥८
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च ।
एते मत्तः पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने ॥९
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्थावरजङ्गमम् ।
नैव वेदास्तदा ज्ञाऽऽस्तन्नाहं द्रष्टाऽस्मि किंचन ॥१०
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ ।
तूष्णीं स्थिते मयि तदा अश्रौषं वाचमुत्तमाम् ॥११
ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्थावरस्य चरस्य च ॥१२
ततोऽहमब्रवं वाच परुषां तत्र नारद ।
कथं स्रक्ष्ये क वा स्रक्ष्ये केन स्रक्ष्य इदं जगत् ॥१३
सैव वागब्रवीद् वो प्रकृतिर्याऽभिधीयते ।
विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥१४

उससे जल समुत्पन्न हुए उन और जलों से एक पुरुष समुद्भूत हुए थे। उन दोनों से एक महा कमल की उत्पत्ति हुई थी। हे मुनिवर ! वहां पर मैं समुत्पन्न हुआ था ॥८॥ पृथिवी-आकाश-वायु-जल और ज्योति ये महाभूत एक ही बार में हे मुने ! मुझसे भी पूर्व में होने वाले हैं ॥९॥ मैंने इन्हीं को देखा था और अन्य किसी भी स्थावर या जङ्गम (जड़-

मे वेद भी नही थे और मैंने किसी को नही देखा था। जिस महापुरुष से मैंने अपना स्वरूप प्राप्त किया था मैंने उसको भी वहा पर नही देखा था। उस समय मे मैं हक्का-बक्का-सा होकर मौन रह गया था। तब मैंने एक उत्तम वाणी का श्रवण किया था ॥१०-११॥ आकाशवाणी ने कहा था—हे ब्रह्मन्! जड और चेतन का सृजन करो और जगत् की सृष्टि का निर्माण करो ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! वहा पर मैंने उस समय मे बडी खरखरी कठोर वाणी कही थी। कैसे सृजन करूगा—कहाँ करू और इस जगत् की सृष्टि की रचना किसके द्वारा करू? ॥१३॥ उसी समय मे उसी दैवी वाणी ने कहा था जो कि प्रकृति कही जाया करती है और भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित माता थी तथा जगत् की स्वामिनी एव जगत् से परिपूर्ण थी ॥१४॥

यज्ञं कुरु ततः शक्तिस्ते भविनी न सशयः।
यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मन्सनातनी ॥१५
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥१६
पुनस्तामब्रवं देवी क्व वा केनेति तद्वद।
यज्ञः कार्यो महाभागे ततः सोवाच मा प्रति ॥१७
ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी।
कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेशं यज्ञपूरुषम् ॥१८
स एव साधन ते स्यात्तेन त यज सुव्रत।
यज्ञः स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥१९
हरिरेवाखिल तेन सर्व विष्णोरवाप्यते ॥२०
पुनस्तामब्रव देवी कर्मभूः क विधीयते।
तदा नारद नैवाऽऽसीद्भागीरथ्यथ नर्मदा ॥२१
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी।
समुद्रो वा नदः पश्चिमः सरः सरितोऽमलाः॥
सा शक्तिः पुनरप्येव मामुवाच पुन. पुन. ॥२२

आकाश वाणी ने कहा—यज्ञ का यजन करो। इससे आपके अन्दर शक्ति समुत्पन्न हो जायगी—इसमें कुछ भी सशय नही है। यज्ञ निश्चय

ही साक्षात् भगवान् विष्णु का स्वरूप होता है—हे ब्रह्मन् ! यह सनातनी श्रुति है ॥१५॥ जो यज्वा है अर्थात् यज्ञ का यजन करने वाला है उसको इस लोक मे और परलोक मे कुछ भी असाध्य नही है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर मैंने उस आकाशवाणी देवी से कहा था—कहा करू और किस के द्वारा करू—यह बतलादो । हे महाभागे ! आपकी आज्ञा जो यज्ञ करने की है मैं उसको स्वीकार तो करता हूँ किन्तु स्थान और विधान मुझे समझा दो । इसके पश्चात् उसने मुझसे कहा— ॥१७॥ आकाशवाणी बोली—जो ओङ्कार भूत माता के सदृश जगन्मयी देवी है यहा पर कर्म भूमि मे यज्ञ के ईश्वर यज्ञ पुरुष का यजन करो ॥१८॥ ह सुव्रत ! वह ही आपका साधन होगा । उन्ही के द्वारा यजन कीजिए । यज्ञ-स्वाहा-स्वधा-मन्त्र-ब्राह्मण और हवि आदि ये सब साधन हैं । इनमे केवल हवि ही सम्पूर्ण है । उससे सब विष्णु ही प्राप्त किया जाता है ॥१९-२०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर मैंने उस देवी से कहा— वह कर्मभू कहा पर की आये । उस समय मे हे नारद ! भागीरथी अथवा नर्मदा तो थी हो नही ॥२१॥ न यमुना थी और तापी-सरस्वती तथा गौतमी ही थी । न समुद्र ही था तथा कोई नद एवं सरोवर था अमल जल वाली सरिताएँ थी । अतएव वह शक्ति पुनः बोली और बारम्बार उसने कहा ॥२२॥

सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे तथा हिमवतो गिरेः ।
दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्यार्द्वाथ दक्षिणे ॥
सर्वस्य सवकाले तु कर्मभूमि· शुभोदया ॥२३
तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरु महागिरिम् ।
त प्रदेशमथाऽऽगत्य स्थातव्य केऽयचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवोत्सैव विष्णोर्वाण्यशरीरिणी ॥२४
इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि ।
सक्ल्प कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञ. समाप्यते ॥२५
कृते चैवाथ सक्ल्पे यज्ञार्थे सुरसत्तम ।
यद्वदन्त्यखिला वेदा विधे तत्तत्समाचर ॥२६

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम् ।
स्वतो मुखे मम प्राप्तादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७
वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च ।
ततं पुरुषसूक्तं तदस्मरं लोकविश्रुतम् ॥२८

दैवीवाणी ने कहा—सुमेरु पर्वत के पार्श्व में तथा हिम्वान् विन्ध्य और सह्य गिरि के दक्षिण पार्श्व में सब की सब काल में शुभ उदय वाली कर्म भूमि है ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस वाक्य का श्रवण करके महागिरिमेरु को त्याग कर उस प्रदेश में मुझे वहां पर अपनी स्थिति करनी चाहिए—यही मैंने सोचा था। इसके बाद भी उसी भगवान् विष्णु की बिना शरीर वाली वाणी ने मुझसे कहा था ॥२४॥ आकाशवाणी बोली—इधर जाओ, उधर ठहरो और यहां पर ही बैठ जाओ। तथा यज्ञ का सङ्कल्प करो। वह आपका यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हो जायेगा ॥२५॥ हे सुर सत्तम! यज्ञ के लिये सङ्कल्प के करने पर जो भी सब देव कहते हैं हे विधे? वही वही समाचरण करो ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतिहास पुराण जो भी शब्दों का गोचर विषय है वह सब मेरे मुख में स्वतः आ गया था और सब स्मृति गोचर हो गया था ॥२७॥ यह सम्पूर्ण वेदार्थ उसी क्षण में मेरे द्वारा ज्ञात हो गया था। इसके अनन्तर लोक में विख्यात वह पुरुष सूक्त मुझे स्मृत हो गया था ॥२८॥

यज्ञोपकरणं सर्वं तदुक्तं च स्वकल्पयम् ।
तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम् ॥२९
अहं स्थित्वा यत्र देशे मुधिर्भूत्वा यतात्मवान् ।
दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ यज्ञाम्ना तु प्रकीर्तितः ॥३०
मद्यजनं पुण्यं नाम्ना ब्रह्मगिरिः स्मृतः ।
चतुरशीतिपर्यन्तं योजनानि महामुने ॥३१
मद्यजनात् पुण्यं पूर्वतो ब्रह्मणो गिरेः ।
तत्र मध्ये वेदिका स्यादगार्हपत्योऽन्य(?)दक्षिणे ॥३२

तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नींस्त्वकल्पयम्(?) ।
विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञः श्रुतिनिदर्शनात् ॥३३
शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरवं मुने ।
पूर्वार्धेन ततः पत्नी ममभूद्यज्ञसिद्धये ॥३४
उत्तरेण स्वहं तद्वदर्धो जाया इति श्रुतेः ।
काल वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद ॥३५

उसके द्वारा कहे हुए सम्पूर्ण यज्ञ के उपकरणों में मैंने कल्पित किया था और उसके द्वारा वर्णित प्रकार से मैंने यज्ञ के सब पात्रों की कल्पना करली थी ॥२६॥ जहाँ पर स्थित होकर शुचि होकर मैं उस देश में यत आत्मा वाला हो गया था वह विप्रदेश दीक्षित हो गया और मेरे ही नाम से कीर्तित हो गया था ॥३०॥ मेरा वह पुण्यमय देवों का यजन नाम से ब्रह्मगिरि कहा गया है, हे महामुने ! वह भाग चौरासी योजन पर्यन्त था ॥३१॥ ब्रह्मा के गिरि के पूर्व की ओर वह पुण्यमय मेरे द्वारा किया हुआ देव यजन था। वहाँ पर मध्य में वेदिका थी और इसके दक्षिण में गार्हपत्य था ॥३२॥ वहाँ पर आहवनीय था। इस विधि से अग्नियों की कल्पना की थी। श्रुति के निदर्शन से यज्ञ कर्म की सिद्धि बिना पत्नी के नहीं हुआ करती है ॥३३॥ हे मुने ! मैंने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया था। मेरे शरीर के पूर्वार्ध से यज्ञ की सिद्धि के लिये मेरी पत्नी हुई थी ॥३४॥ और शरीर का जो उत्तरार्ध भाग था उससे मैं रहा था। उसी के अनुसार "आधा भाग जाया है" यह श्रुति है। हे नारद ! बसन्त काल को आज्य (घृत) के रूप से उत्कृष्ट किया था ॥३५॥

अकल्पयं तथा चेध्मं ग्रीष्मं चापि शरद्धविः ।
ऋतुं च प्रावृषं पुत्र तदा बर्हिरकल्पयम् ॥३६
छन्दांसि सप्त वै तत्रा तदा परिधयोऽभवन् ।
कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पात्रकुशाः स्मृताः ॥३
योऽनादिश्च त्वनन्तश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा ।
यूपरूपेण देवर्षे योऽत्र च पशुबन्धनम् ॥३८

सत्त्वादिस्त्रिगुणाः पाशाः नैव तत्राभवत्पशुः ।
ततोऽहमब्रव वाच वैष्णवीमशरीरिणीम् ॥३९
विनैव पशुना नायं यज्ञः परिसमाप्यते ।
ततो मामवदद्देवो सैव नित्याऽशरीरिणी ॥४०
पौरुषेणाथ सूक्तेन स्तुहि तं पुरुषं परम् ॥४१

ग्रीष्म ऋतु को ही मैंने इध्म (ईंधन, समिधा) कल्पित किया था। शरद् ऋतु को छवि बनाया था। हे पुत्र ! वर्षा ऋतु उस समय में बहिः अर्थात् बाहिर का भाग कल्पित किया था ॥३६॥ वहां पर उस समय में छन्द सात परिधियाँ हो गई थी। हे देवर्षि ! कला-काष्ठा और निमेष ये सब समिधा कुशा और पात्र कहे गये हैं ॥३७॥ उस समय में जो अनादि-और अनन्त काल है वह स्वयं रूप-रूप से योक्त्र और पशु बन्धन हो गया था ॥३८॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण पाश थे किन्तु वहां पर पशु नहीं था। इसके अनन्तर मैंने बिना शरीर वाली वैष्णवी वाणी से कहा था ॥३९॥ बिना पशु के यह यज्ञ परि समाप्त नहीं होता है। तब तो उस देवी ने मुझसे कहा था जो कि नित्या और बिना शरीर वाली थी ॥४०॥ आकाशवाणी ने कहा—उस परम पुरुष का पुरुष सूक्त के द्वारा स्तवन करो ॥४१॥

तथेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने ।
मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि ॥४२
सा च मामब्रवीद्देवी ब्रह्मन्मा त्वं पशुं कुरु ।
तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाव्ययम् ॥४३
कालयूपस्य पार्श्वे तं गुणपाशैर्निवेशितम् ।
बर्हिस्थितमहं प्रोक्ष पुरुषं जातमग्रतः ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूदिदम् ।
ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाह्वोश्च क्षत्रियाः ॥४५
मुखादिन्द्रश्च वह्निश्च मनसः प्राणतोऽभवत् ।
दिशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा ॥४६

मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुषस्तथा ।
अन्तरिक्ष तथा नाभेरूरुभ्यां विश एव च ॥४७

पद्भ्यां शूद्रश्च सजातस्तथा भूमिरजायत ।
ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्य. केशतोऽभवन् ॥४८

ग्राम्यारण्याश्च पशवो नखेभ्यः सर्वतोऽभवन् ।
कृमिकीटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत ॥४९

स्थावरं जङ्गमं किंचिद्दृश्यादृश्यं च किंचन ।
तस्मात्सर्वमभूद्‌वा मत्तश्चाप्यभवत्पुनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वागब्रवीच्च माम् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूंगा-यह कह कर मेरे द्वारा ही उत्पादक पुरुष के सूक्त के द्वारा देवो के भी देव भगवान् जनार्दन की स्तुति किये जाने पर वह मुझसे बोली थी—हे ब्रह्मन् ! आप मुझको पशु बना लो । उसी समय मे मेरे अनक अव्यय पुरुष को जानकर उसने ऐसा कहा था ॥४२-४३॥ कालयूप के पार्श्व मे गुण रूपी पाशो से निवेशित उसको आगे जाते और वहाँ स्थित पुरुष को मैंने प्रोक्षण किया था ॥४४॥ इसी बीच मे वहा पर उससे यह सब हुआ था ब्राह्मण उसके मुख और क्षत्रिय बाहु दोनो हो गये थे । मुख से इन्द्र तथा अग्नि और प्राण से श्वसनस्वायु हो गये । श्रोत्र से सब दिशाएँ और उसी समय मे शिर से सम्पूर्ण स्वर्ग हो गया था ॥४५-४६॥ मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था-चक्षु से सूर्यदेव की उत्पत्ति हो गई थी । नाभि से अन्तरिक्ष और ऊरुओ से वैश्य समुत्पन्न हुए थे ॥४७॥ चरणो से शूद्र उत्पन्न हुआ था तथा भूमि हुई थी । रोमो के छिद्रो से ऋषिगण उद्भूत हुए थे और केशो से ओषधियो का उद्भव हुआ था ॥४८॥ ग्राम मे रहने वाले तथा जगलो मे वास करने वाले पशुगण सब नखो से हुए थे । कृमि-कीट और पतङ्ग आदि क्षुद्र शरीर धारी प्राणी उस महा पुरुष के पायु तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय से समुत्पन्न हुए थे ॥४९॥ स्थावर और जङ्गम-दृश्य (देखने के योग्य) और अदृश्य जो कुछ भी इस विश्व मे है वह सब उसी से हुआ

था और फिर देवगण मुझसे हुए थे । इसी बीच में फिर वही भगवान् विष्णु की वाणी ने मुझसे कहा था ।।५०।।

सर्वं सपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तथेप्मिता ।
इदानीं जुहुधि ह्यग्नौ पात्राणि च समाति च ।।५१
विसर्जय तथा यूप प्रणीता च कुशास्तथा ।
ऋत्विग्रूप यज्ञरूपमुद्देश्य ध्येयमेव च ।।५२
स्रुव च पुरुष पाशान्तत्र ब्रह्मान्विसर्जय ।।५३
तद्वाक्यसमकाल तु क्रमशो यज्ञयोनिषु ।
गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ तथा चैव महामुने ।।५४
पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नौ क्रमशो जुह्वतस्तदा ।
तत्र तत्र जगद्योनिमनुसधाय पुरुषम् ।।५५
मन्त्रपूत शुचि. सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मय. ।
लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डाना तत्र सनिधौ ।।५६

आकाशवाणी ने कहा—सर्व सम्पूर्ण हो गया है तथा जो अभीप्सित सृष्टि थी वह उत्पन्न हो गई है । अब आप आहुतियाँ दीजिए और अग्नि मे हुवन करो । पात्रो को और समो को विसर्जित कर दो तथा हे ब्रह्मन् ! यूप-प्रणीता-कुशा-ऋत्विग् रूप- यज्ञरूप-उद्देश्य-ध्येय-स्रुव-पुरुष-पाश इन सबको त्याग दो ।।५१-५३।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनके इस वाक्य समकाल मे ही क्रम से यज्ञ योनियो मे हे महामुने ! गार्हपत्य अग्नि मे, दक्षिणाग्नि मे और पूर्व मे स्थित अग्नि मे भी उसी समय मे वहाँ वहाँ पर जगत् की योनि पुरुष का अनुसन्धान करके हुवन मे हुवन कर रहा था । मन्त्रो से पवित्र-भली भाँति शुचि-जगन्मय यज्ञ देव लोकनाथ और विश्व के कर्त्ता वहाँ पर कुण्डो की सन्निधि मे थे ।।५४-५६।।

शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके ।
श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्ने: पीतो गृहपतेः कवे. ।।५७
सर्वकाल तेषु विष्णुरत्तो देशेषु सस्थितः ।
न तेन सहित किंचिद्विष्णुना विश्वयोनिना ।।५८

प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं ततः ।
प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९
व्यसर्जयं प्रणीतां तां मार्जयित्वा कुशैरपं ।
मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदबिन्दवः ॥६०
पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च ।
सजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१
याऽलङ्कृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा ।
सोपानपङ्क्तिः सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२
समार्जिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे ।
कुशतर्पणमाख्यातं बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३

शुक्ल स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु थे । आह्वनीय अग्नि में थे वह श्याम वर्ण वाले विष्णु विद्यमान थे और गृहपति कवि के दक्षिणाग्नि में पीत वर्ण वाले विष्णु थे ॥५७॥ सब काल में उनमें भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं अतएव सर्वत्र देवों में वह विद्यमान हैं । इस विश्व की योनि भगवान् विष्णु से रहित कुछ भी नहीं है ॥५८॥ फिर प्रणीता का प्रणयन मन्त्रों के द्वारा मैंने किया था । यह प्रणीतोदक भी प्रणीता नाम वाली शुभ नदी है ॥५९॥ कुशों से मार्जन करके उस प्रणीता को मैंने विसर्जित किया था । मार्जन के किये जाने पर प्रणीता से जल की बूँदें जहाँ पर गिरी थी वहाँ पर बड़े गुणों से युक्त तीर्थ हुए थे । हे मुनिशार्दूल ! केवल स्नान करने से क्रतु का फल प्रदान करने वाली तथा जो सर्वदा देवों के देव शार्ङ्गधारी के द्वारा जो अलङ्कृता है वह वैकुण्ठलोक में सबके समारोहण करने के लिये सोपानों (सीढ़ियों) की पंक्ति है ॥६०-६२॥ जिस जगह इस शुभ भूतल में समार्जित कुशाएँ गिरी थीं वह तीर्थ कुश तर्पण नाम से विख्यात हो गया है जो अत्यधिक पुण्य-फल प्रदान करने वाला है ॥६३॥

कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते ।
पश्चाच्च सगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४

प्रणीतायां महाबुद्धे प्रणीतासंगमोऽभवत् ।
कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५
तत्रैव कल्पितो यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे ।
विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६
अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ वटोऽभवत् ।
नित्यश्च कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः ॥६७
मद्देवयजनं चेद दण्डकारण्यमुच्यते ।
सपूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादितः ॥६८
यो विराडुच्यते वेदे यस्मान्मूर्तमजायत ।
यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येदं विकृतं जगत् ॥६९
तमहं देवदेवेशमभिवन्द्य व्यसर्जयम् ।
योजनानि चतुर्विशन्मद्देवयजनं शुभम् ॥७०

उन कुशों के द्वारा सब तर्पित हो गये थे अतएव वह "कुश तर्पण"–इस नाम से कहा जाता है । इसके पीछे किसी अन्य कारण से वहाँ पर गौतमी भी सगता हो गयी थी । हे महाबुद्धि वाले ! वह गौतमी प्रणीता में मिल गयी थी और वहाँ पर प्रणीता सगम हो गया था । जो कुश तर्पण देश था वहाँ पर वह तीर्थ ही कुश तर्पण नाम वाला था ॥६४-६५॥ वहीं पर विन्ध्यगिरि के उत्तरी भाग में मेरे द्वारा यूप की कल्पना की गयी थी । यह लोक पूज्य विसृष्ट किया था जो भगवान् विष्णु का समाश्रय था । यह नित्य कालरूप था जो कि केवल स्मरण से ही क्रतु करने के पुण्य फल को प्रदान करने वाला है ॥६७॥ यह मेरे द्वारा देवों का यजन जहाँ किया गया था वह स्थल दण्डकारण्य कहा जाता है । क्रतु के साङ्ग सम्पूर्ण हो जाने पर मेरे द्वारा भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु प्रसादित हुए थे ॥६८॥ जो वेद में विराट् स्वरूप वाले कहे जाया करते हैं और जिससे मूर्त्त की उत्पत्ति हुई थी और जिससे मेरी उत्पत्ति हुई थी तथा जिसका ही यह विकृत जगत् है अर्थात् विकार युक्त यह सम्पूर्ण जगत् उसी का स्वरूप दिखाई देता है ॥६९॥ उन देव

देवेश्वर की वन्दना करके मैंने उनको विसर्जित किया। वह मेरे द्वारा किये गये देव यजन का शुभ स्थल चौबीस योजन पर्यन्त है ॥७०॥

तस्माद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद ।
यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिनः ॥७१
ततः प्रभृति चाऽऽख्यात मद्देवयजन च तत् ।
तत्रस्थ· कृमिकीटादि: सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम् ॥७२
धर्मबीज मुक्तिबीज दण्डकारण्यमुच्यते ।
विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत् ॥७३
प्रणीतसगमे चापि कुशतर्पण एव वा ।
स्नानदानादि य: कुर्यात्स गच्छेत्परम पदम् ॥७४
स्मरण पठन वाऽपि श्रवणं चापि भक्तितः ।
सर्वकामप्रदं पुंसा भुक्तिमुक्तिप्रदं विदुः ॥७५
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ।
षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोदितम् ॥७६
वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम् ।
नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७
ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम् ।
तीर्थमेतन्मुने प्रोक्तं स्वर्गद्वार महीतले ॥७८

हे नारद ! अतएव आज तक भी वहा पर तीन कुण्ड हैं और वे चक्रपाणि भगवान् विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप हैं ॥७१॥ तभी से लेकर वह मद्देव यजन समाख्यात हो गया है। वहाँ पर स्थित कृमि कीट प्रभृति कोई भी हो वह भी अन्त मे मुक्ति का पात्र हो जाया करता है ॥७२॥ धर्म का बीज और मुक्ति का बीज दण्डकारण्य कहा जाता है। विशेष रूप से गौतमी से श्लिष्ट जो देश है वह अधिक पुण्यतम हो गया था ॥७३॥ प्रणीता के सगम मे अथवा कुश तर्पण मे जो कोई स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥७४॥ इनका स्मरण-अध्ययन-श्रवण भी यदि भक्ति की भावना से किया जाता है तो पुरुषों के समस्त मनोरथों का प्रदान करने वाला तथा भुक्ति एव मुक्ति

के देने वाला होता है ऐसा जाना जाता है ॥७५॥ वहाँ दोनो तटों पर मनीषी गण छयासी हजार तीर्थ कहते हैं उनमे जो पुण्य होता है वह पहिले ही कह दिया गया है ॥७६॥ हे मुने ! वारणसी से भी कुश तर्पण उत्तम होता है। इस चराचर जगत् मे इस तीर्थ के सदृश अन्य कोई भी नही है ॥७७॥ ब्रह्महत्या आदि पापो का विनाश इस तीर्थ के केवल स्मरण से ही हो जाता है। हे मुने ! महीतल मे इस तीर्थ को स्वर्ग का द्वार कहा गया है ॥७८॥

—:※—

मन्युतीर्थवर्णन

मन्युतीर्थमिति ख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वकामप्रद नृणा स्मरणादघनाशनम् ॥१
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने ।
देवाना दानवाना च सगरोऽभून्मिथः पुरा ॥२
तत्राजयन्न वै सुरा दानवा जयिनोऽभवन् ।
पराङ्मुखाः सुरगणाः सगराद्गतचेतसः ॥३
मामभ्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम् ।
तानहं प्रत्यवोचं वै गङ्गा गच्छत सर्वशः ॥४
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम् ।
अनपायनिरायासहजानन्दसुन्दरम् ॥५
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहेतुर्महेश्वरात् ।
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तथाऽपरे ।
अस्नापयश्च केचिद्वापूजयश्च तथाऽपरे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—मन्युतीर्थ—इस नाम से एक महान् तीर्थ है जो समस्त पापो का विनाश करने वाला है। वह तीर्थ मनुष्यो की सब

कामना को पूर्ण करने वाला तथा केवल स्मरण करने से अघों का विनाशक है ॥१॥ हे मुनिवर ! मैं अब उस तीर्थ के प्रभाव को बतलाता हूँ आप परम सावधान होकर श्रवण कीजिए। प्राचीन समय मे देवों का और दानवो का परस्पर मे महान् युद्ध हुआ ॥२॥ उस युद्ध में सुरगण की विजय नही हुई थी और दानव विजयी हो गये थे। सुरगण युद्ध से पराङ्मुख होकर चेतना शून्य हो गये थे ॥३॥ वे फिर मेरे पास उपस्थित होकर बोले थे कि हमको अभय शरण प्रदान कीजिए। उनसे मैंने कहा था कि आप सब लोग गङ्गा पर चले जाइये ॥४॥ वहाँ पर गौतमी के तीर पर महेश्वर देव का स्तवन करो जो बिना किसी विघ्न और आयास के सहज रूप से आनन्द स्वरूप एवं परम सुन्दर हैं ॥५॥ समस्त विबुधगण महेश्वर भगवान् से ही विजय का हेतु प्राप्त कर लेंगे। ऐसा ही करेंगे—यह कह कर सब सुरगणो ने महेश्वर प्रभु की स्तुति की थी ॥६॥ उनमे से कुछ देवो ने तप किया था—कुछ नृत्य करने लगे—दूसरे कुछ ने शिव का स्नपन कराया था—तथा कतिपय देवगण ने महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन किया था ॥७॥

ततः प्रसन्नो भगवाञ्छूलपाणिर्महेश्वरः ।
देवानथाब्रवीत्तुष्टो व्रियतां यदभीप्सितम् ॥८
देवा ऊचुः सुरपति विजयार्थं ददस्व नः ।
पुरुष परमश्लाघ्यं रणेषु पुरतः स्थितम् ॥९
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम् ।
तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वरः ॥१०
आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितं परमेष्ठिना ।
मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११
तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम् ।
मन्युना सह चाभेत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ॥१२
युद्धे स्थित्वा तु दनुजैर्दैतेयैश्च महाबलैः ।
विबुधा जातसन्नद्धा मन्युमूचुः पुरःस्थिताः ॥१३

इसके पश्चात् भगवान् महेश्वर शूलपाणि प्रसन्न हो गये थे और परम सन्तुष्ट होकर उन्होंने देवगण से कहा था कि जो भी तुम्हारा अभीष्ट वरदान हो वह मुझसे प्राप्त कर लो ॥८॥ देवो ने उस समय मे सुरपति से कहा था कि हमको रण मे सामने स्थित शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये परम श्लाघा करने के योग्य पुरुषार्थ अर्थ विक्रम प्रदान कीजिए ॥९॥ जिस बाहूबल का आश्रय ग्रहण करके हम सुखी हो जावे । महेश्वर भगवान् ने उसी समय मे ऐसा ही होगा—यह देवो से कह दिया था ॥१०॥ अपने आत्म तेज के द्वारा परमेष्ठी प्रभु ने किसी का निर्माण किया था । वह अत्यन्त उग्र मन्यु नाम वाला था जो देवो की सेना के आगे गमन करने वाला था ॥११॥ सब देवो ने उसको नमस्कार किया था और फिर महेश्वर को प्रणाम किया था और उस मन्यु के साथ अपने निवास स्थान पर आकर पुनः युद्ध के लिये खडे हो गये थे ॥१२॥ महान् बली दैत्य और दनुजो के साथ युद्ध मे स्थित होकर देवगण जातसन्नद्ध अर्थात् तैयार होकर आगे स्थित होते हुए मन्यु से बोले ॥१३॥

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परैः ।
तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मान मन्योऽस्माक युयुत्सताम् ॥१४
तद्देववचन श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव ।.१५
जनिता मम देवेशः सवज्ञः सर्वदेवप्रभुः ।
यः सर्वं वेत्ति सर्वेषा धामनाम मन.स्थितम् ॥१६
नैव कश्चिन्न त वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा ।
अमूर्तं मूर्तमप्येतद्वेत्ति कर्ता जगन्मयः ॥१७
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तथा दिव्यन्तरिक्षगः ।
यस्तस्य रूप या वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८
एव विधादह जातो मा कथ वेत्तुमर्हथ ।
अथवा द्रष्टुकामा वै भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९
इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यू रूप स्वकं महत् ।
सर्वायचक्षुपोद्भूव भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०

तेजसा सभृत रूप यतः सर्वं तदुच्यते ।
पौरुष पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१

देवो ने कहा—हम लोग शत्रुओ के साथ युद्ध करेंगे और पीछे आपकी शक्ति को देखते हैं । इससे हे मन्यो ! युद्ध करने की इच्छा वाले हमको अपनी आत्मा अर्थात् स्वरूप दिखलाइये ॥१४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवो के उस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए मन्यु ने कहा—मन्यु बोला-मुझे समुत्पन्न करने वाले देवेश्वर सर्वज्ञ और सबको देखने वाले प्रभु हैं वे ही सब का धाम-नाम और मन की स्थिति को जानते हैं ॥१५-१६॥ और उनको कोई भी नही जानते हैं । सबके कर्त्ता और जगन्मय ने मूर्त्त और अमूर्त्त को भी जानता है ॥१७॥ यह सबसे पर साक्षात् भगवान् हैं तथा दिवलोक और अन्तरिक्ष मे गमन करने वाले हैं । जो उसके रूप को जानता हो ऐसा कौन है ? वह जगन्मय किसका करने वाला है ? इस प्रकार वाले उनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । मुझको आप कैसे जान सकने के योग्य होते हैं । अथवा आप देखने की इच्छा वाले हैं तो मुझको देखिये ॥१८-१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना कहकर उस मन्यु ने अपना महान् स्वरूप दिखलाया था । वह परमेष्ठी भव (शिव) के तीसरे नेत्र से उद्भूत था । वह नेत्र से सहित रूप था जिससे सब कुछ होता है । वही बतलाया जाता है । पौरुष पुरुषो मे ही होता है और अहङ्कार सब जन्तुओ में हुआ करता है॥२०-२१॥

क्रोध सर्वस्य यो भीम उपसहारकृद्भवेत् ।
स शङ्करप्रतिनिधि ज्वलन्त निजतेजसा ॥२२

सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता. ।
वित्रेसुर्दैत्यमनुजा. कृताञ्जलिपुटा सुरा. ॥२३

भूत्वा मन्युमथोचुस्ते त्व सेनानी- प्रभो भव ।
त्वयः दत्तमिद राज्य मन्यो भोक्ष्यामहे वयम् ॥२४

तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्वं जयवर्धन. ।
त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५

अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्वं जयाय वै ।
मन्युः प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किंचन ॥२६
सर्वेष्वन्तः प्रविष्टोऽहं न मां जानाति कश्चन ।
स एव भगवान्मन्युस्ततो जातः पृथक्पृथक् ॥२७
स एव रुद्ररूपी स्याद्रुद्रो मन्युः शिवोऽभवत् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं व्याप्तं हि मन्युना ॥२८

भगवान् शिव का जो अत्यन्त भीषण क्रोध है वही उपसंहार के करने वाला है। अपने तेज से जाज्वल्यमान-भगवान् शङ्कर का प्रतिनिधि-समस्त आयुधो के धारण करने वाले उसको देखकर सब देवो ने उसको प्रणाम किया था। दैत्य और मनुष्य सब भयभीत हो गये थे तथा देवगण हाथो को जोड़कर खडे हुए थे ॥२२-२३॥ उन देवो ने कर-बद्ध होकर मन्यु से प्रार्थना की थी- हे प्रभो ! आप ही हमारे सेनानी अर्थात् सेनाध्यक्ष होइये। हे मन्यो ! आपके ही द्वारा प्रदान किये हुए इस राज्य का हम उपभोग करेंगे ॥२४॥ आप जय के वर्धन करने वाले जेता हैं और सभी कर्मों मे आपकी विजय होती है। आप ही इन्द्र हैं-आप वरुण हैं और आप लोकपाल भी हैं ॥२५॥ हम समस्त देवो मे विजय प्राप्त करने के लिये आप प्रवेश कीजिए। मन्यु ने उस देवगणो से कहा था कि मेरे बिना तो जगत् मे कुछ भी नही है ॥२६॥ सबके अन्दर मैं प्रविष्ट हो रहा हूं और मुझको कोई भी नही जानता है। वह ही भगवान् मन्यु हैं। फिर वह पृथक् २ उत्पन्न हुए हैं वह ही रुद्र के रूप वाले रुद्र हैं और वही मन्यु शिव हो गये थे। मन्यु के द्वारा स्थावर और जङ्गम सभी प्राप्त है ॥२७-२८॥

तमवाप्य सुराः सर्वे जयमापुश्च सगरे ।
जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेजःसमुद्भवम् ॥२९
मन्युना जयमाप्याथ कृत्वा दैत्यैश्च सगमम् ।
यथागतं ययुः सर्वे मन्युना परिरक्षिताः ॥३०
यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुराः ।
मन्युमापुर्जयं चैव मन्युतीर्थं तदुच्यते ॥३१

उत्पत्तिं च तथा मन्योर्यो नरः प्रयतः स्मरेत् ।
विजयो जायते तस्य न कैश्चित्परिभूयते ॥३२

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने ।
यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शङ्करः स्थिरः ॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३

उस मन्यु की प्राप्ति करके सब देवों ने युद्ध मे विजय प्राप्त की थी। जय, मन्यु और-शौर्य भगवान् ईश के तेज से समुद्भूत था ॥२९॥ मन्यु के द्वारा विजय की प्राप्ति करके दैत्यों के साथ सङ्गम करके मन्यु के द्वारा परिरक्षित होते हुए जिस रीति से समागत हुए थे चले गये ॥३०॥ जहां पर गौतमी के तट पर उन सुरोंने भगवान् शिवजी की समाराधना की थी और मन्यु का लाभ किया था वही मन्यु तीर्थ कहा जाता है ॥३१॥ इस मन्यु की उत्पत्ति को जो कोई पुरुष प्रयत होकर स्मरण करता है उसका निश्चय ही विजय होता है और उसका अभिभव (तिरस्कार) किसी के द्वारा भी नही किया जा सकता है ॥३२ ॥ हे महामुने ! इस मन्यु तीर्थ के समान पावन कोई भी तीर्थ नही है जहा पर सर्वदा मन्यु के स्वरूप को धारण करने वाले साक्षात् भगवान् शङ्कर विद्यमान रहा करते हैं। वहा पर स्नान करना तथा दान देना एवं स्मरण करना सब मनोरथो को देने वाला होता है ॥३३॥

—*—

भद्रतीर्थवर्णन

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् ।
सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता ।
छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२

तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी ।
तां कन्यां सविता कस्मै ददामीति मतिं दधे ॥३
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः ।
तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५
बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरूपिणे ।
स कृतार्थो भवेल्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६
चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः ।
तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यः प्रयत्नतः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भद्र तीर्थ-इस नाम से एक महान् तीर्थ कहा गया है जो सभी अनिष्टो के निवारण करने वाला है—सब पापो के प्रशमन करने वाला और महती शान्ति के प्रदान करने वाला है ॥१॥ आदित्य देव की परम प्रिया भार्या उषा-त्वाष्ट्री पतिव्रता थी । छाया भी सविता देवकी भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर हुआ था ॥२॥ उसकी बहिन विष्टि थी जो अत्यन्त भीषण और पापो के स्वरूप वाली थी । सविता ने उस कन्या को किसी को दूँ—ऐसी बुद्धि की थी अर्थात् विचार किया था ॥३॥ लोको का गुरु प्रभु सूर्य देव जिस-किसी के लिये देने की इच्छा वाले हो गये थे । जो भी कोई यह सुनता था कि वह तो बहुत भीषण है तो यही कह देते थे कि इस भार्या का क्या करेंगे ॥४॥ ऐसी अवस्था होने पर वह विष्टि अत्यन्त दुःखित होकर अपने पिता से बोली ॥५॥ विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला ही कन्या को किसी सुन्दर रूप वाले वर को दे दिया करता है वही पिता लोक मे कृतार्थ हो जाया करता है अन्यथा अर्थात् ऐसा न करने पर पिता पाप का भागी हो जाता है ॥६॥ चौथे वर्ष से ऊपर जब तक दशवाँ वर्ष पूर्ण न हो तभी तक पिता को कन्या का विवाह प्रयत्न पूर्वक कर देना चाहिए ॥७॥

श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने ।
उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८

एतन्नेदन्यथा कुर्यात्पिता स निरयी सदा ।
धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९
नरकस्यैव मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् ।
एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥१०
स्वलङ्कृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता ।
विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गा तिलानपि ॥११
न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् ।
विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२
तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते ।
यावल्लज्जां न जानाति यावत्क्रीडति पांशुभिः ॥१३
तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरधोगतिः ।
पितुः स्वरूपं पुनः स्याद्यः पिता पुत्र एव सः ॥१४

अपनी कन्या को किसी श्री सम्पन्न युवा को जो विद्वान् कुलीन उदार-मनाय तथा यशस्वी हो उसी वर को देनी चाहिए ॥८॥ जो इस विधान के विपरीत यदि कोई भी कन्या का पिता किया करता है वह पिता सदा निरयी होता है। हे भास्कर! विद्वानों की भी कन्या एक धर्म का साधन होती है ॥९॥ काम से उपहृत चित्त वाले मूर्खों को नरक के ही समान है। एक ओर तो शैलवन और कानन से संयुत सम्पूर्ण पृथ्वी है और दूसरी ओर सुन्दर अलङ्कारों से भूषित उपाधियों से हीन सुन्दर कन्या होती है ऐसा कहा गया है। जो कन्या को बेचता है अश्व और गौ तथा तिलों को बेचता है ॥१०-११॥ उसकी रौरव आदि नरकों से कभी भी निष्कृति नहीं होती है। कन्या के विवाह के समय का अतिक्रम कभी भी भूल कर नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ठीक समय पर ही कन्या का विवाह अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१२॥ उस कन्या के विवाह के अतिक्रम करने पर जो पिता को महान् पाप होता है वह किसके द्वारा वर्णन किया जा सकता है अर्थात् उस पाप को कोई भी बतला नहीं सकता है। जब तक कन्या लज्जा का ज्ञान नहीं प्राप्त किया करती है और जिस समय तक वह बालभाव से धूलि

में क्रीडा किया करती है तभी तक कन्या का किसी योग्य वर के लिये प्रदान कर देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो माता-पिता की अधोगति हुआ करती है। पुत्र पिता का ही एक स्वरूप होता है और जो पिता होता है वही पुत्र है ॥१३-१४॥

आत्मनः सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च ।
यत्कन्याया पिता कुर्याद्दान पूजनमीक्षणम् ॥१५
यत्कृत तत्कृ न विद्यात्तासु दत्त तदक्षयम् ।
यद्दत्त तासु कन्यासु तदानन्त्याय कल्पते ॥१६
पुत्रपु चैव पौत्रेपु को न कुर्यात्सुख रवे ।
करोति य कन्यकाना स सपद्भाजन भवेत् ॥१७
एव ता वादिनी कन्या विष्टि प्रोवाच भास्कर. ॥१८
किं करोमि न गृह्णाति त्वा कश्चिद्भीषणाकृतिम् ।
कुल रूप वयो वित्त विद्या वृत्त सुशीलताम् ॥१९
मिथ पश्यन्ति सबन्धे विवाहे स्त्रीपु पुसु च ।
अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणे. शुभे ॥
किं करोमि क दास्यामि वृथा मा धिकरोपि किम् ॥२०

आत्मा के सुख को लोक मे किसको नही करना चाहिए और कौन नही किया करता है । कन्या के विषय मे पिता को दान-पूजन और ईक्षण करना चाहिए। जो भी किया गया है उसको किया हुआ समझना चाहिए। उनके विषय मे अर्थात् कन्याओं के सम्बन्ध मे जो भी दिया गया है वह अक्षय होता है । कन्याओ के लिये जो भी दिया गया है वह अनन्तता का प्राप्त हो जाया करता है ॥१५-१६॥ हे रवे ! अपने पुत्रों के लिये और पौत्रो के लिये तो कौन मनुष्य है जो सुख के साधन नही जुटाता है ? जो अपनी कन्याओ के लिये सुख के साधन किया करता है वही वास्तव में सम्पदाओ का पात्र तथा अधिकारी हुआ करता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से कहने वाली अपनी कन्या विष्टि से भगवान् भास्कर ने कहा ॥१८॥ सूर्यदेव ने कहा—मैं क्या करूँ तुम ऐसी भीषण आकृति वाली हो कि तुमको कोई भी ग्रहण

नही करता है मैं इस में क्या करूँ ? स्त्री और पुरुष के विवाहों में और सम्बन्ध करने के समय में परस्पर रूप, कुल, वय, धन, विद्या, चरित्र और सुशीलता को देखा करते हैं। हे शुभे ! हमारे अन्दर अन्य तो सभी बातें हैं केवल तुम्हारे अन्दर जो गुण होने चाहिए वे ही नहीं हैं। मैं अब क्या करूँ ? कहाँ पर तुम्हारा दान करूँ ? तुम वृथा ही मुझको क्यों धिक्कार रही हो ? ॥१९-२०॥

एवमुक्त्वा पुनस्तां च विष्टिं प्रोवाच भास्करः ॥२१
यस्मै कस्मै च दातव्या त्वं वै यद्यनुमन्यसे।
दीयसेऽद्य मया विष्टे अनुजानीहि मां ततः ॥२२
पितरं प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धनं सुखम्।
आयू रूपं च सप्रीतिर्जायते प्राक्तनानुगम् ॥२३
यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्वसाधु वा।
फलं तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवान्तरे ॥२४
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात्।
तादृगेव फलं तु स्याद्यादृगाचरितं पुरा ॥२५
यस्मात्तद्दानसंबन्धं स्ववशानुगतं पिता।
करोति शेषं दैवेन यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥२६
तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं त्वष्ट्रे पुत्राय भीषणाम्।
विश्वरूपाय तां प्रादाद्विष्टिं लोकभयकरीम् ॥२७
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः।
एवं मिथः सचरतो शीलरूपसमानयोः ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कह कर पुनः उस वृष्टि अपनी कन्या से भास्कर देव ने कहा था ॥२१॥ सूर्य देव ने कहा—यदि तुम इस बात को स्वीकार करो कि मैं जिस किसी को तुम्हारा दान कर दूँ तो हे विष्टे ! मेरे द्वारा आज ही तुम्हारा दान दिया जाता है मुझको अपनी अनुमति प्रदान कर दो तो मैं ऐसा अभी किये देता हूँ कि जो भी कोई तुमको ग्रहण कर लेवे उसे तुमको देदूँ ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह विष्टि अपने पिता से बोली थी कि भर्त्ता, पुत्र, धन सुख,

आयु, रूप और भली प्रीति ये सब पूर्व के शरीर द्वारा किये हुए कर्म्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं ॥२३॥ प्रानी के द्वारा जो भी कुछ पहिले जन्मों मे भला-बुरा कर्म किया है उसी के अनुसार दूसरे जन्म मे फल प्राप्त किया जाता है ॥२४॥ उसके पिता के द्वारा आदर से अपना दोष ही दूर करना चाहिए। फल तो वैसा ही होता है जैसा पहिले आचरण किया है ॥२५॥ इसलिये कन्या के पिता को दान और सम्बन्ध को अपने वश-क्रमानुगत करना चाहिए। शेष दैव के द्वारा जो होनहार होता है वही होगा ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह अपनी पुत्री के वचन सुन कर सूर्य देव ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के लिये उस अत्यन्त भीषण और लोको को भय देने वाली विष्टि को दे दिया था ॥२७॥ वह विश्वरूप भी उसी के समान भीषण आकृति वाला अत्यन्त भीषण था। इस प्रकार से परस्पर मे दोनो ही शील एव स्वरूप मे समान होते हुए सचरण करने वाले थे ॥२८॥

प्रीतिः कदाचिद्दंपत्य दपत्योरभवन्मिथः।
गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यतिगंडस्तथैव च ॥२९
रक्ताक्षः क्रोधनश्चैव व्ययो दुर्मुख एव च।
तेभ्यः कनीयानभयद्धर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०
सुतः सुशीलः सुभगः शान्तः शुद्धमति शुचिः।
स कदाचिद्यमगृहं द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वर्गस्थानिव दुःखिनः।
स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्मं सनातनम् ॥३२
क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥ ३
एव पृष्टो धर्मराजः सर्वं प्राह यथार्थवत्।
तत्कर्मणा गतिं सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४
विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम्।
न ते पश्यन्ति निरय कदाचिदपि मानवाः ॥३५
न मानयन्ति ये शास्त्र नाऽऽचारं न बहुश्रुतान्।
विहितातिक्रमं कुर्युर्ये ते नरकगामिनः ॥३६

उन दोनो दम्पति मे किसी समय मे तो परस्पर मे प्रीति होती थी और किसी समय मे विषमता हो जाया करती थी। उन दोनो से गण्ड-अतिगण्ड रक्ताक्ष-क्रोधन व्यय और दुर्मुख ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे उन सबसे छोटा पुण्यात्मा हर्षण पुत्र हुआ था ॥२६-३०॥ यह सुत परम सुशील सुभग शान्त शुद्धिमति शुचि था। उसने एक बार यमराज के घर मे मातुल को देखने के लिये गमन किया था ॥३१॥ उसने वहा पर बहुत से जन्तुओ को स्वर्ग मे स्थितो की तरह अत्यन्त दुःखित हुए देखा था। उसने सनातन धर्म को नमस्कार करके अपने मातुल से पूछा था ॥३२॥ हर्षण ने कहा—हे तात ! ये सुखी लोग कौन हैं और जो नरको मे यातनाएँ सह रहे हैं ये कौन हैं ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये धर्मराज ने जो यथार्थ बातें थी वे सब बतलादी थीं। उनके किये हुए कर्मों की जो गति थी वह सम्पूर्ण पूर्णतया समझा दी थी ॥ ३४॥ यमराज ने कहा—जो लोग शास्त्र मे विहित कर्म का कभी भी उल्लङ्घन नही करते हैं वह मनुष्य कभी भी नरको के मुख को नही देखा करते हैं। जो न तो शास्त्रो को ही मानते हैं—न आचार की परवाह किया करते हैं और न बहुश्रुत लोगो का ही समादर करते हैं तथा सर्वदा शास्त्र विहित कर्मों का अतिक्रमण करते हैं, वे ही पुरुष नरक गामी हुआ करते हैं ॥३५-३६॥

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षण. पुनरब्रवीत् ॥३७
पिता त्वाष्ट्रो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा ।
भ्रातरश्चमहात्मनो येन ते शान्त बुद्धय. ॥३८
सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदाः ।
तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्त्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९
अन्यथा ताश्च गच्छेयमित्युक्तः प्राह धर्मराट् ।
हर्षण शुद्धिबुद्धि त हर्षणोऽसि न सशयः ॥४०
बहवः स्युः सुताः केचित्सर्वे च ते कुलतन्तवः ।
एक एव सुतः कश्चिद्येन तद्ध्रियते कुलम् ॥४१

कुलस्याऽऽधारभूतो यो यः पित्रोः प्रियकारकः ।
य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह हर्षण धर्मराज के इस वचन को सुनकर फिर उससे बोला ॥ ७॥ हर्षण ने कहा—मेरे पिता त्वाष्ट्र महान् भीषण हैं और मेरी विष्टि माता भी अत्यन्त भीषण है और भाई लोग महात्मा हैं जिससे वे शान्त बुद्धिवाले हैं ॥३८॥ सुरूप-निर्दोष और मङ्गल प्रद हो जायेंगे। इसलिये आज हे सुरोत्तम ! मुझे कोई कर्म बतलाइये वही मैं करूंगा ॥३९॥ मैं उनके अन्यथा नही जाऊंगा। इस प्रकार से कहे गये धर्मराज ने उस शुद्ध बुद्धि वाले हर्षण से कहा था कि तुम हर्षण हो— इसमे कुछ भी संशय नही है ॥४०॥ बहुत अधिक संख्या वाले पुत्र हुआ करते हैं किन्तु वे अधिक पुत्र कुल के तन्तु नही हुआ करते हैं ऐसी बढी हुई पुत्रो की संख्या से क्या लाभ है। एक ही कोई ऐसा पुत्र हुआ करता है जिससे उस कुल की रक्षा की जाया करती है ॥४१॥ जो कुल का आधार भूत होता है और माता-पिता का प्रिय कर्म करने वाला होता है तथा अपने पूर्वजो का उद्धार किया करता है वही वस्तुत. पुत्र है और जो ऐसा नहीं है वह पुत्र नही किन्तु गद ही होता है ॥४२॥

यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम् ।
तस्मात्त्व गौतमी गच्छ स्नात्वा नियतमानस. ॥४३
स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा ।
स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्ट प्रदास्यति ॥४४
इति श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्षणो गौतमी ययौ ।
शुचिस्तुष्टाव देवेश हरिं प्रीतोऽभवद्धरिः ॥४५
हर्षणाय ततः प्रादात्कुलभद्र ततस्तु स ।
सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वक भद्रमस्तु ते ॥४६
तद्दृष्ट्वा प्रोच्यते विष्टि, पिता भद्रस्तथा सुता,
ततः प्रभृति तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७

तत्रर्त्विज. षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोगमा· ।
क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथ भवेत् ॥३
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा नुत्र दास्यति यज्ञियाम् ।
भूपतौ दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचने ॥४
याच्ञेयमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी ।
केनाप्यतो न कार्यैव क्षत्रियेण विशेषत ॥५
एव मीमासमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम् ।
तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भानुतीर्थ इस नाम से एव त्वाष्ट्र माहेश्वर-ऐन्द्र-याम्य तथा आग्नेय नाम से विख्यात है जो समस्त पापो के विनाश करने वाला है ॥१॥ "अभिष्टुन–" इस नाम से विख्यात प्रिय दर्शन एक राजा था । उस राजा ने परम पुण्य अश्वमेध यज्ञ के द्वारा सुरो का यजन करना आरम्भ किया था ॥२॥ उस यज्ञ मे सोलह ऋत्विज थे जो कि ऐसे थे जिनमे वसिष्ठ और अत्रि जैसे महामुनीन्द्र अग्रगामी थे । एक क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञ भूमि कैसे होवे ॥३॥ ब्राह्मण के दीक्षित होने पर यज्ञिय भूमि को राजा देगा । जब भूपति ही दीक्षित होवे तो ऐसा होने पर कौन दाता होगा और कौन याचना करता है ॥४॥ यह जो याचना है वह पूर्ण रूप से अकल्याण के जनन करने वाली और पाप रूपिणी होती है । अतएव इस याचना को तो किसी को भी कभी नही करना चाहिए और विशेष रूप से क्षत्रिय के द्वारा तो कभी की ही नही जानी चाहिए ॥५॥ इस प्रकार से ब्राह्मणो के मीमासा करने पर जो कि परस्पर मे विचार कर रहे थे वहां पर महान् पण्डित धर्म के वेत्ताओ मे परम ज्ञाता एव श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने कहा ॥६॥

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्यो याच्यो भुव प्रति ।
देहि मे देव सवितर्यजन देवनार्चितम् ॥७
देव क्षत्रमसि ब्रह्मन्भूतनाथ नमोऽस्तु ते ।
याचित. सविता राज्ञा देवाना यजन शुभम् ॥८

ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेश दिवाकरम् ॥९
तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेव दिवाकरम् ।
श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मक रविम् ॥१०
देवाना यजन देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११
क्षत्र देव यतः सूर्यो दत्ता भूर्भूपतेस्ततः ।
सविता देवदेवेशो ददामीत्यभ्यभाषत ॥१२
एव करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिन काचन ।
तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१३
प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यत्रागाद्भूपति रविः ।
देवाना यजन दातु भानुतीर्थ तदुच्यते ॥१४

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर भू की याचना सूर्य्य देव से ही करनी चाहिए। और इस तरह से कहना चाहिए कि हे सवितादेव ! मुझको देवतोचित यजन प्रदान करो ॥७॥ हे ब्रह्मन् आप देवक्षत्र है ! हे भुवनाथ ! आपको मेरा नमस्कार है। राजा के द्वारा सविता से याचना की थी । देवों का शुभ यजन देता ही है। हे राजन् ! ईश दिवाकर से प्रार्थना करो ॥८-९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा-- ऐसा ही करूँगा-यह कह कर अभिष्टुत भी उसने देवो के भी देव दिवाकर हरि-ईश और अज के स्वरूप वाले भगवान् रवि की बहुत ही श्रद्धा से प्रार्थना की थी ॥१०॥ राजा ने कहा—हे सविता देव ! देवों का यजन मुझे दीजिए आपकी सेवा मे बारम्बार प्रणाम है ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षत्रदेव है क्योंकि सूर्य है। फिर भूपति की भूमि दी गई थी। सविता देव देवेश ने देता हूं-यह कहा था ॥१२॥ जो इस प्रकार से यज्ञ किया करता है उसकी कोई भी रिष्टि नहीं होती है। तथा वाजिमख सत्र मे वेदो के पारगामी ब्राह्मणो के द्वारा अभिस्तवन करने वाले राजा से आरम्भ किये जाने पर रविदेव समागत हुए थे जहाँ पर कि वह भूपति था। रविदेवो के यजन को देने के लिये ही आये थे। अतएव यह भानुतीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१३-१४॥

हो गया था जो अश्वमेध यज्ञ के फल प्रदान करने वाला है। फिर मरुद्गणों के साथ इन्द्रदेव ने नृपति से यह शुभ वचन कहा था ॥२६-२८॥

त्वं सम्राड्भविता राजन्नुभयोरपि लोकयोः ।
सखा मम प्रियो नित्यं भविता नात्र संशयः ॥२९
स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम् ।
कुर्यात्पितॄणां प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषतः ॥३०
माहेश्वरं तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुतः शिवः ।
भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदैः ॥३१
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रैः पूज्य महेश्वरम् ।
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैरमृतैः पञ्चसंभवैः ॥३२
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ॥३३
पूजयामास देवेशं विष्णुं शंभुं धियैकया ।
ततः प्रसन्नो देवेशो वरान्ददतुरोजसा ॥३४
अभिष्टुते नरेन्द्राय भुक्तिमुक्ती उभे अपि ।
महात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम् ॥३५

हे राजन्! दोनों लोकों के आप सम्राट् हो जाँय जो और आप परम प्रिय सखा भी होंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२९॥ वह मर्त्य लोक कृतार्थ है जिसने इन्द्र तीर्थ में तर्पण किया है। पितृगणों की प्रीति के लिये यम तीर्थ में विशेष रूप से तर्पण करना चाहिए ॥३०॥ जहाँ पर भगवान् महेश्वर देव अभिष्टुत हुए थे वह माहेश्वर पूजित तीर्थ होगया था। सब कर्मों में विशारद विप्रों के द्वारा भक्ति से युक्त होकर वैदिक तथा लौकिक मन्त्रों के द्वारा भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए नृत्य गीत-वाद्य पञ्च सम्भव अमृत अर्थात् पञ्चामृत-बहुत से उपचार-दण्डवत् प्रणिपात प्रदक्षिणा-धूप दीप-नैवेद्य-गन्ध-सुगन्धित पुष्प आदि समस्त उपचारों के द्वारा एक बुद्धि से भगवान् विष्णु और शम्भु का पूजन किया था। इसके अनन्तर देवेश्वर दोनों परम प्रसन्न हो गये थे।

उन्होंने भोज के द्वारा वरदान दिया था। उस अभिस्तवन करने वाले नरेन्द्र के लिये भुक्ति और मुक्ति दोनों ही दे दी थी। इस तीर्थ का उत्तम माहात्म्य भी दिया है ॥३१-३५॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं शैवं वैष्णवमुच्यते ।
तत्र स्नानं च दानं सर्वकामप्रदं विदुः ॥३६
इमानि सप्ततीर्थानि स्मरेदपि पठेत वा ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिवविष्णुपुरं व्रजेत् ॥३७
भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
तत्र तीर्थे महापुण्यं तीर्थानां शतमत्र हि ॥३८

सभी से लेकर वह तीर्थ शैव तीर्थ एवं वैष्णव तीर्थ कहा जाता है। वहां पर किया हुआ स्नान तथा दान सभी मनोरथों का प्रदान करने वाला कहा गया है ॥३६॥ इन उपर्युक्त सब तीर्थों का स्मरण करे अथवा पठन करे वह सभी पापों से विमुक्त होकर शिवपुर तथा विष्णु पुर को गमन किया करता है ॥३७॥ भानुतीर्थ मे विशेष रूप से स्नान करने से सभी अर्थों की सिद्धि को प्रदान हो जाता है। उस तीर्थ में महान् पुण्य होता है और वहां पर एक सौ तीर्थ हैं ॥३८॥

चक्षुस्तीर्थवर्णन

चक्षुस्तीर्थमिति ख्यातं रूपसौभाग्यदायकम् ।
यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्यादक्षिणे तटे ॥१
पुरं भौवनमाख्यातं गिरिमूर्ध्न्यमिधीयते ।
यत्रासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायणः ॥२
तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिकः ।
तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तमः ॥३

हो गया था जो अश्वमेध यज्ञ के फल प्रदान करने वाला है। फिर मरुद्-गणो के साथ इन्द्रदेव ने नृपति से यह शुभ वचन कहा था ॥२६-२८॥

त्वं सम्राड्भविता राजन्नुभयोरपि लोकयोः ।
सखा मम प्रियो नित्यं भविता नात्र संशयः ॥२९
स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम् ।
कुर्यात्पितृणां प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषतः ॥३०
माहेश्वरं तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुतः शिवः ।
भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदैः ॥३१
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रैः पूज्यं महेश्वरम् ।
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यै रमृतैः पञ्चसंभवैः ॥३२
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ॥३३
पूजयामास देवेशं विष्णुं शंभुं धियैकया ।
ततः प्रसन्नौ देवेशौ वरान्ददतुरोजसा ॥३४
अभिष्टुते नरेन्द्राय भुक्तिमुक्ती उभे अपि ।
माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम् ॥३५

हे राजन् ! दोनो लोको के आप सम्राट हो जाँयगे और आप परम प्रिय सखा भी होंगे—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥२९॥ यह मर्त्य लोक कृतार्थ है जिसने इन्द्र तीर्थ मे तर्पण किया है। पितृगणो की प्रीति के लिये यम तीर्थ मे विशेष रूप से तर्पण करना चाहिए ॥३०॥ जहाँ पर भगवान् महेश्वर देव अभिष्टुत हुए थे वह माहेश्वर पूजित तीर्थ होगया था। सब कर्मों में विशारद विप्रों के द्वारा भक्ति से युक्त होकर वैदिक तथा लौकिक मन्त्रों के द्वारा भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए नृत्य गीत-वाद्य पञ्च सम्भव अमृत अर्थात् पञ्चामृत-बहुत से उपचार-दण्डवत् प्रणिपात प्रदक्षिणा-धूप दीप-नैवेद्य गन्ध-सुगन्धित पुष्प आदि समस्त उपचारों के द्वारा एक बुद्धि से भगवान् विष्णु और शम्भु का

हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत् ।
ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३
यत्रैतत्प्राक्षिपद्वारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः ।
त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४
त्वष्टुर्वाक्याच्च्युतान्दैत्यान्निजघान यमस्तदा ।
कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना ॥२५
यत्र ते निहता दैत्यास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते ।
यत्राभवत्क्रतुः पूर्णो हुत्वाऽग्नौ चामृत बहु ॥२६
धाराभिः शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे ।
यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुतः ॥२७
अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् ।
इन्द्रो मरुद्भिर्नृपतिं प्राहेद वचन शुभम् ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सुरगणो ने उसी प्रकार से किया था और त्वष्टा ने भी वैसा ही किया था उसके पश्चात् सभी भस्मीभूत हो गये थे और पीछे सब कादिशीक हो गये थे अर्थात् किस दिशा को भाग जावें ऐसे विचार वाले हो गये थे ॥२२॥ महान् पाप करने वाले मेरे द्वारा मार गिराये गये हैं–यह कहकर जल का आक्षेप किया था। इसके उपरान्त क्षीण आयु वाले दैत्य कुपित होकर स्थित हो गये थे ॥२३॥ लोको के प्रजापति त्वष्टा ने जहा पर वारि का प्रक्षेप किया था वह त्वाष्ट्र तीर्थ आख्यात हो गया था जो समस्त पापो का विनाश करने वाला है ॥२४॥ इसी समय मे त्वष्टा के वाक्य से च्युत हुए दैत्यो को यमराज ने मार दिया था जो कि कालदण्ड-चक्र-कालपाश और मन्यु के द्वारा हनन किया था ॥२५॥ जहा पर वे दैत्य निहित हुए थे वह तीर्थ याम्य तीर्थ नाम से कहा जाया करता है। जहा पर वह क्रतु पूर्ण हुआ था और बहुत सा अमृत अग्नि मे हवन किया गया था जो कि उस महाध्वर मे शरमान अखण्ड धाराओ से किया था अभिष्टुत उसका जिस स्थान पर हव्यवाह (अग्नि) सतृप्त हुआ था वह अग्नि तीर्थ नाम से विख्यात

तं देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेधं सुरैर्युतम् ।
दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५
ब्रह्मवेशधराः सर्वे गायन्तः सामगा इव ।
तेऽपि तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६
चमसानि च पात्राणि सोम चपालमेव च ।
सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपतिं तथा ॥१७
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः ।
तेषां चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विना मुने ॥१८
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति ।
तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९
गृहीत्वा वारिदर्भांश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः ।
ये निन्दन्ति मखं पुण्यं चमसं सोमनेव च ॥२०
मया त्वपहताः सर्वं इत्युक्त्वा परिपिश्वत ॥२१

उस उत्कृष्ट देव क्रतु को जो सुरों से युक्त हयमेध था दैत्य-दनुज तथा अन्य यज्ञ घातक ब्रह्मवेष को धारण करने वाले सब सामगान करने वालों की भांति गायन करते हुए वे भी महाप्राज्ञ वहाँ पर बिना निवारण किये हुए प्रविष्ट हुए थे ॥१५-१६॥ चमस-पात्र-सोम-चपाल-सोमपान-हवि-त्याग-ऋत्विज-भूपति की निन्दा करते हैं-निक्षेप करते हैं-दूसरे हँसते हैं और अन्य असुर मजाक उड़ाते हैं। हे मुनिवर! उनकी चेष्टा को विश्व रूप के बिना नहीं जानते हैं ॥१७-१८॥ विश्वरूप ने भी अपने पिता से कहा था—ये दैत्य हैं। अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके त्वष्टा ने सुरों से यह कहा था ॥१९॥ त्वष्टा बोला—वारिदर्भों को ग्रहण करके सभी ओर से प्रोक्षण करो। जो इस मख की तथा चमस और सोम की निन्दा करते हैं वे सब मेरे द्वारा अपहृत है—यह कह कर परिपिश्चन करो ॥२०-२१॥

तथा चक्रुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत् ।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे कादिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२

मनुष्य को तो धिक्कार ही है अर्थात् धनहीन पुरुष का जीवन धिक्कार पूर्ण ही होता है ॥७॥

कुण्डलो द्विजमाहेदं मत्पित्रोपार्जितं धनम् ।
बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
द्विजः पुनरुवाचेदं मणिकुण्डलमोजसा ॥८
धर्मार्थज्ञानकामानां को नु तृप्तः प्रशस्यते ।
उत्कर्षप्राप्तिरेवैषां सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९
स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तवः ।
परदत्तार्थसंतुष्टाः कष्टजीविन एव ते ॥१०
स पुत्रः शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते ।
यः पैत्र्यमभिलिप्सेत न वाचाऽपि तु कुण्डल ॥११
स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽर्थानर्जयते सुतः ।
स कृतार्थो भवेल्लोके पैत्र्यं वित्तं न तु स्पृशेत् ॥१२
स्वयमार्ज्यं सुतो वित्तं पित्रे दास्यति बन्धवे ।
तं तु पुत्रं विजानीयादितरो योनिकीटकः ॥१३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस कुण्डल वैश्य ने द्विज से यह वचन कहा था कि हे द्विज श्रेष्ठ ! मेरे पिता के द्वारा कमाया हुआ बहुत-सा धन विद्यमान है । अब इस समय मे धन से क्या करोगे ? ॥८॥ गौतम ने कहा—धर्म-अर्थ-ज्ञान और काम इनसे इस संसार में कौन तृप्त होकर प्रशंसित हो सकता है । हे सखे ! इन देहधारियों की उत्कर्ष की प्राप्ति ही श्लाघा करने के योग्य हुआ करती है ॥९॥ जन्तुगण अपने ही व्यवसाय के द्वारा जो जीवित रहा करते हैं वे ही वास्तव मे परम धन्य अर्थात् भाग्यशाली हैं । दूसरे के द्वारा दिये हुए धन से सन्तुष्ट रहने वाले जो प्राणी होते हैं वे कष्टपूर्ण जीवन रखने वाले ही हुआ करते हैं ॥१०॥ वही पुत्र लोक में प्रशंसा का पात्र माना जाया करता है और पितादि के द्वारा भी अभिनन्दित किया जाता है । हे कुण्डल ! जो वचनों के द्वारा भी पिता के अर्जित धन की अभिलिप्सा नहीं किया करता है ॥११॥ जो पुत्र अपनी भुजाओं के बल का आश्रय ग्रहण करके धन का

तस्य मातृर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विजः ।
सखा तस्यणिकश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४
तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विषमं द्विजवैश्ययोः ।
श्रीमद्दरिद्रयोर्नित्य परस्परहितैषिणो- ॥५
कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम् ।
प्राहेद वचन प्रीत्या रहः स्थित्वा पुनः पुनः ॥६
गच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि ।
यौवन तद्वृथा ज्ञेय विना सौख्यानुकूल्यतः ॥
धन विना तत्कथ स्यादहो धिङनिधनं नरम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—रूप और सौभाग्य को प्रदान करने वाला एक महान् तीर्थ "चक्षुस्तीर्थ"–इस नाम से विख्यात है जहाँ पर गौतमी के दक्षिण तट पर योगेश्वर देव विराजमान रहते हैं ॥१॥ वहा पर भौवनपुर नाम से कहा जाने वाला स्थल है जो गिरि की शिखर पर स्थित कहा जाया करता है । वहा पर भौवन राजा है जो कि क्षात्र धर्म मे परायण था ॥२॥ उस परम श्रेष्ठ पुर मे कोई एक वृद्ध कौशिक ब्राह्मण रहता था । उसका एक पुत्र था जो वेद वेत्ताओ मे अत्यन्त उत्तम था और गौतम-इस नाम से प्रसिद्ध था ॥३॥ उसकी माता के मन के दोष से वह द्विज विपरीत हो गया था उसका कोई एक वैश्य सखा था जो मणिकुण्डल नाम से पुकारा जाया करता था ॥४॥ उसके ही साथ मे उसकी मित्रता थी जोकि द्विज और वैश्य दोनो मे विषम थी । एक श्रीमान् था और दूसरा दरिद्र था किन्तु इन दोनो की मित्रता थी और परस्पर मे दोनो ही एक दूसरे के हितैषी थे ॥५॥ किसी समय मे एकान्त मे स्थित होकर वित्त के स्वामी मणिकुण्डल वैश्य से प्रीतिपूर्वक बारम्बार यह वचन उस गौतम ने कहा था—॥६॥ गौतम बोला—हम दोनों धन की प्राप्ति करने के लिये पर्वतों और समुद्रो पर भी चलें क्योंकि बिना सौख्य की अनुकूलता के यह यौवन व्यर्थ ही हो जाता है । वह सुख की अनुकूलता बिना धन के कैसे हो सकती है । ओहो ! निर्धन

॥१४-१६॥ किन्तु वह वणिक् उस चित्त में पाप रखने वाले द्विज को न समझ सका था। वे दोनो परस्पर मे सलाह करके अपने२ माता-पिता को न जतला कर ही दूसरे देश में चले गये थे। वे दोनो वणिक् और द्विज धन प्राप्त करने के ही लिये गये थे। उस वणिक् के हाथ मे स्थित धन को वह ब्राह्मण हरण करना चाहता था ॥१७-१८॥ ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी भी उपाय से उसके धन का अपहरण कर लूँ। ओहो ! इस भूमण्डल मे सहस्रो ही परम सुन्दर नगर हैं—काम वासना के अभीष्ट सुख को प्रदान करने वाली नारियां हैं जो देवताओ की तरह से रहा करती हैं। वहां वहां पर बहुत सुन्दर रमणियां हैं। मुझे अब क्या करना चाहिए ॥१६-२० इस वणिक् के धन का यत्न से अपहरण करके यदि स्त्रियो को दिया जाय तो उनका उपभोग नित्य ही किया जा सकता है और फिर जीवन भी सफल हो सकता है ॥२१॥

नृत्यगीतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलङ्कृतः।
भोक्ष्ये कथ तु तद्वित्त वैश्यान्मद्धस्तमागतम् ॥२२
एवं चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव।
मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३
वृद्धि सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न सशयः।
धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः ॥२४
तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना ॥२५
नेत्युवाच ततो वैश्यः सुख धर्मे प्रतिष्ठितम्।
पापे दुःखं भय शोको दारिद्र्य क्लेश एव च ॥
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६
एवं विवदतोस्तत्र सपरायस्तयोरभूत्।
यस्य पक्षो भवेज्ज्यायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७
पृच्छामः कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः।
चेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८

फिर तो नित्य ही नृत्य और गान में निरत होकर पण्य स्त्रियों से अलङ्कृत रहूँगा अर्थात् वेश्याओं के समर्ग-वश रहकर आनंद का भोग

अर्जन किया करता है वह ही लोक मे कृतार्थं (सफल) हुआ करता है तथा जो पिता के कमाये हुए धन का स्पर्श भी नही करता है वही प्रशसनीय पुत्र होता है।॥१२॥ जो पुत्र धन का स्वय अर्जन करके पिता को तथा बन्धु के लिये दिया करता है उसी को वास्तव मे पुत्र जानना चाहिए। जो ऐसा नही करता है वह तो योनि कीटक होता है अर्थात् एक कीडे के ही तुल्य होता है ॥१३॥

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलाषिण. ।
तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत् ।
धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम् ॥१५
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहेगृहम् ।
सत्यमेव वणिग्वक्ति,स तु विप्र प्रतारक ॥१६
पापात्मा पापचित्त श्च न बुबोध वणिग्द्विजम् ।
तौ परस्परमामन्त्र्य माता पित्रोरजानतो ॥१७
देशाप्रदेशान्तर यातो धवार्थ तौ वणिग्द्विजौ ।
वणिग्घस्तस्थित वित्त ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८
येन,केनाप्युपायेन तद्धन हि समाहरे ।
अहो पृथिव्या रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९
इष्टप्रदाव्य. कामस्य देवता इव योषित ।
मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०
धनमाहृत्य यत्नेन योषिद्भ्यो यदि दीयते ।
भुज्यन्ते तास्ततो नित्य सफल जीवित हि तत् ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अभिलाषा रखने वाले ब्राह्मण के उस वाक्य का श्रवण करके ऐसा ही किया जायगा—यह कह कर उसके वाक्य को मान कर शीघ्रता से सयुत होकर अपने रत्न और धन लाकर उसने गौतम को देदिये थे। इस धन से सुख पूर्वक देशों का भ्रमण करेंगे और विशेष धनो को लेकर पुन. घर मे आजायेंगे। वह वैश्य तो सर्वथा सत्य ही बोल रहा था किन्तु वह विप्र प्रतारण करने वाला पापात्मा ठग था

जित मया धनं वैश्य निर्लज्जः किंनु भाषसे ।
मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना ॥३३
तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा वैश्यः सस्मित ऊचिवान् ॥३४
पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तथैव तान्सखे मन्ये येषां धर्मो न विद्यते ॥३५
चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मः प्रथम उच्यते ।
पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
कथं ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यदः ॥३६

इस प्रकार से विवाद करते हुए वे दोनों से सब मनुष्यों से पूछा था कि भू मण्डल में धर्म तथा अधर्म इन दोनों में प्रबलता किसकी होती है ? यह यथावृत्त जो भी ठीक हो हमको बतलाइए—यही बड़े ओज के साथ उन दोनों ने कहा था । इस तरह से वहाँ पर उन सब लोगों में से कुछ लोग जो धर्म के ही अनुवर्त्ती थे वे बोले ॥२९-३०॥ जो पापिष्ठ जन सुखी हैं उनके द्वारा दुःख का अनुभव किया जाया करता है । उस सम्पराय मे जीता हुआ समस्त धन उस विप्र को देदिया था ॥३१॥ धर्म के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ मणिमान् ने फिर भी धर्म की प्रशंसा की थी । वह द्विज मणिमान् से बोला था कि क्या आप धर्म की पुनः प्रशंसा कर रहे हैं । श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी वह ब्राह्मण वैश्य से फिर भी यह बोला था ॥३२॥ ब्राह्मण ने कहा—हे वैश्य ! मैंने सम्पूर्ण धन जीत लिया है । तुम निर्लज्ज होते हुए क्या बोलते हो । यथेष्ट आचरण करने वाले मैंने ही तो धर्म्म को विजित कर दिया है ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मण के उस वचन को सुन कर वैश्य मुस्कराहट के साथ बोला था ॥३४॥ वैश्य ने कहा—धान्यों में पुलाकाओं की तरह और पक्षियों में पुत्तिकाओं के समान हे सखे ! उसी भाँति मैं उन मनुष्यों को समझता हूँ जिनके अन्दर धर्म विद्यमान नहीं होता है ॥३५॥ चारों पुरुषार्थों में धर्म प्रथम कहा जाता है । इसके पीछे अर्थ और काम है । वही धर्म मुझ में स्थित है । हे द्विज श्रेष्ठ ? तुम मुझसे कैसे बोलते हो कि मैंने यह विजित कर दिया है ॥३६॥

करूँगा। मैं वैश्य से उसका धन यदि मेरे हाथ में आगत हो जायगा तो मैं उस वित्त को कैसे भोगूँगा ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से यह गौतम चिन्तन करता हुआ हसते हुए की भाँति मणि कुण्डल से यह बोला था कि अधर्म से ही जन्तुगण वृद्धि सुख और अभीष्टो की प्राप्ति किया करते हैं—इसमे कुछ भी सशय का अवसर नही है जो प्राणी बहुत बडे धर्मिष्ठ होते हैं वे लोक मे दु खो के भागी ही दिखलाई दिया करते हैं ॥२३ २४॥ इसलिये दु ख ही एक जिसके फल का हेतु है ऐसे उस धर्म से क्या करना है। अर्थात् दु ख प्रद धर्म के पालन करने से क्या लाभ है ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस वैश्य ने यही कहा था कि यह बात ठीक नही है। सुख तो वास्तव में धर्म्म में ही प्रतिष्ठित रहा करता है। पाप मे तो दु ख है भय है-शोक है दरिद्रता है और क्लेश ही क्लेश है। जहा पर धर्म्म है वही पर मुक्ति है। अपना धर्म क्या कभी नष्ट होता है ? अर्थात् धर्म का विनाश नहीं होता है ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से विवाद करते हुए उन दोनो मे वहा पर झगडा खडा हो गया था। जिसका पक्ष ज्यायान् ([1]अधिक बडा) हो वही पदार्थ को प्राप्त कर लेगा ॥२७॥ धर्म करने वाले अथवा अधर्म करने वाले मे किसकी प्रबलता है—यह पूछा जावे। वेद से तो लौकिक ज्येष्ठ है और लोक मे धम से सुख होता है ॥२८॥

एवं विवदमानौ तावूचतु सकलाञ्जनान् ।
धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भुवि ॥२६
तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा ।
एव मत्रोचिरे केचिद्ये धर्मणानुवर्तिन ॥३०
तंदु खमनुभूयते पापिष्ठा सुखिनो जना ।
सपराये धन सर्वं जित विप्रे न्यवेदयत् ॥३१
मणिमान्धर्मविच्छ्रेष्ठ पुनर्धर्मं प्रशमति ।
मणिमन्त द्विज प्राह किं धर्ममनुशाससि ॥
तथेपि चेत्याह वैश्यो ब्राह्मण- पुनरब्रवीत् ॥३२

जित मया धनं वैश्य निर्लज्जः किंनु भाषसे ।
मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना ॥३३॥
तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा वैश्यः सस्मित ऊचिवान् ॥३४
पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तथैव तान्सखे मन्ये येषां धर्मो न विद्यते ॥३५
चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मः प्रथम उच्यते ।
पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
कथं ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यदः ॥३६

इस प्रकार मे विवाद करते हुए वे दोनों से सब मनुष्यो से पूछा था कि भू मण्डल मे धर्म तथा अधर्म इन दोनों मे प्रबलता किसकी होती है ? यह यथावृत्त जो भी ठीक हो हमको बतलाइए—यही बडे ओज के साथ उन दोनो ने कहा था । इस तरह से वहाँ पर उन सब लोगो में से कुछ लोग जो धर्म के ही अनुवर्त्ती थे वे बोले ॥२६-३०॥ जो पापिष्ठ जन सुखी हैं उनके द्वारा दु ख का अनुभव किया जाया करता है । उस सम्पराय मे जीता हुआ समस्त धन उस विप्र को देदिया था ॥३१॥ धर्म के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ मणिमान् ने फिर भी धर्म की प्रशसा की थी । वह द्विज मणिमान् से बोला था कि क्या आप धर्म की पुनः प्रशसा कर रहे हैं । श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी वह ब्राह्मण वैश्य से फिर भी यह बोला था ॥३२॥ ब्राह्मण ने कहा—हे वैश्य ! मैंने सम्पूर्ण धन जीत लिया है । तुम निर्लज्ज होते हुए क्या बोलते हो । यथेष्ट आचरण करने वाले मैंने ही तो धर्म को विजित कर दिया है ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मण के उस वचन को सुन कर वैश्य मुस्कराहट के साथ बोला था ॥३४॥ वैश्य ने कहा—धान्यो मे पुलाकाओं की तरह और पक्षियो मे पुत्तिकाओ के समान है सखे ! उसी भाँति मैं उन मनुष्यो को समझता हूँ जिनके अन्दर धर्म विद्यमान नहीं होता है ॥३५॥ चारो पुरुषार्थों मे धर्म प्रथम कहा जाता है । इसके पीछे अर्थ और काम है । वही धर्म मुझ मे स्थित है । हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम मुझसे कैसे बोलते हो कि मैंने यह विजित कर दिया है ॥३६॥

द्विजो वैश्यं पुन प्राह हस्ताभ्यां जायतां पणः ।
तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरूचतुः ॥३७
पूर्ववल्लौकिकान्गत्वा- जितमित्यब्रवीद्द्विज- ।
करौ छित्वा तत- प्राह कथं धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैवं वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८
धर्ममेव परं मन्ये प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
माता पिता सुहृद्बन्धुर्धर्म एव शरीरिणाम् ॥३९
एवं विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत् ।
विमुक्तो वैश्यकस्तत्र बाहुभ्यां च धनेन च ॥४०
एवं भ्रमन्तौ संप्राप्तौ गङ्गां योगेश्वरं हरिम् ।
यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ- मिथस्तावूचतुः पुन- ॥४१
वैश्यो गङ्गां तु योगेशं धर्ममेव प्रशंसति ।
अतिकोपाद्द्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत् ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा—"द्विज उस वैश्य से फिर बोला हाथों से पण होवे । वैश्य ने भी 'बहुत ठीक' कह कर मान लिया था । वे दोनों जाकर पुनः बोले थे ॥३७॥ पूर्व की भाँति लौकिकों के पास जाकर द्विज ने कहा मैंने जीत लिया है । दोनों हाथों को छेदन करके इसके उपरान्त बोला था कैसे धर्म को मानता है । इस तरह से ब्राह्मण के द्वारा आक्षिप्त हुआ वैश्य यह वचन बोला था ॥३८॥ वैश्य ने कहा—चाहे मेरे प्राण कण्ठगत भी क्यों न हो जावें मैं धर्म को ही परमाधिक मानता हूँ । शरीर धारियों का माता-पिता-सुहृत्-बन्धु यह सब कुछ एक धर्म ही है ॥३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से वे दोनों विवाद कर रहे थे । ब्राह्मण अर्थ वाला धनी हो गया था और वह वैश्य वहाँ पर दोनों बाहुओं से और धन से विमुक्त हो गया था ॥४०॥ इस रीति से वे दोनों भ्रमण करते हुए गङ्गा तट पर योगेश्वर श्री हरि के समीप में सम्प्राप्त हो गये थे । हे मुनिश्रेष्ठ । वे यदृच्छा से ही वहाँ पहुँच गये थे और फिर दोनों परस्पर में बोले थे ॥४१॥ वैश्य ने

गङ्गा-योगेश और धर्म की ही प्रशंसा कर रहा था और वह द्विज अत्यन्त क्रोध से वैश्य पर आक्षेप करता हुआ पुन. बोला था ॥४२॥

गतं धनं करौ छिन्नाववशिष्टोऽसुभिर्भवान् ।
त्वमन्यथा यदि ब्रूष आहरिष्येऽसिना शिर. ॥४३
विहस्य पुनराहेदं वैश्यो गौतममञ्जसा ॥४४
धर्ममेव परं मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु ।
ब्राह्मणांश्च गुरून्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम् ॥४५
यस्तु निन्दयते पापो नासौ स्पृश्योऽस्य पापकृत् ।
उपेक्षणीयो दुर्वृत्तः पापात्मा धर्मदूषकः ॥४६
तत. प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशंससि ।
आवयो. प्राणयोरत्र पणः स्यादिति वै मुने ॥४७
एवमुक्ते गौतमेन तथेत्याह वणिक्तदा ।
पुनरप्यूचतुरुभौ लोकज्ञो शास्तयोचिरे ॥४८
योगेश्वरस्यापुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे ।
तं निपात्य विश्र विप्रश्चक्षुरुत्पाट्य चाब्रवीत् ॥४९

ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा धन गया–हाथ दोनों कट गये हैं अब आप केवल अपने प्राणों से ही युक्त रह गये हैं। यदि तुम अभी भी विपरीत बोलते ही रहोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक तलवार से काट डालूँगा ॥४३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस वैश्य ने तुरन्त ही हँस कर गौतम से कहा था ॥४४॥ वैश्य बोला—मैं तो धर्म को ही सबसे प्रधान मानता हूँ अब तुम्हारी इच्छा हो वह करो। ब्राह्मणों की, गुरुओं की, देवों की, वेदों की, धर्म की और जनार्दन की जो निन्दा किया करता है वह ऐसा महापापी है कि उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। ऐसे पापी की तो उपेक्षा ही कर देनी चाहिए। वह बहुत ही दुश्चरित्र पापात्मा और धर्म का दूषक है ॥४५-४६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उस द्विज ने क्रोध से कहा था कि यदि तुम धर्म की हो प्रशंसा करते हो तो हे मुने ! उसने कहा था कि हम दोनों का यहाँ पर प्राणों का पण (दाव) है ॥४७॥ गौतम के द्वारा ऐसा कहने पर उस समय में वैश्य ने ऐसा

ही होवे—यह कहा था। फिर उन दोनो ने लोको से कहा था। लोगो ने भी वैसा ही कहा था ॥४८॥ गौतमी के दक्षिण तट पर योगेश्वर के आगे उस विप्र ने उस वैश्य को नीचे गिराकर विप्र ने आँखें उखाड़कर उससे कहा था ॥४९॥

गतोऽसीमा दशा वैश्य नित्य धर्मप्रशसया ।
गत धन गत चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैव ब्रूया. कयान्तरे ॥५०
तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि ।
हा कष्ट मे किमभवद्धर्मैकमनसो हरे ॥५१
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुकः ।
गतनेत्र. शुच प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन् ॥५२
एव बहुविधा चिन्ता कुर्वन्नास्ते महीतले ।
निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः पतितः शोकसागरे ॥५३
दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले ।
एकादश्या शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषण. ॥५४
स तु योगेश्वर देव पूजयित्वा यथाविधि ।
स्नात्वा तु गौतमी गङ्गा सपुत्रो राक्षसैर्वृ तः ॥५५
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापरः ।
वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६

विप्र ने कहा—हे वैश्य! तुम नित्य ही धर्म की प्रशसा करके ऐसी असीम दुर्दशा को प्राप्त हो गये हो। तुम्हारा सारा धन गया—नेत्र गये और दोनो हाथ छेदित हो गये हैं। हे मित्र! तुमसे पूछ लिया है मैं अब जाता हूं और तुम इस प्रकार से अन्य कथा मे कभी मत बोलना ॥५०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसके चले जाने पर इस वैश्य ने अपने मन मे सोचा था। हे हरे! धर्म मे ही मन रखने वाले मेरी यह क्या दशा हो गई है? बड़ा भारी कष्ट है ॥५१॥ वह कुण्डल नामधारी वैश्यो में श्रेष्ठ विचारा धन हीन और बाहु हीन एव नेत्र से रहित हो गया था और बहुत ही शोक को प्राप्त हो गया था और केवल धर्म का ही अनुस्मरण

करता रहा था ॥५२॥ इस रीति से अनेक प्रकार की चिन्ता करता हुआ महीतल पर घूम रहा था। वह चेष्टाहीन उत्साह शून्य और शोक सागर में पतित हो रहा था ॥५३॥ दिन के अन्तिम समय मे रात्रि मे चन्द्र-मण्डल के समुदित होने पर एकादशी के दिन शुक्ल पक्ष मे वहाँ पर विभीषण आया करते थे ॥५४॥ उस विभीषण न यथाविधि योगेश्वर देव का अभ्यर्चन किया था। राक्षसो के साथ समावृत पुत्रो के सहित विभीषण ने गौतमी गङ्गा मे स्नान किया ॥५५॥ विभीषण का पुत्र जो था वह भी एक दूसरा विभीषण ही था। वह विभीषणि—इस नाम से विख्यात था। उसने उसको देखा था और उससे बोला ॥५६॥

वैश्यस्य वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं स धर्मवित् ।
पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने ॥
स तु लङ्केश्वरः प्राह पुत्रं प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७
श्रीमान्रामो मम गुरुस्तस्य मान्यः सखा मम ।
हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान् ॥५८
पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वौषध्याश्रयोऽचलः ।
जाते कार्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९
विशल्यकरणी चेतो मृतसंजीवनीति च ।
तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥६०
निवेदयित्वातत्साध्य तस्मिन्वृत्ते समागतः ।
पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१
तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन् ।
ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२
गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः ।
अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३

वैश्य के वचन को सुनकर जैसी भी कुछ घटना घटित हुई थी उस धर्म के वेत्ता ने महान् आत्मा वाले लङ्का के स्वामी अपने पिता से कहा था। उस लङ्का के अधिपति न प्रीति पूर्वक गुणों की खान अपने पुत्र से कहा ॥५७॥ विभीषण बोला— श्रीमान् राम मेरे गुरु हैं। उनके मानने

के योग्य मेरे सखा हनुमान् हैं जो इसी शुभ नाम से विख्यात है। उनके ही द्वारा यह महान् विशाल गिरि लाया गया है ॥५८॥ प्राचीन समय मे पहिले अन्य कार्य को प्राप्त होने पर यह पर्वत समस्त ओषधियो का आश्रय था। कार्य के पूर्ण हो जाने पर उसको लेकर हिमालय मे चले गये ॥५९॥ विशल्यीकरणी-चेती मृत सजीवनी आदि दिव्य ओषधिया थीं। महान् बुद्धिमान् ने उसको लाकर अक्लिष्ट कर्मा श्रीराम की सेवा मे निवेदन किया था जो कि उनके द्वारा साध्य था। उसके हो जाने पर वह समागत हुए थे। फिर गिरि को लाकर देव पर्वत पर आ गये ॥६०-६१॥ अतएव श्री हरि का स्मरण करते हुए उसको लाकर इसके हृदय मे निवेशित कर दो। इसके अनन्तर यह उदार बुद्धि वाला सभी अपेक्षित वस्तु की प्राप्ति कर लेगा ॥६२॥ जिस समय मे वह बड़े वेग के साथ गमन कर रहे थे जो विशल्यीकरणी ओषधि थी वह गौतमी के तट पर गिर पड़ी थी जहाँ पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान हैं ॥६३॥

तामोषधी मम पितर्दर्शयाऽऽशु विलम्ब मा।
परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४
विभोषणस्तथेत्युक्त्वा ता पुत्रस्याप्यदर्शयत्।
इपे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखा चिच्छेद तत्सुतः॥
वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्त. परहिते रता. ॥६५
यत्रापतन्नगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान्।
तस्य शाखा समादाय हृदतेऽस्य निवेशय॥
तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वक रूपमवाप्नुयात् ॥६६
एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्य वैभोषणिरुदारधीः।
तथ चकार वै सम्यक्काष्ठखण्ड न्यवेदयत् ॥६७
हृदसे स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत्।
मणिमन्त्रोषधीनां हि वीर्यं कोऽपि न बुध्यते ॥६८
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसस्मरन्।
स्नात्वा तु गौतमी गगा तथा योगेश्वर हरिम् ॥६९

नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः ।
परिभ्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०

विभीषणि ने कहा—हे पिताजी ! उस महादिव्य ओषधि को आप मुझे शीघ्र दिखलादो और अब थोड़ा सा भी विलम्ब मत करो। तीनों लोकों मे दूसरे की पीड़ा के उपशमन के समान अन्य कोई भी श्रम नहीं है ॥६४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विभीषण ने ऐसा ही करता हूँ-यह कहकर उस दिव्य ओषधि को पुत्र को दिखला दिया था। उसके पुत्र ने इपेतु—इस वृक्ष की शाखा को तुरन्त ही काट दिया था। उस वैश्य के साथ बहुत ही प्रीति का व्यवहार किया था। ठीक ही है सन्त लोग तो सर्वदा पराये हित मे निरत रहा ही करते हैं ॥६५॥ विभीषण ने कहा—यहाँ पर इस पर्वत मे वह दिव्यौषधि गिरी थी। अतएव वह वृक्ष प्रताप वाला है। उसी वृक्ष की शाखा लाकर इसके हृदय पर निवेशित कर दो। उस दिव्य ओषधि की शाखा के स्पर्श होने मात्र से ही यह अपना असली स्वरूप प्राप्त कर लेगा ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह अपने पिता के वचन सुनकर उदार बुद्धि वाले वैभीषणि ने उसी भाँति तुरन्त किया था और एक काष्ठ का खण्ड निवेशित कर दिया था ॥६७॥ हृदय पर रखते ही वह वैश्य भी नेत्रों से युक्त और करों वाला हो गया था। मणि-मन्त्र और ओषधियों का जो वीर्य होता है उसे कोई भी नहीं जानते हैं ॥६८॥ फिर उसी काष्ठ को लेकर धर्म का ही स्मरण करते हुए चल दिया। फिर आगे गौतमी गङ्गा मे स्नपन कर योगेश्वर हरि को नमस्कार की। फिर उसी काष्ठ के खण्ड के सहित वह वैश्य नृपपुर मे भ्रमण करने लगा था। यह "महापुर"—इस नाम से विश्रुत है ॥६९-७०॥

महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः ।
तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना ॥७१
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम् ।
देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२

वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ।।७३
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत् ।
अहर्निशमसौ वैश्यः श्रुत्वा घोषमथाब्रवीत् ।।७४
अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असंशयम् ।।७५
तं वैश्यं तरसाऽऽदाय महाराजं न्यवेदयत् ।
तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्नृपात्मजा ।।७६
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत् ।
वैश्यो राज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः ।।७७

वहाँ पर महान् बलशाली राजा था जो महाराज-इस नाम से विख्यात हैं । उसके कोई पुत्र नहीं था एक लोचन नष्ट हो जाने वाली बेटी थी । वही उसकी पुत्री और पुत्र के समान एक ही थी । उसका भी व्रत ऐसा था कि देव-दानव-ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य शूद्रयोनि सगुण अथवा निर्गुण के सभी कोई क्यों न हो । मैं इनमे से उसी को यह पुत्री दूँगा जो इसके नेत्र लाकर देगा ।।७१-७२।। राजा ने उसी समय मे ऐसी घोषणा करा दी थी कि इस राजपुत्री का दान राज्य के ही साथ होगा अर्थात् उस वर को राज्यासन भी दिया जायेगा । यह वैश्य रात दिन इस घोषणा को सुनता था । एक दिन वह बोला ।।७४।। वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री के नेत्रों को वापिस लाऊँगा–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।७५।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—लोगों ने बहुत ही शीघ्रता से उस वैश्य को वहाँ पहुँचा कर राजा से निवेदन कर दिया था । फिर क्या था उस वैश्य ने उसी काष्ठ दण्ड उपयोग किया था और उस काष्ठ के केवल स्पर्श से ही यह नृप की पुत्री नेत्रों वाली हो गयी थी ।।७६।। तब तो राजा को बहुत ही अधिक विस्मय हो गया था और उसने पूछा था कि यह कौन है । उस वैश्य ने भी जो कुछ भी घटना उसके साथ घटी थी वह सम्पूर्ण निवेदित कर दी थी ।।७७।।

ब्राह्मणाना प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा ।
दानप्रभावयज्ञैश्च विविधैर्भूरिदक्षिणं ॥
दिव्यौषधिप्रभावेन ममसामर्थ्यमीदृशम् ॥७८
एतद्वैश्यवचः श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपतिः ॥७९
अहो महानुभावोऽय प्रायो वृन्दारको भवेत् ।
अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु ता कन्या प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०
इति सकल्प्य मनसि कन्या राज्य च दत्तवान् ।
विहारार्थं गतः स्वैरं परं खेदमुपागतः ॥८१
न मित्रेण विना राज्य न मित्रेण विना सुखम् ।
तमेव सतत मित्र चिन्तयन्वैश्यनन्दनः ॥ २
एतदेव सुजाताना लक्षण भुवि देहिनाम् ।
कृपार्द्र यन्मनो नित्य तेषामप्यहितेषु हि ॥७३

वैश्य ने कहा—ब्राह्मणो के प्रसाद से धर्म, तप-दान यज्ञ विविध प्रकार वाले जिनमे अधिक दक्षिणा दी थी और दिव्य ओषधियो के प्रभाव से मेरी ऐसी अद्भुत सामर्थ हो गई है ॥७-॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था—वैश्य के इस वचन को सुनकर राजा विस्मित हो गये थे ॥७८॥ राजा ने कहा—यह तो कोई महानुभाव ही हैं। बहुधा करके शायद यह कोई देव ही हो। अन्यथा यदि ऐसी बात नही है तो अन्य किसी की ऐसी शक्ति कैसे हो सकती है। इसलिये मैं तो उस अपनी कन्या को राज्य वैभव के साथ ही अवश्य इसको समर्पित करूंगा ॥८०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस राजा ने अपने मन मे ऐसा सकल्प करके उसके लिये अपनी कन्या और राज्य दोनो ही दे दिय थे। वह राजा परमाधिक खेद को प्राप्त करता हुआ स्वच्छन्द विहार के लिये वहा से चला गया था ॥८१॥ मित्र के बिना न तो राज्य ही है और मित्र के बिना न कोई सुख ही है। वह वैश्यनन्दन फिर भी उसी पुराने मित्र विप्र का चि तन-स्मरण किया करता था ॥८२॥ यह ही सुजात पुरुषो का भूमण्डल मे लक्षण

था। उस समुद्रतीर्थ का योगेश के साथ में स्मरण करने से भी पुण्य प्रदायक होता है। मन के प्रसाद को उत्पन्न करने वाला तथा सभी तरह की बुरी भावनाओं का विनाशक है ॥८६॥

—:※:—

सामुद्रतीर्थवर्णन

सामुद्रं तीर्थमाख्यात सर्वतीर्थफलदम् ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१
विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी ।
लोकानामुपकारार्थं प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति ॥२
आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृतामया ।
शिरसा च धृता देवी शम्भुना परमात्मना ॥३
विष्णुपादाब्जप्रसूता ता ब्राह्मणेन महात्मना ।
आनीता मर्त्यभवन स्मरणादघनाशनीम् ॥४
गुरोर्गुरुतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत् ।
या वन्द्या जगतामीशा ब्रह्मशाद्यैर्नमस्कृता ॥५
तामहं प्रतिगच्छेयनो चेत्स्याद्धर्मदूषणम् ।
आगच्छन्तं महात्मानं यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६
न तस्य कोऽपि त्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयोः ।
एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयान्वितः ॥
कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेदं सरितापतिः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब तीर्थों को पुण्य-फल के प्रदान करने वाला समुद्र तीर्थ विख्यात है। हे नारद ! तुम सुनो, मैं उस तीर्थ का जो जैसा भी स्वरूप है उसे बतलाऊँगा किन्तु परम सावधान होकर ही तन्मनस्क होकर उसका श्रवण करो ॥१॥ गौतम महर्षि ने यह महा नदी गङ्गा समुत्पन्न को है जो महा पापों का विनाश कर देने वाली है। यह गौतमी गङ्गा लोकों के उपकार के लिये पूर्व सागर की ओर बह न

किया करती है ॥२॥ वह देव नदी जिस समय मे आ रही थी उसको कमण्डलु धारण करने वाले मैंने धारणा किया था और परमात्मा शम्भु ने शिर पर उस देवी को धारण किया था ॥३॥ भगवान् विष्णु के चरणो से समुद्भूत उस गङ्गा देवी को महान् आत्मा वाले ब्राह्मणो के द्वारा ही इस मर्त्य लोक मे लाया गया है जिसके स्मरण मात्र से ही अघो का विनाश होता है ॥४॥ गुरु की सबसे बडी उस नदी को देखकर सिन्धु ने अपने कृत्य के विषय मे सोचा था कि जो सब जगत् की वन्दनीय है और ईशा अर्थात् स्वामिनी है तथा ब्रह्मा और शङ्करादि देवो के द्वारा नमस्कृत है उसकी ओर मुझे स्वय ही जाना चाहिए नही तो धर्म का दूषण होगा । समागमन करने वाले महात्मा का जो मोह-से उपस्थान नही करता है वह दोनो लोको मे महान् पापी हो जाता है और उसका कोई भी त्राण करने वाला नही होता है । इस तरह से विचार करके रत्नो का स्वामी समुद्र मूर्त्तिमान साक्षात् परम विनम्र होकर दोनो हाथो को जोडे हुए वह सरिताओ का स्वामी गङ्गा से यह बोला— ॥५-७॥

रसातलगत वारि पृथिव्या यन्नभस्तले ।
तत्मामेवात्र विशतु नाह वक्ष्यामि किंचन ॥८

मयि रत्नानि पीयूप पर्वता रक्षसासुरा. ।
एतानप्यखिलानन्यान्मीमान्सधारयाम्यहम् ॥९
ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा ।
ममाशक्य न किमपि विद्यते सचराचरे ॥१०

महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थान न यो मदात् ।
स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरय तु समाप्नुयात् ॥११
न तान्मे बिभ्रतः खेदो विनाऽगस्त्यपराभवात् ।
किं तु त्वं गौरवेणैपामतिरिक्ता ततस्त्वहम् ॥१२
ब्रवीमि देवि गङ्गे मा त्वं साम्यात्सगता भव ।
नैकरूपामह शक्तः सगन्तु बहुधा यदि ॥१३

सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा ।
गङ्गे समेष्यसि यदि वहुधा तद्विचारये ॥१४

सिन्धु ने कहा—रसातल मे गया हुआ जो जल है-पृथिवी मे तथा नमस्तल मे जो जल है वह अब मेरे ही अन्दर प्रवेश कर जावे—मैं कुछ भी नहीं कहूँगा ॥८॥ मेरे अन्दर बहुत से रत्न हैं-पीयूष हैं पर्वत राक्षस-असुर हैं इन सबको भी और अन्यो को भी जो बहुत भीषण हैं मैं धारण किया करता हूं ॥६॥ मेरे अन्दर कमलारमहालक्ष्मी देवी से युक्त भगवान् विष्णु नित्य ही शयन किया करते हैं इसलिये इस चराचर जगत् मे मेरे लिये कुछ भी अशक्य नहीं है अर्थात् ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसको मैं नहीं कर सकता हूँ ॥१०॥ किसी महान् पुरुष के समागत होने पर जो मद से उनका प्रत्युत्थान नहीं किया करता है वह धर्म आदि से परिभ्रष्ट होकर नरक को प्राप्त होता है ॥११॥ अगस्त मुनि के द्वारा किये हुए पराभव के बिना उन सबको धारण करते हुए भी मुझे कुछ भी खेद नहीं है। किन्तु आप इन सबके गौरव से भी अधिक गौरव शालिनी हैं अतएव मैं निवेदन करता हूँ ॥१२॥ हे देवि ! हे गङ्गे ! तुम साम्यभाव से मेरे साथ सङ्गत हो जाओ। अधिक करके अनेक रूप वाली आपको मैं सङ्गम करने मे यदि समर्थ हू तो हे देवि ! आप मेरे सङ्ग को प्राप्त हो जाओगी। तभी मैं सगमन करता हूँ अन्यथा नहीं करता। हे गङ्गे ! यदि तुम समागमन करोगी तो उसका वहुधा विचार करता हूँ ॥१३-१४॥

तमेववादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत् ।
गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५
सप्तर्षीणा च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः ।
भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६
अल्पभूता भविष्यामि ततः स्या तव सगता ।
तथेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्ऋ (भ्र-ऋ)पि भिर्वृत.(ताः) ॥
आनयामास ता(ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत. ।
स चैव गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८

सप्तर्षीणा तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन् ।
तत्र स्नान च दानं च श्रवण पठन तथा ॥१६
स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रद भवेत् ।
नास्माद्न्यत्पर तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानौ भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे जलो के स्वामी समुद्र से जो इस प्रकार से कह रहा था देवी गौतमी गङ्गा यह कहा—मेरा यह वचन तुम पालन करो ॥१५॥ सप्तर्षियो की जो भार्याऐं हैं जिनमे अरुन्धती प्रमुख है उन सबको अपने स्वामियो के साथ यहाँ पर लाओ उसी समय मे अल्पभूता अर्थात् बहुत ही छोटे स्वरूप वाली हो जाऊँगी। तभी मैं तुम्हारे सगत हो जाऊँगी । ऐसा ही किया जायगा—यह कह कर फिर समुद्र ने भार्याओं के सहित सप्तर्षिगण के साथ मे समाहृत सागर मे उस देवी गङ्गा को समानयन किया था और सात भागो मे विभाजित हो गयी थी । वही गौतमी गङ्गा सात प्रकार से सागर मे गयी थी ॥१६-१८॥ सप्तर्षियो के शुभ नामो से वह गङ्गा सात स्वरूपो मे हो गयी थी। उनमे स्नान करना दान देना श्रवण-पठनस्मरण जो भी भक्ति भाव से किया करता है उसको सब मनोरथो को वह पूर्ण किया करती हैं । इससे बडा और महान् अन्य कोई भी तीर्थ नही है । भुवनत्रय मे समुद्र बहुत बडा तीर्थ है । पापो की हानि-भुक्ति मुक्ति की प्राप्ति और मन को आनन्द प्रदान करने में यह तीर्थ बहुत ही प्रमुख है ॥१६-२०॥

--:※:--

भीमेश्वरतीर्थ वर्णन

ऋषिसत्रमिति ख्यातमृषयः सप्त नारद ।
निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वरः शिव ॥१
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम् ।
शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामृषयः सप्त नारद ।
वासिष्ठी दाक्षिणेयी स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥३
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा ।
भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्ययापरा ॥४
जामदग्नी तथा चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा ।
तैः सर्वैऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टं महात्मभिः ॥५
निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदर्शिभिः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रिपु ॥६
विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात् ।
ब्रह्मचर्येण तपसा ताना राध्य यथाविधि ॥
विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! एक ऋषि सत्र इस नाम से विख्यात तीर्थ है । सात ऋषिगण जहाँ पर तप करने के लिये स्थित हुए थे और जहाँ पर इन्होंने तपश्चर्या करने की स्थिति की थी वहीं पर भीमेश्वर शिव विराजमान हैं ॥१॥ वहाँ पर जो घटित हुआ था उसको मैं वर्णित करूँगा जो कि देवर्षि पितृगणों से बृंहित है । हे नारद ! तुम श्रवण करो । यह सब कामनाओं का प्रदान करने वाला और परम शुभ है ॥२॥ हे नारद ! सात ऋषियों ने उस गङ्गा को सात भागों में विभाजित कर दिया था । उनके नाम ये हैं—वासिष्ठी दक्षिणेयी वैश्वामित्री तदुत्तरा वाम देवी मध्य मे स्थित शुभा गौतमी भरद्वाजी-आत्रेयी और अन्य जामदग्नी ये सात स्वरूपों में कही गयी हैं । उन महात्मा सब ऋषियों ने यजन करने के लिये एक सत्र

किया था ॥३-५॥ पारदर्शी ऋषियों ने एक महान् सत्र वहाँ पर निष्पादित किया था। इसी बीच में वहाँ पर देवों का एक महान् प्रबल शत्रु आ गया था ॥६॥ वह विश्वरूप इस नाम से विख्यात था। वह फिर मुनियों के सत्र मे समागत हो गया था। उसने ब्रह्मचर्य और तप से उन सबका विधि के साथ समाराधन करके बहुत ही विनम्रता के साथ उन सब ऋषियों से अनुक्रम पूर्वक उसने पूछा था ॥७॥

ध्रुवं सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना ।
यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरं ॥
यज्ञैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वक्तुमर्हथ ॥८
तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना. ॥९
कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च ।
त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम् ॥१०
ततश्च कारण कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम् ।
उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्बुधाः ॥११
कर्मणा कारणत्व च कारणे पुष्कले सति ।
भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रित फलम् ॥१२
कर्मापि द्विविध ज्ञेयं क्रियमाण तथा कृतम् ।
कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते ॥१३
तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम् ।
यद्यद्भावयते जन्तु. कर्म कुर्वन्विचक्षणः ॥१४

विश्व रूप ने कहा—सभी मेरे स्वास्थ्य के होने के कारण से यथा काम निश्चित एव ध्रुव हैं। अब जिस तरह से मेरा महा बलवान् पुत्र हो जावे जो कि देवो को भी दुर्धर हो—ऐसा कृपाकर कीजिए। आप सब मुनिगण हैं। यज्ञो के द्वारा तथा तपस्या के बल से यही कुछ कहने के लिये योग्य होते हैं ॥८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहा पर महान् बुद्धि वाले विश्वामित्र जी ने कहा था जो कि महान् मन वाले भी हैं ॥९॥ विश्वामित्र जी ने कहा—हे तात ! कर्म के द्वारा अनेक प्रकार के फल प्राप्त हुआ करते हैं। तीन कारण होते हैं उन तीनों में कर्म प्रथम-प्रमुख

कारण होता है ॥१०॥ उनमे एक कर्त्ता कारण है-अन्य उपादान है और बीज है। किन्तु कर्म को बुध पुरुष नही जानते हैं ॥११॥ पुष्कल कारण के होने पर कर्मों को कारणत्व होता है। भाव और अभाव फल मे देखे गये है इस कारण से फल कर्म के ही आश्रित होता है ॥१२॥ वह कर्म भी दो प्रकार का जानना चाहिए। एक तो क्रियमाण कर्म होता है और दूसरा किया हुआ होता है क्रियमाण कर्म का कर्त्तव्य साधन जो जो भी है वह कहा जाता है॥१३॥ कर्म की सिद्धि मे तद्भावा हैं और दोनो स्थलों मे भी कारण है। जो भी विलक्षण जन्तु कर्म करता हुआ भावना करता है ॥१४॥

तद्भावनानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते ।
करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि ॥१५
अन्यथा स्यात्फल सर्वं तस्य भावानुरूपत. ।
तस्मात्तपो व्रत दान जपयज्ञादिकाः क्रियाः ॥१६
कर्मणस्त्वनुरूपेण फल दास्यन्ति भावतः ।
तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७
भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा ।
तामसस्तु तथा ज्ञेय. फल कर्मानुसारत. ॥१८
भावनानुगुण चेति विचित्रा कर्मणा स्थितिः ।
तस्मादिच्छानुसारेण भाव कुर्याद्विचक्षणः ॥१९
पश्चात्कर्मापि कर्तव्य फलदाताऽपि तद्विधम् ।
फल ददाति फलिना फले यदि प्रवर्तते ॥२०
कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावत. ।
सदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१

उसी-उसी भावना के अनुरूप फल की निष्पत्ति कही जाया करती है। यदि बिना भावना के ही विधि-विधान पूर्वक कर्म किया करता है उसका फल उसी के भावो के अनुरूप सब अन्यथा ही हुआ करता है। इसी कारण से तप-व्रत-दान-जप-यज्ञ आदि क्रियाऐं होती हैं। अनुरूपता से कर्म के फल को भाव से देंगे। इसीलिए भावना के अनुसार ही कर्म

फल दिया करते हैं ॥१६-१७॥ वह भाव भी तीन प्रकार का हुआ करता है जो कि सात्विक-राजस और तापस तथा फल कर्मों के ही अनुसार हुआ करता है ॥१८॥ भावना के ही अनुगुण कर्मों की स्थिति भी विचित्र होती है। अतएव विचक्षण पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार ही भाव रखना चाहिए॥१६॥ पीछे कर्म भी करना चाहिए फलों का देने वाला भी उसी प्रकार का फल दिया करता है यदि फल वालो के फल में प्रवृत्त होता है ॥२०॥ वहा पर कर्म कार नहीं है। स्वभाव से ही कर्म करना चाहिए । वह ही उपदान आदि और सत्वादि गुणो के भेद से होता है ॥२१॥

भावात्प्रारमते तद्वद्भावैः फलमवाप्यते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२
भावस्थितं भवेत्कर्म मुक्तिदं बन्धकारणम् ।
स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवेह परत्र च ॥२३
फलानि विविधान्याशु करोति समतानुगम् ।
एक एव पदार्थोऽसौ भावैर्भेदः प्रदृश्यते ॥२४
क्रियते भुज्यते वाऽपि तस्माद्भावो विशिष्यते ।
यथाभाव कर्म कुरु यथेप्सितमवाप्स्यसि ॥२५
एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं विश्वामित्रस्य धीमतः ।
तपस्तप्त्वा बहुकालं तामसं भावमाश्रितः ॥२६
विश्वरूपः कर्म भीमं चकार सुरभीषणम् ।
पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७
आत्मकोपानुसारेण भीमं कर्म तथाऽकरोत् ।
भीषणे कुण्डस्थाने तु भीषणे जातवेदसि ॥२८

भावों से प्रारम्भ किया जाता है उन्ही के अनुसार भावों ही से फल प्राप्त किया जाता है। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का कर्म ही कारण हुआ करता है ॥२२॥ भाव में स्थित कर्म ही मुक्ति का देने वाला तथा बन्ध का कारण हुआ करता है। स्वभाव के अनुगुण ही अपना ही कर्म इस लोक में और परलोक में फल का कारण होता है। समतानुग कर्म

विविध प्रकार के फलों को बहुत ही शीघ्र ही दिया करता है। एक ही पदार्थ होता है किन्तु भावों के होने से उसमें भेद दिखलाई दिया करता है ॥२३-२४॥ जो कुछ किया जाता है अथवा भोगा जाता है (खाया जाता है) इसमें भाव विशेषता रखता है। यथाभाव अर्थात् भाव के अनुसार कर्म करो जो भी अभीष्ट होगा वही प्राप्त होगा ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम धीमान् विश्वामित्र ऋषि के इस वाक्य को सुन कर बहुत से समय तक तपस्या करके वह तामस भाव में समाश्रित हो गया था ॥२६॥ उस विश्व रूप ने सुरों को भीषणता प्रदान करने वाला भीम कर्म किया था। यद्यपि सभी प्रमुख ऋषिगणों ने उसे निरय ही रोका भी था और तो भी उनके देखते हुए वह भयानक कर्म ही करता रहा था ॥२७॥ अपने कोप के अनुसार उसी प्रकार का भयानक कर्म उसने किया था और उसका भीषण ही कुण्ड का गर्त्त था तथा भीषण ही अग्नि थी जिसमें उसने अपना कर्मारम्भ किया था ॥२८॥

भीषणं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गुहाशयम् ।
एनं तपन्तमालक्ष्य वागुवाचाशरीरिणी ॥२९
जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्तो व्यजीयत ।
वृथाऽऽत्मानं विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदसि (?) ॥३०
स एवेन्द्र. स वरुणः स च स्यात्सर्वमेव च ।
त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हुतवान्वृजिनोद्भवः ॥३१
वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि वृजिनाऽभवत् ।
भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितु. ॥३२
सृजत्यशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते ।
विररामेति सकोर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वराः ॥३३
भीमेश्वरं नमस्कृत्य जग्मुः स्व स्वमथाऽऽश्रमम् ।
विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तथाकृतिः ॥३४
भीमभावो भीमतनुं ध्यात्वाऽऽत्मानं जुहाव ह ।
तस्माद्भीमेश्वरो देवः पुराणे परिपठ्यते ॥
तत्र स्नानं च दानं च मुक्तिदं नात्र संशय. ॥३५

परम भीषण रौद्र पुरुष का ध्यान करके आत्मा को गुहा मे शयन करने वाला इस प्रकार से तपश्चर्या करते हुए उसको लक्ष्य करके बिना शरीर वाली आकाशवाणी ने कहा ॥२९॥ वृत्र के जटाजूट मे बिना आत्मा को नही जीवित किया था। विश्वरूप व्यर्थ ही आत्मा को अग्नि मे हवन करता है ॥३०॥ वह ही इन्द्र है-वह ही वरुण है और वह सभी कुछ है। वृजिनोद्‌भव ने अपने आपका त्याग करके जरा मात्र का हवन किया था ॥३१॥ वेद मे वृत्र-इस नाम से कहा जाता है और वह ही वृजिन हो गया था। जगत् के स्वामी भीम की महिमा को कौन जानता है ॥३२॥ वह इस सम्पूर्ण चराचर का सृजन करता है और वह मङ्ग से लिप्त नही होता है। यह आकाशवाणी इतको कह सकीर्तित करके विरत हो गई थी। मुनीश्वरो ने भीम को प्रणाम किया था और फिर वे सब अपने२ आश्रमो को चले गये थे। विश्वरूप महान् भीम (भयानक) और भीषण कर्म के करने वाला तथा भीषण ही आकृति वाला था ॥३३-३४॥ उसने भीम भाव ग्रहण करके ही भीम तनुका ध्यान करके अपने आत्मा का हवन किया था। इसीलिये पुराण मे भीमेश्वर देव इस नाम से पढ़ा जाया करता है। वहा पर स्नान करता दान देना मुक्ति के प्रदान करने वाला है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या,
विबुधपतिं शिवमत्र भीमरूपम् ।
जगति विदितमन्यपापहारि-
स्मृतिपदचरणेन मुक्तिदश्च (?) ॥३६
गोदावरी सावददोषपाप-
गणहृदन्तो परमार्थदात्री ।
गदेय गर्धन विशारतन्नु,
मत्ताम्बुराशिं समनुप्रविष्टा ॥३७
स्नात्वा नु तस्मिन्नुकृतो शरीरा,
गोदावरीवारिधिसङ्गमे यः ।

उद्धृत्य तीव्रान्निरयादशेषा-
त्स पूर्वजान्याति पुरं पुरारेः ॥३८

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं,
तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः ।
दृष्टे हि तस्मिन्न पुनर्विशन्ति
शरीरिणः संस्मृतिमुग्रदुःखाम् ॥३६

जो पुरुष भक्ति की भावना से इसका पठन करता है—श्रवण किया करता है और देवों के स्वामी भीमस्वरूप वाले शिव का यहाँ पर ध्यान करता है तो जगत् मे वे अशेष पापों के हरण करने वाले विदित हैं और स्मृति पद धारण के द्वारा मुक्ति के भी प्रदान करने वाले हैं ॥३६॥ गोदावरी सरिता अशेष पापों के हरण करने वाली हैं और पाप समूह के हरण के साथ ही परमार्थ के प्रदान करने वाली भी हैं। यह गोदा-दास ही सब जगह पर है और विशेष रूप से जहाँ पर अम्बुराशि समुद्र है वहाँ समनु प्रविष्ट होगई है ॥३७॥ जो शरीर धारी सुकृत् वाला है उस गोदावरी और वारिधि (सागर) के सङ्गम मे स्नान करता है वह बहुत ही तीव्र नरक से अपने सब पूर्वजों का उद्धार करके अन्त मे पुरारि भगवान् के पुर मे प्रवेश किया करता है ॥३८॥ वेदान्तों के द्वारा जो जानने के योग्य हैं और जिनकी उपासना करनी चाहिए वही साक्षात् ब्रह्म भगवान् भीमनाथ हैं। उनके दर्शन करने पर शरीरधारी इस उग्र दुःखों वाली संसृति मे फिर कभी प्रवेश नही किया करते हैं अर्थात् पुन-र्जन्म उनका नही होता है ॥३६॥

गंगासागरसंगमतीर्थवर्णन

सा संगता पूर्वमपांपतिं तं,
गङ्गा सुराणामपि वन्दनीया ।

देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना,
सस्तूयमाना मुनिभिर्मरुद्भिः ॥१
वसिष्ठजाबालियाज्ञवल्क्य-
क्रत्वङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः ।
शातातपः शौनकदेवरात-
भृग्वग्निवेश्यात्रिमरीचिमुख्याः ॥२
सुधूतपापा मनुगौतमादयः,
सकौशिकास्तुम्बरुपर्वताद्याः ।
अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः,
सगालवा योगपरायणाश्च ॥३
सवामदेवाङ्गिरसोऽथ भार्गवाः,
स्मृतिप्रवीणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।
सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञा-
स्ते गौतमी देवनदी तु गत्वा ॥४
स्तोष्यन्ति मन्त्रैः श्रुतिभिः प्रभूतं
हृष्टाश्च तुष्टैर्मुदितैर्मनोभिः ।
ता सगता वीक्ष्य शिवो हरिश्च,
आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः ॥५
तथाऽमरास्तौ पितृभिश्च दृष्टौ,
स्तुवन्ति देवौ सकलार्तिहारिणौ ॥६
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशङ्करौ ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस जनों के स्वामी के साथ जो पूर्व में सङ्गता हुई थी वह गङ्गा देवी सुरों के द्वारा भी वन्दना करने के योग्य है। समस्त देव उसका अनुगमन करते हैं और मुनिगण तथा मरुद्गण के द्वारा उसका संस्तवन किया जाता है। मुनिगण के नाम इस प्रकार से हैं—वसिष्ठ, जाबालि, याज्ञवल्क्य, क्रतु, अङ्गिरा, दक्ष, मरीचि, वैष्णव, शातातप, शौनक, देवरात, भृगु, अग्निवेश्य, अत्रि, मरीचि, मुख्य हैं

॥१-२॥ सुव्रत पाप, मनु, गौतम आदि, कौशिक तुम्बरु, पर्वत आदि, अगस्त्य, मार्कण्ड, पिप्पल आदि, गालव, योगपरायण। वामदेव, अङ्गिरा, भार्गव, स्मृतियो मे परम प्रवीण और श्रुतियो के द्वारा परम मनोज्ञ सब थे। सभी पुराणो के अर्थों के ज्ञाता-बहुत थे। ये सब देव नदी गौतमी पर पहुंच कर बहुत से मन्त्रो के द्वारा और श्रुतियो के द्वारा अतिशय हृष्ट-तुष्ट और मुदित मनो के द्वारा स्तवन करते हैं। भगवान् शिव और श्री हरि ने उस गङ्गा को सगता हुई देखकर मुनिगणो के लिये अपने स्वरूपों का दर्शन कराया था ॥३-५॥ उसी भांति देवो ने भी दर्शन प्राप्त किये थे और पितृगणो ने भी उन दोनो को देखा था। सभी समस्त पीडाओ के हरण करने वाले उन दोनो देवो का स्तवन किया था ॥६॥ आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, लोकपालो का समुदाय सभी हाथ जोडकर भगवान् हरि और शङ्कर दोनो देवो की स्तुति कर रहे थे ॥७॥

सगमेषु प्रसिद्धेषु नित्य सप्तसु नारद।
समुद्रस्य च गङ्गाया नित्य देवो प्रतिष्ठितौ ॥८

गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः।
नित्य सनिहितस्तत्र माधवो रमया सह ॥९

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयैव स्थापित· शिव.।
लोकानामुपकारार्थमात्मन. कारणान्तरे ॥१०

चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवैर्मया सह।
तत्र सनिहितो विष्णुर्देवं. सह मरुद्गणैः ॥११

ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यात तदेव हयमूर्धकम्।
हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥
सोमतीर्थमिति ख्यात यत्र सोमेश्वर शिवः ॥१२

इन्द्रस्य सोमश्च वसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा।
प्रार्थितः सोम एवाऽऽदाविन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१३

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभि-
सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१४

हे नारद ! इन सात सङ्गमो मे नित्य ही जो कि गौतमेश्वर नाम से आख्यात हैं वे महेश्वर देव वहा सन्निहित रहते है और रमा देवी के साथ भगवान् माधव भी वहा नित्य विराजमान रहा करते हैं ॥८-९॥ ब्रह्मेश्वर इस नाम से जो विख्यात देव हैं वे मेरे ही द्वारा शिव भगवान् स्थापित किये गये थे । उनकी स्थापना लोको मे उपकार के लिये और अपने अन्य कारण मे की गयी थी ॥१०॥ जो चक्रपाणि-इस शुभ नाम से विख्यात हैं उनकी देवो के साथ मैंने स्तुति की थी । वहीं पर भगवान् विष्णु देवो के साथ तथा मरुद्गण के साथ सन्निहित रहा करते हैं ॥११॥ ऐन्द्र तीर्थ-इस नाम से विख्यात है और वही हय मूर्धक नाम से कहे जाते हैं । वहा पर हयमूर्धा विष्णु हैं और उनके मूर्धा पर सुरभी है । एक सोम तीर्थ नाम से विख्यात हैं जहा पर सोमेश्वर शिव विराजमान हैं ॥१२॥ देवो के द्वारा और ऋषियो के द्वारा सोम के स्रवण करने वाले इन्द्र के सोम की प्रार्थना की गयी थी और आदि मे इन्द्र के लिये ही इन्द्र का परिस्रव हुआ था ॥१३॥ इस प्रकार से प्रार्थना की थी-हे इन्दो ! सात दिशाएँ-नाना सूर्य-सात होता-ऋत्विज-देव-आदित्य जो सात हैं उनसे सोम की अभिरक्षा करो और इन्द्र के लिये सोम का परिस्रवण करो ॥१४॥

यत्ते राजञ्छृ्त हविस्तेन सोमाभिरक्ष नः ।
अराती वा मा नस्तारीन्मो च-
नः किंननामनदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१५

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोम नमस्य राजानं यो जज्ञे-
वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१६

कारुरहं ततो भिपगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा-
इव तस्यिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१७
एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च वज्रिणे।
तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञः पूर्णो जातः शतक्रतोः ॥१८
तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत्।
अग्निरिष्ट्वा महायज्ञं र्मामाराध्य मनीषितम् ॥१९
संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः।
स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०
तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्यं तदनन्तरम्।
यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासितुम् ॥२१

हे राजन्! जो आपके लिये हविश्रुत किया गया है उसमे हमारे सोम की अभिरक्षा करो। हमारे शत्रु न होवें। हमारे अरियो से पीछा छुडाओ। हे इन्दो! इन्द्र के लिये किञ्चन सोम का परिस्रवण करो ॥१५॥ हे ऋषे! मन्त्र कृत्तो के स्तोमो से कश्यप ऋषियों का वर्धन करते हुए सोम राजा को नमस्कार करके जिसने वीरुधो को उत्पन्न किया था वह वीरुधो का स्वामी है हे इन्दो! इन्द्र के लिये सोम का परिस्रवण करो ॥१६॥ काम रुद्र को-भिपगुपल प्रक्षिणी-ननानानधिय-वसूयव और अनुगा की भाति तास्थि को हे इन्दो! इन्द्र के लिये परिस्रवण करो ॥१७॥ इस तरह से कह कर ऋषियो ने वज्रधारी के लिये सोम की प्राप्ति करके उनको दे दिया था और फिर शत ऋतु का यज्ञ पूर्ण हो गया था ॥१८॥ वह सोम तीर्थ नाम से आख्यात हुआ था और उसके आगे आग्नेय था। महायज्ञो के द्वारा अग्नि का यजन करके मेरी आराधना करके जो भी मनीषित था उसकी प्राप्ति करतो थे। यह मेरे ही प्रसाद से हुआ था और मैं भी वहीं पर नित्य स्थित होगया था। लोको के उपकार करने के लिये भगवान् विष्णु और शिव भी यहा प्रतिष्ठित हो गये थे ॥१९-२०॥ इसी कारण से वह तीर्थ आग्नेय नाम से कहा गया था और इसके उपरान्त वह आदित्य कहा गया है

जहां पर कि वेदमय भगवान् आदित्य नित्य ही उपासना करने के लिये आया करते हैं ॥२१॥

रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टुं मा शङ्करं हरिम् ।
नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सकलो जनः ॥२२
रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात् ।
यस्मादादित्यमाख्यात बार्हस्पत्यमनन्तरम् ॥२३
बृहस्पतिः सुरैः पूजा तस्मात्तीर्थादवाप ह ।
ईजे च यज्ञान्विविधान्बार्हस्पत्य ततो विदुः ॥२४
तत्तीर्थस्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति ।
तस्मादप्यपर तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं कस्मिश्चित्कारणान्तरे ।
हिमालयेन तत्तीर्थमद्रितीर्थं तदुच्यते ॥२६
तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रद शुभम् ।
एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेश्च विनिःसृता ॥२७
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित् ।
सक्षेपेण तयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८

रूपान्तर से अर्थात् दूसरा कोई स्वरूप धारण करके मध्याह्न के समय मे मुझको-श्रीहरि को और भगवान् शम्भु को देखने के लिये ही वे आया करते हैं । अतएव यहां पर सदा और नित्य ही मध्याह्न के समय मे सभी मनुष्यों को जो भी दर्शनार्थी यहां आया करते हैं अवश्य ही नमस्कार करनी चाहिए ॥२२॥ सविता देव किस रूप से आते हैं—यह निश्चय नहीं है इसलिये यह तीर्थ आदित्य कहा गया है । इसके बाद मे बार्हस्पत्य कहा गया है ॥२३॥ बृहस्पति ने सुरों के द्वारा दी हुई पूजा को उस तीर्थ से प्राप्त किया था और अनेक प्रकार के यज्ञों का यजन किया था । सभी से बार्हस्पत्य नाम से जानते हैं ॥२४॥ उस तीर्थ के केवल स्मरण से ही सब ग्रहों की शान्ति हो जायगी । इससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो इन्द्र गोप श्रेष्ठ पर्वत पर है ॥२५॥ वहाँ किसी अन्य कारण से एक महा लिङ्ग की प्रतिष्ठा की गयी है । हिमालय के द्वारा यह

तीर्थ होता है और अग्नितीर्थ वह कहा जाता है ॥२६॥ वहा पर स्नान दान करना परम शुभ है और समस्त कामनाओ का देने वाला है । इस प्रकार मे वह गौतमी गङ्गा ब्रह्मादि से विनिःसृत हुई है ॥२७॥ जितनी भी जगह मे गमन करने वाली देवी है और वहा पर जो कोई भी तीर्थ हैं मैंने सक्षेप से उन सबको बतला दिया है और उनके जो भी रहस्य हैं वे भी सब शुभ कह दिये हैं ॥२८॥

वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा,
या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
वक्तु कथ तामतिसुप्रभावा-
मशेषतो नारद कस्य शक्तिः ॥२६
भक्त्या प्रवृत्तस्य यथाकथचि-
न्मे वापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।
तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासा-
त्ससुचित लोकहिताय तस्याः ॥३०
कस्तस्याः प्रतितीर्थं तु प्रभाव वक्तुमीश्वरः ।
अपिलक्ष्मीपतिर्विष्णुरल सोमेश्वर. शिव ॥३१
कश्चित्कस्मिश्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि ।
गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२
सर्वत्र सर्वदा पुण्या कोन्वस्या गुणकीर्तनम् ।
वक्तु शक्तस्ततस्तस्यै नम इत्येव युज्यते ॥३३

वेदो मे—पुराणो मे ऋषियो के द्वारा जो प्रसिद्धा गौतमी है वह लोको के द्वारा नमस्कृत है । हे नारद ! उस अत्यन्त सुप्रभाव वाली के विषय मे पूर्ण रूप से कथन करने की किसकी शक्ति हो सकती है ? अर्थात् किसी मे भी सामर्थ्य नही है ॥२६॥ भक्ति के द्वारा प्रवृत्त होने वाले मेरा जो कि किसी भी प्रकार से प्रवृत्त हो सका है कोई भी अपराध नही है—इसमे कुछ भी सशय नही है । इसी कारण से अत्यन्त प्रयास से मैंने कुछ दिङ्मात्र सूचित कर दिया है—जो कि उसके विषय मे यह समूचना लोको के हित ही के लिये की है ॥३०॥ उसके प्रत्येक तीर्थ के

प्रभाव को कौन बतलाने मे समर्थ है ? मैं तो विचारा हूँ ही क्या ! साक्षात् लक्ष्मी के पति विष्णु और सोमेश्वर शिव भी असमर्थ है ।।३१।। वही पर किसी स्थल मे काल के योग से तीर्थ होते हैं। हे महाप्राज्ञ ! गौतमी तो मनुष्यो के लिये सदा ही गुणो वाली है । यह तो सर्वदा और सर्वत्र ही परम पुण्यमयी है । इसके गुणो का कीर्त्तन करने को कौन समर्थ हो सकता है । उसके लिये मेरा नमस्कार है–यही युक्त होता है ।।३२-३३।।

—:※:—

तीर्थादोनाचातुर्विध्यादिनिरूपण

त्रिदैवत्या सुरेशान गङ्गा ब्रूपे सुरेश्वर ।
ब्राह्मणेनाऽऽहृता पुण्या जगतः पावनी शुभाम् ।।१
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि ।
या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ।।
पुनः सक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्ति. प्रजायते ।।२
कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा ।
महेश्वरजटाजूटे स्थिता सैव नमस्कृता ।।३
ब्रह्मतेज.प्रभावेण शिवमाराध्य यत्नत. ।
तत. प्राप्ता गिरिं पुण्य ततः पूर्वार्णव प्रति ।।४
आगत्य सगमा देवी सर्वतीर्थमयी नृणाम् ।
ईप्सितानां तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते ।।५
एतस्या नाधिकं मन्ये किंचित्तोयं जगत्त्रये ।
अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यद्य मन.स्थितम् ।।६
अद्याप्यस्या हि माहात्म्य वक्तुं यैश्चिन्न शक्यते ।
भक्तितो वक्ष्यते नित्यं या ब्रह्म परमार्थत ।।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे सुरेश्वर ! हे सुरेशान ! आप गङ्गा को विदंवरया बोल रहे हैं जो कि ब्राह्मण गौतम के द्वारा आहृत हुई हैं और परम पुण्यमयी-जगत् को पावन करने वाली एव शुभ हैं ॥१॥ हे सुरसत्तम ! आदि-मध्य और अवसान मे दोनो तीरो पर भी ईशा विष्णु के द्वारा और आप के द्वारा जो व्याप्त है उसके विषय मे पुन सक्षेप से कहो, मेरी तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पूर्व मे तो यह गङ्गा सबसे पूर्व मे तो मेरे कमण्डलु मे स्थित थी फिर यह भगवान् श्री विष्णु के चरण कमलो की अनुगामिनी हो गयी थी । इसके उपरान्त भगवान् महेश्वर देव के जटा जूट मे आकर स्थित हो गयी थी वही नमस्कृत हुई थी ॥३॥ इसके अनन्तर ब्रह्म तेज के प्रभाव से भगवान् शिव की समाराधना करके मन्त्र पूर्वक फिर गिरि के ऊपर वह प्राप्त हुई थी जो कि परम पुण्यमय था । इसके अनन्तर पूर्व सागर मे आकर उस समुद्र से देवी सङ्गत हो गयी थी जो कि मनुष्यो के लिये सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण थी । यह मनुष्यो की सभी अभीष्ट मनोरथो के प्रदान करने वाली थी और इसका प्रभाव विशेषता रखता है ॥४-५॥ तीनो भुवनो मे इससे अधिक बडा कोई भी तीर्थ मैं नहीं समझता हूँ एव मानता हू । इसी के प्रभाव से जो भी मन मे स्थित होता है वही हुआ करता है । आज भी इसके माहात्म्य को किसी के द्वारा भी कहा नहीं जा सकता है । परमार्थ रूप से जो साक्षात् ब्रह्म है वह भक्ति के भाव से ही नित्य कही जायगी ॥६-७॥

तस्याः परतरं तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम ।
अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथचन ॥८
श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषं गङ्गाया गुणकीर्तनम् ।
सर्वेषा न मतिः यस्मात्तत्रैवोपरतिं गता ॥
इति भाति विचित्रं मे मुने खलु जगत्त्रये ॥९
धर्मार्थकाममोक्षाणा त्वं वेत्ता चोपदेशकः ।
छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च ॥१०

धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम् ।
तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसां तथा ॥११
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो ।
यद्ब्रूपे भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा ॥१२
एतं मे संशयं ब्रह्मन्वाक्यात्त्वं छेत्तुमर्हसि ।
इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतः ॥१३

मेरी मति तो ऐसी ही है कि उससे पर तर अर्थात् अधिक बड़ा कोई तीर्थ नहीं है। अन्य तीर्थ से उसका साधर्म्य अर्थात् समानता किसी भी प्रकार से हो नहीं सकता है ॥८॥ मेरे वचनों के स्वरूप वाले अमृत से गङ्गा देवी के गुणों का कीर्त्तन श्रवण करके भी जिस कारण से सबकी मति की उपरति उसमें नहीं हुई है ? हे मुने ! इस त्रिलोकी मे निश्चय ही मुझको यह एक अद्भुत-सा प्रतीत हो रहा है ॥९॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—आप तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के ज्ञाता तथा उपदेश करने वाले हैं। रहस्य के सहित छन्द-पुराण और स्मृतियाँ-धर्मशास्त्र और जो कुछ अन्य है वह सभी आपके वाक्यों में प्रतिष्ठित है। हे प्रभो ! सब तीर्थ-सम्पूर्ण दान-यज्ञ-तप-देवता-मन्त्र और सेवा इनमें क्या सबसे अधिक है—यह मुझे बतलाइये। हे भगवन् ! आप जो भी कुछ बोलते हैं वही भक्ति के भाव से किया जावेगा और इसके विपरीत नहीं किया जावेगा ॥११-१२॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय में यह संशय विद्यमान है उसे आप छेदन करने के लिये समर्थ होते हैं। मन में रहने वाले इष्ट का श्रवण करके उससे मैं विस्मय को प्राप्त हो गया हूँ ॥१३॥

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं धर्ममुत्तमम् ।
चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च ॥१४
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः ।
वेदाश्च स्मृतिभिर्युक्ताश्चत्वारश्च प्रकीर्तिताः ॥१५
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा ।
गुणाः सन्ति तु चत्वारः समवेतेऽपि नारद ॥१६

सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः ।
साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः ॥१७
तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा ।
कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा ॥१८
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते ।
धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम् ॥१९
कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः ।
युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते ॥२०
उभयश्च विहीने च धर्मस्य स्यादभावता ।
तस्माद्द्वाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सुप्रतिष्ठितः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! सुनो, मैं रहस्य के सहित उत्तम धर्म को कहता हूं । चार प्रकार के तीर्थ हैं और चार ही तरह के युग भी हैं ॥१४॥ गुण (सत्व रज-तम) तीन हैं तथा सनातन देव पुरुष भी तीन ही हैं । स्मृतियों से युक्त वेद चार कीर्तित किये गये हैं ॥१५॥ पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ काम-मोक्ष) चार हैं तथा वाणी भी चार प्रकार की है । हे नारद ! समत्व से गुण भी चार हैं । सर्वत्र धर्म सामान्य है जिससे सनातन धर्म्म है । साध्य और साधन के भाव से वही धर्म बहुत प्रकार का माना गया है ॥१६-१७॥ सर्वदा उसका आश्रय देश और काल से दो प्रकार का होता है । काल मे आश्रय में रहने वाला धर्म वह सदा क्षीण होता है और वर्धमान भी होता है ॥१८॥ युगों की अनुरूपता से इस धर्म का एक-एक पाद क्षीण होता रहा करता है । हे महाप्राज्ञ ! धर्म की उसी भाँति देश की भी अपेक्षा होती है । यह दोनों ही देश और काल के प्रकार वाला होता है ॥१९॥ काल के द्वारा जो आश्रित धर्म है वह देश मे भी नित्य ही प्रतिष्ठित रहा करता है । युगों के क्षीण होने पर देशो मे वह हीन नहीं होता है ॥२०॥ दोनों में जो विहीन धर्म्म होता है उसका अभाव होता है । इसी कारण से यह धर्म चार पादों वाला सुप्रतिष्ठित होता है ॥२१॥

स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति ।
कृते देश च काल च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति ॥२२
त्रेताया पादहीनेन स तु पादः प्रदेशत ।
द्वापरे सार्धतः काले धर्मो देशे समास्थितः ॥२३
कलो पादेन चैकेन धर्मश्चलति सकटम् ।
एवविध तु यो धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते ॥२४
युगानामनुभावेन जातिभेदाश्च सस्थिताः ।
गुणेभ्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसस्थितिः ॥२५
गुणानामनुभावेन उद्भवाभिभवौ तथा ।
तीर्थानामपि वर्णाना वेदाना स्वर्गमोक्षयोः ॥२६
तादृग्रूपप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते ।
कालोऽभिव्यञ्जक. प्रोक्तो देशोऽभिव्यङ्ग्य उच्यते ॥२७
यदा यदा अभिव्यक्ति कालो धत्ते तदा तदा ।
तदेव व्यञ्जन ब्रह्मस्तस्माद्धास्त्यत्र सशयः ॥२८

यह धर्म भी देशो मे तीर्थों के स्वरूप से प्रतिष्ठित होता है । कृत युग मे यह धर्म देश और काल को अवष्टब्ध करके स्थित रहा करता है ॥२२॥ त्रेता में वही धर्म एक पाद से हीन होता है और वह पाद प्रदेश से होता है । द्वापर मे काल मे आधा धर्म होता है अर्थात् दो ही पाद उसके शेष रहा करते हैं और वह देश मे समास्थित रहता है ॥२३॥ कलियुग मे एक ही पाद वाला धर्म रहता है जो कि बडे ही सङ्कट को प्राप्त हो जाया करता है तथा बडी ही कठिनाई से चलता है । जो इस प्रकार से धर्म का ज्ञान रखता है उसका धर्म क्षीण नही होता है ॥२४॥ युगों के अनुभाव से जातियों के भी भेद सस्थित हुआ करते है । गुणों से और गुणो के कर्त्ताओं से इस धर्म की संस्थिति बहुत ही अद्भुत होती है ॥२५॥ गुणो के ही अनुभाव से से इसका उद्भव (उत्पत्ति) और अभिभव (छिपाव) हुआ करते हैं । तीर्थों का-वर्णो का वेदों का स्वर्ग और मोक्ष का भी उसी प्रकार के स्वरूप की प्रवृत्ति से यह होता है ॥२६॥ उसी प्रकार की रूप-प्रवृत्ति से वह ही विशेषता को प्राप्त हो

जाया करता है। यह काल ही अभिव्यञ्जक कहा गया है और देश उस काल का अभिव्यङ्ग्य हुआ करता है ऐसा ही कहा जाता है ॥२७॥ जब जब काल अभिव्यक्ति को धारण किया करता है अर्थात् प्रकट स्वरूप वाला होता है तब-तभी हे ब्रह्मन्! व्यञ्जन (प्रकटता) होती है इसमे कुछ भी स शय नही है ॥२८॥

युगानुरूपा मूर्ति स्याद्देवाना वैदिकी तथा ।
कर्मणामपि तीर्थाना जातीनामाश्रमस्य तु ॥२६
त्रिदैवत्य सत्ययुगे तीर्थं लोकेषु पूज्यते ।
द्विदैवत्य युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम् ॥३०
कलौ न किंचिद्विज्ञेयमथान्यदपि तच्छृणु ।
दैव कृतयुगे तीर्थं त्रेतायामासुर विदु ॥३१
आर्षं च द्वापरे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते ।
अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥
पौलस्त्या यत्त्वया पृष्ट तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात
यदा चेय हरशिर प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३२
तदा प्रभृति सा गङ्गा शभो प्रियतराऽभवत् ।
तद्देवस्य मन ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४
उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता ।
शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५

युगो के ही अनुरूप देवो की मूर्ति वैदिकी हुआ करती है। इसी भाँति कर्मों की-तीर्थों की-जातियो की और आश्रम की भी हुआ करती है ॥२६॥ तीन देवताओ वाला सत्ययुग म तीर्थ होता है जो लोको मे पूजित हुआ करता है। अन्य त्रेतायुग मे दो देवताओं वाला होता है द्वापर एक देवता वाला तथा कलियुग मे कुछ भी नहीं जानना चाहिए अर्थात् कलियुग मे कोई भी देवता नहीं होता है। इसके अतिरिक्त और भी श्रवण करो। कृतयुग मे दैवतीर्थ होता है और त्रेता में आसुर होता

जाया करता है। हे नारद ! इसके सिवाय मैं और भी बतलाऊँगा-- इसका भी श्रवण करो कि वह क्या कारण होता है ॥३२॥ गौतमी के विषय मे जो तुमने मुझसे पूछा है उसी को मैं विस्तार के साथ बतलाता हूँ। हे महामुने ! जिस समय मे यह गङ्गा भगवान् शम्भु के शिर पर प्राप्त हो गयी थी तभी से आरम्भ करके वह गङ्गा भगवान् शम्भु की अधिक प्यारी बन गयी थी। उन देवेश्वर के मत को जानकर वह गजवक्त्र (श्री गणेशजी) से बोली थी ॥३३-३४॥ यह उमा तो तीनो लोकों की स्वामिनी, जगत् की माता और स सार की हितकारिणी है तथा परम शान्त स्वरूपा, श्रुति इन शुभ नामो से विख्यात है एव भुक्ति और मुक्ति दोनो की देने वाली है ॥३५॥

तन्मातुर्वचन श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥३६
किं कृत्यं शाधि मा मातस्तत्कर्ताऽहमसशयम् ॥३७
उमा सुतमुवाचेद महेश्वरजटास्थिता ।
त्वयाऽवतार्यता गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती ॥३८
पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत ।
शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदाः सनातना ॥३९
तत्रैव ऋषयः सर्वे मनुष्या पितरस्तथा ।
तस्मान्निवर्तयेशानं देवदेव महेश्वरम् ॥४०
तस्या निर्गते देवे गङ्गायाः सर्व एव हि ।
निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं वचो मम ॥
निवर्तय ततस्तस्याः मवभावेन शङ्करम् ॥४१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस माता के इस वचन का श्रवण करके गजवदन ने भी यह कहा था—॥३६॥ गजवदन ने कहा—हे माताजी ! अब क्या करना है मुझको आदेश दीजिए। मैं बिना किसी संशय के यही अवश्य ही करूँगा ॥३७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगदम्बा उमा ने उस समय में अपने पुत्र गजवदन (श्रीगणेशजी) से कहा था कि भगवान् महेश्वर देव के जटाजूट मे गङ्गा देवी समवस्थित हैं। यह सती सचमुच ही भगवान् ईश्वर की प्रिया है। उसको तुम नीचे उतार दो

॥३८॥ हे सुत ! फिर यह बात बहुत ही अद्भुत है कि ईश्वर वही पर सर्वदा स्थित रहा करते हैं और जहाँ पर भगवान् शिव रहते हैं वहीं पर समस्त सुरगण भी निवास किया करते हैं और ये सनातन वेद भी रहते हैं ॥३९॥ वहीं पर सब ऋषिगण मनुष्य और पितृगण भी वास किया करते है । इसलिये उस स्थल से देवो के देव महेश्वर को निवृत्त करो ॥४०॥ उन देवेश्वर के वहाँ से हट जाने पर अर्थात् गगा से दूर हट कर चले आने पर सब ही निवृत्त हो जायगे । यही मेरा आदेश वचन है उसका तुम श्रवण करो । इसलिये सर्व भाव से वहा स भगवान् शङ्कर को हटाओ ॥४१॥

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर ॥४२
नैव शक्य. शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम् ।
अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुन् ॥४३
न शक्या जगता मातरयान्यच्चापि कारणम् ।
गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४
ऋषिणालो कपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा ।
सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५
आराधयित्वा देवेश तपोभि स्तुतिभिर्भवम् ।
तुष्टेन शङ्करेणेदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६
वरान्वरय पुण्याश्च प्रियाश्च मनसेप्सितान् ।
यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७
एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति ।
इदमेव तदोवाच सजटा देहि शङ्कर ॥
गङ्गा मे याचते पुण्या किमन्येन वरेण मे ॥४८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी माता उमा देवी के इस वचन का श्रवण करके फिर गणेश जी ने कहा—॥४२॥ गणेश्वर ने कहा—हे माताजी ! देव शिव मेरे द्वारा तो हटाये जाने के योग्य नहीं हैं अर्थात् मैं तो उनको वहा से नहीं हटा सकता हू । जब देवेश्वर शिव ही वहाँ से निवृत्त नहीं होवे तो वहाँ देव भी नहीं हटाये जा सकते हैं ॥४३॥ हे

जगत् की माता ! फिर तो कोई भी हटाया नही जा सकता है। इसके अनन्तर और भी कारण है और वह यह है कि गगा पूर्व मे महात्मा गौतम ने अवतरित की है जो ऋषि समस्त लोको के द्वारा पूजा के योग्य हैं और तीनो लोको के हित करने वाले हैं। सामोपाय ही गगा का अवतरण किया गया है। पूज्य ब्रह्मतेज के द्वारा तपो से और स्तुतियो से देवेश की आराधना करके ही इनको अवतरित किया है। जब भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हो गये थे तब उन्होंने महात्मा गौतम से यह कहा था ॥४४-४६॥ भगवान् शङ्कर बोले—हे मुने ! तुम जो भी तुम्हारे मन मे अभीष्ट हो तथा प्रिय हो एव पुण्यमय हो उन वरदानो का मुझ से वरण कर लो। हे महामते ! आज तो तुम जो-जो भी कुछ चाहोगे उस सबका मैं देने वाला हूँ अर्थात् वह सभी मैं दे दूँगा ॥४७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—मैं भी उस समय मे सुन रहा था और मेरे सुनते२ उन गौतम से भगवान् शिव ने कहा था। उस समय मे उन गौतम मुनि ने उनसे कहा था—हे शङ्कर ! जटा के सहित मुझे प्रदान कीजिए। मैं परम पुण्यमयी गगा की याचना ही करता हूँ फिर अन्य वरदान से प्रयोजन ही क्या है ॥४८॥

पुनः प्रोवाच त शभुः सर्वलोकोपकारकः ॥४६
उक्त न चाऽऽत्मनः किंचित्तस्माद्याचस्व दुष्करम् ॥५०
गौतमोऽदीनसत्वस्त भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१
एतदेव च सर्वेषा दुष्कर तव दर्शनम्।
मया तदद्य सप्राप्त कृपया तव शंकर ॥५२
स्मरणादेव ते पङ्क्त्या कृतकृत्या मनीषिणः।
भवन्ति किं पुनः साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३
एवमुक्तं गौतमेन भवो हर्षसमन्वितः।
त्रयाणामुपकारार्थं लोकाना याचित त्वया ॥५४
न चाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम्।
एव प्रोक्तः पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५

विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वितः ।
सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम् ॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेदं स गौतमः ॥५६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त लोको के उपकार करने वाले फिर भगवान् शङ्कर ने उस मुनि गौतम से कहा था ॥४६॥ शम्भु देव ने कहा—तुमने अपनी भलाई के लिये कुछ भी याचना नही की है अतएव हमारा कथन है कि कुछ अत्यन्त कठिन वस्तु हो उसे माँग लो ॥५०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि अदीन सत्त्व वाले थे अर्थात् उनके सत्त्व मे नाममात्र को भी दैन्य भाव था ही नही । वह फिर हाथ जोडकर भगवान् शङ्कर से बोला था ॥५१॥ गौतम मुनि ने कहा—हे भगवन् ! आपका दर्शन ही सब के लिये परम दुष्कर वस्तु है । हे शङ्कर ! वही मैंने आज प्राप्त कर लिया है और यह भी आपकी ही कृपा का प्रसाद मुझे प्राप्त हो गया है ॥५२॥ आपके सभी चरणो के स्मरण से ही मनीषी-गण इस जगत् मे कृतकृत्य हुआकरते हैं फिर जिसमे आप महेश्वर भगवान् के साक्षात् देख लिये जाने पर तो कुछ कसर ही दोष नही रह जाती है ॥५३॥ गौतम ने कहा—यही आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त करना परम दुष्कर है मैंने अब उसे पा लिया है । श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से जब भगवान् भवानीश से कहा तो गौतम के ऊपर महेश्वर बहुत ही प्रसन्न हुए थे । फिर शिव ने उस द्विज से कहा था कि हे महाद् बुद्धि वाले ! तुमने जो यह याचना भी है वह तीनो लोको की भलाई के लिये ही की है अपने आपके लिये तो कुछ भी माँगा ही नहीं है जब ऐसा शिव भगवान् के द्वारा कहा गया तो फिर उस विप्र ने ध्यान करके शिव से कहा था ॥५४-५५॥ उस अदीन आत्मा वाले तथा भगवान् शिव की भक्ति से सयुत उस द्विज ने सब लोगो के उपकार के लिये ही पुनः यह याचना की थी । उस समय मे सभी लोकपाल भी सुन रहे थे । उस गौतम ने यह कहा था ॥५६॥

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरेः ।
सर्वत्र सर्वदा तस्याः स्यातव्यं वृषभध्वज ॥५७

फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगत' प्रभो ।
तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ।।५८
यत्र ते सनिधिर्नित्य तदेव शुभद विदुः ।
यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसस्थिता ।।
सर्वत्र तव सानिध्यात्सर्वतीर्थानि शङ्कर ।।५६
तद्गौतमवच. श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवीऽब्रवीत् ।।६०
यत्र क्वापि च यत्किचिद्यो वा भवति भक्तितः (?) ।
यात्रा स्नानमथा दान पितृणा वाऽपि तर्पणम् ।।६१
श्रवण पठन वाऽपि स्मरण वाऽपि गौतम ।
यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रत ।। २
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना ।
सरत्ना सौषधी रम्या सार्णवा धर्मभूपिता ।।६३
दत्वा भवति यो धर्म स भवेद्गौतमीस्मृतेः ।
एव विधा इला विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते ।।६४

गौतम महामुनीन्द्र ने कहा था कि यह देवी ब्रह्माजी के पर्वत से निकली थी और जहाँ तक सागर है वह गई है। हे वृषभध्वज ! मैं यही याचना तथा प्रार्थना करता हूँ कि आप उन सभी स्थलों में सर्वदा सस्थित होकर विराजमान रहें ।।५७।। हे प्रभो 'जो पुण्य-फल के इच्छुक हैं। उन सब के जगत् में प्रदान करने वाले आप ही तो हैं। हे देवेश्वर ! अन्य जो भी शुभ तीर्थ हैं कहीं कहीं पर ही शुभ हुआ करते हैं ।।५८।। जहाँ पर ही आपकी सन्निधि है वही स्थल नित्य ही शुभ फल देने वाला होता है–ऐसा ही जाना जाता है। आपकी जटा और मुकुट में से स्थित रहने वाली गङ्गा देवी को आपने प्रदान किया है हे शङ्कर ! सभी जगह पर आपके सान्निध्य होने के कारण से वे सभी स्थल तीर्थ हैं ।।५६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम के इस वचन का श्रवण कर पुनः हर्षातिरेक में विहृस होते हुए भगवान् शिव ने यह कहा था ।।६०।। भगवान् शिव बोले—जहाँ कहीं पर भी जो कुछ भी भक्ति की भावनाओं से होता है अथवा किया जाता है। यात्रा हो–स्नान हो–दान हो अथवा पितृगणों के

लिये तर्पण हो ! ये ही परम धार्मिक पुण्य कर्म हैं जो तीर्थों में किये जाते हैं ॥६१॥ श्रवण-पठन स्मरण हे गौतम ! इनमे एक भी जो कोई मनुष्य भक्ति भाव से किया करता है और गोदावरी की भक्ति मे यत व्रत होता है कि शैल-वन-कानन से युक्त-सात द्वीपो वाली-रत्नो से भूपित-ओपधियो वाली-समुद्र युक्त-धर्म से भूपित भूमि का दान करने से हुआ करता है। गौतमी के स्मरण करने से ही उतना फल होता है। इस प्रकार से हे विप्र ! इना ऐसी ही गोदनाथा कही जाया करती है ॥६२-६४॥

चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्सानिध्ये यतव्रतः ।
भूभृते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६
तस्माद्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः ।
गौतम्या विश्ववन्द्याया महानद्या तु भक्तितः ॥६७
तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति ।
सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८
एतच्छ्रुतं मया मातर्वदतो गौतमं शिवात् ।
एतस्मात्कारणाच्छ्रुभुगङ्गायां नियतः स्थितः ॥६९
को निवर्तयितुं शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम् ।
अयापि मातरेतस्यान्मानुपा विघ्नपादकः ॥७०॥

चन्द्र या सूर्यदेव के ग्रहण के समय में मेरी सन्निधि में यत व्रत होकर उस वैष्णव भक्त के लिये सर्व प्रकार के अलङ्कारो से समल कृत, वत्सो से युक्त सुन्दर गोओ का जो सुधी द्विज हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! लोकों मे विख्यात सङ्गम मे दान किया करता है और उसका जो पुण्य-फल प्राप्त करता है उससे भी बड़ी श्रेष्ठ पुण्य-फल गौतमी मे स्नान और दान आदि से मनुष्य प्राप्त कर लेता है क्योंकि यह महान् ही विश्व के वन्दनीय है। इसकी भक्ति का बहुत ही महान् पुण्य-फल होता है ॥६५-६७॥ इससे यह गोदावरी गङ्गा आपके ही द्वारा लायी हुई होगी यह

सभी पापो के क्षय करने वाली और सभी अभीप्सितो के प्रदान करने वाली है ।।६८।। गणेश्वर देव ने कहा—गौतम मुनि के प्रति बोलने वाले शिव से हे माता जी ! यह मैंने सुना है । इस कारण से भगवान् शम्भु गङ्गा मे नियत रूप से स्थित रहा करते हैं ।।६६।। हे अम्बे ! उन करुणा के सागर देवेश्वर को वहा से निवर्त्तन करने के लिये किसकी सामर्थ है ? अर्थात् कोई भी ऐसी शक्ति नही रखता है ।।७०।।

विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम् ।
न नमन्ति शिव देव न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ।।७१
तथा मातः करिष्यामि तव सतोपहेतवे ।
सनिरोद्धुमयो क्लेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ।।७२
ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुपान्प्रति किचन ।
विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ।।७३।।
अथो विघ्नमनादृत्य गौतमी याति भक्तितः ।
स कृतार्थो भवेल्लोके न कृत्यमवशिष्यते ।।७४
विघ्नान्यनेकानि भवन्ति गेहा-
न्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
निधाय तन्मूर्ध्नि पद प्रयाति,
गगा न कि तेन फल प्रलब्धम् ।।७५
अस्या. प्रभाव को ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः ।
सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ।।७६
धर्मार्थकाममोक्षाणा साधन यच्चराचरे ।
तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ।।७७

जो कर्मों के पाश से विशेष रूप से निबद्ध हैं वे समीप मे सस्थित भी गोदावरी के ऊपर नही जाया करते हैं और वे कभी देवेश्वर शिव को प्रयोग नही किया करते हैं और न कभी स्मरण करते हैं तथा स्तवन करते हैं ।।७१।। तथापि हे माताजी ! आपके सन्तोष के कारण के लिये ही मैं कुछ करूँगा । उनके सनिरोध करने के लिये बडा भारी क्लेश है । आपसे जो भी वचन मैंने कह दिया है उसे क्षमा कीजिए ।।७२।।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—तभी से आरम्भ करके वे विघ्नो के ईश मनुष्यो के प्रति विघ्न किया करते है जो भी कोई उपासना करके प्रवृत्त हुआ करता है ।।७३।। इसके भी अनन्तर जो विघ्नो का अनादर करके भक्ति-भाव से गौतमी के समीप मे गमन किया करता है वही लोक मे कृतार्थ हो जाता है और फिर उसे लोक मे कृत्य करने के लिये कुछ भी अवशिष्ट नही रहा करता है ।।७४।। इस अधम नर के लिये जो घर मे निर्गमन करने की अभिलापा रखा करता है उसे अनेक विघ्न हुआ करते हैं। उन सभी विघ्नो के मस्तक पर पैर रखकर जो गङ्गा को प्रणाम किया करता है उसने इस जगत् मे क्या फल नही प्राप्त कर लिया है ? अर्थात् उसे सभी पुण्यो का फल अवश्य प्राप्त हो जाया करता है ।।७५।। इस गङ्गा के प्रभाव को कौन कहे ? जिसे साक्षात् सदाशिव प्रभु भी नही कह सकते हैं सक्षेप से मैंने इतिहास पद के अनुगमन करने वाला वृत्त कह दिया है ।।७६।। इस चराचर जगत् मे धर्म-अर्थ काम और मोक्ष का जो साधन है वह इस विस्तारयुक्त इतिहास मे सभी विद्यमान है ।।७७।।

वेदोदित श्रुतिसकलरहस्यमुक्त.
सत्कारण समभिधानमिद सदैव ।
सम्यवच दृष्ट जगता हिताय,
प्रोक्त पुराण बहुधर्मयुक्तम् ।।७८।।
अस्य श्लोक पद वापि भक्तितः शृणुयात्पठेत् ।
गगा गगेति वा वाक्य स तु पुण्यमवाप्नुयात् । ७९
कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिद,
सकलसिद्धिकर शुभद शिवम् ।
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रद,
गागमेतदुदीरितमुत्तमम् ।।८०।।
साधु गौतम भद्र ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया ।
य एना गौतमी गगा दण्डकारण्यमाप्नुयात् ।।८१

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये ।
तानि स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ ॥८३
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम् ।
सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ ॥८४

वेदो मे कहे हुए श्रुतियो का सम्पूर्ण रहस्य हमने वर्णित कर दिया है। सत् कारण वाला यह सदा ही समभिधान है और भली भाँति से देखा हुआ तथा जगत् के हित के लिये बहुत से धर्म से युत यह पुराण कहा गया है ॥७८॥ इस पुराण का एक ही श्लोक और पद जो भक्ति-भाव से सुनता है या पाठ करता है अथवा "गङ्गा-गङ्गा" इस वाक्य का श्रवण या पठन करता है वह परम पुण्य-फल की प्राप्ति किया करता है ॥७६॥ यह कलियुग के कलङ्क का विनाश कर देने मे परम दक्ष हैं तथा सकल सिद्धियों के करने वाला शुभ का प्रदाता और मङ्गल स्वरूप है। यह जगत् मे पूजा करने के योग्य है और मन का अभीप्सित फल का देने वाला है तथा यह अतीव उत्तम गाङ्ग नाम से कहा गया है ॥८०॥ हे गौतम ! अच्छा है—तेरा कल्याण हो। इस संसार मे तेरे समान अन्य कौन हैं ? अर्थात् कोई भी तुम्हारे जैसा अन्य नहीं है जिसने इस गौतमी देवी श्री गङ्गा को दण्डकारण्य में प्राप्त किया है ॥८१॥ गङ्गा देवी से सौ योजन की दूरी पर रहते हुए भी जो कोई "गङ्गा-गङ्गा" इस तरह से अपने मुख से उच्चारण करता है वह सभी पापो से मुक्त हो जाता है और सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८२॥ इन भुवन त्रय में अर्थात् तीनों लोको में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं उन सब तीर्थों के स्नान करने के पुण्य को प्राप्त करने के लिये मनुष्य सिंह राशि पर गुरु के आने के अवसर मे इस गङ्गा पर आया करते हैं ॥८३॥ साठ वर्ष तक निरन्तर नियम पूर्वक जो अवगाहन (स्नान) करने का जो पुण्य है वही सिंहस्थ गुरु के होने पर केवल एक बार ही गोदावरी के स्नान से प्राप्त हो जाता है ॥८४॥

इयं तु गौतमी पुत्र यत्र कापि ममाऽऽज्ञया ।
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६

यस्य तत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम् ।
न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद ॥८७

यस्य कस्यापि नाऽऽख्येयं पुराणमिदमुत्तमम् ।
श्रद्दधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८

इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम् ।
एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९

लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०

हे पुत्र ! मेरी आज्ञा से जहां कहीं पर भी यह गौतमी सर्वदा सभी मनुष्यों को स्नान से ही मुक्ति प्रदान किया करती है और अवश्य ही मुक्ति होगी ॥८५॥ एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ-इनको करके जो फल प्राप्त होता है वही फल इसके श्रवण करने से ही हो जाया करता है ॥८६॥ जिसके घर में ब्रह्मा के द्वारा कहा हुआ यह पुराण रहता है उसको सांसारिक व्यथा वेदनाएँ नहीं होती हैं और वह संसार ही नहीं रहता है तथा हे नारद ! कलिकाल का भी डर नहीं होता है ॥८७॥ हे नारद ! जिस किसी ऐरेगैरे को यह पुराण नहीं बताना चाहिए क्योंकि यह अत्यन्त उत्तम है। जो श्रद्धालु हो-परम शान्त प्रकृति वाला हो किन्तु वैष्णव भक्ति रखने वाला हो तथा महान् आत्मा वाला हो उसको इसे कहना चाहिए। भुक्ति और मुक्ति के प्रदा-पापों को समूल उखाड़ फेंकने वाला यह पुराण है। इसके श्रवण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥८८-८९॥ इस पुस्तक को लिखकर या लिखवाकर जो कोई भी मनुष्य किसी सुयोग्य ब्राह्मण को दान करते हु-

प्रदान करता है वह सभी पापो से छूटकर फिर माता के गर्भ मे प्रवेश नहीं किया करता है ॥९०॥

—:※:—

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णन

न हि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम् ।
पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१
अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया ।
श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२
प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः सारात्सारतरं परम् ।
अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान् ।
विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माग्रकर्मिणम् ।
प्रतिमां वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भक्ताः सेन्द्रा व मानुपादपः ।
येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम् ॥६
त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिखरं चिरम् ।
वासुदेवं समाराध्य निरातङ्का वसन्ति ते ॥७

मुनिमण्डल ने कहा—यहाँ पर भगवान् की कथा को सुनते हुए हमारी तृप्ति नहीं हो रही है अतएव प्रार्थना यह है कि पुनः आदि से लेकर सम्पूर्ण इस परम गोपनीय विषय को कहिए आप इस कथन के परम योग्य महानुभाव हैं ॥१॥ आपने भगवान् अनन्त वासुदेव के विषय में भली भाँति से वर्णन नहीं किया है । हे देवो ! हम लोग उसे विस्तार से श्रवण करना चाहते हैं । आप उसका वर्णन कीजिए ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! सार का भी परम सार अनन्त

वासुदेव का जो भूमण्डल में अतीव दुर्लभ माहात्म्य है उसको मैं बतलाऊँगा ॥३॥ हे विप्रो ! आदि कल्प में पहिले मैं अव्यक्त आत्म जन्म वाला था और विश्वकर्मा को बुलाकर मैंने यह वचन कहा था ॥४॥ वह विश्वकर्मा के कर्म में अग्र कर्मी था और देवों व शिल्पियों का सर्व श्रेष्ठ स्वामी था। मैंने उससे यही कहा था कि भूमण्डल में भगवान् वासुदेव की शैलमयी एक प्रतिमा की रचना करो ॥५॥ जिस मूर्ति का भक्त लोग इन्द्र के सहित मनुष्य आदि विधि पूर्वक दर्शन करके निडर होवेंगे और जिससे दानव तथा राक्षसों का महान् भय जानकर त्रिदिव सुमेरु शिखर को प्राप्त करके चिरकाल पर्यन्त वासुदेव भगवान् की समाराधना करके वे आतङ्क रहित होकर वास करें ॥६-७॥

मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात् ।
चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खचक्रगदाधराम् ॥८
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥६
वनमालावृत्तोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम् ।
पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलङ्कृताम् ॥१०
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् ।
प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निर्मिता पुरा ॥११
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरैः सह ।
जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः ।
प्रतिमां तां समाराध्या(दाय)स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३
तां समाराध्य सुचिरं शतवाक्कायमानसः ।
वृत्राद्यानसुरान्क्रूरान्नमुचिप्रमुखान्स च ॥१४

मेरे इस वचन को सुनकर उसी क्षण में तुरन्त विश्वकर्मा ने भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का निर्माण कर दिया था जो परम विशुद्ध और शङ्ख चक्र तथा गदा आदि आयुधों के धारण करने वाली थी ॥८॥ वह प्रतिमा सभी सुन्दर लक्षणों से समन्वित और पुण्डरीक के सदृश

आयत एव विशाल नेत्रो वाली थी। उसमे श्री वत्स का चिह्न भी विद्यमान था और वह अत्यन्त उग्र प्रतिमाओ मे अतीव उत्तम थी ॥९॥ वह प्रतिमा वनमाला को धारण करने से समावृत वक्षस्थल वाली-मुकुट तथा अङ्गदो को धारण किये हुए-पीताम्बर धारिणी-परिपुष्ट स्कन्धो से सयुत और कानो मे कुण्डलो से समलङ्कृत थी ॥१०॥ इस प्रकार से वह प्रतिमा परमाधिक दिव्य थी। उसी समय मे मैंने स्वय उसकी गोपनीय मन्त्रो के द्वारा प्रतिष्ठा का समय प्राप्त करके यह प्रथम समय मे निर्माण करायी थी ॥११॥ उस समय मे देवो का राजा इन्द्र सब देवो के सहित उत्तम ऐरावत हाथी पर समारूढ होकर ब्रह्म सदन मे गये थे ॥१२॥ उस इन्द्र देव ने बारम्बार स्नान दानादि स उस प्रतिमा को प्रसन्न किया था अर्थात् विभूषित बना दिया था। उस प्रतिमा की आराधना करके वह अपने ही पुर मे वापिस आ गये थे ॥१३॥ यतवाणी काया और मन वाले उन देवेन्द्र ने उस प्रतिमा की बहुत अधिक समय तक आराधना की थी और उसी आराधना के महान् उत्तम प्रभाव से उनने वृत्र आदि असुरो को तथा नमुचि जिनमे प्रमुख था ऐसे महान् क्रूर दैत्यो का हनन किया था ॥१४॥

निहत्य दानवान्भीमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम्।
द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेतायां राक्षसाधिपः ॥१५
बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीवः प्रतापवान्।
दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय. ॥१६
चचार व्रतमत्युग्रं तप. परमदुश्चरम्।
तपसा तेन तुष्टोऽहं वरं तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७
अवध्यः सर्वदेवाना स दैत्योरगरक्षसाम्।
शापप्रहरणैरुग्रैरवध्यो यमकिंकरैः ॥१८
वरं प्राप्य तदा रक्षो यक्षान्सर्वगणानिमान्।
धनाध्यक्षं विनिर्जित्य शक्रं जेतुं समुद्यतः ॥१९
संग्रामं सुमहाघोरं कृत्वा देवैः स राक्षस.।
देवराजं विनिर्जित्य तदा इन्द्रजिदिति वै ॥२०

पुराध्यक्ष स्थित श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषण ।
रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायण ॥२६
दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभवनच्युताम् ।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७
प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८

उसी समय मे उस महान् बलवान् रावण ने वहाँ पर भगवान् वासुदेव की अजन के सदृश श्याम वर्ण वाली उस प्रतिमा को देखा था जो सभी सुन्दर एव शुभ लक्षणो से युक्त थी। वह प्रतिमा श्री वत्स के चिह्न से सयुत कमल दल के समान विशाल लोचनो वाली वनमाला वक्ष स्थल पर धारण करने वाली मुकुट एव अङ्गदो से भूषित हाथो मे शङ्ख-चक्र-गदा रखने वाली-पीताम्बर पहिने हुए चार भुजाओ से युक्त थी। वह प्रतिमा ऐसी थी कि सभी प्रकार के अलङ्कार धारण किये थी और सब कामनाओ के फलो को प्रदान करने वाली थी ॥२२-२४॥ उस दशग्रीव ने उसी समय मे अन्य सब रत्नो के सचो का त्याग करके वह उस शुभ लक्षणो वाली प्रतिमा को पुष्पक विमान के द्वारा शीघ्र ही लङ्का मे जाकर प्रतिष्ठित कर दिया था ॥२५॥ उस समय मे उस लङ्का पुरी का अध्यक्ष श्रीमान् धर्मात्मा विभीषण था जो रावण का छोटा भाई था और मन्त्री भी था एव वह विभीषण नारायण भगवान् की सेवा मे तत्पर रहने वाला था ॥२६॥ विभीषण ने उस परम दिव्य प्रतिमा का दर्शन किया था जो देवेन्द्र के भवन से लाई गयी थी। विभीषण के शरीर मे उस प्रतिमा को देखकर रोमाञ्च हो गये थे और उसे बहुत ही विस्मय हो गया था ॥२७॥ उसने उस देव को शिर के बल प्रणाम किया था और उसकी आत्मा अत्यन्त प्रहर्षित हो गई थी। विभीषण ने मन मे सोचा था कि आज मेरा जीवन सफल हो गया है और आज मेरी तपश्चर्या भी पूर्ण फल वाली हो गई है ॥२८॥

इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहु ।
ज्येष्ठ भ्रातरमासाद्य कृताञ्जलिरभाषत ॥२९

राजन्प्रतिमया त्वं मे प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरेयं भवार्णवम् ॥३०
भ्रातुर्वचनमाकर्ण्य रावणस्तु तदाऽब्रवीत् ।
गृहाण प्रतिमां वीर त्वनया किं करोम्यहम् ॥३१
स्वयंभुवं समाराध्य त्रैलोक्यं विजये त्वहम् ।
नानाश्चर्यमयं देवं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२
विभीषणो महाबुद्धिस्तदा तां (रासाद्य) प्रतिमां शुभाम् ।
शतमष्टोत्तरं चाब्दं समाराध्य जनार्दनम् ॥३३
अजरामरण्यं प्राप्तमणिमादिगुणैर्युतम् ।
राज्यं लङ्काधिपत्यं च भोगान्भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥३४

उस धर्मात्मा ने यह अपने मन मे सोचकर वारम्वार उस प्रतिमा को प्रणाम किया था और फिर अपने बड़े भाई रावण के समीप मे पहुँच कर हाथ जोडकर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा था ॥२६॥ हे राजन् ! आप इस प्रतिमा को मुझे प्रदान कर देवे क्योंकि मेरे ऊपर कृपा करने के योग्य हैं जिस प्रतिमा की मैं आराधना करके ही जगत् के स्वामिन् ! मैं इस ससार रूपी सागर से पार हो जाऊँगा ॥३०॥ अपने छोटे भाई विभीषण के इस वचन का श्रवण करके उसी समय मे रावण ने उससे कहा था—हे वीर ! इस प्रतिमा को तुम ले लो—मैं इसको रखकर क्या करूँगा ॥३१॥ मैंने तो सब प्राणियो को जन्म प्रदान करने वाले नाना आश्चर्यों से परिपूर्ण स्वयम्भू देव की आराधना करके त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त की है । विभीषण महान् बुद्धिमान् था । उसने उस समय म उस परम शुभ प्रतिमा को प्राप्त करके एक सौ आठ वर्ष पर्यन्त भगवान् जनार्दन की समाराधना की थी ॥३२-३३॥ उसी आराधना के प्रभाव से उसने जरा तथा मरण की अप्राप्ति की थी और अणिमा आदि सिद्धियों के गुणा से युक्त लङ्का के राज्य का आधिपत्य प्राप्तकर यथेच्छ भोगों क सुख को भोगा था ॥३४॥

अहो नो विस्मयो जातः श्रुत्वेदं परमामृतम् ।
अनन्तवासुदेवस्य सम्भवं भुवि दुर्लभम् ॥३५

श्रोतुमिच्छाम हे देव विस्तरेण यथातथम् ।
तस्य देवस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥३६
तदा स राक्षसः क्रूरो देवगन्धर्वकिनरान् ।
लोकपालान्समनुजान्मुनिसिद्धांश्च पापकृत् ॥३७
विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गनाः ।
संस्थाप्य नगरीं लङ्कां पुनः सीतार्थ(ता च) मोहितः ॥३८
शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च रावणः ।
ततः क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९
रावणस्य वधार्थाय हत्वा वालिं मनोजवम् ।
अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०
हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तथा ।
गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः ॥४१
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वानरैः समहाबलैः ।
समावृतो महाघोरैः रामो राजीवलोचनः ॥४२

मुनियों ने कहा था—अहो ! इस अनन्त वासुदेव की परमामृतमय एवं भूलोक अतीव दुर्लभ उत्पत्ति का श्रवण करके हम को बहुत ही अधिक विस्मय हुआ है ॥३५॥ हे देव ! उस देव का माहात्म्य ठीक २ रीति से विस्तार पूर्वक हम सुनना चाहते हैं और आप पूर्णतया उसे कहने के योग्य है ॥३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में वह महान् क्रूर राक्षस रावण सब देव-गन्धर्व किन्नर-लोकपाल मनुज-मुनि और सिद्धों को पापी ने युद्ध में जीतकर उनकी अङ्गनाओं को अपहरण कर ले आया था और उनको लङ्का में रखकर फिर सीता के हरण करने के लिये मोहित हो गया था ॥३७-३८॥ वह रावण सुवर्ण के मृग रूप से शङ्कित हो गया था। इसके उपरान्त लक्ष्मण के सहित क्रोधित हुए श्री राम ने रण स्थल में रावण के वध करने के लिये मन के समान वेग वाले बालि को मारकर सुग्रीव का अभिषेक किया था तथा अंगद को युवराज बना दिया था ॥३९-४०॥ हनुमान्-नल-नील-जाम्बवान्-पनस-

गवम-गवाक्ष और पाठीन ये सभी परम ओज वाले थे। इन सबके तथा अन्य महान् बलवान् बहुत से महान् घोर वानरो से समावृत होकर राजीव के समान नेत्रो वाले श्री राम ने समस्त राक्षसो का ध्वस किया था ॥४१-४२॥

गिरीणा सर्वसघातै: सेतु बद्ध्वा महोदधौ ।
बलेन महता राम. समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३
सग्राममतुल चक्रे रक्षोगणसमन्वित. ।
यमहस्त प्रहस्त च निकुम्भ कुम्भमेव च ॥४४
नरान्तक महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम् ।
मालाढ्य मालिकाढ्य च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५
पुनरिन्द्रजित हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम् ।
वदेही चाग्निनाऽऽश ध्य दत्त्वा राज्य विभीषणे ॥४६
वासुदव समादाय यान पुष्पकमारुहत् ।
लीलया समनुप्रापदयोध्या पूर्वपालिताम् ॥४७
कनिष्ठ भरत स्नेहाच्छत्रुघ्न भक्तवत्सलः ।
अभिषिच्य तदा राम. सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८
पूरातनी स्वमूर्ति च समाराध्य ततो हरिः ।
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥४९

श्री राम न पर्वतो की चट्टानो के समुदाय से महासागर मे सेतु बँधवाया था और फिर बडी भारी रौद्र वानरो की सेना लेकर महा समुद्र को पार किया था। श्री राम ने राक्षसो के समूह के साथ अनुपम महान् घोर सग्राम किया था। महान बल वीर्य वाले श्री राम ने यम हस्त, प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भ, महावीर्य, नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य, मालिकाढ्य इन सबको मारकर फिर इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण और रावण का हनन किया था। इसके उपरान्त वैदेही सीताजी को अग्नि मे शुद्ध करके विभीषण को राज्य दिया था ॥४३-४६॥ इसके अनन्तर वासुदेव की प्रतिमा को ग्रहण कर श्री राम पुष्पक विमान पर समारूढ हुए थे। फिर सीता के साथ ही अपनी पूर्व में पालित अयोध्या पुरी मे प्राप्त

हो गये थे ॥४७॥ अपने सम्पूर्ण राज्य मे अधिराज की भाँति श्री राम ने कनिष्ठ भाई भरत को स्नेह से शत्रुघ्न को भक्तो पर प्यार करने वाले ने उस समय मे अभिषिक्त करके फिर श्री हरि ने अपनी पुरातनी मूर्ति की आराधना करके ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य पर शासन किया था ॥४८-४६॥

भुक्त्वा सागरपर्यन्ता मेदिनी स तु राघव. ।
राज्यमासाद्य सुगति वैष्णव पदमाविशत् ॥५०
ता चापि प्रतिमा राम समुद्रेशाय दत्तवान् ।
धन्यो रक्षयितासि त्व तोयरत्नसमन्वित ॥५१
द्वापर युगमासाद्य यदा देवो जगत्पति ।
धरण्याश्चानुरोधेन भावमैथिल्यकारणात् ॥५२
अवतीर्ण स भगवान्वसुदेवकुले प्रभु ।
कसादीना वधार्थाय सकर्षणसहायवान् ॥५३
तदा ता प्रतिमा विप्रा सर्ववाञ्छाफलप्रदाम् ।
सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे ।
उज्जहार स्वय तोयात्समुद्र सरिता पति ॥५५
तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजा ।
आस्ते स देवो देवाना सर्वकामफलप्रद ॥५६

फिर उन श्री राघवेन्द्र प्रभु ने सागर पर्यन्त भूमि का उपभोग करके और राज्य प्राप्त करके अन्त मे सुन्दर शुभ गति वाले वैष्णव पद मे प्रवेश कर गये थ ॥५०॥ श्री राम ने उस वासुदेव की प्रतिमा को भी समुद्र के स्वामी को दे दिया था और कहा था कि जल और रत्नो से समन्वित तुम रक्षा करने वाले परम धन्य हो। द्वापर युग प्राप्त करके जिस समय मे जगत् के स्वामी देव धरणी के अनुरोध करने पर भाव की शिथिलता के कारण से वह प्रभु भगवान् वासुदेव के कुल मे अवतीर्ण होगे। सङ्कर्षण की सहायता से युक्त कस आदि के वध करने के लिये भगवान् ने अवतार ग्रहण किया ॥५१-५३॥। उस समय मे विप्रो ने

सब इच्छाओं के फल को प्रदान करने वाली उस प्रतिमा को सब लोगों के हित के लिये किसी के अन्य कारण से उस दुर्लभ पुण्यमय पुरुषोत्तम श्रेष्ठ क्षेत्र मे उस प्रतिमा का उद्धार किया था और सरिताओ के स्वामी समुद्र ने जल से स्वय ऊपर उठा दिया था ॥५४-५५॥ तभी से लेकर मुक्ति प्रदायक उसी क्षेत्र मे हे द्विजो ! समस्त देवो की सब कामनाओ के फल को देने वाले यह देव विराजमान हैं ॥५६॥

ये सश्रयन्ति चानन्त भक्त्या सर्वेश्वर प्रभुम् ।
वाङ्मन.कर्मभिर्नित्य ते यान्ति परम पदम् ॥५७
दृष्ट्वाऽनन्त सकृद्भक्त्या सम्पूज्य प्रणिपत्य च ।
राजसूयाश्वमेधाभ्या फल दशगुण लभेत् ॥५८
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९
त्रि सप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रीगणसेवित ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥६०
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जित ।
दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥६१
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदी द्विजोत्तमः ।
वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६२
एव मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमा ।
कः शक्नोति गुणान्वक्तु तस्य वर्षशतैरपि ॥६३

जो लोग भक्ति की दृढ भावना से सर्वेश्वर अनन्त प्रभु सश्रय ग्रहण करते है और वचन-मन और कर्मों के द्वारा नित्य हर आश्रम प्राप्त किया करते हैं वे लोग परम पद को प्राप्त होते हैं ॥५७॥ अनन्त भगवान् का दर्शन करके और एक बार भक्ति से भली-भाँति अर्चन करके तथा प्रणिपात करके मनुष्य राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ से दशगुना फल प्राप्त कर लेता है ॥५८॥ सब कामनाओ से समृद्ध अर्थात् समन्वि-इच्छागामी-सुवर्चस वाले-सूर्य के तुल्य वर्ण वाले और किङ्किणियो के जालो की माला वाले विमान के द्वारा अपने तीन कुलो का उद्धार करके

तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णः कमललोचनः ।
तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६

शयनोत्थापने कृष्णं ये पश्यन्ति मनीषिणः ।
हलायुधं सुभद्रां च हरेः स्थानं व्रजन्ति ते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् अनन्त का माहात्म्य और पुरुषोत्तम क्षेत्र जो कि मनुष्यों के लिये भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है तथा परम दुर्लभ है वह मैंने आपको कहकर समझा दिया है ॥१॥ जहां पर पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले-शङ्ख, चक्र और गदा के धारी-पीत वस्त्र पहिनने वाले कंस और केशी के मारने वाले भगवान् श्री कृष्ण विराजमान रहा करते हैं ॥२॥ जो लोग वहां पर सुर और असुरों के द्वारा वन्दनीय श्री कृष्ण का दर्शन किया करते हैं तथा सङ्कर्षण प्रभु और सुभद्रा देवी को देखते हैं वे पुरुष अतीव धन्य अर्थात् भाग्यशाली हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥ त्रिलोकी के अधिपति और सब कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाले देव श्रीकृष्ण का जो लोग सदा ध्यान किया करते हैं वे मुक्त ही हैं—इसमें कोई भी संशय नहीं है। श्री कृष्ण में रति रखने वाले जो लोग कृष्ण भगवान् का अनुस्मरण किया करते हैं और रात्रि में पुनः उपस्थित होकर जो स्मरण करते हैं वे भिन्न देहों वाले श्री कृष्ण में प्रवेश किया करते हैं जिस प्रकार से मन्त्रों के द्वारा हुत किये हुए हवि का प्रवेश हुताशन (अग्नि) में हो जाता है ॥४ ५॥ हे मुनियों में श्रेष्ठो ! इसलिये सदा ही उस क्षेत्र में कमल के समान लोचनों वाले श्री कृष्ण मोक्ष की आकाङ्क्षा रखने वालों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अवश्य ही देखना चाहिए ॥६॥ जो मनीषीगण शयन और उत्थापन के समय में श्री कृष्ण का दर्शन किया करते हैं तथा हलधर एवं सुभद्रा को देखते हैं वे निश्चित रूप से श्री हरि के ही स्थान में गमन किया करते हैं ॥७॥

सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।
रौहिणेयं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥८

आस्ते यश्चतुरो मासान्वार्षिकान्पुरुषोत्तमे ।
पृथिव्यास्तीर्थयात्रायाः फल प्राप्नोति चाधिकम् ॥९
ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिणः ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपसः फलम् ॥१०
तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नरः ।
यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् ।
तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥१२
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् ।
तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥१३
सम्यक्तीर्थन यत्प्रोक्त व्रतेन नियमेन च ।
तत्फल लभते तत्र प्रत्यह प्रयत. शुचिः ॥१४

सभी काल मे भी जो भक्ति की भावना से भगवान् पुरुषोत्तम–रौहिणेय (बलदेवजी और सुभद्रा का दर्शन किया करते हैं वे विष्णु लोक को गमन किया करते हैं ॥८॥ जो पुरुष वार्षिक चार मास तक उस पुरुषोत्तम क्षेत्र मे रहता है वह इस पृथिवी की तीर्थयात्रा के फल से भी अधिक फल प्राप्त कर लिया करता है ॥९॥ जो मनीषीगण सब काल मे वही पर निवास किया करते हैं और इन्द्रियों को जीतने वाले तथा क्रोध पर विजय पाने वाले परम तपश्चर्या का पुण्य-फल प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ मनुष्य अन्य तीर्थों मे दश हजार वर्ष तक तपस्या करके जो भी फल प्राप्त किया करता है वही पुण्य का फल पुरुषोत्तम क्षेत्र मे एक ही मास मे पा लेता है ॥११॥ तपस्या से ब्रह्मचर्य से और सङ्ग के त्याग से जो फल होता है वही फल निरन्तर वहा पर मनीषीगण प्राप्त कर लिया करते हैं । १२॥ समस्त तीर्थों मे स्नान करने से और दान देने से जो पुण्य-फल हुआ करता है वही फल निरन्तर मनीषी लोग वहां पर प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ भली भाँति तीर्थाटन करने से तथा वृत और नियम के परिपालन से जो फल मिला करता है वही फल वहा पर प्रतिदिन प्रयत एव शुचि होकर रहने से ही प्राप्त हो जाया करता है ॥१४॥

यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं संयतेन्द्रियः ॥१५
देहं त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे।
कल्पवृक्षं समासाद्य मुक्तास्ते नात्र संशयः ॥१६
वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम्।
ते दुर्लभं परं मोक्षं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१७
अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणांस्त्यजति मानवः।
सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८
कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये।
तत्र देहं परित्यज्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥१९
भ्रान्ति लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजाः।
पुरुषाख्येन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०
सकृत्पश्यति यो मर्त्यः श्रद्धया पुरुषोत्तमम्।
पुरुषाणां सहस्रेषु स भवेदुत्तमः पुमान् ॥२१

जो मनुष्य अनेक प्रकार से यज्ञों का यजन करके पुण्य फल प्राप्त किया करता है वही फल यहाँ पर प्रति दिन संयत इन्द्रियों वाला प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो पुरुष उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में अपने देह का त्याग किया करते हैं उन्होंने समझ लो कि कल्प वृक्ष (मन की इच्छापूर्ण करने वाला देव वृक्ष) को प्राप्त कर लिया है और मुक्ति प्राप्त करने वाले निश्चय ही हो जाया करते हैं—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥१६॥ वट और सागर के मध्य में जो अपने देह का त्याग किया करते हैं वे परमाधिक दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी सन्देह का अवसर नहीं है। जो वहाँ पर मनुष्य बिना इच्छा के भी अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह भी समस्त दुःखों से निर्मुक्त होकर परम दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१७-१८॥ कृमि कीट-पतङ्ग आदि जो तिर्यक् योनियों में जो जन्म ग्रहण करने वाले हैं वे भी यहाँ पर देह का परित्याग करके परम गति को प्राप्त हो जाया करते हैं यद्यपि उसके महत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है ॥१९॥ हे द्विजो ! अन्य तीर्थ के

प्रति लोक की भ्रान्ति को देखो ! अन्य तीर्थ के फलादि को पुरुष नाम वाले के द्वारा प्राप्त कर लिया गया है ॥२०॥ जो कोई मनुष्य एक बार भी श्रद्धा से पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन करता वह सहस्रों पुरुषों में अत्युत्तम पुमान् होता है ॥२१॥

प्रकृतेः स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तमः ।
तस्माद्वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तमः ॥२२
योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः ।
आस्ते विश्वोपकाराय तेनासौ पुरुषोत्तमः ॥२३
पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा,
रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं,
संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ।
देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यङ्मोक्षाभिकाङ्क्षिभिः ॥२५
पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति ।
त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२६
गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः ।
कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥२७
यदि यूयं मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छथ शाश्वतम् ।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्द्रिताः ॥२८
ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन निवसध्वं द्विजोत्तमाः ।
पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३०

क्यों कि वह प्रकृति से भी पर है और पुरुष से भी उत्तम है । इसी कारण स लोक मे-वेद मे और पुराण मे वह पुरुषोत्तम कहे जाते हैं ॥२२॥ जो यह पुराण मे-वेदान्त मे परमात्मा-इस नाम से कहा गया है वह सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिये ही है इसी कारण से वह पुरुषोत्तम

है ॥२३॥ मार्ग मे, श्मशान मे, ग्रह मण्डप मे अथवा प्रदेशो मे जहा कही पर भी इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी वहा पर देह का त्याग करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे द्विजोत्तम ! अतएव सम्पूर्ण प्रयत्न से उस क्षेत्र मे मनुष्यो को देह का त्याग करना चाहिए जो कि भली भाँति मोक्ष की प्राप्ति की आकाक्षा रखते हैं ॥२५॥ पुरुषाद्य का माहात्म्य ऐसा है जो न तो अब तक किसी का हुआ न भविष्य मे भी होगा जहाँ पर मनुष्य देह का त्याग करके ही दुर्लभ मुक्ति को पा जाता है ॥२६॥ क्षेत्र के गुणो का यह एक देश ही मैंने वर्णित किया है । ऐसा कौन है जो उसके समस्त गुणो को बतलाने में सैकडो वर्षों मे भी समर्थ हो सके । अर्थात् कोई है ही नही ॥२७॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं तो उस परम क्षेत्र मे जो कि परम पुण्यमय है अतन्द्रित होकर निवास कीजिए ॥२८॥ श्री व्यास देवजी ने कहा—अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के वचन को उन्होंने सुना था और फिर उन्होने वहां पर निवास किया था तथा परम पद को भी प्राप्त किया था ॥२९॥ हे द्विजोत्तमो ! इसी कारण से प्रबल प्रयत्न करके पुरुष नाम वाले परम श्रेष्ठ क्षेत्र मे यदि मुक्ति को अभिलाषा रखते हो तो निवास करो । अर्थात् मुक्ति के इच्छुक को वहां निवास अवश्य ही करना चाहिए ॥३०॥

कण्डुचरित्रवर्णन

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः ।
सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः ।
अवाप परमां सिद्धिमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥३

अन्येऽपि तत्र ससिद्धा मुनय. सशितव्रताः ।
सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४
कोऽसौ कण्डु- कथ तत्र जगाम परमा गतिम् ।
श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरित ब्रूहि सत्तम ॥५
शृणुध्व मुनिशार्दूला कथा तस्य मनोहराम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम ॥६
पवित्रे गोतमीतीरे विजने सुमनोहरे ।
कन्दमूलफलै पूर्णे समित्पुष्पकुशान्विते ॥७

श्री व्यास देव जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! यह पुरुषोत्तम क्षेत्र सभी जीवो को सुख देने वाला है और धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष का फल देने वाला है ॥१॥ उसी क्षेत्र मे एक कण्डु नामक महान् तेजस्वी एव परम धार्मिक ऋषि थे जो सत्यवादी-शुचि दमनशील और सभी भूतो के हित मे रति रखने वाले थे ॥२॥ यह ऋषि इन्द्रियो को जीत लेने वाले तथा क्रोध पर विजय पाने वाले एव वेदो तथा वेदाग शास्त्रो के पारगामी विद्वान् थे । उन्होने पुरुषोत्तम प्रभु की आराधना करके परम सिद्धि को प्राप्त किया था ॥३॥ उसके अतिरिक्त अन्य भी मुनिगण सशित व्रत वाले होकर वहाँ पर ससिद्ध हुए हैं जो सब प्राणियो के हित मे रत,थे, दान्त थे, जितक्रोध थे और मत्सरता रहित थे ॥४॥ मुनियो ने कहा—यह कण्डु कौन हुआ था और वहाँ पर कैसे यह परम गति को प्राप्त हो गया था ? हे श्रेष्ठतम ! उसके चरित्र का वर्णन कीजिएगा । हमारी बहुत कुछ श्रवण करने की इच्छा है ॥५॥ श्री व्यासजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! उसकी कथा बहुत ही मनोहर है उसको आप सुनिए । उस मुनि का हाल (विशेष चेष्टा) मैं बहुत सक्षेप से ही कहूँगा ॥६॥ गौतमी के तट परम पवित्र विजन अर्थात् जनो से रहित कन्द मूल और फलो से परिपूर्ण था जो फल और कन्द समिधा-पुष्प और कुशा से युक्त थे ॥७॥

नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ।
नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८

तत्राऽऽश्रमपद कण्डोबभूव मुनिसत्तमा ।
सर्वर्तु फलपुष्पाढ्य कदलीखण्डमण्डितम् ॥६
तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम् ।
व्रतोपवासैर्नियमै स्नानमौनसुसयमै ॥१०
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशय ।
आर्द्र वासास्ते हेमन्ते स तेपे सुमहत्तप ॥११
दृष्ट्वा तु तपसा वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिता ।
बभूवुर्देवगन्धर्वा सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२
भूमि तथाऽन्तरिक्ष च दिव च मुनिसत्तमा ।
कण्डु सतापयामास त्रैलोक्यतपसो बलात् ॥१३
अहोऽस्य परम धर्यमहोऽस्य परम तप ।
इत्यब्रुवस्तदा दृष्ट्वा देवास्त तपसि स्थितम् ॥१४

वह तीर अनेक वृक्ष और लताओ से समाकीर्ण था। वहा अनेक पुरुपो से विशेष शोभा हो रही थी। बहुत भाति के पक्षियों का कलरव वहा हो रहा था और अनेक मृगो के समुदाय से समन्वित एव रम्य था ॥८॥ उस तट पर हे मुनिश्रेष्ठो ! कण्डु का आश्रम स्थल था वह सब ऋतुओ मे फलो और पुष्पो से युक्त था और चारो ओर उसके कदलियो के खण्ड शोभा दे रहे थे ॥६॥ वही पर इस मुनि ने बडी भारी और अत्यन्त अद्भुत तपस्या की थी जो व्रत स्नान मौन-सुसयम-उपवास और नियमो क परिपालन वाली थी ॥१०॥ उसकी तपश्चर्या का वणन इस तरह स है कि ग्रीष्म ऋतु मे तो वह पचाग्नियो बैठकर तपा करते थे और वर्षा म स्थण्डिल मे शयन किया करते थे। हेमन्त ऋतु मे घोर जाडे मे गीले वस्त्र पहिनते थे। इस तरह से उन्होंने महान् तप किया था ॥११॥ उस मुनि के तपश्चर्या के इस वीय को देखकर देव गन्धव-सिद्ध और विद्याधर सब बहुत ही विस्मित हो गये थ ॥१२॥ हे मुनि सत्तमो ! उस कण्डु मुनि ने भूमि-अन्तरिक्ष दिवलोक और त्रैलोक्य को अपनी तपस्या क बल से सतापित कर दिया था ॥१३॥ देवगण ने उस मुनि को तप म स्थित देखकर उस समय मे यही कहा था—अहो ! इसके

परम धैर्य पर बडा आश्चर्य है और इसका परमाद्भुत एव अत्यधिक तप कैसा है ॥१४॥

मन्त्रयामासुरव्यग्राः शक्रेण सहितास्तदा ।
भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५
ज्ञात्वा तेपामभिप्राय शक्रस्त्रिभुवनश्वरः ।
प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगर्विताम् ॥१६
सुमध्या चारुजङ्घा ता पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सर्वलक्षणसपन्न प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥
प्रम्लोचे गच्छ शीघ्र त्व यत्राऽसौ तप्यते मुनिः ।
विघ्नार्थ तस्य तपसः क्षोभयस्वा (स्वाऽऽ शु सुप्रभे ॥१८
तव वाक्य सुरश्रेष्ठ करोमि सतत प्रभो ।
किंतु शङ्का ममैवात्र जीवितस्य च सशयः ॥१९
बिभेमि तमुनिवर ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम् ।
अत्युग्र दीप्ततपस ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥२०
ज्ञात्वा मा स मुनि.क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागताम् ।
कण्डुः परमतेजस्वी शाप दास्यति दुःसहम् ॥२१

उस समय मे उस मुनि की तपश्चर्या के भय से एक दम उद्वेग वाले देवगण इन्द्र के साथ मन्त्रणा करने मे सलग्न हो गये थे तथा उसके तप मे विघ्न डालने के लिये सभी देवगण इच्छुक बने हुए थे ॥१५॥ त्रिभुवन के स्वामी इन्द्रदेव ने उनके अभिप्राय. को समझ कर पल में विनाश करने वाले इन्द्रदेव ने प्रम्लोचा नाम वाली अप्सरा से कहा था जो श्रेष्ठ आरोह वाली थी अर्थात् जिसका देह परम सुघटित तथा रूप लावण्य तथा यौवन के गर्व से युक्त थी—सुन्दर मध्य भाग वाली-सुचारु चरणो से सयुत-पुष्ट श्रेणी और स्तनो वाली एव सभी सौन्दर्य के सुन्दर लक्षणो से समन्वित थी ॥१६-१७॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे प्रम्लोचे ! जहाँ पर यह मुनि तप कर रहे हैं वहाँ पर अति शीघ्र जाओ । हे सुन्दर प्रभाव वाली ! उस मुनि के तप मे विघ्न डालने के लिये शीघ्र ही उसके मन मे क्षोभ उत्पन्न कर दो ॥१८॥ प्रम्लोचा अप्सरा ने कहा—हे सुर श्रेष्ठ ! आप तो मेरे

प्रभु हैं। मैं आपके वचनादेश का सर्वदा पालन किया करती हूँ किन्तु मुझे स्वय ही अपने जीवन की ही आशङ्का है–इसमे कुछ भी सशय नही है कि मैं जीवित बनी रहूँ ॥१६॥ उस ब्रह्मचर्य के व्रत मे स्थित मुनि से मुझे भय लग रहा है वह अत्यन्त उग्र-दीप्त तप वाले और अग्नि तथा सूर्य के समान प्रभा वाले हैं। वह मुनि जब मुझको पहचान लेंगे कि यह मेरे तप मे विघ्न डालने को ही समागत हुई है तो परम तेजस्वी वह मुनि क्रोध से मुझे शाप अवश्य ही दे देंगे जो कि बहुत ही दुस्सह होगा ॥२०-२१॥

उर्वशीमेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला ।
विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२
अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना ।
अन्याश्चाप्सरस.सन्ति रूपयौवनगर्विताः ॥२३
सुमध्याश्चारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः ।
कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र मनियोजय ॥२४
तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा पुन प्राह शचीपतिः ।
तिष्ठन्तु नाम चान्या स्तास्त्व चात्र कुशला शुभे ॥२५
काम वसन्त वायु च सहायार्थे ददामि ते ।
तै.सार्धं गच्छ सुश्रोणि यत्राऽऽस्ते स महामुनि. ॥२६
शक्रस्य वचन श्रुत्वा तदा सा चारुलाचना ।
जगामाऽऽकाशमार्गेण तै. सार्धंचाऽऽश्रमं मुने: ॥२७
गत्वा सा तत्र रुचिर ददर्श वनमुत्तमम् ।
मुनि च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८

हे भगवन् ! मेरे अलावा अन्य भी बहुत सी अप्सराएँ हैं जिनके नाम उर्वशी-मेनका-रम्भा-घृताची-पुञ्जिक स्थला विश्वाची-सहजन्या पूर्व-चित्ति तिलोत्तमा अलम्बुषा-मिश्रकेशी-शशिलेखा और वामना हैं। ये सभी अपने २ रूप यौवन के गर्व वाली हैं इन सबका मध्य भाग बहुत सुन्दर है–मुख कमल बहुत सुन्दर है–पुष्ट एव उन्नत स्तनो वाली तथा काम कला मे बहुत कुशल भी हैं। आप इनमे से किसी की नियुक्ति

कीजिए ॥२२-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस प्रम्लोचा अप्सरा के इस वचन को सुनकर शची के स्वामी इन्द्र ने फिर कहा था कि हे शुभे ! अन्य अप्सराएँ कुशल हैं तो उन्हें रहने दो। यहाँ पर तो तुम ही कुशल हो ॥२५॥ तुम्हारी सहायता के लिये कामदेव वसन्त ऋतु और वायु को मैं तुम्हें देता हूँ। हे सुश्रोणि ! इन सबके साथ तुम वहाँ पर चली जाओ जहाँ पर वह मुनि रहते हैं और तप किया करते हैं ॥२६॥ इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर उसी समय में वह सुन्दर लोचनों वाली प्रम्लोचा उन सबके साथ में आकाश मार्ग के द्वारा मुनि कण्डु के आश्रम में चली गयी थी ॥२७॥ वहाँ पर आकर उसने बहुत ही उत्तम एवं सुन्दर वन को देखा था। तथा दीप्त तप वाले—आश्रम में स्थित कल्मष से रहित मुनीन्द्र के भी दर्शन किये थे ॥२८॥

अपश्यत्सा वनं रम्यं तैः सार्धं नन्दनोपमम् ।
सर्वर्तुकुसुमाढ्यं च शाखामृगगणाकुलम् ॥२९
पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्लवमहावनम् ।
श्रोत्ररम्यान्सुमधुरान्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥३०
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ।
अपश्यत्पादपांश्चैव विहङ्गै रनुनादितान् ॥३१
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ।
अथ बिल्वांस्तथा जीवान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥३२
पनसाँल्लकुचान्नीपाञ्छिरीषान्सुमनोरमान् ।
पारावतांस्तथा कोलानरिमेदाम्लवेतसान् ॥३३
भल्लातकानामलकाञ्छतपत्रांश्च किंशुकान् ।
इङ्गुदान्करवीरांश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४
एतानन्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना ।
तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥३५

उस प्रम्लोचा ने उन सब सहायकों के साथ में उस सुन्दर वन के परम रम्य वन को वहाँ पर देखा था। उस वन में सब ऋतुओं के पुष्प वृक्षों से अतीव शोभा थी और वह वन अनेक वानरों के समुदाय से

समन्वित था ॥२६॥ परम पुण्यमय-पद्मों के समूह से युक्त और लता पल्लवों से शोभित वन को देखा था। कानों के लिये प्रिय लगने वाले—सुमधुर पक्षियों के मुख से उच्चरित कलरव ध्वनि-समस्त ऋतुओं के फलों के भारों को और सब ऋतुओं के कुसुमों से उज्ज्वल बादलों को जो कि पक्षियों से अनुनादित थे वहाँ पर देखा था। वहाँ पर संस्थित वृक्षों के नाम इस प्रकार से हैं—आम्र-आम्रातक-भव्य नारियल-तिन्दुक-विल्व-जीव दाड़िम बीजपूरक पनस-लकुच नीम (कदम्ब) -शिरीष-सुमनोहर पारावत कोल-अरिमेद-अम्ल-वेवस-भल्लातक-आमलक-(आंवला) -शत पर्ण-किंशुक (ढाक) इंगुद-करवीर-हरीतकी-विभीतक आदि बहुत से वृक्ष वहाँ पर थे जिनको उस विशाल नयनों वालों ने देखा था। उसी भाँति उसने अशोक-पुन्नाग-केतकी बकुल वृक्षों को देखा था ॥३०-३५॥

पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा।
पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुद्रुमास्तथा ॥३६
शालांस्तालांस्तमालांश्च निचुलांल्लोमकांस्तथा।
अन्यांश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पियान् ॥३७
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः।
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्विविधैः खगैः।
श्रोत्ररम्य सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥३९
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०
कह्लारैः कमलैश्च आचितानि समन्ततः।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४१
कारण्डवैर्वर्वहंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च।
एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥४२

पारिजात-कोविदार-मन्दार-इन्दीवर-पुष्पित-पाटल-सुरम्य देवदारुद्रुम शाल तालतमाल-निचुल-लोमक आदि वृक्षों को तथा इनके अतिरिक्त अन्य फल-पुष्पों से लदे हुए पादपों को वहाँ देखा था ॥३६-३७॥ वह वन

चकोर-शतपत्र-भृङ्गराज-शुक-कोकिल-कलविङ्क-हारीत-जीव जीवक प्रिय पुत्र चातक और अन्य अनेक कूजते हुए खगो के द्वारा सुन्दर एवं श्रुति मधुर ध्वनि से युक्त था जिसमे कण्डु मुनि रहते थे ॥३८-३९॥ उस वन मे परम सुन्दर सरोवर थे जिनका जल बहुत ही स्वच्छ था और जो कुमुद-पुण्डरीक-नीलोत्पल-शुभ कह्लार-कमल-इनसे चारो ओर समाचित थे। उन सरोवरो के आस-पास कादम्ब-चक्र वाक-जल कुक्कुट-कारण्डव बक-हंस-कूर्म-मद्गु आदि जल चारी पक्षियो से तथा इनके अतिरिक्त भी अन्य जीवो के समुदाय था ॥४०-४२॥

क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह ।
एवं दृष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३
विस्मतोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना ।
प्रोवाच वायुं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४
कुरुध्वं मम साहाय्यं यूयं सर्वे पृथक्पृथक् ॥४५
एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरैर्द्विजा ।
प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः ॥४६
अद्य [redacted] देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ।
स्मरशस्त्रगलद्रश्मि करिष्यामि कुसारथिम् ॥४७
ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः ।
तथाऽऽप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४८
इत्युक्त्वा प्रययौ साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनि ।
मुनेस्तप. प्रभावेन प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४९

इस तरह से उस अतीव सुन्दर वन का दृश्य देखती हुई वह प्रम्लोचा अपने सहायकों के साथ क्रम से ही वन मे भ्रमण करने लगी थी। इसी रीति से उस रम्य वन को सहायकों के साथ देखा था जो कि परम अद्भुत था। वह वराङ्गना उत्फुल्ल नयनो वाली और अतीव विस्मित हो गयी थी। हे द्विजोत्तम ! वह वायु-कामदेव और वसन्त से बोली थी ॥४३-४४॥ प्रम्लोचा ने कहा—आप सब लोग अलग २ मेरी सहायता कीजियेगा। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! ऐसा जब उसने कहा था

सवन यही उत्तर उसे दिया था कि ऐसा ही किया जायगा फिर अप्सरा ने कहा था कि मैं आज ही वहा पर जाऊँगी जहा पर वह मुनीन्द्र समुपस्थित है ॥४५-४६॥ आज मैं उस देह के यमन करन वाल यन्ता इन्द्रिय रूपी अश्व वाले को कामदेव क शस्त्र से किरण हीन एव बुरे सारथि वाला कर दूगी ॥४७॥ ब्रह्मा स्वय हो अथवा जनादन हो यदि नीललोहित (शिव) हो चाहे जो कोई भी हो तथापि आज मैं उनको कामदेव क बाण द्वारा अन्त करण को क्षत वाला बना दूगी ॥४८॥ इतना कह करके वह वहा स रवाना हो गई थी जहा पर वह मुनिवर समवस्थित थे। मुनि के तप के प्रभाव स वह आश्रम या स्थल परम प्रशान्त श्वापदों वाला था ॥४९॥

सा पुस्कोकिलमाधुर्ये नदीतीरे व्यवस्थिता ।
स्तोकमात्र स्थिता तस्मादगायत वराऽप्सरा ॥५०
ततो वसन्त सहसा वल समकरोत्तदा ।
कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१
ववौ गन्धवहश्चैव मलयाद्रिनिकेतन ।
पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ॥५२
पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपत ।
मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३
ततो गीतध्वनि श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानस ।
जगाम यत्र सा सुभ्रू कामरागप्रपीडित ॥५४
दृष्ट्वा तामाह सहृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचन ।
भ्रष्टोत्तरीयो विह्वल पुलकाञ्चितविग्रह ॥५५

वह कोमला क कलरव की मधुरता वाल नदी के तीर पर वह अप्सरा व्यवस्थित हो गई थी। वहा पर थोडी दर तक ठहरी थी और वहाँ से उस श्रेष्ठतमा अप्सरा ने गाना आरम्भ कर दिया था ॥५०॥ इसके पश्चात् सहसा उसी समय में वसन्त ने अपना बल दिखाया था। कोकिलो की ध्वनि से मधुर तथा अकालिक मनोहर वह आश्रम हो गया

तस्य शापभयाद्भीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदनी न जहौ मुनिम् ॥७८
तया च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम् ।
नव नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः ॥७९
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः ।
निष्क्रामन्त च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०
इत्युक्तः स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे ।
सन्ध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥८१
ततः प्रहस्य मुदिता सा त प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
गतमेतन्न कुरुते विस्मय कस्य कथ्यते ॥८२
प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिद शुभम् ।
मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३
इयं च वर्तते सन्ध्या परिणाममहो गतम् ।
अवहासः किमर्थोऽय सद्भावः कथ्यतां मम ॥८४

उस परम दक्ष अप्सरा ने बहुत ही चतुराई से उससे कहा था किन्तु उसे उसके शाप का भय मन में रहा करता था और प्रणय के भङ्ग होने की पीड़ा के ज्ञान वाली उसने उस मुनि का परित्याग नहीं किया था ॥७८॥ मन्मथ (कामदेव) से आसक्त चित्त वाले उस ऋषि का रातदिन उस अप्सरा के साथ रमण करते हुए नया-नया प्रेम हो गया था ॥७९॥ एक बार वह मुनीन्द्र, अपनी झोपड़ी से बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर निकल गया था जब वह वहाँ से निष्क्रमण कर रहे थे उस समय में उस शुभा प्रम्लोचा ने उनसे कहा था कि आप कहाँ जा रहे हैं ? ॥८०॥ जब उसने इस रीति से पूछा था तो उस ऋषि ने उस अप्सरा से कहा था कि हे शुभे ! दिन परिवृत्त हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है—मैं अब सन्ध्या की उपासना करूँगा अन्यथा अर्थात् यदि मैं ऐसा नहीं करता हूँ तो क्रिया का लोप हो जायगा ॥८१॥ तब तो परम प्रसन्न उस अप्सरा

ने उस महामुनि से कहा था—हे सर्वधर्मों के ज्ञाता ! आज क्या हो गया है कि आपका दिन परिवृत्त हो गया। इतने दिन तो निकल ही गये हैं। उसका विस्मय है क्या कहा जावे ॥८ ॥ कण्डु मुनि ने कहा—हे भद्रे ! इस परम शुभ नदी के तट पर तुम प्रातःकाल में समागत हुई थी, हे सुश्रोणि ! मैंने उसी समय में आपको देखा था और तुमने तभी मेरे आश्रम में प्रवेश किया था ॥८३॥ यह तो सन्ध्या का समय है और दिन परिणाम को प्राप्त हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है। यह उपहास किस लिये मेरे साथ किया जाता है। मुझसे तो जो सद्भाव हो उसे ही कहिए ॥८४॥

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा ।
किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५
ततःससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम् ।
कथ्यतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६
सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च ।
मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥८७
सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहासोऽथवा शुभे ।
दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८
वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके ।
विशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९
निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः ।
धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०

प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रातःकाल के समय में ही मैं आई थी—यह मेरा कथन सत्य है और मिथ्या नहीं है। किन्तु आपको आज तो उस समय को सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ॥८५॥ इसके अनन्तर भय से कम्पित उस विप्र ने उस विशाल लोचनों वाली से पूछा था—हे भीरु ! मुझे यह बतलाओ कि तुम्हारे साथ रमण करते हुए मुझे कितना और कौन सा समय हो गया है ? ॥८६॥ प्रम्लोचा ने कहा—आपके साथ रमण करने में नौ सौ सात वर्ष छैः मास और तीन दिन व्यतीत

सा च त कामजैर्भावैर्विदग्धा रहसि द्विजा. ।
वरयामास सुश्रोणि. प्रलापकुशला तदा ॥६८
एव कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिक शतम् ।
अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्या ग्राम्यधर्मरतो मुनि. ॥६९
सा त प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यह दिवम् ।
प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातु त्वमर्हसि ॥७०

उस अप्सरा प्रम्लोचा ने उस मुनि के अत्यद्भुत परम वीर्य-विक्रम को देखकर उसे अत्यन्त विस्मय हो गया था। उसने कहा—ओहो ! इसके महान् तप का प्रभाव है—यह मन में कहकर वह बहुत मुदित हो गई थी ॥६४॥ हे मुनिसत्तमो ! फिर तो उस मुनि ने अपना स्नान-सन्ध्यावन्दन-जप होम स्वाध्याय-देवो का अभ्यर्चन-व्रत उपवास-नियमो का परिपालन और ध्यान सभी कुछ का त्याग कर दिया था और रात दिन परम प्रसन्न होकर उसी अप्सरा के साथ रमण किया करता था। कामदेव के द्वारा उसका मन ऐसा अभिभूत हो गया था कि उसने अपनी तपस्या की क्षीणता को समझा ही नही था ॥६५-६६॥ वह तो फिर विषयो में इतना अधिक आसक्त हो गया था कि उसको सन्ध्या-रात-दिन-पक्ष मास ऋतु-अयन (वर्ष) और हायन किसी का भी ज्ञान नही रहा था और जो काल बीत चुका था उसे समझ ही नही पा रहा था ॥६७॥ हे द्विजो ! उस अप्सरा ने भी उस समय में जो सुन्दर श्रोणि वाली एव प्रलाप में कुशल थी काम से उत्पन्न हुए भावो के द्वारा एकान्त मे विदग्ध होकर उस मुनि का वरण कर लिया था ॥६८॥ इस तरह से वह कण्डु मुनि सौ वर्षो से भी अधिक समय तक उस अप्सरा के साथ मन्दराचल की द्रोणी मे ग्राम्य धर्म मे निरत हो गया था ॥६९॥ उस अप्सरा ने फिर उस महाभाग मुनि से कहा था कि मैं स्वर्ग मे जाना चाहती हूँ, अतएव आप प्रसन्न तथा सुन्दर मुख वाले होकर हे ब्रह्मन् ! अब मुझे आज्ञा देने को योग्य हैं ॥७०॥

तयैवमुक्त. स मुनिस्तस्यामासक्तमानस ।
दिनानि कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत: ॥७१

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः ।
बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन सार्धं महात्मना ॥७२
अनुज्ञां देहि भगवन्व्रजामि त्रिदशालयम् ।
उक्तस्तयेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ॥७३
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना ।
याम्यहं त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४
उक्तस्तथैव स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणाम् ।
इहाऽऽस्यतां मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५
तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः ।
शतद्वयं किंचिदूनं वर्षाणां समतिष्ठत ॥७६
गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम् ।
प्रोक्तः प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७

उस प्रकार से प्रार्थना किये गये उस मुनि ने जो कि उसमे बहुत ही अधिक आसक्त मन वाले थे, कहा—हे भद्रे ! कुछ दिन और यहां पर ठहर जाओ ॥७१॥ इसी रीति से कही गयी उस तन्वी अप्सरा ने फिर डेढ सौ वर्ष तक उस महात्मा के साथ विषयो का उपभोग किया था ॥७२॥ फिर उस प्रम्लोचा ने उस कण्डु मुनि से कहा था कि हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिए मैं स्वर्ग मे जाती हूँ किन्तु फिर भी उस मुनि ने यही कहा था कि कुछ अभी और ठहरो ॥७३॥ फिर सौ वर्ष से भी अधिक हो जाने पर उस अप्सरा ने कहा था कि हे ब्रह्मन् ! आप तो प्रणय के स्मित से परम शोभन हैं मैं अब स्वर्ग मे जाती हूं ॥७४॥ इस तरह से उसने जब कहा था तो वह मुनि फिर उस विशाल नेत्रों वाली से बोला था कि हे सुभ्रु ! मेरे साथ चिरकाल पर्यन्त रहो फिर बहुत समय के पश्चात् चली जाना ॥७५॥ उसके शाप के भय से डरी हुई वह सुश्रोणि उस ऋषि के साथ दो सौ वर्षों से कुछ ही कम समय तक ठहर गयी थी ॥७६॥ उस तन्वी के द्वारा देवराज के घर जाने के लिये बारम्बार उस महाभाग से कहा गया था किन्तु वह 'अभी ठहरो'—यही कह दिया करता था ॥७७॥

था । उस समय में मलय गिरि में रहने वाला वायु वहन कर रहा था जो कि परम पवित्र उच्चावच (ऊँचे-नीचे) पुष्पों को धीरे २ भूमि पर गिरा रहा था ॥५१-५२॥ पुष्पों के बाणों को धारण करने वाले कामदेव ने भी उस मुनि के समीप मे पहुँच कर उनके मन मे क्षोभ उत्पन्न किया था ॥५३॥ इसके उपरान्त गीतों की ध्वनि का श्रवण कर मुनि के मन मे बड़ा विस्मय हो गया था और वहीं पर पहुँच गये थे जहाँ पर वह सुभ्रू उपस्थित थी । मुनि का मन काम के बाण से पीड़ित हो गया था ॥५४॥ भली भाँति देखे हुए उस मुनि ने उस अप्सरा को देखा था और देखकर ही वह विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले हो गये थे । उनका उत्तरीय गिर गया था—वह विकल होकर रोमाञ्चित शरीर वाले हो गये थे अर्थात् उनके रोंगटे खड़े हो गये थे ॥५५॥

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि ।
मनो हरसि मे सुभ्रु ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६
तव कर्मकरा चाहं पुष्पार्थमहमागता ।
आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७
श्रुत्वैवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः ।
आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८
ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः ।
जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९
मघा सुभ्रू हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम् ।
श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०
स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम् ।
आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृति ॥६१
रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम् ।
दिव्याभरणसंयुक्तं षोडशवत्सराकृति ॥६२
दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम् ।
सर्वोपभोगसम्पन्नं सद्गुणं तपसो बलात् ॥६३

ऋषि ने कहा—हे सुश्रोणि ! आप कौन हैं और किस की प्रियतमा हैं। हे सुभगे ! आपका हास्य तो बहुत ही सुरम्य है। हे सुभ्रु ! आप तो मेरे मन का हरण कर रही हैं। हे सुमध्यमे ! आप मुझे अपने विषय में सत्य २ बतलाइये ॥५६॥ प्रम्लोचा ने कहा—मैं तो आपकी कर्मकरा सेवा करने वाली टहलनी हूं और यहाँ पुष्पों के लिये आई हूँ। मुझे अब आप आदेश शीघ्र प्रदान कीजिए कि मैं आपकी आज्ञा क्या करूँ ? ॥५७॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—उसके ऐसे वचन को इस तरह से श्रवण कर वह मुनि धैर्य का त्याग करके विमोहित हो गये थे और वाला को हाथ से पकड़ कर अपने आश्रम में प्रवेश कर गये थे ॥५८॥ इसके पश्चात् कामदेव वसन्त और मलयानिल ये सब हे द्विजोत्तमो ! जैसे समागत हुए थे वैसे कृतकृत्य होकर स्वर्ग में चले गये थे ॥५९॥ वहाँ पहुँच कर इन्द्रदेव से उस अप्सरा की सम्पूर्ण चेष्टाएं कह दी थीं जो उसने मुनि के आश्रम में दिखलाई थीं। इन्द्रदेव और समस्त देवता बहुत प्रसन्न हुए और उनके मन को बहुत आनन्द हुआ था ॥६०॥ वह कण्डु मुनि उस प्रम्लोचा को साथ में लेकर प्रवेश कर गया था। उसने अपना रूप बहुत ही उत्तम मदन (कामदेव) की आकृति जैसा बना लिया था जो कि रूप यौवन से सम्पन्न अतीव मनोहर हो गया था तथा दिव्य अलङ्कारों से भूषित सोलह वर्ष की अवस्था वाला बन गया था ॥६१-६२॥ दिव्य वस्त्रधारी दिव्य माला एवं गन्ध से विभूषित सदृश सभी उपभोगों से सम्पन्न तप के बल से हो गया था ॥६३॥

दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिनाऽभवत् ॥६४
स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम् ।
व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया साधमहर्निशम् ।
मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ॥६६
सन्ध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम् ।
न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७

तस्य शापभयाद्भीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदनी न जहौ मुनिम् ॥७८
तया च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम् ।
नव नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः ॥७९
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः ।
निष्क्रामन्त च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०
इत्युक्तः स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे ।
सध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥८१
ततः प्रहस्य मुदिता सा त प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सवधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
गतमेतन्न कुरुते विस्मय कस्य कथ्यते ॥८२
प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिद शुभम् ।
मया दृष्टासि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३
इय च वर्तते सध्या परिणाममहो गतम् ।
अवहासः किमर्थोऽय सद्भावः कथ्यता मम ॥८४

उस परम दक्ष अप्सरा ने बहुत ही चतुराई से उससे कहा था किन्तु उसे उसके शाप का भय मन मे रहा करता था और प्रणय के भङ्ग होने की पीड़ा के ज्ञान वाली उसने उस मुनि का परित्याग नही किया था ॥७८॥ मन्मथ (कामदेव) से आसक्त चित्त वाले उस ऋषि का रातदिन उस अप्सरा के साथ रमण करते हुए नया-नया प्रेम हो गया था ॥७९॥ एक बार वह मुनीन्द्र, अपनी झोपड़ी से बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर निकल गया था जब वह वहाँ से निष्क्रमण कर रहे थे उस समय मे उस शुभा प्रम्लोचा ने उससे कहा था कि आप कहा जा रहे हैं ? ॥८०॥ जब उसने इस रीति से पूछा था तो उस ऋषि ने उस अप्सरा से कहा था कि हे शुभे ! दिन परिवृत्त हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है—मैं अब सन्ध्या की उपासना करूँगा अन्यथा अर्थात् यदि मैं ऐसा नही करता हूँ तो क्रिया का लोप हो जायगा ॥८१॥ तब तो परम प्रसन्न उस अप्सरा

ने उस महामुनि से कहा था-हे सर्वधर्मों के ज्ञाता ! आज क्या हो गया है कि आपका दिन परिवृत्त हो गया। इतने दिन तो निकल ही गये हैं। उसका विस्मय है क्या कहा जावे ॥८ ॥ कण्डु मुनि ने कहा—हे भद्रे ! इस परम शुभ नदी के तट पर तुम प्रातःकाल मे समागत हुई थी, हे सुश्रोणि ! मैंने उसी समय मे आपको देखा था और तुमने तभी मेरे आश्रम मे प्रवेश किया था ॥८३॥ यह तो सन्ध्या का समय है और दिन परिणाम को प्राप्त हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है। यह अपहास किस लिये मेरे साथ किया जाता है। मुझसे तो जो सद्भाव हो उसे ही कहिए ॥८४॥

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा ।
किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५
ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम् ।
कथ्यतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६
सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च ।
मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥८७
सत्यं भीरु वदास्यैतत्परिहासोऽथवा शुभे ।
दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८
वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके ।
विशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९
निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमः ।
धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०

प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रातःकाल के समय मे ही मैं आई थी-यह मेरा वचन सत्य है और मिथ्या नहीं है। किन्तु आपको आज तो उस समय को सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ॥८५॥ इसके अनन्तर भय से कम्पित उस विप्र ने उस विशाल लोचनों वाली से पूछा था—हे भीरु ! मुझे यह बतलाओ कि तुम्हारे साथ रमण करते हुए मुझे कितना और कौन सा समय हो गया है ? ॥८६॥ प्रम्लोचा ने कहा—आपके साथ रमण करने में नौ सौ सात वर्ष छै मास और तीन दिन व्यतीत

हुए है ॥८७। ऋषि ने कहा—हे शुभे ! हे भीरु ! क्या आप यह सत्य बोल रही हैं या आपका यह परिहास (मजाक) है ? मैं तो आपके साथ यहां पर रमण करने का केवल एक दिन मानता हूँ ॥८८॥ हे ब्रह्मन् ! यहां पर आपके समीप मे मिथ्या भाषण कैसे करूगी और विशेष रूप से आज जब कि आप मार्ग के अनुगामी होते हुए मुझसे पूछ रहे है मैं कभी झूठ बोल ही नही सकती हूँ ॥८९॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठो ! उस महा मुनि ने उस अप्सरा प्रम्लोचा के इस वचन का श्रवण करके तो उसने कहा—मुझ आचार रहित को धिक्कार है—धिक्कार है। इस तरह से अपने आप ही अपने आपकी उसने विशेष निन्दा की थी ॥९०॥

तपांसि मम नष्टानि हत ब्रह्मविदां धनम् ।
हृतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१
ऊर्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मतिरेषा कृता येन धिक्तं काममहाग्रहम् ॥९२
व्रतानि सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य हृतानि मे ॥९३
विनिन्द्येत्थ स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना ।
तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४
गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्त्वया कृतम् ।
देवराजस्य यत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ॥९५
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना ।
सतां साप्तपदं मैत्र्यमुषितोऽहं त्वया गृहे ॥९६
अथवा तव दोषः कः किंवा कुर्यामहं तव ।
ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः ।
त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८

मुनि ने कहा—मेरी सम्पूर्ण तपस्या नष्ट हो गई है और ब्रह्म वेत्ताओं का सब धन चला गया है। किसी के द्वारा मेरे विवेक का अप-

हरण किया गया है और यह स्त्री मेरे मोह उत्पन्न करने के ही लिये निर्माण की गई है ॥६१॥ ऊर्मिपट्क का अति गमन करने वाला ब्रह्म आत्मा के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले मुझे जानना चाहिए। जिसने मेरी ऐसी यह गति कर दी है उस कामदेव रूपी महाग्रह को भी धिक्कार है ॥६२॥ व्रत और समस्त वेद तथा अन्य समस्त मेरी तपश्चर्या के कारण थे वे सभी नरकों के समुदाय के मार्ग वाले कामदेव ने आज हरण कर लिये हैं ॥६३॥ इस प्रकार से उस धर्मज्ञ ने अपनी ही आत्मा से अपने आपकी स्वयं विनिन्दा करके बैठी हुई अप्सरा से यह वचन बोला था ॥६४॥ महर्षि ने कहा था—हे पापे ! तू अब यहाँ से स्वेच्छया चली जा। तूने जो कार्य यहा पर किया है और भावो की चेष्टाओं से तू देवराज के क्षोभ को जो किया है इसलिये मैं अपने तीव्रतम क्रोध की अग्नि से तुमको भस्म नही कर रहा हूँ क्योंकि सत्पुरुषों के सात पद मैत्री में मैं तेरे साथ रहा हूँ ॥६५-६६॥ अथवा तेरा दोष ही क्या है और तेरा मैं अब क्या करू। यह सब तो मेरा ही दोष है जिसके द्वारा मैं अजित इन्द्रियो वाला बन गया हू ॥६७॥ जिस तरह से इन्द्रदेव के प्रिय की चाह वाली तूने मेरी तपस्या का व्यय किया है और तेरे द्वारा दृष्टि के महा मोह के मनु द्वारा मैं निन्दित हो गया हूँ ॥६८॥

यावदित्थ स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम् ।
तावत्स्वलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथु ॥६६
प्रवेपमाना स च ता स्विन्नगात्रलता सतीम् ।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००
सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
आकाशगामिनो स्वेदं ममार्जतरपल्लव ॥१०१
वृक्षाद्वृक्ष ययौ वाला उदग्रारुणपल्लवैः ।
निर्ममार्ज च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः ।
निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तदङ्गतः ॥१०३

तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः ।
सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स यदा ववृधे शनैः ॥१०४
मारिषा नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना ।
प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५

श्री व्यासजी ने कहा—जब तक वह विप्रर्षि उस सुमध्यमा से इस तरह से कह रहा था तब तक वह अत्यन्त कम्पित हो गई थी और उसके शरीर से पसीने का जल निकल कर गिर रहा था ॥९९॥ वह मुनिश्रेष्ठ कम्पायमान होती हुई पसीने मे लथपथ शरीर वाली उस सती से बडे भारी क्रोध के साथ बोला था—यहा से चली जा और तुरन्त निकल जा ॥१००॥ वह उस मुनि के द्वारा निर्भर्त्सित हुई (फटकारी गयी) उस आश्रम से निकलकर आकाश गामिनी हो गई थी और वृक्षो के पत्तो से उसने अपने स्वेद (पसीने) का परिमार्जन किया था ॥१०१॥ वह बाला एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर गयी थी और नवीन एव अरुण पल्लवो से शरीर के अङ्गो का मार्जन किया था जिससे कि पसीने का जल गिर रहा था ॥१०२॥ ऋषि ने उस समय मे जो गर्भ उसके देह मे समाहित किया था वही रोमाचो के सहित उसके अङ्गो से स्वेद के रूप वाला होकर निकल गया था ॥१०३॥ वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया था और वायु ने उसको एक कर दिया था । सोमदेव ने भी किरणो के द्वारा उसे आप्यायित किया था तथा उस समय मे वह धीरे से वृद्धि वाला हुआ था ॥१०४॥ वृक्षो की मारिषा नाम वाली एक कन्या हुई थी जो बहुत ही सुन्दर नेत्रो वाली थी । वह प्रचेताओं की भार्या हुई थी और हे द्विजो ! यही फिर दक्ष की जननी हुई थी ॥१०५॥

स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः ।
पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६
ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७
सुरम्यं वालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम् ॥१०८

सर्वत्र सुखसचारं सर्वर्तुकुसुमान्वितम् ।
सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०६
भृग्वाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा ।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥११०
ददर्श च हरिं तत्र देवं सर्वेरलङ्कृतम् ।
ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥१११
दृष्ट्वैवं स तदा क्षेत्रं देवं च पुरुषोत्तमम् ।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स मुनिसत्तम. ॥११२
तत्रैकाग्रमना भूत्वा चकराऽऽराधनं हरेः ।
ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तम. ॥११३

वह भगवान् कण्डु भी जो परम श्रेष्ठ थे अपने तप के क्षीण हो जाने पर हे विप्रो ! पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् विष्णु के आयतन को चले गये थे ॥१०६॥ उन्होंने दक्षिण सागर के तट पर समस्त कामनाओं के पुण्य फल को प्रदान करने वाले—इस भूमण्डल मे दुर्लभ मुक्ति देने वाले परमोत्कृष्ट क्षेत्र को देखा था ॥१०७॥ वह स्थल अतीव सुरम्य था—बालुका से समाकीर्ण केतकी के वनो की शोभा से युक्त—अनेक द्रुमो तथा लताओ से घिरा हुआ और विविध पक्षियो के कलरव वाला एव शिव था ॥१०८॥ वह पुरुषोत्तम तीर्थ ऐसा था जहाँ सर्वत्र सुखो का सचार था और सब ऋतुओ के कुसुमो से युक्त था—मनुष्यो के सभी सुखों का देने वाला परम धन्य-सब गुणो की खान था । भृगु आदि सब मुनि-गण उसका सेवन किया करते थे तथा पहिले मुनि-सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर-यक्ष तथा अन्य मोक्ष की आकांक्षा वाले भी उसका सेवन करते थे ॥१०६-११०॥ वहाँ पर ही सब देवो से विभूषित-ब्राह्मण आदि सब वर्णों से तथा चारों आश्रमो मे रहने वाले पुरुषो के द्वारा सेवित भगवान् श्री हरि का दर्शन किया था ॥१११॥ उस श्रेष्ठ मुनीन्द्र ने उस समय में उस क्षेत्र को और देव पुरुषोत्तम को देखकर ही अपनी आत्मा को कृतकृत्य मान लिया था ॥११२॥ वहीं पर एकाग्र मन वाला होकर श्री

हरि का समाराधन उस मुनि ने किया था और एकाग्र मन वाला होते हुए पारमय ब्रह्म का जाप किया करता था। वह श्रेष्ठ मुनि ऊर्ध्व बाहुओं वाला होकर महायोगी वहीं पर समवस्थित हो गया था ॥११३॥

ब्रह्मपारं मुने श्रोतुमिच्छामः परमं शुभम्।
जपता कण्डुना देवो येनाऽऽराध्यत केशव ॥११४
पारं परं विष्णुरपारपारः परं परेभ्यः परमात्मरूप.।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः ॥११५
स कारण कारणसंश्रितोऽपि,
तस्यापि हेतु परहेतुहेतुः।
कार्योऽपि चैष सह कर्मकर्तृ ·········
रूपैरनेकैरवतीह सर्वम् ॥११६
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो,
ब्रह्म प्रजाना पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमज स विष्णु-
रपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्ग ॥११७
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥११८
श्रुत्वा तस्य मुनेर्जाप्यं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमाः।
भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदृढां पुरुषोत्तमः ॥११९

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर! उस परम शुभ ब्रह्म पार के विषय में हम श्रवण करना चाहते हैं जिस प्रकार से कण्डु ऋषि ने देवेश्वर केशव की आराधना की थी? श्री व्यासदेव जी ने कहा—पार पर-अपार पार वाले-परों से भी पर-परमात्मा के स्वरूप और वह पर पारभूत ब्रह्मपार हैं। वह परों के भी पर हैं और पारपार हैं ॥११४-११५॥ वह कारणों से संश्रित होते हुए भी वह कारण है। उसका भी हेतु और पर हेतु का भी हेतु है। और कर्म कर्तृ के रूपों से वही कार्य भी है और सबकी रक्षा किया करता है ॥११६॥ ब्रह्म ही प्रभु है और वही ब्रह्म सर्वभूतमय है। ब्रह्म प्रजाओं का स्वामी है। वही अच्युत है

ब्रह्म अव्यय नित्य अज तथा विष्णु और अपक्षीणता आदि सबके सङ्ग से हीन हैं ॥११७॥ ब्रह्म अक्षर अज नित्य है। उस तरह से यह पुरुषोत्तम है उसी भाँति मेरे सब राग आदि के दोष प्रशम को प्राप्त हो जावें ॥११८॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! ब्रह्मपार ने उसमुनि के जाप्य का श्रवण करके और परमार्थिक सुदृढ भक्ति का ज्ञान प्राप्त करके भगवान् पुरुषोत्तम उस पर प्रसन्न हो गये थे ॥११९॥

प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भक्तवत्सल ।
गत्वा तस्य समीप तु प्रोवाच मधुसूदन ॥१२०
मेघगम्भीरया वाचा दिश सनादयन्निव ।
आरुह्य गरुड विप्रा विताकुलनन्दनम् ॥१२१
मुने ब्रू हि पर कार्य यत्ते मनसि वर्तते ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वर वरय सुव्रत ॥१२२
श्रुत्वैव वचन तस्य देवदेवस्य चक्रिण ।
चक्षुरुन्मील्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम् ॥१२३
अतसीपुष्पसकाश पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
शङ्खचक्रगदापाणि मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४
चतुर्बाहुमुदाराङ्ग पीतवस्त्रधर शुभम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मसयुक्त वनमालाविभूषितम् ॥१२५
सर्वलक्षणसयुक्त सर्वरत्नविभूषितम् ।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्ग दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६

वह देवेश्वर परम प्रीति से उसी समय म अपने भक्तों पर प्रेम करने वाले होते हुए उस विप्रर्षि के समीप मे गय थे और मधु सूदन प्रभु उस से बोले थे। उनकी वाणी मेघ के समान गम्भीर थी जो सब दिशाओं को ध्वनित कर रही थी। हे विप्रो ! वे देवश्वर विनता के पुत्र गरुड पर समारूढ होकर वहाँ पर समागत हुए थे ॥१२०-१२१॥ श्री भगवान् ने कहा—हे मुनिवर ! जो भी कोई परतम कार्य हो और आपके मन में विद्यमान हो उसे मेरे सामने बतला दो। हे सुव्रत ! मुझसे किसी भी वरदान का वरण कर लो मैं वरों के प्रदान करने वाला इस समय म

तुम्हारे समीप मे सम्प्राप्त हो गया हूँ ॥१२२॥ देवो के भी देव चक्रधारी भगवान् के इस प्रकार के वचन को सुनकर उस विप्रर्षि ने अपना नेत्र खोलकर सहसा ही अपने आगे श्री हरि का दर्शन किया था ॥१२३॥ भगवान् श्री हरि का स्वरूप अलसी के पुष्प के समान नील वर्ण का था-उनके नेत्र पद्म दल के सदृश विशाल थे-उनके हाथो मे शख चक्र-और गदा आयुध थे-वे मस्तक पर मुकुट तथा भुजाओं मे अङ्गद धारण किये हुए थे। चार उनकी भुजाएँ थी-उदार अङ्ग था पीत अम्बर धारी श्री वत्स के चिह्न से सयुक्त-वनमाला से शोभित परम शुभ-सभी सुन्दर लक्षणो से समन्वित-समस्त रत्नो से विभूषित-दिव्य चन्दन के लेपन वाले अङ्गो से सयुत तथा दिव्य मालाओ से समलङ्कृत उनके सब अङ्ग थे ॥१२४-१२६॥

तत. स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः ।
दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्या प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप. ।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलास्त स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८
नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्क जगत्पते ।
जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९
अव्यक्त जिष्णो प्रभव प्रधान पुरुषोत्तम ।
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०
हिरण्यगर्भ श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन ।
भूगर्भ ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१
अनाद्यन्तामृताजय जय त्व जयता वद ।
अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२
पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित ।
दु खार्तिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३

श्री हरि के दर्शन करने के पश्चात् वह विस्मय से भर गया था : उसका शरीर पुलकित हो गया था। उसी समय मे भूमि मे गिरकर : के समान उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ॥१२७॥ उसने हे मुनि

शार्दूलो ! भगवान् से कहा था कि आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज ही मेरी तपश्चर्या भी सफल हो गई है। इतना कहकर उस मुनि ने भगवान् की स्तुति करने का आरम्भ कर दिया था ॥१२८॥ कण्डुमुनि ने कहा—हे नारायण ! हे हरे ! हे श्री कृष्ण ! हे श्री वत्स के अङ्क वाले ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो इस सपूर्ण विश्व के बीज हैं। हे जगत् के धाम ! हे जगत् के साक्षिन् ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१२९॥ हे अव्यक्त ! हे जिष्णो ! हे प्रभव ! आप तो प्रधान पुरुषोत्तम हैं। हे पुण्डरीकाक्ष ! हे गोविन्द ! आप लोको के नाथ हैं आपके चरणो में मेरा प्रणाम है ॥१३०॥ हे हिरण्यगर्भ ! हे गोविन्द ! हे श्री नाथ ! हे पद्म-नाभ ! आप तो सनातन है। हे भगवन् ! हे ध्रुव ! हे ईशान ! हे हृषी-केश ! आपकी सन्निधि मे मेरा प्रणाम है ॥१३१॥ हे अनाद्यन्त ! हे अमृताञ्जय ! आप तो जय प्राप्त करने वालो मे परम श्रेष्ठ है। आपकी जय हो। हे अजिता खण्ड ! हे श्री कृष्ण ! हे श्री निवास ! आपके लिये नमस्कार है ॥१३२॥ हे पर्जन्य के धर्म के करने वाले ! हे दुष्पार ! हे दुरधिष्ठित ! आप दुःखो को पीड़ा के नाश करने वाले हैं। हे हरे ! हे जलशायिन् ! आपको नमस्कार है ॥१३३॥

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वैरनाकुल ।
भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३४
यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञधाताऽभयप्रद ।
यज्ञगभ हिरण्याङ्ग पृश्निगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३५
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रभृत्क्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्वशी ।
क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६
गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह ।
गुणप्रोक्त गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७
त्वं विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्वं जिष्णुस्त्वं जनार्दनः ।
त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्वं भवत्प्रभुः ॥१३८
त्वं भूतकृत्त्वमव्यक्तस्त्वं भवो भूतभृद्भवान् ।
त्वं भूतभावनो देव[illegible] ॥१३९

त्वमनन्तः कृतज्ञस्त्वं प्रकृतिस्त्व वृषाकपिः ।
त्व रुद्रस्त्व दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वरः ॥१४०

हे भूतो के पालक ! हे अव्यक्त ! हे भूतेश ! भूत तत्त्वों से आकुल न रहने वाले ! हे भूतो के अधिवास ! हे भूतात्मन् ! हे भूतगर्भ ! आपको नमस्कार है ॥१३४॥ हे यज्ञो के यज्वन् ! आप यज्ञो के स्वरूप वाले है । हे यज्ञ के धाता ! हे अभय प्रदान करने वाले ! हे यज्ञगर्भ ! हे हिरण्याङ्ग ! हे वृष्णि गर्भ ! आपको प्रणाम है ॥१३५॥ हे क्षेत्रज्ञ ! हे क्षेत्रभृत् ! आप क्षेत्री और क्षेत्र के हनन करने वाले हैं । हे क्षेत्रकृत् ! हे वशी ! आप क्षेत्र स्वरूप और क्षेत्र रहित हैं । क्षेत्र के सृजन करने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥१३६॥ हे गुणालय ! आप गुणो के आवास स्थल है । हे गुणावह ! आप गुणो के आश्रय हैं । हे गुणो के भोक्ता ! हे गुणाराम ! हे गुण त्यागिन् ! आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु हैं, हरि हैं, आप चक्र धारी हैं । आप जिष्णु हैं—हे जनार्दन ! आप भूत हैं—आप वषट्कार हैं । आप भव्य हैं और आप भवत्प्रभु हैं । आप ही अव्यक्त और भूतो के करने वाले है । आप भव और भूतकृत् हैं । आप भूनभावन देव हैं और आपको ही अज एव ईश्वर कहा जाता है ॥१३८-१३९॥ हे भगवन् ! आप अनन्त-कृतज्ञ-प्रकृति और वृषाकपि है । आप ही रुद्र-दुराधर्ष अमोघ और ईश्वर हैं ॥१४०॥

त्व विश्वकर्मा जिष्णुस्त्व त्व शभुस्त्व वृषाकृतिः ।
त्वं शक्रस्त्वमुशना त्वं शर्म त्व तपो जनः ॥१४१
त्व विश्वजेता त्वं शर्म त्व शरणस्त्वमक्षरम् ।
त्व शभुस्त्वं स्वयम्भूश्च त्व ज्येष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२
त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्वं प्राणस्त्वं तमिस्रहा ।
त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३
त्वमृग्यजु साम चैव त्वमात्मा समतो भवान् ।
त्वमग्निस्त्व च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४
त्वं स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः क्रतुः ।
त्वं प्रभुस्त्व विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५

त्वं सर्वदर्शनः श्रीमास्त्वं सर्वदमनोऽरिहा ।
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः ॥१४६

त्वं कालस्त्वं कला काष्ठा त्वं मुहूर्तः क्षणा लवाः ।
त्वं बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७

हे भगवन् ! आप ही शम्भु-विश्वकर्मा-विष्णु वृषाकृति शङ्कर-उशना हैं तथा आप सत्य जन और तप हैं ॥१४१॥ हे भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व के जेता कल्याण-शरण्य और अक्षर हैं। आप ही शम्भु-स्वयम्भू-ज्येष्ठ और परायण हैं आप आदित्य-ओङ्कार अन्धकार के हनन करने वाले तथा प्राण हैं। हे भगवन् ! आप पर्जन्य प्रथित हैं-वेधा तथा सुरेश्वर भी आप ही हैं। ऋग्वेद यजु और सामवेद की आत्मा आप ही हैं। आप ही अग्नि, पवन-जल तथा भूमि है ॥१४२ १४४॥ हे प्रभो ! इस विश्व के सृजन करने वाले भोग करने वाले ! आप ही होता हवि और क्रतु हैं। हे भगवन् ! आप प्रभु-विभु-श्रेष्ठ लोकों के स्वामी और अच्युत है। आप सर्व दर्शन-श्रीमान् सर्व दमन और अरियों के नाशक हैं। हे भगवन् ! आप ही दिन-रात्रि हैं तथा बुधगण आपको ही वत्सर कहते हैं ॥१४५-१४६॥ आप ही काल-कला काष्ठा-मुहूर्त क्षण और लव हैं। आप बालक-वृद्ध-पुमान्-स्त्री तथा नपुंसक है ॥१४७॥

त्वं विश्वयोनिस्त्वं चक्षुस्त्वं वेदाङ्गं त्वमव्ययः ।
त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्वं समाहित. ॥१४८

त्वं जलनिधिरामूलं त्वं धाता त्वं पुनर्वसु ।
त्वं वैद्यस्त्वं धृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४६

त्वमग्रणीर्ग्रामणीस्त्वं त्वं सुपर्णस्त्वमादिमान् ।
त्वं संग्रहस्त्वं सुमहत्त्वं धृतात्मा त्वमच्युतः ॥१५०

त्वं यमस्त्वं च नियमस्त्वं प्रांशुस्त्वं चतुर्भुजं ।
त्वमेवान्नान्तरात्मा त्वं परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१

त्वं गुरुस्त्वं गुरुतमस्त्वं वामस्त्वं प्रदक्षिणः ।
त्वं पिप्पलस्त्वमगमस्त्वं व्यक्तस्त्वं प्रजापतिः ॥१५२

हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति ।
अनिर्देश्यवपुस्त्व वं त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३
त्व च सकर्षणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातनः ।
त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित. ॥१५४

हे भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व की योनि हैं–आप ही चक्षु–वेदाङ्ग-अव्यय-वेदो के वेत्ता-धाता-विधाता-और समाहित है ॥१४८॥ आप आमूल जलनिधि हैं–धाता पुनर्वसु, वैद्य, धृतात्मा, अतीन्द्रिय गोचर, अग्रणी, ग्रामणी, सुपर्ण, आदिमान, सग्रह सुमहन्-धृतात्मा और अच्युत है हे भगवन् ! आप यम-नियम-प्राशु-चतुर्भुज हैं। आप ही अन्न के अन्तरात्मा हैं परमात्मा भी आप ही कहे जाते हैं ॥१४९-१५१॥ आप गुरु गुरुतम वाम-प्रदक्षिण-पिप्पल-अगम-व्यक्त प्रजापति-हिरण्यनाभ-देव सकर्पण कर्त्ता और सनातन हैं। हे भगवन् ! आप अमेय आत्मा वाले वासुदेव तथा आप ही गुणो से वर्जित निराकार हैं ॥१५२-१५४॥

त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माधव. ।
सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्तः सहस्रदृक् ॥१५५
सहस्रपादस्त्व देवस्त्व विराटत्व सुरप्रभु ।
त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६
यद्भूत तत्त्वमेवोक्त पुरुष. शक्र उत्तमः ।
यद्भाव्य तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृतः ॥१५७
त्वत्तो रोहत्यय लोको महीयास्त्वमनुत्तम ।
त्व ज्यायान्पुरुषस्त्व च त्व देव दशधा स्थितः ॥१५८
त्रिभूतश्चतुर्भागो नवभागोऽमृतो दिवि ।
नवभागोऽन्तरिक्षस्थ. पौरुषेयः सनातनः ॥१५९
भागद्वय च भूसस्थ चतुर्भागोऽप्यभूदिह ।
त्वत्तो यज्ञाः सभवन्ति जगतो वृद्धिकारणम् ॥१६०
त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि य. पुमान् ।
सोऽत्यरिच्यत भूतेभ्यस्तेजसा यशसा श्रिया ॥१६१

हे भगवन् ! आप सबसे बडे है सबसे श्रेष्ठ हैं-आर सहनशील-रमा के स्वामी सहस्र-शीर्षो वाले-सहस्र-नेत्रो वाले अव्यक्त देव हैं ॥१५५॥ आप सहस्र चरणो से युक्त सुरो के स्वामी-विराट् देव है । हे देवो के भी देव ! आप दशांगुल हैं और महा प्रलय के पश्चात् आप ही स्थित रहते हैं ॥१५६॥ हे भगवन् ! जो हो गया वह आप ही हैं आप ही पुरुष महेन्द्र और उत्तम हैं-जो भविष्य मे होने वाला है वह आप ही हैं-ईशान और अमृत भी आप ही हैं ॥१५७॥ हे भगवन् ! यह विश्व एव लोक आप से ही उत्पन्न होता है-आप सबसे महान् तथा उत्तम हैं । आप सबसे बडे पुरुष हैं। हे देव ! आप दस प्रकार से स्थित है—विश्वभूत,चतुर्भाग, नवभाग, दिवलोक मे अमृत अन्तरिक्ष मे स्थित नवभाग-पौरुषेय सनातन-दो भाग भूमि मे स्थित-यहा पर भी चतुर्भाग हैं। हे भगवन् ! आप से यज्ञो की उत्पत्ति होती है । इस जगत् की वृद्धि के कारण हैं ॥१५८-१६०॥ हे भगवन् ! आपसे ही यह विराट् समुत्पन्न हुआ है-जो पुमान जगत् के हृदय मे है वह आप ही हैं। वही आप अपने तेज से, यश से और श्री से सब भूतों से अतिरिक्त हैं ॥१६१॥

त्वत्तो सुराणामाहार. पृषदाज्यमजायत ।
ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त. पशुमृगादयः ॥१६२
ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि चौषधी ।
त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्यो दीप्तविग्रह. ॥१६३
जङ्गमाजङ्गम सर्व जगदेतच्चराचरम् ।
त्वत्त. सर्वमिद जात त्वयि सर्व प्रतिष्ठितम् ॥१६४
अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा ।
देव सर्वसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५
त्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६
नमस्ते सर्वलोकेशनमस्ते कमलालय ।
गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर १६७॥

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम ।
जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८

हे भगवन् ! आप से ही देवो को आहार प्राप्त होता है और पृपद आज्य उत्पन्न हुए है । हे भगवन् ! ग्रामो मे होने वाली तथा वन मे उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ और पशु मृग आदि सब आपसे ही हुए हैं ॥१६२॥ ध्येय और ध्यान परायण हैं आप तथा आपने ही सब औषधियो का निर्माण किया है । हे देव देव ! आप सात मुखो वाले दीप्त विग्रह से युक्त काल नाम वाले है ॥१६३॥ हे भगवन् ! जड़ और चेतन स्वरूप यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आप से ही समुत्पन्न हुआ है और सब कुछ आप ही मे प्रतिष्ठित है ॥१६४॥ हे भगवन् ! आप ही अनिरुद्ध हैं-माधव है-प्रद्युम्न हैं और सुरारि दैत्यों के हन्ता है । हे देव ! आप सुरो मे श्रेष्ठ और सब लोको मे परायण हैं ॥१६५॥ हे कमल के लोचनो वाले ! हे नारायण ! मेरी रक्षा करो । मेरा आपके लिये नमस्कार है । हे भगवन् ! हे विष्णो ! हे पुरुषोत्तम ! आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१६६॥ हे सर्वलोकेश्वर ! आपका आलय कमल मे रहता है आपकी सेवा मे बारम्बार नमस्कार है । हे गुणो के आलय ! हे गुणो की खान ! आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है । हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है । हे सुरोत्तम ! आपको प्रणाम है । हे जनार्दन ! हे सनातन ! आपकी सेवा मे पुनः पुन. नमस्कार है ॥१६७-१६८॥

नमस्ते योगिना गम्य योगावास नमोऽस्तु ते ।
गोपते श्रीपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९

जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते ।
दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महीपते ॥१७०
नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षण ।
कैटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१

नमोऽस्तु ते महामीन श्रुतिपृष्ठधराच्युत ।
समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे ॥१७२

अश्वशीर्ष महाघोण महापुरुषविग्रह ।
मधुकटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३
महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च ।
विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः ॥१७४
नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे ।
नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे ॥१७५

हे योगावास ! आप योगियो के द्वारा जानने के योग्य हैं। हे गोपते ! हे श्रीपते ! हे विष्णो ! हे मरुत्पते ! आपके लिये नमस्कार है। हे जगत् के स्वामिन् ! आप ही इस जगत् को प्रसूत किया करते हैं। आप ज्ञानियों के स्वामी हैं आपको प्रणाम अर्पित है। हे दिवस्पते ! हे मही के स्वामिन् ! आपको नमस्कार है ।।१६८-१७०।। हे पुष्करेक्षण ! मधु दैत्य के हनन करने वाले के लिये प्रणाम है। हे सुब्रह्मण्य ! आप कैटभ दैत्य के हनन कर्त्ता हैं आपको वारम्वार प्रणाम है ।।१७१।। हे महाभील ! आप श्रुतियो को मत्स्यावतार धारण करके अपनी पीठ पर धारण करने वाले हैं। हे अच्युत ! आपकी सेवा मे बारम्वार नमस्कार अर्पित है। हे समुद्र के सलिल मे क्षोभ करने वाले ! पद्मजा (महालक्ष्मी) के आह्लाद करने वाले आपको प्रणाम है ।।१७२।। हे अश्व के सदृश मस्तक वाले ! हे महती नासिका वाले ! आपका विग्रह महान् पुरुष के तुल्य है। हे तुरगानन आपको नमस्कार है। महा कमठ भोग और पृथिवी के उद्धार करने वाले एवं विधृतादि स्वरूप वाले महा कूर्म आपके लिये नमस्कार है ।।१७३-१७४।। महावराह भूमि के उद्धारकारी विश्वरूप तथा आदि वराह वेधा के लिये नमस्कार है ।।१७५।।

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च ।
परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः ॥१७६
तस्मै नमः कारणकारणाय,
योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।
क्षीरार्णवाश्रितमहाहिसुतल्पगाय,
तुभ्य नमः कनकरत्नसकुण्डलाय ॥१७७

इत्थ स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधव. ।
क्षिप्र ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥१७८
ससारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे ।
अनित्ये दु खबहुले कदलीदलसनिभे ॥१७९
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्‌बुदचञ्चले ।
सर्वोपद्रवसयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे ॥१८०
भ्रमामि सुचिरं काल मायया मोहितस्तव ।
न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानस. ॥१८१
त्वामह चाद्य देवेश ससारभयपीडित. ।
गतोऽस्मि शरण कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२

अनन्त, सूक्ष्म, मुख्य, वैर, परमाणु स्वरूप, और योगियो के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने के योग्य आपके लिये नमस्कार है ॥१७६॥ कारणो के भी कारण, योगीन्द्रो के वृत्त के निलय, सुदुर्मिद, क्षीर सागर मे आश्रित महान् अहि की (शेष) शय्या पर शयन करने वाले और सुवर्ण के निर्मित रत्नो से युक्त कुण्डलो के धारी आपके लिये नमस्कार है ॥१७७॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—उस समय मे इस रीति से उसके द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् माधव बहुत ही प्रसन्न होते हुए बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! जो भी कुछ तुम मुझ से चाहते हो वह मुझे शीघ्र बतलाओ ॥१७८॥ कण्डु मुनि ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! यह ससार बहुत ही दुस्तर एव रोमाचित कर देने वाला तथा बहुत दु खो से भरा हुआ कदली के पत्ते के सदृश है एव अनित्य है । यह ससार बिना आश्रय वाला निरालम्ब, अनघ उपद्रवो से युक्त दुस्तर और जल के बुलबुले के समान अत्यन्त भैरव है । इस ऐसे भीषण ससार मे आपकी माया से मोहित होकर बहुत समय से भ्रमण कर रहा हूँ । इसका कहीं भी कोई अन्त मैं नही जानता हूँ और न पहुँच पाता हूँ क्योकि मेरा मन सासारिक विषयो मे आसक्त हो रहा है ॥१७९-१८१॥ हे देवेश्वर ! इस ससार के भय से पीडित हो रहा हूँ हे श्रीकृष्ण ! आज ही मुझे यह

सुअवसर मिला है कि आपकी शरणागति मे प्राप्त हो गया हू। इस ससार रूपी सागर से मेरा उद्धार कीजिए ॥१८२॥

गन्तुमिच्छामि परम पद यत्ते उनातनम् ।
प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३
भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ ममाराधय नित्यश ।
मत्प्रसादाद्ध्रुव मोक्ष प्राप्स्यसि त्व समोहितम् ॥१८४
मद्भक्ताः क्षत्रिया वश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः ।
प्राप्नुवन्ति परा सिद्धि किं पुनस्त्व द्विजोत्तम ॥१८५
श्वपाकोऽपि च मद्भक्त सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ।
प्राप्नोत्यभिमता सिद्धिमन्येपा तत्र का कथा ॥१८६
एवमुक्त्वा तु न विप्रा स देवो भक्तवत्सलः ।
दुर्विज्ञेयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१८७
गते तस्मिन्मुनिश्रेष्ठाः कण्डु सहृष्टमानसः ।
सर्वान्कामान्परित्यज स्वस्थचित्तो भवत्पुन ॥१८८
सर्वेन्द्रियाणि सयम्य निर्ममो निरहङ्कृति ।
एकाग्रमानस सम्यग्ध्यात्वा त पुरुषोत्तमम् ॥१८९

हे देवेश ! जो आपका सनातन परम पद है उसी को मैं गमन करना चाहता हूँ जो कि पुनरावृत्ति इस ससार मे नही किया करता है अतएव वह परम दुर्लभ है। आपकी ही कृपा से वहाँ मैं जा सकता हू ॥१८३॥ श्री भगवान् ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम मेरे परम भक्त हो और नित्य हो मेरी समाराधना करो। मेरे प्रसाद से तुम विश्वास रक्खो कि अपने अभीष्ट मोक्ष की प्राप्ति निश्चय हो कर लोगे ॥१८४॥ हे द्विजोत्तम ! मेरे जो भक्त होते हैं वे चाहे क्षत्रिय हो, वैश्य हो, स्त्री या शूद्र और अन्त्यज हो परम सिद्धि को प्राप्त किया करते है जिसमे तुम श्रेष्ठ विप्र हो, तुम्हारे विषय म तो कहना ही क्या है ॥१८५॥ यदि मेरा भक्त हो और वह श्वपाक भी हो तथा भली भाँति श्रद्धा से समन्वित हो तो वह भी अभिमत सिद्धि को प्राप्त कर लेता है फिर अन्यो के विषय मे तो कहना ही क्या है ॥१८६॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे विप्रो !

मुनियो ने कहा--अहो ! भगवान् कृष्ण का अतिमानुष अर्थात् मानवी शक्ति से परे अद्भुत माहात्म्य है। हे मुनिश्रेष्ठ ! और आपने इस भूमण्डल मे दुर्लभ श्री राम का भी माहात्म्य बतला दिया है। दोनो ही माहात्म्य वर्णित कर दिये हैं ॥१॥ तथापि भगवान् की कथा का श्रवण करते हुए भी हम लोग पूर्णतया तृप्ति नही पा रहे हैं। अतएव हे महाभाग ! और एक बार देवेश्वर का चेष्टित वर्णित कीजिए ॥२॥ अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का पुराणो मे प्रादुर्भाव वराह है ऐसा हमने सुना है और वह सत्पुरुषो को कहते हुए ही श्रवण किया है ॥३॥ इनके चरित्र को हम नही जानते हैं और न इनका विधान तथा विस्तार ही हमको ज्ञात है। इनके कर्म और गुण के सद्भाव को तथा मनीषित हेतुत्व को ही हम नही जानते हैं अर्थात् इनके अवतार का कारण एवं गुण और कर्मों का ज्ञान हमको नही है ॥४॥ यह वराह किस स्वरूप वाले हैं--इनकी मूर्त्ति कैसी है तथा यह कौन देव है। क्या इनका आचार एव प्रभाव है अथवा उन्होने उस समय मे क्या किया था ? ॥५॥ यज्ञ के लिये एकत्रित मिप करते हुए द्विजन्माओ को महान् वराह का चरित सब लोको को सुख देने वाला है ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! जिस तरह से नारायण न वराह के स्वरूप को धारण किया था और अरियो के मर्दन करने वाले प्रभु ने दाढ से समुद्र मे स्थित भूमि का उद्वार किया था ॥७॥

विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ।
श्रोतुं नो वर्तते बुद्धिर्हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभो ।
या याऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मं स्ताश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९
प्रश्नभारी महानेष भवद्भिः समुदाहृतः ।
यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥१०
विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या वो मतिरुत्थिता ।
तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः ॥११
सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् ।
सहस्रशिरसं देव [illegible]

सहस्रजिह्व भास्वन्त सहस्रमुकुट प्रभुम् ।
सहस्रद सहस्रादि सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३
हवन सवन चैव होतार हव्यमेव च ।
पात्राणि च पवित्राणि वेदि दीक्षा समित्स्रुवम् ॥१४

परम धीमान् हरि श्री कृष्ण के जो रिपुओ का सहार करने वाले थे, विस्तार से समस्त कर्मों का श्रवण करने की हमारी बुद्धि हो रही है ॥८॥ हे विभो ! आनुपूर्वी से कर्मों के जो भी प्रादुर्भाव हैं अथवा जो इनकी प्रकृति है हे ब्रह्मन् ! उसको आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥६॥ श्री व्यास देव जी ने कहा— यह तो बहुत बडा प्रश्नो का भार आप लोगों ने मेरे सामने कह दिया है । मैं अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा । आप लोग भगवान् विष्णु के यश का श्रवण करिए ॥१०॥ यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि श्री विष्णु के प्रभाव के श्रवण करने के लिये आपकी बुद्धि उठी है । अतएव अब आप भगवान् विष्णु की समस्त प्रवृत्तियो को सुनो ॥११॥ वेदो के वेत्ता विद्वान् पुरुष यज्ञ मे प्रभु के स्वरूप को सहस्र मुखो वाला सहस्र नेत्रो वाला सहस्र चरणो वाला-सहस्र शिर वाला सहस्र करो वाला और अव्यय कहते हैं ॥१२॥ एक सहस्र जिह्वाओ से युक्त सहस्र मुकुटो वाला सहस्र देने वाला सहस्रादि-सहस्र भुजाओ वाला अव्यय उनका स्वरूप है ॥१३॥ हवन सवन होता-हव्य पवित्र पात्र-वेदी दीक्षा-समिधा स्रुव ये सभी उन्ही प्रभु का स्वरूप है ॥१४॥

स्रुक्सोमसूर्यमुशल प्रोक्षणी दक्षिणायनम् ।
अध्वर्यु सामग विप्र सदस्य सदन सद ॥१५
यूप चक्र ध्रुवा दवी चरूश्चोलूखलानि च ।
प्राग्वश यज्ञभूमि च होतार च पर च यत् ॥१६
ह्रस्वाण्यतिप्रमाणानि स्थावराणि चराणि च ।
प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्य च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७
मन्त्रयज्ञवह वह्नि भाग भागवह च यत् ।
अग्रासिन सोमभुज हुतार्चिषमुदायुधम् ॥१८

इस प्रकार से उससे कहकर वह भक्तवत्सल-देव-वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे जिन विष्णु भगवान् की गति दुर्विज्ञेय थी ॥१८७॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उनके चले जाने अर्थात् अन्तर्ध्यान होने पर कण्डु मुनि के मन को बहुत प्रसन्नता हुई थी और फिर उसने समस्त कामनाओं का त्याग करके स्वस्थ चित्तता प्राप्त कर ली थी ॥१८८॥ वह सब अपनी इन्द्रियों पर संयम रखकर ममता से रहित और अहङ्कार से शून्य हो गया था। एकाग्र मन वाला होकर उन्हीं पुरुषोत्तम प्रभु का उसने ध्यान किया था ॥१८९॥

निर्लेप निर्गुण शान्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम् ।
अवाल परमं मोक्षं सुराणामपि दुर्लभम् ॥१९०
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि कथां कण्डोर्महात्मनः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति ॥१९१
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कर्मभूमिरुदाहृता ।
मोक्षक्षेत्रं च परमं देवं च पुरुषोत्तमम् ॥१९२
ये पश्यन्ति विभुं स्तुवन्ति वरद-
ध्यायन्ति मुक्तिप्रदं ।
भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमाख्यमजरं-
संसारदुःखापहम् ॥१९३
ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममला-
स्वर्गे च दिव्यं सुखं ।
पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिताः-
स्थानं हरेरव्ययम् ॥१९४

निर्लेप, निर्गुण, शान्त, सत्तामात्र में व्यवस्थित सुरों को भी अत्यन्त दुर्लभ उसने परम मोक्ष को प्राप्त कर लिया था ॥१९०॥ इन महान् आत्मा वाले कण्डु मुनि की पावन कथा को जो कोई श्रवण करता है अथवा पाठ करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है अन्त में वह स्वर्ग लोक का निवास प्राप्त किया करता है ॥१९१॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठ पुरुषो ! इस प्रकार से मैंने इस कर्मभूमि का वर्णन कर दिया है।

मैंने परम मोक्ष क्षेत्र का तथा पुरुषोत्तम देव का भी वर्णन करके बतला दिया है ॥१६२॥ जो लोग वरदान प्रदान करने वाले विभु का दर्शन करते हैं तथा उनकी स्तुति किया करते हैं और मुक्तिप्रद का ध्यान किया करते हैं जो कि पुरुषोत्तम नाम वाले अजर और सांसारिक दुःखों के अपहरण करने वाले हैं। उनकी भक्ति से भक्त दर्शन किया करते हैं ॥१६३॥ वे पुरुष मनुजेन्द्रों (राजाओं) के भोगों का उपभोग करके निर्मल होते हुए स्वर्ग के दिव्य सुख को भोगा करते हैं। इसके उपरान्त सब दोषों से रहित होते हुए श्री हरि के अव्यय पद को गमन किया करते हैं ॥१६४॥

—:*:—

वराहावतारवर्णन

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम् ।
रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम् ।
तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२
प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतामेव वराह इति नः श्रुतम् ॥३
न जानीमोऽस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् ।
न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमीप्सितम् ॥४
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता ।
किमाचारप्रभावो वा किंवा तेनतदा कृतम् ॥५
यज्ञार्थं समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् ।
महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६
यथा नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दन. ॥७

आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम् ।
तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥१९
प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः ।
भूयश्चैव भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः ॥२०
यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमां कथाम् ।
प्रादुर्भावाश्रितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१

यज्ञ, सोम, सूर्य, मुसल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग विप्र, सदस्य, सदन, सद, यूप, चरु, ध्रुवा, दर्वी, पशु, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञ भूमि, होता, परह्रस्व, एवं अत्यधिक प्रमाण वाले स्थावर तथा चर प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुशा, मन्त्र, यज्ञ का वहन करने वाली वह्नि, भाग, भागवह, अग्रासन, सोम भुज, हुतार्चिष, उदायुध इन सब में यज्ञ एवं वेदों के ज्ञाता जिन शाश्वत प्रभु को कहते हैं इन्हीं सुरों के ईश श्री वत्स के चिह्नों से अङ्कित धीमान् विष्णु के सहस्रों प्रादुर्भाव हैं। जिनमें अनेक तो व्यतीत हो चुके हैं। फिर और भी होंगे—इस प्रकार से पितामह ने कहा था ॥१५-२०॥ हे महाभागो! जो आप लोग पूछ रहे हैं वह परम पुण्यमयी दिव्य कथा है और यह विष्णु भगवान् के प्रादुर्भावों से ही आश्रित, मङ्गलमयी तथा सब पापों के हरण करने वाली है ॥२१॥

शृणुध्वं तां महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना ।
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं ममानघाः ॥२२
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महात्मनः ।
हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति वीर्यवान् ।
प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान् ॥२४
सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति वामनः ।
पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥२५
ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशास्तथा ।
देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६

सनत्कुमारश्च महानुभावो,
मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे,
प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजा. ॥२७
योऽसौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२८

हे महान् भाग वालो ! उसका श्रवण करो । तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा मैं उसको आनुपूर्वी से अर्थात् बिल्कुल आरम्भ से लेकर पूर्ण बताऊँगा जो कि हे अनघो ! मुझसे आप लोग पूछ रहे हो ॥२२॥ मैं महामनि वासुदेव के चरित और माहात्म्य को देवो तथा मनुष्यो के हित के लिये और लोको के प्रभव के लिये कहता हू ॥२३॥ वे समस्त भूतो के आत्मा वीर्य वाले बहुत बार प्रादुर्भाव किया करते हैं । मैं उनके परम दिव्य एव गुणगण से समन्वित प्रादुर्भावो को बतलाऊँगा ॥२४॥ सहस्रो युगो तक शयन करने वाले जो कार्य से प्रादुर्भाव किया करते हैं जबकि युगो की एक सहस्र सख्या पूर्ण हो जाती है तभी देवो के भी देव इस जगत् के पति प्रादुर्भाव हुआ करते हैं ॥२५-२६॥ महानुभाव सनत्कुमार-महात्मा मनु-भगवान् प्रजाकर समुत्पन्न हुए थे तथा प्रदीप्त अग्नि के समान तेज वाले पुराण देव ने पुरो की रचना की थी ॥२७॥ यह वह है जो देव असुर और मनुष्यो के विनष्ट हो जाने पर, उरग तथा राक्षसो के क्षय हो जाने पर और चर-अचर सबके नाश के हो जाने पर सागर के मध्य मे सस्थित हो जाया करते हैं ॥२८॥

योद्धु कामौ दुराघर्षौ तावुभौ मधुकैटभौ ।
हतौ भगवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमित वरम् ॥२९
पुरा कमलनाभस्य स्वपत. सागराम्भसि ।
पुष्करे तत्र सभूता देवा सर्षिगणास्तथा ॥३०
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
पुराण कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः ।
यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थितः ॥३२
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥३३
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गः श्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वरो महान् ॥३४
सत्यधर्ममयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः ।
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मुखाकृतिः ॥३५

मधु और कैटभ नाम वाले दो असुर बहुत ही दुराधर्ष थे अर्थात् असह्य प्रताप वाले थे । वे दोनो युद्ध करने की इच्छा वाले थे । उन दोनो को अपरिमित वरदान प्रदान करके उन भगवान् ने उन दोनो को मार डाला था ॥२९॥ पुरातन समय मे सागर के जल के मध्य मे शयन करने वाले कमल नाभि रखने वाले प्रभु के पुष्कर मे वहा पर समस्त ऋषिगण के साथ देव समुत्पन्न हुए थे ॥३०॥ जहा पर देव और श्रुति से समाहित पुराण का कथन किया जाता है यह पौष्कर नाम वाला महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ था ॥३१॥ वराह तो श्रुति के मुख वाला महात्मा का प्रादुर्भाव था । जहा पर श्रुति श्रेष्ठ भगवान् विष्णु वराह के स्वरूप मे समास्थित हुए थे ॥३२॥ वराह का स्वरूप बतलाया जाता है–वेद ही उनके चार चरण थे, यूप दंष्ट्रा थी, क्रतु दांत थे, चिती ही मुख था । अग्नि जिह्वा थी, दर्भ (कुशा) ही रोम थे और ब्रह्म मस्तक था तथा महान् तपस्वी स्वरूप था ॥३३॥ दिन और रात्रि दोनो नेत्र थे । वराह का स्वरूप परम दिव्य एव वेदाङ्ग और श्रुति मे भूषण वाला था । आज्य (घृत) ही उसकी नासिका थी, स्रुव तुण्ड था, सामवेद का घोष ही उनका महान् स्वर था ॥३४॥ सत्य धर्म से परिपूर्ण, श्रीमान् क्रम विक्रम से सत्कृत, प्रायश्चित्तो के नखो वाला, घोर, पशुओ के जानुओ वाली मुखाकृति थी ॥३५॥

उद्गतान्त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफलः ।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः ॥३६

वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ॥३७
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्माष्टरुचकः प्रवर्गावर्तभूषण. ॥३८
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थित. ॥३९
मही सागरपर्यन्ता सशैलवनकाननाम् ।
एकार्णवजलभ्रष्टामेकार्णवगतः प्रभुः ॥४०
दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकाना हितकाम्यया ।
सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगती पुनः ॥४१
एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२

उद्धत अन्त्रो से युक्त, होम के लिङ्ग वाला, बीज औषधि के महान् फल वाला, वादी ही उसकी अन्तरात्मा थी तथा मन्त्र स्फिक् से बिकार युक्त, साम के शोणित वाला वराह का स्वरूप था ॥३६॥ वेदी उसके स्कन्ध थे, हवि गन्ध था, हव्य, कव्य अत्यन्त वेगो से समन्वित, प्राग्वंश की काया वाला, द्युतिमान् और दीक्षाओ से संयुत स्वरूप था ॥३७॥ दक्षिणा के हृदय वाला, योगी, महान् सत्रसे परिपूर्ण, महान्, उपाकर्म के अष्ट रुचक वाला प्रवर्ग के आवर्त्त से युक्त भूषण वाला, वराह का स्वरूप था ॥३८॥ अनेक छन्द ही गति पथ थे, गुह्य उपनिषदो के आसन वाला, छाया रूपिणि पत्नी की सहायता से युक्त मणि के शृङ्ग की भाँति समुस्थित हुए थे ॥३९॥ शैलो, बनो और काननो के सहित सागर तक एकार्णव मे परिभ्रष्ट हुई को उस महा सागर मे जाकर जिस प्रभु ने अपनी दाढ से लोको के हित की कामना से उठाकर सहस्र शीर्ष वाले ने जो लोको का आदि स्वरूप है इस जगत् को पुनः किया था ॥४०-४१॥ इस तरह से यज्ञ वराह के स्वरूप को धारण करके प्राणियो के हित के चाहने वाले पुरातन समय मे सागर के जल को धारण करने वाली पृथिवी देवी को उद्धृत किया था ॥४२॥

वाराह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ।।४३
पुरा कृतयुगे नाम सुरारिर्बलदर्पितः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ।।४४
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जपोपवासनिरतस्तस्थौ मौनव्रतस्थितः ।।४५
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ।।४६
तं वै स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ।।४७
आदित्यैर्वसुभिः सार्धं मरुद्भिर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ।।४८
दिशाभिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ।।४९

यह वराह नाम से कहे गये हैं । हे द्विजगण ! इसके पश्चात् नारसिंह प्रादुर्भूत हुए थे जहां पर मृगेन्द्र का स्वरूप धारण करके उनने हिरण्यकशिपु का हनन किया था ।।४३।। प्राचीन काल में कृतयुग में सुरों के घोर शत्रु-अपने बल के दर्प से भरा हुआ दैत्यों के आदि पुरुष उस हिरण्यकशिपु ने महान तप किया था ।।४४।। वह तपश्चर्या साढे ग्यारह हजार वर्षों तक की थी और जप तथा उपवासों में एक दम से मग्न होकर मौन व्रत में रहते हुए वह स्थित हो गया था ।।४५।। इतने समय तक तप करने के पश्चात् वह शम-दम और ब्रह्मचर्य के परिपालन से युक्त हो गया था। इसके उपरान्त उसके महान् उग्र तप से और नियमों के पालन करने से भगवान् स्वयंभू बहुत प्रसन्न हो गये थे ।।४६।। हे द्विजो ! फिर स्वयम्भू भगवान् ने वहां पर स्वयं समागत होकर उससे कहा था। स्वयम्भू प्रभु सूर्य के सदृश और हंसों से युक्त विमान के द्वारा वहां पर पधारे थे जो कि अत्यन्त भास्वर वर्ण वाला था ।।४७।। उनके साथ में आदित्य वर्ग, वसुगण, मरुद्गण, देवों का समूह, रुद्रगण, विश्व

सहायक, यक्ष, राक्षस, किन्नर, दिशा, प्रदिशा, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, खेचर और महाग्रह सभी थे ॥४८-४९॥

देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च ।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैरप्सरागणैः ॥५०
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥५२
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
ऋषयो वाऽथ मां शापं क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३
शापेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ।
न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४
न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः ।
पाणिप्रहारेणैकेन स भृत्यबलवाहनम् ॥५५
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ।
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥५६
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः ।
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७

ब्रह्माजी के चारों ओर, देवर्षि गण तपो वृद्ध, सिद्ध विद्वद्गण आदि सभी सुरों का समुदाय था। राजर्षि पुण्यतम गन्धर्व और अप्सराओं के गणों से वे श्रीमान् समावृत थे। ब्रह्म के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ चराचर गुरु ब्रह्माजी वहाँ आकर उस दैत्य से यह वचन बोले थे ॥५०-५१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे सुव्रत! मेरे परम भक्त तेरे इस महान् उग्र तप से मैं बहुत ही अधिक प्रसन्न हो गया हूँ। तुम्हारा कल्याण होगा। मुझसे वरदान की याचना कर लो जो भी कुछ तुम्हारे मन की अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त कर लो ॥५२॥ हिरण्य कशिपु ने कहा—हे लोकों के पिता-

मह ! मैं आपसे यही वरदान चाहता हूं कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, अथवा ऋषिगण क्रुद्ध होकर मुझे भी शाप न देवें अर्थात् उनके शापो का कुछ भी प्रभाव मेरे ऊपर न होवे। शस्त्र से, अस्त्र से, गिरि से, पादप से, चाहे वह शुष्क हो या गीला ही हो, ऊपर के भाग मे, नीचे के हिस्से मे भृत्य बल के वाहन मुझको जो एक हाथ के प्रहार से नष्ट करने के लिये समर्थ हो वह मेरी मृत्यु नही होगी। मैं ही सूर्य, सोम, वायु, अग्नि, सलिल, अन्तरिक्ष, और आकाश सभी ओर हो जाऊँ। मैं क्रोध, काम, वरुण, वासव (इन्द्र), यम, धनद, धन का स्वामी किन्यु रुपाधिप यक्ष हो जाऊँ ॥५३-५७॥

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान्कामानिमास्तात प्राप्स्यसि त्व न सशयः ॥५८
एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाऽऽशु पितामहः ।
वराज ब्रह्मसदन ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५६
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ।
वरप्रदान श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥६०
वरेणानेन भगवन्बाधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१
भगवन्सर्वभूताना स्वयभूरादिकृत्प्रभुः ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्त प्रकृतिध्रुवम् ॥६२
ततो लोकहित वाक्य श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
प्रोवाच भगवान्वाक्य सर्वदेवगणास्तथा ॥६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ये सब दिव्य वर हैं हे तात ! यद्यपि ये वर बहुत ही अद्भुत हैं तो भी मैंने आपको दे दिये हैं। हे तात ! इन सभी कामनाओं को तुम अवश्य ही प्राप्त कर लोगे—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥५८॥ श्री व्यासजी ने कहा—इस रीति से कहकर भगवान् पितामह वहाँ से शीघ्र ही चले गये थे और वे ब्रह्मर्षि गणो के द्वारा सेवित वैराज ब्रह्म सदन मे पहुच गये थे ॥५६॥ इसके उपरान्त देवता, नाग, गन्धर्व और मुनिगण सब इस प्रकार के वर प्रदान को श्रवण करके

ही सीधे पितामह के समीप मे उपस्थित हो गये थे ॥६०॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! इस वरदान के प्रभाव ■ जो उस दैत्य को आपने दिया है वह असुर हम सबको मार डालेगा सो हे भगवन् ! हमारे ऊपर प्रसन्न होइये और इसके वध को भी कोई उपाय सोचिए ॥६१॥ हे भगवन् ! समस्त भूतो के आप स्वयम्भू आदि कर्त्ता हैं और प्रभु है। आप हव्य कव्यो के सृजन करने वाले हैं तथा आप अव्यक्त निश्चित रूप से प्रकृति हैं ॥६२॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—प्रजापति देव ने लोको के हितकर वाक्य का श्रवण किया था और फिर भगवान् ने समस्त देवगणो से कहा था ॥६३॥

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्य तपस फलम् ।
तपसोऽन्ते च भववान्वध विष्णु करिष्यति ॥६४
एतछ्रुत्वा सुरा सर्वे वाक्य पङ्कजजन्मन ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विता ॥६५
लब्धमाने वरे चापि सर्वा सोऽबाधत प्रजा ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पित ॥६६
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै सशितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्षितवास्तथा ॥६७
त्रिदिवस्थास्तथा देवान्पराजित्य महाबल ।
त्रैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुर ॥६८
यदा वरमदोन्मत्ता विचरन्दानवा भुवि ।
यज्ञीयानकरोद् दैत्यानयज्ञीयाश्च देवता ॥६९
आदित्या वसव साध्या विश्वे च मरुतस्तथा ।
शरण्य शरण विष्णुमुपतस्थुमहाबलम् ॥७०
देवब्रह्ममय यज्ञ ब्रह्मदेव सनातनम् ।
भूत भव्य भविष्य च प्रभु लोकनमस्कृतम् ॥
नारायण विभु देव शरण्य शरण गता ॥७१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणो ! उसको दिये हुए अपने तप का फल तो अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए। इस तपश्चर्या के फल के

अन्त में भगवान् विष्णु इसका स्वयं ही वध करेंगे ॥६४॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्माजी के वचन को सुन कर सभी सुरगण प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानो को चले गये थे ॥६५॥ उस दैत्य ने वरदान के प्राप्त होने के साथ ही समस्त प्रजा को बाधाएँ पहुंचाने लग गया था। वह हिरण्यकशिपु दैत्य वरदान पाकर बहुत ही अधिक दर्पित (घमडी) हो गया था ॥६६॥ वह मुनियो के आश्रमो मे संशित व्रत वाले महाभाग मुनियो को जो सत्य धर्म में निरत रहा करते थे उस समय में उन दमनशील मुनियों को वह धर्षित करता था ॥६ ॥ महान् बल वाला वह स्वर्ग मे रहने वाले देवो को पराजित करके सब पर विजेता हो गया था और तीनो लोको को अपने वश मे करके वह असुर फिर स्वर्ग मे निवास करने लग गया था ॥६८॥ जिस समय मे वरदान प्राप्त करने के मद से उन्मत्त वह दानव भूमण्डल मे विचरण करता हुआ सर्वत्र आ जा रहा था उस समय मे उसने जो यज्ञीय अर्थात् यज्ञ के भाग को ग्रहण करने वाले देवता थे उनको अयज्ञीय अर्थात् यज्ञ भाग को न ग्रहण करने वाले बना दिया था और दैत्यो को यज्ञीय कर दिया था ॥६९॥ आदित्य, वसुगण, साध्य, विश्वेदेवा, मरुद्गण सब शरण मे समागत की रक्षा करने वाले महा बलवान् भगवान् विष्णु की सेवा मे पहुच कर उपस्थित हो गये थे ॥७०॥ देव-ब्रह्म से परिपूर्ण, यज्ञ स्वरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, भूत, भव्य, भविष्य, लोको के द्वारा वन्दित, विभु, देव और शरण्य भगवान् नारायण की शरणागति मे हो गये थे ॥७१॥

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् ।
त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।
उत्फुल्लामलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयंकर ॥
क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३
भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ।
हिरण्यकशिपोः स्थानमाजगाम महाबलः ॥७६
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७

देवों ने कहा—हे भगवन् ! हे देवेश्वर ! आज हम सबकी हिरण्यकशिपु के भय से रक्षा कीजिए। आप ही हमारे परम देव हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं ॥७२॥ हे भगवन् ! आप ही हमारे परम धाता हैं जो हम सब ब्रह्मा आदि हैं। आप सुरों में सबसे उत्तम हैं। हे विकसित कमल के दल के समान नेत्रों वाले ! आप शत्रु के पक्ष का क्षय करने वाले हैं। दिति के वंश के क्षय के लिये आप हमारे रक्षक हो जाइये ॥७३॥ श्री वासुदेव भगवान् ने कहा—हे देवो ! आप लोग भय का त्याग कर दो। मैं आप लोगों को अभय प्रदान करता हूँ। हे देवगणो ! आप अपने स्वर्ग को बहुत ही शीघ्र पूर्व की भाँति ही प्राप्त कर सुख प्राप्त करोगे और इसमें अब अधिक विलम्ब नहीं है ॥७४॥ यह मैं ही स्वयं गण के सहित और वरदान पाकर घमण्ड से भरे हुए दैत्य को मार दूँगा जो दानवेन्द्र देवों के द्वारा भी अवध्य है ॥७५॥ श्री व्यासजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् ने देवगण से कहकर उनको विदा कर दिया था और महान् बलवान् वे हिरण्यकशिपु के स्थान पर आगये थे ॥७६॥ प्रभु ने अपना आधा शरीर तो नर का बनाया था और आधा शरीर सिंह का बना लिया था। इस तरह से नारसिंह शरीर के द्वारा हाथ से हाथ का स्पर्श किया था ॥७७॥

घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः ।
घनजीमूतदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा दृप्तशार्दूलविक्रमः ।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९

नृसिंह एप कथितो भूयोऽथं वामनः परः ।
यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०
दलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१
विप्रचित्तिः शिवः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च ।
अयःशिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥८२
वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रव्यगो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३
प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो गमनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहयो वाराहः सहरोऽनुजः ॥८४

वह नरसिंह प्रभु सघन मेघ के समान शरीर के वर्ण वाले थे और घन मेघ के ही तुल्य गर्जना करने वाले थे । सघन मेघ के सदृश दीप्त ओज से संयुत और जो बादल के समान वेग वाले थे ॥७८॥ दर्प से युक्त शार्दूल सदृश विक्रम वाले उन नरसिंह प्रभु ने अत्यन्त घमण्डी दैत्यों के समुदाय से रक्षित अत्यन्त बल वाले दैत्य को एक ही हाथ से मार गिराया था ॥७९॥ यह नृसिंह कहे गये थे । यह भूप दूसरे वामन है । जहाँ पर दैत्यों के विनाश करने वाले वामन के रूप में आस्थित होकर प्राचीन समय में बली राजा बलि के यज्ञ में बलवान् विष्णु ने तीन ही कदमों से उन समस्त महान् असुरों को क्षोभित कर दिया था ॥८०-८१॥ अब उन प्रसिद्ध असुरों के नाम बतलाये जाते हैं जिन्होंने नरसिंह प्रभु के सामने युद्ध करके पराजय तथा हनन प्राप्त किया था । विप्रचित्ति, शिव, शकु, अयः शकु, अयः शिरा, अश्व शिरा, हयग्रीव जो बड़ा वीर्यवान् था—वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोग्रव्यग, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, शाश्व, अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वपति, कुम्भ, संह्लाद, गमन प्रिय, अनुह्लाद, हरिहय, वाराह और सहर एवं अनुज ये सब दैत्य थे ॥८२-८४॥

शरभः शलभश्चैव कुपथः कोधनः क्रथः ।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥८५

दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो मृगपादो मृगप्रियः ।
वायुर्गरिष्ठो नमुचिः सम्बरो विस्करो महान् ॥८६
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ।
कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥८७
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापि केतुमान्बलदर्पितः ॥८८
असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः ।
स्वमश्रः कालवदनः करालः केशिरेव च ॥८९
एकाक्षश्चन्द्रमा राहुः सह्लाद. सम्बरः स्वनः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणय ॥९०
अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा ।
शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ॥९१

इनके अतिरिक्त शरभ, शलभ, कुपथ, क्रोधन, क्रथ, बृहत्कीर्त्ति, महाजिह्व, शकुकर्ण, महास्वन, दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्कर, महान्, चन्द्र हन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, काल कोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्र, तापन, वातापी, बलदर्पित केतुमान्, असिलोमा पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिश्र, कालवदन-कराल-केशि-एकाक्ष-चन्द्रमा-राहु सह्लाद सम्वर, स्वन, शतघ्नी, चक्रहस्ता, हाथ में मुसलधारी, अश्मयन्त्र आयुधों से युक्त, भिन्दिपाल के आयुध वाले, शूल, उलूखल हाथों में रखने वाले, परशुधारी सब असुर थे ॥८५-९१॥

पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ।
महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवा ॥९२
नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबलाः ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥९३
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे ॥९४

नक्रमेषानना: शूरा गोजाविमहिषानना: ।
गोधाशल्लकिवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवा. ॥६५
आखुदर्दु रवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोञ्चवक्त्राश्च दानवा: ॥६६
अश्वानना खरमुखा मयूरवदनास्तथा ।
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बरा: ॥६७
चीरसवृतगात्राश्च तथा नीलकवासस: ।
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुरा. ॥६८

उन असुरो मे विभिन्न अस्त्रधारी थे । कुछ पाश और मुद्गर हाथो मे लिये हुए थे । हाथो मे परिघ ग्रहण करने वाले थे । महाशिलाओ के प्रहरण वाले, कुछ दानव हाथो मे शूल से युक्त थे, विभिन्न प्रहरण वाले, घोर, अनेक वेशो वाले, महान् बल वाले, कूर्म तथा कुक्कुट के मुख वाले, शश और उलूक के समान मुख से युक्त, खर (गधा), ऊट के तुल्य मुखो वाले, वराह के समान वदनो से सयुत, गीदड के जैसे मुखो से युक्त नदाव, अश्वानन, खरमुख, मयूर वदन, गजेन्द्र के समान चर्म और वस्त्रो वाले, काले मृग के चर्म के तुल्य वसनो वाले, चीरो से ढके हुए शरीर वाले, नीले वस्त्रो से सयुत, उष्णीषि (पागो वाले), मुकुट धारी और कुण्डल पहिने हुए असुर थे ॥६२-६८॥

किरीटिनो लम्बशिखा: कम्बुग्रीवा: सुवर्चस. ।
नानावेशधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपना: ॥६६
स्वान्यायुधानि सगृह्य प्रदीप्तानि च तेजसा ।
क्रममाण हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वश. ॥१०१
प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैर्विभु: ।
रूपं कृत्वा महाभीम जहाराऽऽशु म मेदिनीम् ॥१०१
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभ. प्रक्रममाणस्य नाभ्या किल तथा स्थितौ ॥१०२
परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ।
विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय: ॥१०३

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥११६

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा ।
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥११७

कृत्वा निःक्षत्रियां चैनां भार्गवः सुमहायशाः ।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥११८

यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११९

यह भगवान् विष्णु का परम शुभ-श्री समन्न अत्यन्त अद्भुत प्रादुर्भाव था । इसके पश्चात् उन महात्मा का एक जामदग्न्य प्रादुर्भाव हुआ था । जहाँ पर युद्ध मे एक सहस्र बाहुओ से द्वेषियो का दुर्जय उस नृपति सहस्रार्जुन को सेना के मध्य मे स्थित होने पर राम (परशुराम) प्रभु ने मार डाला था ॥११३-११४॥ राम ने रथ मे स्थित उस राजा अर्जुन को भूमि मे गिराकर मेघ के समान गर्जन करते हुए को धर्षित करके भृगुनन्दन ने पूरी एक सहस्र भुजाओ का छेदन कर दिया था और उस दीप्त परशु से ज्ञाति के सब लोगो का भी हनन कर दिया था ॥११५-११६॥ उन प्रभु जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने बहुत से क्षत्रियो के द्वारा समाकीर्ण, मेरु तथा मन्दर पर्वतो के भूषण वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियो से रहित कर दिया था अर्थात् खोज बीन करके क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया था ॥११७॥ महान् यशस्वी भार्गव ने इस भूमि को क्षत्रियों से विहीन करके अन्त मे इस महान् हनन के सम्पूर्ण पापों के विनाश करने के लिये वाजिमेध यज्ञ का यजन किया था ॥११८॥ भृगुनन्दन ने जिस यज्ञ मे महादान में दक्षिणा के स्वरूप मे मरीचि के पुत्र कश्यप के लिये प्रसन्न होते हुए पूर्ण वसुन्धरा का दान कर दिया था ॥११९॥

वारणांस्तुरगान्शुभ्रान्ययांश्च रथिनां वर ।
हिरण्यमदाय धेनुगजेन्द्रांश्च महीपतिः ॥१२०

ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः ।
अद्यापि च हितार्थाय लोकाना भृगुनन्दन. ।।१२१
चरमाणस्तपो घोरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः ।
आस्ते वै देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ।।१२२
एप विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च ।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ।।१२३
चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः ।
जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ।।१२४
कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः ।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ।।१२५
प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसा निग्रहाय च ।
धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः ।।१२६

रथियो मे परम श्रेष्ठ महान् यशस्वी राजा ने उस महान् यज्ञ अश्वमेध मे विप्रो के लिये हाथी, घोडे, शुभ्र रथ, अक्षय सुवर्ण धेनु, और गजेन्द्रो को दान मे प्रदान किये थे। उस भृगुनन्दन के द्वारा दिये हुए महान् दान का प्रभाव लोको के हित के लिये अभी तक भी विद्यमान है ।।१२०-१२१।। फिर जामदग्न्य प्रभु घोर तप का समाचरण करते हुए वे श्रीमान् पर्वतो मे उत्तम महेन्द्र पर देवता की भाँति विराजमान हैं ।।१२२।। यह सुरो के स्वामी, शाश्वत, अव्यय महात्मा विष्णु भगवान् का प्रादुर्भाव (अवतार) जामदग्न्य, इस शुभ नाम से विख्यात हुआ है ।।१२३।। चौबीसवें युग मे विश्वामित्र के सहित पद्म दल के सदृश विशाल लोचनो वाले पुत्र ने राजा दशरथ के यहा पर जन्म ग्रहण किया था ।।१२४।। उन महान् बाहुओ वाले प्रभु ईश्वर ने अपने आपको चार भागों में विभक्त कर दिया है जो कि वह प्रभु इस लोक मे "श्रीराम"—इस नाम से तेज के द्वारा भास्कर के तुल्य विख्यात हुए थे ।।१२५।। लोको के प्रसादन के लिये और राक्षसो के निग्रह तथा धर्म की वृद्धि के लिये वे महा यशस्वी समुत्पन्न हुए थे ।।१२६।।

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम् ।
यः समाः सवधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ॥१२७
लक्ष्मणानुचरो राम- सर्वभूतहिते रतः ।
चतुर्दश वने मप्त्वा तपा वर्पाणि राघवः ॥१२८
रूपिणी तस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जने ।
पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२६
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार सः ।
तम्यापकारिण क्रूर पौलस्त्य मनुजर्षभः ॥१३०
सीताया पदमन्विच्छन्निजघान महायशाः ।
देवासुरगणाना च यक्षराक्षसभोगिनाम् ॥१३१
यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि दुर्जयम् ।
युक्त राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम् ॥१३२
त्रैलोक्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम् ।
दुर्जयं दुर्धरं दृप्त शार्दूलसमविक्रमम् ॥१३३

उनको भी समस्त प्राणियो के हित मे रति रखने वाले को मनुष्येन्द्र कहते हैं जो सब धर्मों के ज्ञाता चौदह वर्ष पर्यन्त वन मे वास करने वाले हुए थे ॥१२७॥ श्रीराम के अनुचर लक्ष्मण थे जो सब भूतो के हित मे रति रखने वाले थे । राघवेन्द्र ने वन मे चौदह वर्ष तक तप किया था अर्थात् वनवास की कठिन तपस्या की थी ॥१२८॥ उनके पार्श्व भाग मे स्थित रूप लावण्य वाली सीता—इस नाम से लोगो मे प्रख्यात थी । पूर्व मे जो बतलाई गयी थी वही लक्ष्मी भर्त्ता का अनुगमन कर रही थी ॥१२६॥ उन श्री राघवेन्द्र ने जन स्थान मे निवास करते हुए देवो का कार्य किया था । महान् यशस्वी उन मनुष्यो मे परम श्रेष्ठ राघव प्रभु ने उसके उपकार करने वाले, महान् क्रूर पौलस्त्य (रावण) को सीताजी के चरणो के पीछे २ खोज करके गमन कर मार दिया था । यह रावण सब देव, असुर, यक्ष, राक्षस और उरगो के द्वारा अवध्य था अर्थात् मारने की शक्ति के बाहिर था उस नीले अञ्जन के ढेर के समान वर्ण वाले, राक्षसो से समन्वित, युद्ध मे निर्जित न होने वाले, त्रिलोकी को

द्रवण (भयभीत) करने वाले राक्षसेन्द्र रावण को श्रीराम ने मारा था जो राक्षसेश्वर दुर्जय, दुर्धर, दृप्त (महा घमण्डी) और शार्दूल के सदृश विक्रम वाला था ॥१३०-१३३॥

दुर्निरीक्ष्य सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ।
जघान सचिवै सार्धं ससैन्य रावण युधि ॥१३४
महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम् ।
रावण निजघानाऽऽशु रामो भूतपति पुरा ॥१३५
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबल ।
वाली विनिहत सख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचित ॥१३६
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानव ।
हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुर ॥१३७
यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीना भावितात्मनाम् ।
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरौ ॥१३८
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ।
समरे युद्धशौण्डेन तथाऽन्ये चाहि राक्षसा ॥१३९
विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ ।
जघान पुरुषव्याघ्रो गन्धर्वौ शापमोहितौ ॥१४०

वह रावण ब्रह्माजी से प्राप्त वरदान के कारण बहुत ही दर्प वाला हो रहा था और उस महान् घमण्डी को सुरगण देख भी नहीं सकते थे—ऐसा तेजस्वी था । उसी रावण का सेना के सहित तथा सचिवो से युक्त को श्री राम ने युद्ध मे मार दिया था ॥१३४॥ प्राचीन समय मे समस्त भूतो के स्वामी श्री राघवेन्द्र प्रभु ने महान् मेघ गण के तुल्य, महान् विशाल वपु वाले, महान् बलवान् रावण को बहुत ही शीघ्र मार गिराया था ॥१३५॥ जिन श्री राम ने अपने परम मित्र एव महान् भक्त सुग्रीव के हित के लिये महान् बलशाली वानरो के राजा बालि को युद्ध म मार दिया था और सुग्रीव को उसके राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥१३६॥ मधु दैत्य के पुत्र का नाम लवण था और वह दानव बहुत ही

घमण्डी था। वह भी वरदान प्राप्त कर बहुत ही मद से मत्त हो रहा था और वह वीर महान् असुर मधुवन मे ही मारा गया था ॥१३७॥ परम भावित आत्मा वाले मुनि गणो के यज्ञो मे विघ्न-बाधा डालने वाले और बड़े बल धारियो मे भी महान् बल वाले मारीच और सुबाहु थे उन महात्मा ने अपने बल के द्वारा उन दोनो को निराश कर दिया था और मार डाला था। इस भाँति से युद्ध मे महान् शौण्ड (वीर) श्रीराम ने समर मे अन्य भी राक्षसो का वध कर दिया था ॥१३८-१३९॥ बहुत ही भयानक विक्रम से युक्त विराध और कबन्ध दो राक्षस थे ये पूर्व मे गन्धर्व थे और शाप से मोहित होकर राक्षस हो गये थे। इनको उन्ही पुरुष व्याघ्र श्रीराम ने मार दिया था ॥१४०॥

हुताशनार्कांशुतडिद्गुणाभैः प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारं रिपून्स राम समरे निजघ्ने ॥१४१
तस्मै दत्तानिशस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता।
वधार्थं देवशत्रूणा दुर्धर्षाणा सुरैरपि ।१४२
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मन.।
भग्न माहेश्वर चाप क्रीडता लीलया पुरा ॥१४३
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृता वर.।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१४४
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाऽऽकुल मारुतोववौ।
न वित्तहरण चाऽऽसीद्रामे राज्य प्रशासति ॥१४५
परिदेवन्ति विधवा नानर्थाश्च कदाचन।
सर्वमासीच्छुभ तत्र रामे राज्य प्रशासति ॥१४६
न प्राणिना भय चाऽऽसीज्जलाग्न्यनिलघातजम्।
न चापि वृद्धाबालाना प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७

उन श्री राघवेन्द्र प्रभु ने युद्ध स्थल मे अपने समस्त शत्रुओं को अग्नि और सूर्य की किरणो के तथा विद्युत् के समान आभा वाले एव तपे हुए सुवर्ण के समान सार रखने वाले अपने आयुधो से मार गिराया था ॥१४१॥ सुरगणो के द्वारा भी महान् दुर्धर्ष अर्थात् न दवाये जाने वाले

देवों के शत्रुओं के वध के लिये परम धीमान् श्री विश्वामित्र ऋषि ने अद्भुत शस्त्र श्री राम को प्रदान किये थे ॥१४२॥ जिन श्री राम ने महात्मा जनक नृप के वर्तमान मख में पुरातन समय में खेल ही खेल में क्रीडा करते हुए भगवान् महेश्वर के धनुष को भङ्ग कर दिया था ॥१४३॥ धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्री राम ने ये सब कर्म करके निरर्गल जारूथ्य दशाश्व मेध यज्ञों को किया था ॥१४४॥ श्री राम के शासन काल में कहीं पर भी कोई अशुभ वाणी नहीं सुनी जाती थी और कभी भी आकुल वायु वहन नहीं किया करती थी श्री राम के प्रशासन करने के समय में कहीं पर भी धन का अपहरण नहीं होता था ॥१४५॥ विधवाएँ परिदेवन (रुदन) नहीं करती थीं और कभी भी कहीं अनर्थ नहीं होते थे। श्री राघवेन्द्र प्रभु के शासन करने के समय में उनके राज्य में सभी शुभ हुआ करता था अतएव 'रामराज्य' सुख-शुभ के लिये अभी तक परम प्रख्यात है ॥१४६॥ श्री रामचन्द्र जी के राज्य में प्राणियों को जल-अग्नि-अनिल से उत्पन्न कोई घात करने वाला भय नहीं था। वृद्ध अपने बालकों के प्रेत कर्म भी नहीं किया करते थे। तात्पर्य यह है कि वृद्धों के रहते हुए उनसे छोटे बालकों की मृत्यु नहीं होती थी ॥१४७॥

ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं विशस्तु क्षत्रिये रताः ।
शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्छुश्रूषन्त्यनहङ्कृताः ॥१४८
नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्यां नात्यचरत्पतिः ।
सर्वमासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही ॥१४९
राम एकोऽभवद्भर्ता रामः पालयिताऽभवत् ।
आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ॥१५०
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्रामे राज्यं प्रशासति ।
देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१
पृथिव्यां समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ।
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ॥१५३

आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुज ।
दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४

क्षत्रिय लोग सब ब्रह्मचर्य व्रत मे परायण रहते थे और वैश्य गण क्षत्रियो मे रति रखते थे । शूद्र लोग श्री राम राज्य मे अहङ्कार रहित होकर तीनो वर्णों की शुश्रूषा किया करते थे ॥१४८॥ नारियाँ अपने भर्त्ता के साथ अत्याचार नही किया करती थी और पति लोग भी अपनी पत्नियो के साथ में अत्याचरण नही किया करते थे । विशेष क्या कहा जावे सम्पूर्ण जगत् ही आवास वृद्ध वनिता स्वरूप परम दान्त (दमनशील) था और समस्त भूमि मे कहीं पर भी कोई दस्यु (ठग, डाकू) नही थे ॥१४६॥ श्री राम एक ही स्वामी थे और श्री राघव सबके पालन करने वाले थे । सहस्रो वर्षों तक वे रहे थे और सहस्रो पुत्रो वाले थे ॥१५०॥ श्री राम राज्य मे सब प्राणी रोगो से रहित थे । श्री राम के द्वारा राज्य पर प्रशासन करने के समय मे इस पृथिवी मे देवो का, ऋषियो का और मनुष्यो का सभी ओर समवाय था । वे पुराणो के ज्ञाता लोग यहाँ पर उनकी गाथाओ का गायन भी किया करते है ॥१५१-१५२॥ ये गाथाएँ उन्ही धीमान् श्री राम के माहात्म्य की थी और ये पुराण वेत्ता श्री राम मे निबद्ध रतिवाले थे । उनके शुभ नाम इस प्रकार से हैं–श्याम, युवा, लोहिताक्ष, दीप्तास्य, मित भाषित, आजानु बाहु, सुमुख, सिंह स्कन्ध, और महाभुज हैं । इनका अर्थ यह है–श्री राम श्याम वर्ण वाले थे–युवा (नौजवान) लाल नेत्रो वाले, दीप्ति से युक्त मुखाओ वाले, सुन्दर मुखाकृति से युक्त, सिंह के समान परिपुष्ट स्कन्धो वाले और महान् भुजाओं से सयुत । ये सब गुणगण श्री राम मे होने से ही उनए उपर्युक्त नामो से कहा जाता था । श्री राम ने दस सहस्र वर्ष तक राज्य किया था ॥१५३-१५४॥

ऋक्सामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महात्मन ।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयता भुज्यतामिति ॥१५५
सत्त्ववान्गुणसपन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।
अतिचन्द्र च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥१५६

ईजे क्रतुशतै पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणै ।
हित्वाऽयोध्या दिव यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दन. ।
रावण सगण हत्वा दिवमाचक्रमे विभु ॥१५८
अपर केशवस्याय प्रादुर्भावो महात्मन. ।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९
यत्र शाल्व च चैद्य च कम द्विविदमेव च ।
अरिष्ट वृषभ केशि पूतना दैत्यदारिकाम् ॥१६०
नाग कुवलयापीड चाणूर मुष्टिक तथा ।
दैत्यान्मानुषदेहेन सूदयामास वीर्यवान् ॥१६१

श्री राम के राष्ट्र मे ऋक् साम यजुर्वेद का सर्वत्र घोष होता था और महान् आत्मा वाले श्री राम की धनुष की डोरी की ध्वनि भी अव्युच्छन्न रूप से होती रहती थी सवत्र दान दो और उपभोग करो—यही ध्वनि सुनाई दिया करती थी ॥१५५॥ महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम दशरथि सत्व शाले-गुणगणो से समन्वित-अपने ही तेज से देदीप्यमान तथा तेजस्विता से चन्द्र और सूर्य को भी निरस्त कर देने वाले थे तथा परम शोभा से शोभित थे ॥१५६॥ श्री राम ने श्रेष्ठ दक्षिणाओ को देकर समाप्त किये जाने वाले पुण्यमय सैकडो ही क्रतुओ के द्वारा यजन किया था। महा बलशाली श्री राम अन्त मे अयोध्या को त्याग कर दिवलोक मे प्रस्थान कर गये थे ॥१५७॥ इसी रीति से बडी बाहुओ वाले इक्ष्वाकु नृप के कुल के नन्दन ने गणो के साथ रावण का हनन करके विभु दिवलोक को चले गये थे ॥१५८॥ उन्ही महात्मा केशव का यह एक दूसरा प्रादुर्भाव विख्यात हुआ था जो माथुर कल्प मे सब लोको के हित के लिये ही हुआ था ॥१५९॥ जिस अवतार मे शाल्व-चैद्य कस द्विविद-अरिष्ट वृषभ-केशि पूतना जो दैत्य की ही दारिका (पुत्री) थी—नाग-कुवलया पीड-चाणूर-मुष्टिक इन सब दैत्यो को वीर्यवान् भगवान् ने इस मनुष्य देह द्वारा ही कर दिया था ॥१६०-१६१॥

छिन्न बाहुसहस्र च बाणस्याद्भुतकर्मण ।
नरकश्च हत सख्ये यवनश्च महावल ॥१-२

हृतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहिता पार्थिवा ये महीतले ॥१६३
एप लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मन ।
कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामसभव ॥१६४

सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशा ।
एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्वृ ता ॥१६५
प्रादुर्भावा पुराणेपु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि ।
यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ॥१६६

अत्यन्त अद्भुत कर्म वाले बाण के एक सहस्र बाहुओ का छेदन कर दिया था और युद्ध मे नरक असुर तथा महान् बलवान् यवन को मार डाला था ॥१६२॥ जो इस महीतल पर दुष्ट आचरण वाले नृप थे उन महीपो के समस्त रत्नो का हरण कर लिया था और अपने ही तेज के बल से उन सबको मार दिया था । यह उन महात्मा प्रभु का जो प्रादुर्भाव हुआ था वह पूर्णतया लोको के हित के सम्पादन के ही लिय हुआ था । विष्णु यश वाले कल्की नामधारी थे जो शम्भल नामक ग्राम मे उद्भूत हुए हैं ॥१६३-१६४॥ पुन महान् यश वाले देव ने सब लोगों के हित के ही लिय प्रादुर्भाव किया था । ये तथा अन्य बहुत से दिति के पुत्र देव गणो से समावृत प्रादुर्भाव हैं जो कि ब्रह्मवादियो के द्वारा पुराणो मे गाये जाते हैं जहाँ पर देव भी प्रादुर्भावो क गुणगान मे विमोहित हो जाया करते हैं और नहीं कर पाते हैं ॥१६५-१६६॥

पुराण वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ।
एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ॥१६७
कीर्तित कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभो ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ॥१६८
विष्णोरमितवीर्यस्य य. शृणोति कृताञ्जलि ॥१६९

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः,
श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धि समृद्धि विपुलाश्च भोगा-
न्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०
एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमितेजसः ।
सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१

वेद और श्रुति से समाहित जहा पर पुराण वर्त्तमान हैं। इसी उद्देश मात्र मे प्रादुर्भाव का अनुकीर्त्तन किया करते है ॥१६७॥ कीर्त्तन करने के योग्य, विभु, सब लोकों के गुरु का जो कीर्तित है उसके पितर प्रादुर्भाव के अनुकीर्त्तन से परम प्रसन्न होते हैं ॥१६८॥ अपरिमित बल-वीर्य वाले भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव का अनुकीर्त्तन जो कोई अञ्जलि बाधकर श्रवण किया करता है । ये सब योगेश्वर प्रभु की योगमाया है मनुष्य इनका श्रवण करके सब किये हुए पापो से मुक्त हो जाया करता है । भगवान् के प्रसाद से वह मनुष्य ऋद्धि-समृद्धि-बहुत से भोगो को बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया करता है ॥१६९-१७०॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! "मित तेज वाले भगवान् विष्णु के परम पुण्यमय और सब पापो के अप-हरण करने वाले प्रादुर्भावो को मैंने कहकर वर्णित कर दिया है ॥१७१॥

सदाचारवर्णन

एव सम्यग्गृहस्थेन देवता· पितरस्तथा ।
सपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवा. ॥१
भूतानि भृत्या. सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्थका गृहे ॥२
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना ।
पाप भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रिया. ॥३
कथित भवता विप्र नित्यनैमित्तिक च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविध कर्म पौरुषम् ॥४

सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव ।
यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥५

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम् ।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥६

यज्ञदानतपासीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते ॥७

श्री व्यास देवजी ने कहा—इस प्रकार से एक गृहस्थ के द्वारा हव्य कव्य से देवता और पितरों को भली भाँति पूजना चाहिए और अन्नके द्वारा अतिथि तथा बान्धवों का पूजन करे ॥१॥ इनके अतिरिक्त सब भूत, समस्त भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, याचना करने वाले भिक्षुगण और जो राहगीर घर मे हो उन सबका भी अर्चन करना चाहिए ॥२॥ साधु प्रकृति वाले सदाचारी विप्रों का भी अर्चन साधु गृहस्थ के द्वारा होना चाहिए। जो नित्य क्रियाएँ तथा नैमित्तिकी क्रियाएँ हैं उनका समुल्लङ्घन नहीं करे अन्यथा इनका उल्लङ्घन करने पर मनुष्य को पाप होता है और उसको भोगना भी पड़ता है ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे विप्र ! आपने जो नित्य और नैमित्तिक कर्म के विषय में कहा है वह तीन प्रकार के कर्म पौरुष हुआ करते हैं एक नित्य होता है दूसरा नैमित्तिक होता है और तीसरा काम्य कर्म हुआ करता है ॥४॥ हे मुने ! आपके मुख से हम अब सदाचार को श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं जिसको करते हुए मानव इस लोक मे और परलोक मे सुख की प्राप्ति किया करता है ॥५॥ श्री व्यास देव जी ने कहा— एक गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष को सदा ही आचार का परिरक्षण करना चाहिए। जो आचार से हीन होता है ॥६॥ यहाँ पर इस लोक म यज्ञ दान और तपश्चर्या पुरुष की भूति के लिये नहीं होते हैं जब कि कोई सदाचार का उल्लङ्घन करके ये सब किया करता है। सदाचार से ही कल्याण हुआ करता है ॥७॥

दुराचारो हि पुरुषो नेहाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम् ॥८

पर ही फलों का देने वाला होता है ॥१३॥ प्रत्यवाय के भय से काम तथा अन्य भी उसी भाँति है। ये दोनों आपस में विरोधी नहीं है। काम भी दो प्रकार का बनाया गया है जो त्रिवर्ग (धर्म अर्थ-काम) की सिद्धि के लिये विरोध करने वाला नहीं है ॥१४॥

परस्परानुबन्धाश्च सर्वानेतान्विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुबन्धाश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः ॥१५
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नाऽऽत्मार्थपीडकः ।
उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ।
समुत्थाय यथाऽऽचम्य प्रस्नातो नियमः शुचिः ॥१७
पूर्वां सध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१८
असत्प्रलापमनृतं वाक्यारुष्यं च वर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजाः ॥१९
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् ।
नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥२१

हे द्विज श्रेष्ठो ! इन सब आपस में रहने वाले अनुबन्धों का विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए। जो विपरीत अनुबन्ध हों उनको अच्छी तरह समझना चाहिए ॥१५॥ धर्म के अनुबन्ध के लिये किया हुआ धर्म ही वास्तविक धर्म है जो आत्मा और अर्थ को पीड़ा देने वाला नहीं होता है इन दोनों से दोनों प्रकार का काम और उस काम से वे दोनों धर्म और अर्थ फिर दो प्रकार के होते हैं ॥१६॥ ब्रह्म मुहूर्त्त में बहुत तड़के पौ फटने के काल में निद्रा का त्याग कर शय्या से जाग उठना चाहिए फिर धर्म और अर्थ के विषयों में विचार करो कि मेरे स्वरूप के अनुसार मेरा धर्म क्या है और अर्थ न्यायोचित से कैसे अर्जित होता है इनमें मुझे क्या करना चाहिए। फिर उठकर तथा आचमन करके स्नान करे और

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य भो द्विजाः ।
आत्मनैकमना भूत्वा तथैव परिपालयेत् ॥६
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना ।
तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०
पादेनाप्यस्य पारत्र्यं कुर्याच्छ्रेयः स्वमात्मवान् ।
अर्धेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च ॥११
पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत् ।
एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता ।
परत्रार्थस्तथैवान्यः कार्योऽत्रैव फलप्रदः ॥१३
प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधाकामोऽपि रचितस्त्रिवर्गायाविरोधकृत् ॥१४

जो पुरुष दुष्ट एवं दोषों से युक्त आचार वाला होता है वह यहाँ पर वही आयु को भी प्राप्त नहीं किया करता है अर्थात् उसकी आयु क्षीण होकर कम हो जाती है। धर्म अवश्य ही करना चाहिए और सदाचार आचार का ही लक्षण होता है ॥८॥ हे द्विजो ! उस सदाचार का स्वरूप बतलाऊँगा। अपनी आत्मा के द्वारा एक मन वाला होकर उसी तरह से पूर्णतया उसका परिपालन करना चाहिए ॥६॥ गृहस्थ के द्वारा तीनों वर्ग (धर्म-अर्थ-काम) के साधन में यत्न करना चाहिए। उस त्रिवर्ग की संसिद्धि में इस लोक और परलोक में गृहस्थ की सिद्धि हुआ करती है ॥१ ॥ आत्मवान् पुरुष को अपना परलोक का श्रेय अवश्य ही एक पाद के द्वारा करना ही चाहिए और अर्धन दशा में आत्मा का भरण तथा नित्य एवं नैमित्तिक कर्म भी करने चाहिए ॥११॥ तथापि एक पाद से इसके मूल भूत की विशेष वृद्धि करनी चाहिए। हे विप्रो ! उसी रीति से आचार का परिपालन करने का अर्थ सफलता को प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ उसी के समान विद्वान् पुरुष को पापों के निषेध के लिये धर्म अवश्य करना चाहिए। जैसे परलोक के लिये होता है उसी भाँति ही अन्य को भी यहाँ पर ही करना चाहिए और वह यहाँ

पर ही फलो का देने वाला होता है ॥१३॥ प्रत्यवाय के भय से काम तथा अन्य भी उसी भाँति है। ये दोनो आपस मे विरोधी नही है। काम भी दो प्रकार का बनाया गया है जो त्रिवर्ग (धर्म अर्थ-काम) की सिद्धि के लिये विरोध करने वाला नही है ॥१४॥

परस्परानुवन्धाश्च सवनितान्विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुवन्धाश्च बुध्यध्व तान्द्विजोत्तमा ॥१५
धर्मो धर्मानुवन्धार्थो धर्मो नाऽऽत्मार्थपीडक. ।
उभाभ्या च द्विधा काम तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथाविनुचिन्तयेत् ।
समुत्थाय यथाऽऽचम्य प्रस्नातो नियम शुचि. ॥१७
पूर्वां सध्या सनक्षत्रा पश्चिमा सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्याय नैना जह्यादनापदि ॥१८
असत्प्रलापमनृत वाक्पारुष्य च वर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवा च वै द्विजा. ॥१९
सायप्रातस्तथा होम कुर्वीत नियतात्मवान् ।
नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वत. ॥२०
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवताना च तर्पणम् ॥२१

हे द्विज श्रेष्ठो ! इन सब आपस मे रहने वाले अनुवन्धो का विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए। जो विपरीत अनुवन्ध हो उनको अच्छी तरह समझना चाहिए ॥१५॥ धर्म के अनुवन्ध के लिये किया हुआ धर्म ही वास्तविक धर्म है जो आत्मा और अर्थ को पीडा देने वाला नही होता है इन दोनो से दोनो प्रकार का काम और उस काम से ये दोनो धर्म और अर्थ फिर दो प्रकार के होते हैं ॥१६॥ ब्रह्म मुहूर्त मे बहुत तड़के पौ फटने के काल मे निद्रा का त्याग कर शय्या से जाग उठना चाहिए फिर धर्म और अर्थ के विषयो मे विचार करो कि मेरे स्वरूप के अनुसार मेरा धर्म क्या है और अर्थ न्यायोचित से कैसे अर्जन होता है इनमे मुझे क्या करना चाहिए। फिर उठकर तथा आचमन करके स्नान करे और

प्रयत होकर पवित्र हो जावे ॥१७॥ प्रात काल के समय मे जो सन्ध्योपासना की जाती है वह उसी समय होनी चाहिए जब नभ मे तारा गण दिखाई दे रहे हो। मध्याह्न तो ठीक दुपहर मे होती ही है किन्तु साय काल की सन्ध्या वह सूर्यास्त होने के पूर्व ही दिन रहते हुए ही करना चाहिए। न्याय के अनुसार उपासना करे और आपत्ति काल के अभाव म इसका त्याग कभी नही करना चाहिए ॥१८॥ ह द्विजगणो ! असत् प्रलाप (अनर्थक वचन) —मिथ्या भाषण और वाणी की कठोरता का वर्जित कर देना चाहिए। असत् शास्त्र-असत् विवाद और असत्पुरुषो की सेवा को भी छोड देना चाहिए ॥१९॥ नियत आत्मा वाले पुरुष को सायङ्काल और प्रात काल दोनो समयो मे होम करना चाहिए। विवस्वान् (सूर्यदेव) को उदय काल मे तथा अस्तमन समय मे नही देखना चाहिए ॥२०॥ केशो का प्रसाधन (सम्हाल) —आदर्श (दर्पण) देखना दातुन करना और आँखो म अञ्जन देना—ये सब शारीरिक कृत्य तथा देवो का तर्पण पूर्वाह्ण काल (दुपहरी के पूर्व) मे करे ॥२१॥

ग्रामावसथतीर्थाना क्षेत्राणा चैव वत्मनि ।
न विण्मूत्रमनुष्ठेय न च कृष्टे न गाव्रजे ॥२२
नग्ना परस्त्रिय नेक्षेन्न पश्यदात्मन शकृत् ।
उदक्यादर्शनस्पर्शमेव सभाषण तथा ॥२३
नाप्सु मूत्र पुरीष वा मैथुन वा समाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मकपालिका ॥२४
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।
नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञ पथि वस्त्राणि वा भुवि ॥२५
पितृदेवमनुष्याणा भूताना च तथार्चनम् ।
कृत्वा विभवत. पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि स्वाचान्तो वाग्यत शुचि ।
भुञ्जीत चान्न तच्चित्तो ह्यन्तर्जानु सदा नर ॥२७
उपघातमृते दोषान्नान्यस्योदीरयेद्बुध ।
प्रत्यक्षलवण वर्जयमत्युष्णमेव च ॥२८

ग्राम, निवास के स्थान, तीर्थ, क्षेत्र, मार्ग के मध्य मे, जुते हुए भू-भाग मे और गायो के स्थित होने के स्थान मे मल का त्याग एव मूत्र का त्याग कभी नही करे ॥२२॥ पराई नग्न स्त्री को तथा अपने त्यागे हुए मल को कभी न देखना चाहिए। उदकी अर्थात् रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श और उसके साथ भाषण का त्याग कर देवे। जल मे जो जलाशय मे है मूत्र और पुरीष (मल) और मैथुन नही करना चाहिए। मल और मूत्र मे तथा केश, भस्म, कपालिका पर कभी स्थित नही होवे। तुष की अग्नि, विशीर्ण रज्जु, वस्त्र आदिक, भूमि, मार्ग मे प्राज्ञ पुरुष को कभी अपना अधिष्ठान नही करना चाहिए ॥२३-२५॥ पितृगण, देव, मनुष्य और भूतो का अभ्यर्चन वैभव के अनुसार करने के पीछे ही गृहस्थाश्रमी को भोजन करना उचित होता है ॥२६॥ पूर्व दिशा तथा उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर आचमन करके शुचि एव मौनी होकर अन्न का भोजन करे। भोजन के समय मे ही भोजन मे अपना चित्त रक्खे और मनुष्य को सदा उस समय मे घुटनो के अन्दर ही हाथ रखने चाहिए ॥२७॥ बुध पुरुष को चाहिए कि उपघात के बिना कभी भी अन्न के दोषो को मुख से नही कहे। प्रत्यक्ष लवण और उच्छिष्ट (झूठा) अन्नादि का त्याग कर देवे ॥२८॥

न गच्छन्न च तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्।
कुर्वीत चैवमुच्छिष्ट न किंचिदपि भक्षयेत् ॥२६
उच्छिष्टो नालपेत्किंचित्स्वाध्याय न विवर्जयेत्।
न पश्येच्च रविं चेन्दु नक्षत्राणि च कामत ॥३०
भिन्नासन च शय्या च भाजन च विवर्जयेत्।
गुरूणामासन देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१
अनुकूल तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान्।
तत्रानुगमन कुर्यात्प्रतिकूल न सचरेत् ॥३२
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम्।
नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नि

पन्था देयो ब्राह्मणाना राज्ञो दुःखातुरस्य च ।
विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगार्तस्य महीयतः ॥३६

मूकान्धवधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ।
देवालय चत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ॥४०

विद्याधिक गुरुं चैव वुध. कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्यादि घृतमन्यैर्न धारयेत् ॥४१

चतुर्दश्या तथाऽष्टम्या पञ्चदश्या च पर्वसु ।
तैलाभ्यङ्गं तथा भोग योषितश्च विवर्जयत् ॥४२

जितने अनध्याय शास्त्र मे बताये गये हैं उन दिनो मे सब मे स्वा॰ को वर्जित कर देना चाहिए । ब्राह्मण अग्नि, गौ, सूर्य, और अन्न का कभी भी अपमान नही करे ॥३६॥ दिन मे उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि मे दक्षिण की ओर मुँह करके मलादि का त्याग करे तथा बाधा रहित कालो मे मूत्र पुरीष का त्याग स्वेच्छा से करे ॥३७॥ कोई भी दुष्कृत हो जावे तो उसको गुरु वर्ग के आगे नही बोले तथा यदि गुरु क्रुद्ध हो जावें तो उनको प्रसन्न करे । किसी की भी निन्दा होती हो तो उसको तथा निन्दा करने वालो अन्यो की बातों का श्रवण न करे ॥३८॥ मार्ग मे चलने के समय मे यदि सामने से ब्राह्मण आवें तो उनको, राजा को, दुःख से आतुर को, विद्या मे जो अधिक विद्वान् हो उसको, गर्भवती स्त्री को रोगो से जो आर्त हो उसको महापुरुष को, मूक (गूंगा) को, अन्धे पुरुष को, बधिर को, मत्त और उन्मत्त मनुष्य को मार्ग पहिले गमन करने के लिये दे देना चाहिए और स्वय रुककर एक ओर हो जाना चाहिए । देवालय, चैत्य वृक्ष, चतुष्पथ (चौराहा) की परिक्रमा करे ॥३६-४०॥ जो विद्या मे अधिक हो गुरु हो उनकी भी वुध पुरुष को प्रदक्षिणा करनी चाहिए जूते, वस्त्र और माला आदि वस्तुऐं अन्यो के द्वारा जो धारण की हुई हो उनको स्वय धारण नहीं करे ॥४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, पञ्चदशी (अमावस्या और पूर्वों में तैल की मालिश तथा स्त्रियों का उपभोग नही करे ॥४२॥

नोत्क्षिप्तबाहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।
न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३

पुंश्चल्याः कृतकार्यस्य बालस्य पतितस्य च ।
मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥४४

दम्भाभिमानं तैक्ष्ण्यं च न कुर्वीत विचक्षणः ।
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५
न्यूनाङ्गांश्चाधनांश्चैव नोपहासेन दूषयेत् ।
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयोः ॥४६

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम् ।
संयावं कृशरं मांसं नाऽऽत्मार्थमुपसाधयेत् ॥४७
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो दन्तधावनम् ॥४८
कुर्वीत सततं विप्रा वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधम् ।
नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः ॥४९

प्राज्ञ पुरुष को ऊपर की ओर अपनी बाहु तथा जङ्घाओं को उत्क्षिप्त न करे तथा इनको उत्क्षिप्त करके कभी स्थित न होना चाहिए। अपने पैरों को कभी भी विक्षिप्त न करे और पैर को अपने ही पैर से आक्रान्त नहीं करना चाहिए ॥४३॥ पुंश्चली स्त्री (दुराचारिणी) कार्य कर लेने वाले पुरुष का, बालक, पतित का मर्मों का अभिघात-आक्रोश और पैशुन्य वर्जित कर देवे ॥४४॥ विचक्षण पुरुष को दम्भ, अभिमान, तीक्ष्णता नहीं करना चाहिए। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, विकृत रूप वाला, न्यून अङ्गों वाला, निर्धन इनका उपहास करके दूषित न करे। दूसरे किसी को दण्ड न देवे। शिष्य और पुत्र की शिक्षा देने के लिये उसी तरह से पैर से आसन को खींचकर प्राज्ञ पुरुष को नहीं बैठना चाहिए ॥४५-४६॥ संयाव, कृशर, मांस को अपने आत्मा के लिये उपसाधित नहीं करे ॥४७॥ अतिथियों का पूजन करके ही सायंकाल तथा प्रातःकाल में भोजन करना चाहिए। पूर्व की ओर या उत्तर की

ओर मुख करके मौन होकर दाँतुन करे ॥४८॥ हे विप्रो ! जो लता एव वृक्ष की दाँतुन शास्त्र मे वर्जित बताई गई है उनको वर्जित कर देवे। उत्तर की ओर पश्चिम की ओर शिर करके मनुष्य को कभी नहीं सोना चाहिए ॥४९॥

शिरस्त्वागस्त्यमाधाय शयीताथ पुरन्दरीम् ।
न तु गन्धवतोष्वप्सु शयीत न तथोषसि ॥५०
उपरागे पर स्नानमृते दिनमुदाहृतम् ।
अरमृज्याश्च वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभि ॥५१
न चावधूनयेत्केशान्वाससी न च निर्धुनेत् ।
अनुलेपनमादद्यान्नास्नात कर्हिचिद्बुध. ॥५२
न चापि रक्तवासा. स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ।
न च कुर्याद्विपर्यास वाससोर्नापि भूषणो: ॥५३
वर्ज्यं च विदश वस्त्रमत्यन्तोपहत च यत् ।
कीटकेशावपन्न च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥५४
अवलीढ शुना चैव सारोद्धरणदूषितम् ।
पृष्टमास वृथामास वर्ज्यमास च वर्जयेत् ॥५५
न भक्षयेच्च सतत प्रत्यक्ष लवण नरः ।
वर्ज्यं चिरोषित विप्रा. शुष्क पर्युषित च यत् ॥५६

अपने सिर को अगस्त्य दिशा मे करके पुरन्दरी मे शयन करे। जो जल गन्ध युक्त हो उनमे और प्रात काल मे शयन न करे ॥५०॥ दिन के बिना भी उपराग (ग्रहण) के समय मे परम स्नान कहा गया है। स्नान करके वस्त्र के छोरो से अम्बर पाणियों के द्वारा शरीर के अङ्गो को आमृजित नहीं करना चाहिए। अपने केशो को अवधूनित न करे और वस्त्रों को निधुनित नहीं करना चाहिए। बुध पुरुष को विना किये हुए कभी भी अनुलेपन ग्रहण न करे ॥५१-५२॥ कभी भी रक्त वर्ण का वस्त्र चित्रित-वासा पुरुष कभी धारण नहीं करे वस्त्रो का और भूषणों का कभी विपर्यास नहीं करना चाहिए ॥५३॥ जो वस्त्र विदश हो और जो अत्यन्त उपहत हो तथा कीड़ों और केशों से अवपन्न हो

एव कुत्तो के द्वारा अवेक्षित हो-कुत्ते के द्वारा चाटा हुआ हो-सार के उद्धरण से दूपित हो ऐसे वस्त्र को वर्जित कर देवे। पृष्ठ का मास-वृथा मास-वर्जित मास इन सबका वर्जन कर देवे ॥५४-५५॥ मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से लवण का भक्षण निरन्तर नही करना चाहिए। हे विप्रो ! जो भोज्य पदार्थ चिरोषित अर्थात् बहुत समय से बनाकर रक्खा हुआ हो या शुष्क एव पर्यु षित वासी हो उसको भी नही खाना चाहिए ॥५६॥

पिष्टशाकेक्षुपयसा विकारा द्विजसत्तमाः।
तथा मासविकाराश्च नैव वर्ज्याश्चिरोषिता ॥५७
उदयास्तमने भानोः शयन च विवर्जयेत्।
नास्नातो नव सविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥५८
न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दकृत्।
प्रेष्याणामप्रदायाथ न भुञ्जीत कदाचन ॥५९
भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायप्रातर्यथाविधि।
परदारा गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥६०
इष्टापूर्तायुपा हन्त्री परदारगतिर्नृ णाम्।
न हीदृशमनायुष्य लोके किंचन विद्यते ॥६१
यादृश पुरुपस्येह परदाराभिमर्शनम्।
देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम्।
अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६३

हे द्विजश्रेष्ठो ! पिष्ट-ईख-शाक और पय जो विकार होते हैं तथा जो मास के विकार होते हैं वे यदि चिरोषित भी हो तो भी वर्जन करने के योग्य नही होते है ॥५७॥ सूर्य देव के उदय और अस्त होने के समय मे शयन नही करे। मनुष्य बिना स्नान किये हुए-सविष्ट और अन्य मन वाला होकर भी शयन न करे शय्या पर-भूमि मे बैठे हुए-शब्दोच्चारण करते हुए-भृत्यो को न देकर भी कभी स्वय भोजन नहीं करना चाहिए ॥५८-५९॥ सायङ्काल और प्रातःकाल मे विधि पूर्वक स्नान किये हुए पुरुष को ही भोजन करना चाहिए। विद्वान् पुरुष के द्वारा पराई स्त्री के

साथ गमन कभी नहीं करना चाहिए पराई स्त्री के साथ अभिगमन करना मनुष्यों की इष्टापूर्त और आयु का हनन करने वाला ही हुआ करता है। पराई नारी के गमन के समान यहाँ पर लोक मे आयु की क्षीणता करने वाला अन्य कोई भी दुष्कर्म नहीं है ॥६०-६१॥ जैसा आयु के क्षय करने वाला इस लोक मे पुरुष के लिये पराई स्त्री को अभिमर्शन होता है वैसा अन्य कुछ भी नहीं होता है। देवता-अग्नि और पितृगण का कार्य एव गुरु वर्ग के लिये अभिवादन करना चाहिए। भलीभाँति आचमन करके उसी तरह से अन्नादि के भोजन की क्रिया भी करे। फेन शब्द और गन्ध से रहित अति स्वच्छ जल से आदर के साथ आचमन करावे ॥६२-६३॥

आचामेच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकास्थलात् ॥६४
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृद ।
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहित ॥६५
अन्तर्जानुस्तथाऽऽचामेत्त्रिश्चतुर्वाऽपि वै नर ।
परिमृज्य द्विरावर्त्य खानि मूर्धानमेव च ॥६६
सम्यगाचम्य तोयेन क्रिया कुर्वीत वै शुचि ।
क्षुतेऽवलीढे वाते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७
कुर्यादाचमन स्पर्श वाऽस्पृष्टस्यार्कदर्शनम् ।
कुर्वीताऽऽलभन चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥६८
यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे तत परम् ।
न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९
न कुर्याद् दन्तघर्षं नाऽऽत्मनो देहताडनम् ।
स्वापेऽध्वनि तथा भुड्क्त्वाध्य य च विवर्जयेत् ॥७०

यह आचमन भी पूर्व की ओर या उत्तर की ओर मुख करके ही आचमन करना चाहिए। अब मृत्तिका के विषय मे बतलाते हैं कि कहाँ की मृत्तिका विशुद्ध होती है तथा कहाँ की वर्जित है। जल के अन्दर से-आवसथ से वल्मीक से मूषिकाओं के रहने के स्थल मे शौच करने से

पश्चात् अवशिष्ट ये मृत्तिकाऐं पाँच सर्वदा वर्जित होती है इनको नही ग्रहण करना चाहिए। हाथों और पैरो को धोकर तथा समभ्युक्षण करके समाहित हो जावे और घुटनो के अन्दर हाथो को करके तीन या चार बार मनुष्य को आचमन करना चाहिए और अपने अङ्गो को तथा मूर्धा को दो बार शुद्ध करे ॥६४-६६॥ शुद्ध होकर जल से आचमन करके क्रिया करनी चाहिए। जँभाई और छींक लेने पर तथा थूक आदि निकालने पर आचमन शुद्धि के लिये करना चाहिए। जो स्पर्श करने के योग्य न हो उसके स्पर्श हो जाने पर शुचित्ता प्राप्त करने के लिये सूर्य का दर्शन करे तथा दक्षिण श्रवण का भी आलम्भन करना चाहिए ॥६७-६८॥ विभव के अनुसार ही यह करे। पूर्व निर्दिष्ट के अभाव मे दूसरा करे। पूर्व मे कथित के विद्यमान न होने पर उत्तर की प्राप्ति अभीष्ट होती है ॥६९॥ अपने दातों का सघर्ष (रगड़ना या दाँत बजाना) न करे और अपने शरीर की स्वय ताड़ना भी नही करनी चाहिए। शयन करने के समय मे मार्ग मे और भोजन करते हुए स्वाध्याय कभी न करे ॥७०॥

सध्याया मैथुन चापि तथा प्रस्थानमेव च ।
तथाऽपराह्णे कुर्वीत श्रद्धया पितृतर्पणम् ॥७१
शिर.स्नान च कुर्वीत दैव पित्र्यमथापि च ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥७२
व्यङ्गिनी वर्जयेत्कन्या कुलजा वाऽप्यरोगिणीम् ।
उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमी पञ्चमी तथा ॥७३
रक्षेद्दारास्त्यजेदीर्ष्या तथाऽह्नि स्वप्नमैथुने ।
परोपतापक कर्म जन्तुपीडा च सर्वदा ॥७४
उदक्या सववर्णाना वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् ।
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमी चापि वर्जयेत् ॥७५
ततः षष्ठ्या व्रजेद्रात्र्या ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु ।
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६

विधर्मिणो वं पर्वादौ सध्याकालेषु पण्डकाः ।
क्षुरकर्मणि रिक्ता व वर्जयीत विचक्षणः ।।७७

सन्ध्या के समय मे मैथुन तथा प्रस्थान कभी नही करना चाहिए। ये सभी नियम सदाचरण के हैं उनके विपरीत कर्म करने को वर्जित बतलाया गया है। दोपहर के पश्चात् ही बहुत श्रद्धा से पितृगण का तर्पण करे क्योंकि मध्याह्न के पूर्व पितृगण कभी श्राद्ध तर्पण आदि ग्रहण नही किया करते है ।।७१।। देव अर्थात् देवताओं के कर्म और पितृगण के निमित्त किये जाने वाले कर्म को करने के पूर्व सिर से स्नान करना चाहिए। श्मश्रुकर्म अर्थात् क्षौर (हजामत) पूर्वमुख अथवा उत्तर मुख होकर ही कराना चाहिए ।।७२।। जो कन्या व्यङ्गिनी अर्थात् किसी अङ्ग से हीन या अधिक अङ्ग वाली हो उसका त्याग कर देवे तथा जो कुलजा और रोग रहित हो उसके साथ ही विवाह करे। पिता और माता की सप्तमी और पचमी की रक्षा करे। अपनी दाराओं की सर्वदा रक्षा करे और ईर्ष्या कर देवे। दिन के समय में भूलकर भी शयन तथा मैथुन नही करना चाहिए। दूसरो को उपताप देने वाला कर्म एव जन्तुओं की पीड़ा जिससे हो उस कर्म को सवदा नही करे ।।७३-७४।। सभी वर्णो मे अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों मे एव शूद्रो मे भी चार रात्रि तक उदकी (रजस्वला) नारी का त्याग कर देना चाहिए। कन्या के जन्म के परिहार के लिये पाँचवी रात्रि का भी त्याग कर दव ।।७५।। फिर छठवीं रात्रि मे स्त्री के साथ अभिगमन करे तात्पर्य यह है कि ज्यष्ठ युग्म रात्रियों म ही नारी गमन करना चाहिए। जो युग्म रात्रियो मे ही गमन करने से पुत्रो की उत्पत्ति हुआ करती है। जो रात्रियाँ अयुग्म हों अर्थात् पाँचवी सातवी आदि हो उनम गमन करने स लडकियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं ।।७६।। पर्व दिनो म अभिगमन करने से विधर्मी एव एव पण्ड (नपुसक) सन्ध्या कालो मे करने से उत्पन्न होते हैं। विचक्षण पुरुष को क्षौर कर्म मे (हजामत कर्म मे) रिक्ता तिथि को वर्जित कर देना चाहिए ।।७७।।

ब्रु वतामविनीतानां न श्रोतव्य कदाचन ।
न चोत्कृष्टासन देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ।।७८
क्षुरकर्मणि चा (वा) न्ते चस्त्रीसभोगे च भो द्विजा. ।
स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कूटभूमिमुपेत्य च ।।७६
देववेदद्विजातीना साधुसत्यमहात्मनाम् ।
गुरो. पतिव्रताना च ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ।।८०
परिवाद न कुर्वीत परिहास च भो द्विजाः ।
धवलाम्बरसवीत. सितपुष्पविभूपित. ।।८१
सदा मागल्यवेप स्यान्न वाऽमाङ्गल्यवान्भवेत् ।
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डित ।।८२
गच्छेन्मैत्रीमशीलेन न वयोजातिदूपि तै ।
न चातिव्ययशीलैश्च पुरुपैर्नैव वैरिभि. ।।८३
कार्याक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव विटमङ्गिभि ।
निस्वैर्न वादैकपरैर्नरैश्चान्यैस्तथाऽधमै. ।।८४

जो पुरुप अविनीत हो और विनय हीन होकर बोल रहे हैं । उनकी बातो को कभी भी नही सुनना चाहिए । जो आदमी उत्कर्ष हीन हो उसको आदर पूवक कभी भी उत्कृष्ट आसन नही देवे ।।७८।। हे द्विजो ! क्षुर कर्म मे अथवा इसके अन्त मे और स्त्री सम्भोग के अन्त मे प्राज्ञ पुरुप को वस्त्रो के सहित स्नान करना चाहिए क्रूर भूमि मे प्राप्त होकर देव, वेद, द्विजाति, साधु सत्य महान् आत्मा वाले, गुरु, पतिव्रता, ब्रह्म, यज्ञ, तपस्वी, इनके परिवाद को कभी न करे अर्थात् निन्दा या बुराई नही करनी चाहिए । हे द्विजो ! इनके साथ परिहास भी न करे । सर्वदा सदा चरण के अनुसार धवल (श्वेत वस्त्र धारी रहे और श्वेत पुष्पो से ही भूपित होकर रहना चाहिए ।।७६--१।। सदा मङ्गलमय वेप वाला रहे और अमङ्गल वेप है उनसे रहित ही रहना चाहिए । पण्डित को जो उद्धत हो, उन्मत्त, मूढ, अविनीत हो तथा वय और जाति से दूपित हो उनके साथ और शील हीन के साथ कभी मैत्री नही करे । जो अत्यधिक व्यय करने के स्वभाव वाले तथा वैरी पुरुप हो, कार्य करने मे असमर्थ

निन्दित, विरों के सङ्ग करने वाले, निर्धन, विवाद में तत्पर रहने वाले और अधमों के साथ भी कभी मैत्री नहीं करनी चाहिए ॥८२-८४॥

सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ।
उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैनानानर्चयेद्गृहमागतान् ॥८५
यथाविभवतो विप्राः प्रतिसंवत्सरोपितान् ।
सम्यग्गृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६
सपूजयेत्तथा वह्नौ प्रदद्याच्चाऽऽहुतीः क्रमात् ।
प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥८७
तृतीयां चैव गृह्येभ्यः कश्यपाय तथाऽपराम् ।
ततोऽनुमतये दद्याद्द्याद्वहु(द्गृह)वलिं ततः ॥८८
पूर्वं ख्याता मया या तु नित्यक्रमविधौ क्रिया ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वदतः शृणुत द्विजाः ॥८९
यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ।
पर्जन्यापोधरित्रीणां दद्यात्तु मणिके त्रयम् ॥९०
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादिषु क्रमात् ।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमात् ॥९१

सुहृद्, दीक्षित, नृप, स्नातक, श्वशुर, इनके साथ होने पर गात्रोत्थान करना चाहिए और जिस समय में ये अपने घर पर आवें तो अपने वैभव के अनुसार ही इनका अभ्यर्चन करना चाहिए ॥८५॥ हे विप्रो ! अपने वैभव के अनुसार प्रत्येक वर्ष में उषितों का भली भाँति अर्चन करके अनुक्रम से यथा स्थान पर अर्चन करे ॥८६॥ वह्नि में पूजन करे और क्रम से आहुतियाँ देवे । प्रथम से आहुति ब्रह्माजी को देवे और फिर दूसरी प्रजापति को देनी चाहिए ॥८७॥ तीसरी गृह्यों को और दूसरी कश्यप के लिये देवे । इसके उपरान्त अनुमति के लिये देवे और फिर गृह वलि देनी चाहिए ॥८८॥ हे द्विजो ! जो पूर्व में मैंने नित्य क्रम की विधि में क्रिया कही है । इसके पश्चात् वैश्व देव करना चाहिए उसके विषय में बोलो और श्रवण करो ॥८९॥ स्थान और विभाग के अनुसार

पृथक् देवो को उद्देश्य करके पर्जन्य-जल और धरित्री को तीन मणिक देवे ॥६०॥ वायु को देवे तथा प्रत्येक दिशा मे प्राची आदि के क्रम से दिशाओ को देना चाहिए। यथा क्रम से ब्रह्माजी के लिये और अन्तरिक्ष के लिये एव सूर्य देव के लिये अर्पित करे ॥६१॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ।
उपसे भूतपतये दद्याद्वोत्तरतः शुचिः ॥-२
स्वधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे ।
कृत्वाऽपसव्य वायव्या यक्ष्मैतत्तेति सवदन् ॥६३
अन्नावशेषमिश्र वै तोय दद्याद्यथाविधि ।
देवाना च तत. कुर्याद्ब्राह्मणाना नमस्क्रियाम् ॥६४
अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य च ।
एतद्ब्राह्ममिति ख्यात तीर्थमाचमनाय वै ॥६५
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्य तीर्थमुदाहृतम् ।
पितृणा तेन तोयानि दद्यान्नान्दीमुखाहते ॥६६
अङ्गुल्यग्रे तथा दैव तेन दिव्यक्रियाविधि. ।
तीर्थं कनिष्ठिकामूले काय तत्र प्रजापतेः ॥६७
एवमेभि. सदा तीर्थैविधान पितृभिः सह ।
सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थे. कदाचन ॥६८

उत्तर दिशा मे शुचि होकर विश्वे देवाओ के लिये और विश्व भूतो के लिये-उप और भूत पति के लिये भी अर्पित करे ॥६२॥ 'स्वधा' और 'नमः'-यह उच्चारण करके दक्षिण दिशा मे पितृगण के लिये अप-सव्य होकर वायव्य कोण मे "यक्ष्मैतत्ते"-यह बोलते हुए अन्न के अवशेष से मिला हुआ जल यथा विधि देना चाहिए। इसके उपरान्त देवो की तथा ब्राह्मण की नमस्क्रिया करे ॥६३-६४॥ दाहिने हाथ के अगूठे उत्तर भाग मे जो रेखा है वह आचमन के लिये ब्राह्म तीर्थ विख्यात है ॥६५॥ तर्जनी और अगूठे के मध्य मे पित्र्य (पितृगण का) तीर्थ होता है—ऐसा कहा गया है। नान्दी मुख श्राद्ध के अतिरिक्त पितृगणों के लिये इसी भाग से जल दान देना चाहिए ॥६६॥ अङ्गुली के अग्रभाग मे दैव तीर्थ

होता है उसी से दिव्य क्रिया की विधि होती है। कनिष्ठिका अङ्गुली के मूल में वहा पर प्रजापति का नाम तीर्थ होता है। इस प्रकार से इन उपर्युक्त तीर्थों के द्वारा पितृगणो के साथ विधान है और उन्ही से सदा करने चाहिए अन्य तीर्थों से कभी भी न करे ॥९७-९८॥

ब्राह्मेणाऽऽचमन शस्त पैत्र्यं पित्र्येण सर्वदा ।
देवतीर्थे देवाना प्रजापत्य जिते(त्यजले)न च ॥९९
नान्दीमुखाना कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापतेः ॥१००
युगपज्जलमग्नि च विभृयान्न विचक्षणः ।
गुरुदेवपितॄन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१
नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गा जल नाञ्जलिना पिबेत् ।
शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ।
न बिलम्बेत मेधावी न मुखेनानल धमेत् ॥१०२
तत्र विप्रा न वस्तव्य यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रिय सजला नदी ॥१०३
जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः ।
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञ. कुत. कुनृपतौ सुखम् ॥१०४
पौराः सुसहता यत्र सतत न्यायवर्तिन. ।
शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वास. सुखोदय. ॥१०५

पित्र्य तीर्थों से सर्वदा ब्राह्मण के द्वारा पैत्र्य आचमन प्रशस्त होता है–देव तीर्थ से देवो का एव प्राजापत्य जित से करे ॥९९॥ प्राज्ञ पुरुष को नान्दी मुखो की पिण्डोदक क्रिया करनी चाहिए। प्रजापति का जो कुछ भी हो प्राजापत्य तीर्थ के द्वारा करे ॥१००॥ विचक्षण पुरुष को एक साथ जल और अग्नि को ग्रहण या वहन नही करना चाहिए। गुरु, देवता, पितृगण और विप्र इनकी ओर पैरो को नही फैलाना चाहिए ॥१०१॥ महिषीई गौ अपने बछडे को दूध पिला रही हो तो उसे किसी को नही बतलाना चाहिए। अञ्जलि से कभी जल नही पीना चाहिए।

समस्त शौच कालो मे चाहे वे सामान्य हों या विशेष हो मेधावी पुरुष को बिलम्ब नहीं करना चाहिए। मुख से अग्नि का धमन नही करे ॥१०२॥ विप्रो का वहाँ पर निवास नही करना चाहिए जहां पर ये चार वस्तुऐं नही। एक ऋण देने वाला, दूसरा वैद्य, श्रोत्रिय और चौथी सजल नही ॥१०३॥ जहा पर भृत्यो पर विजय पाने वाले, बलशाली और धर्म मे तत्पर राजा रहता हो वहो पर प्राज्ञ पुरुष को नित्य निवास करना चाहिए। जहा पर बुरा नृप हो उसके राज्य मे सुख कैसे हो सकता है ? ॥१०४॥ जहा पर पुरवासी सुसघटित हो और निरन्तर न्याय का बरताव करने वाले, परम शान्त, मत्सरता से रहित लोग वास करते हो वही पर सुख के उदय वाला निवास हुआ करता है ॥१०५॥

यस्मिन्कृपीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः।
यत्रौपधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥१०६
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रतत्त्रितयं सदा।
जिगीपुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥१०७
वसेन्नित्यं सुशीलेपु सहचारिषु पण्डितः।
यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा मही ॥१०८
इत्येतत्कथित विप्रा मया वो हितकाम्यया।
अत.पर प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम् ॥१०६
भोज्यमन्नं पर्युंपित स्नेहाक्तं चिरसभृतम्।
अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥११०
शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽप शल्यकः।
भक्ष्याश्चै ते तथा वर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटो ॥१११
पितृदेवादिशेप च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया।
प्रोक्षितं चौपधार्थं च खादन्मान न दुष्यति ॥११२

जिस राष्ट्र मे बहुधा किसान लोग अत्यधिक मानी नहीं होते हैं और जहाँ पर समस्त ओषधियाँ होती है वहीं पर विचक्षण पुरुष को वास करना चाहिए ॥१०६॥ विप्रो को उस स्थान मे कभी नहीं रहना चाहिए ये तीन सदा रहते हों एक जिगीषु (जीत की इच्छा रखने वाला, पूर्व का

वैर रखने वाला जन और तीसरा निरन्तर उत्सव करते रहने वाला हो ॥१०७॥ पण्डित पुरुष को सुशील सहचारियो मे नित्य वास करना चाहिए। जहा पर राजा प्रघर्पण करने के अयोग्य हो और भूमि सस्यो के प्रदान करने वाली हो वहा पर ही वास करे ॥१०८॥ हे विप्रो ! यह मैंने आपके हित की कामना से यह बतला दिया है। अब इससे आगे मैं भक्ष्य तथा भोज्य की विधि क्या है तथा उसकी कैसी क्रिया शास्त्र मे हैं—उसे बतलाऊँगा ॥१०९॥ भोज्य अन्न पर्युषित-स्नेह (चिकनाई) से अक्त और चिरकाल से सभृत हुआ करता है। स्नेह से शून्य भी गेहूँ-जो गोरस की विक्रिया वाले हैं ॥११०॥ शशक कच्छप गोधा श्वाविन्मत्स्य शल्यक ये भक्ष्य कहे गये है किन्तु ग्राम सूकर और कुक्कुट (मुर्गा) ये दोनो वर्जित हैं। पितृगण और देवता आदि का जो शेष भाग बच जाता है जो ब्राह्मणो की काम्या से श्राद्ध मे प्रोक्षित होता है। औषध के लिये मनुष्य मास का भक्षण करते हुए भी दोष युक्त नही होता है ॥१११-११२॥

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणा रज्जूनामथ वाससाम् ।
शाकमूलफलाना च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३
मणिवस्त्रप्रवालाना च तथा मुक्ताफलस्य च ।
पात्राणा चमसाना च अम्बुना शौचमिष्यते ॥११४
तथाऽश्मकाना तोयेन अश्मसघर्पणेन च ।
सस्नेहाना च पात्राणा शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥११५
शूर्पाणामजिनाना च मुशलोलूखलस्य च ।
सहताना च वस्त्राणा प्रोक्षणात्सचयस्य च ॥११६
वल्कलानामशेपाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ।
आविकाना समस्ताना केशाना चैवमिष्यते ॥११७
सिद्धार्थकाना कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ।
शोधन चैव भवति उपघातवता सदा ॥११८
तथा कार्पासिकाना च शुद्धिः स्याज्जलभस्मना ।
दारुदन्तास्थिशृङ्गाणा तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥११९

आचामेत यथान्याय वासस परिधापने ।
स्पृष्टानामथ सस्पर्शाद्विरथ्याकर्दमाम्भासि ॥१३२
पक्वेष्टकचिताना च मेध्यता वायुसश्रयात् ।
प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सत्यजेत् ॥१३३

अन्य जो द्रव्य हैं उनके वर्ण और गन्ध को दूर कर देना चाहिए। चाण्डाल और क्रव्यादों के द्वारा विनियातित मास शुद्ध होता है ॥१२७॥ रथ्यागत तैलादि शुद्ध है और गौ की तृप्ति के देने वाला पय शुद्ध होता है। रज, अग्नि, अश्व, गौ, छाया रश्मि, पवन, भूमि, विप्रप, (जल के छोटे कण) मक्षिका आदि दुष्ट सङ्ग से भी दोषी नहीं होते हैं। बकरी और अश्व मुख से शुद्ध होता है और गौ के वत्स का आनन (मुख) शुद्ध नहीं होता है ॥१२८-१२६॥ यही वत्स का मुख माता के प्रस्रवण के समय में पवित्र होता है तथा फल के गिराने में पक्षी भी पवित्र माना गया है। आसन शयन (शय्या) यान-नदी के दोनों तट तृण चन्द्र और सूर्य की किरणों से तथा पवन से पण्य की भाँति विशुद्ध हो जाते हैं। रथ्या (गली) के अपसर्पण में, स्नान में, क्षुत, पान इन कर्मों के अनन्तर और वस्त्रों के परिधापन में यथा न्याय आचमन करना चाहिए। दूसरी गली के कीच युक्त जल में स्पृष्टों के भी सस्पर्श होने से आचमन करे ॥१३०-१३२॥ पकी हुई ईंटों से चुने हुओं की पवित्रता वायु के सश्रय से ही हो जाया करती है। बहुत अधिक अन्न की राशि यदि उपहत हो जाये तो उसके ऊपर के भाग का समुद्धरण करके त्याग कर देने से उसकी शुद्धि हो जाया करती है ॥१३३॥

दोषस्य प्रोक्षण कुर्यादाचम्यादि्भस्तथा मृदा ।
उपवासस्त्रिरात्र तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत् ॥१३४
अज्ञाने ज्ञानपूर्वं तु तद्दोषोपशमे न तु ।
उदक्या याचलग्ना च सूतिकान्त्यावसायिन ॥१३५
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिण. ।
नार स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेह स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥१३६

आचम्यैव तु नि स्नेह गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ।
न लङ्घयेत्तथैवाथ ष्ठीवनोद्वर्तनानि च ॥१३७
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्र पादाम्भस्तत्क्षिपेद्वहि ।
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ॥१३८
स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरित्सु च ।
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३९
नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः ।
देवतापितृसच्छास्त्रयज्विसन्यासिनिन्दकं ॥१४०

शेष जो उस अन्न की राशि मे अन्न बचे उसका प्रोक्षण आचमन करके जल तथा मिट्टी से कर लेना चाहिए। इससे विशुद्धता होती है। दुष्ट अर्थात् दोष युक्त भक्त के अशन करने वाले को तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१३४॥ चाहे दोष युक्त भात का अशन अज्ञान पूर्वक हो या ज्ञान पूर्वक होवे उसके दोष का उपशम हो जाता है। उदक्या अवलग्ना, और सूतिका के अन्त्य मे अवशायी का स्पर्श करके तथा मृत मनुष्य को वहन करके शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिए। नर के अस्थियों का स्नेह से स्पर्श करके भी विप्र स्नान करके ही विशुद्ध होता है ॥१३५-१३६॥ नि स्नेह स्पर्श करके केवल आचमन करके ही अथवा गौ तथा सूर्य का दर्शन करके शुद्ध हो जाता है। निष्ठीवन, उद्वर्तन (वान्त) का कभी उल्लङ्घन न करे ॥१३७॥ घर से उच्छिष्ट, मल, मूत्र और पदो के धोने का जल बाहिर प्रक्षिप्त कर देवे। पञ्च पिण्डों का उद्धरण न करके दूसरे जल मे स्नान नही करना चाहिए ॥१३८॥ देव खात (देवो के समीप का जलाशय)-गङ्गा-ह्रद और सरिताओ में स्नान करे। विकाल समय मे उद्यान आदि स्थलों मे प्राज्ञ पुरुष को कभी भी नही रहना चाहिए ॥१३९॥ जनो स विद्वेष द्वेष रखने वाला, वीर हीन स्त्रियाँ और देव, पिता, सत्, शास्त्र, यज्वा और सन्यासियों की निन्दा करने वालों के साथ भाषण नही करना चाहिए ॥१४०॥

धृत्वा तु स्पर्शनालाप शुध्यत्यवावलोकनात् ।
अवलोक्य तथोदक्या सन्यस्त पतित शवम् ॥१४१

शङ्ख, पाषाण, सुवर्ण, रूप्यक (चांदी) रस्सी, वस्त्र, शाक, मूल, फल, विहृत चर्म, मणि, वस्त्र, प्रवाल, मोती, पात्र, चमस—इनकी शुद्धि जल से हो जाती है ॥११३-११४॥ अश्मक (प्रस्तर) की जल से और पाषाण के संघर्षण करने से तथा चिकनाई से युक्त जो पात्र हैं उनकी शुद्धि गर्म पानी से हो जाती है ॥११५॥ सूप, अजिन, मुशल, उलूखल, संहत (एक स्थान पर एकत्रित) पात्रों की शुद्धि भी गर्म जल के प्रोक्षण से होती है। जो भी किसी का बड़ा भारी सञ्चय है तो उसकी शुद्धि प्रोक्षण मात्र से हो जाया करती है। सब वल्कलों की शुद्धि जल और मृत्तिका से होती है। इसी प्रकार से समस्त आविक और केशों का भी शौच होता है ॥११६-११७॥ सिद्धार्थकों का कल्क से अथवा पुनः तिल कल्क से सदा उपधान वालों का शोधन हुआ करता है ॥११८॥ उसी भाँति कपास से निर्मित पदार्थों की शुद्धि जल और भस्म से होती है। लकड़ी दाँत-अस्थि और शृङ्गों की शुद्धि छिलाई करने से हो जाया करती है ॥११९॥

पुनः पाकेन भाण्डाना पार्थिवानाममेध्यता ।
शुद्धं भैक्ष्यं कारुहस्तः पण्यं योपिन्मुख तथा ॥१२०
रथ्यागमनविज्ञान दासवर्गेण सत्कृतम् ।
प्राक्प्रशस्त चिरातीतमनेकान्तरित लघु ॥१२१
अन्तः प्रभूत बाल च वृद्धान्तरविचेष्टितम् ।
कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः ॥१२२
शुचयश्च तथैवाऽऽपः स्रवन्त्यो गन्धवर्जिताः ।
भूमिर्विशुध्यते कालदाहमार्जनादिनगोकुलः ॥१२३
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्म समार्जनादिना ।
केशकीटावपन्ने च गोघ्राते मक्षिकान्विते ॥१२४
मृदम्बु भस्म चाप्यन्ने प्रक्षेप्तव्य विशुद्धये ।
औदुम्बराणामम्लेन वारिणा त्रपुसीसयोः ॥१२५
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ।
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥१२६

जो पार्थिव (पृथ्वी अर्थात् मिट्टी के) पात्र होते हैं उनकी पवित्रता दुबारा पाक कर देने से हो जाती है। कारु (कारीगर) के हाथ से निर्मित भैक्ष्य (खाने के योग्य) पदार्थ जो पण्य (बाजार की बनी हुई) वस्तु है वह तथा स्त्री का मुख शुद्ध हुआ करता है ॥१२०॥ विज्ञान से रहित जो रथ्या या गमन है वह दास वर्ग के द्वारा संस्कार किया हुआ प्रथम ही प्रशस्त-चिरातीत-एकान्तरित लघु-अन्तः प्रभूत-बाल अन्य वृद्ध का विचेष्टित-कर्म या अन्तागार-शाला तथा स्त्री के दोनो स्तन सदा शुचि होते हैं। १२१-१२२॥ जो जल स्रवण करने वाले और गन्ध से रहित होते हैं वे शुद्ध माने जाया करते हैं। भूमि की विशुद्धि दाह-मार्जन (बुहारी लगाना) और गौओं के वहां पर बैठने से हो जाया करती है ॥१२३॥ भूमि का शोधन लीपने से, लेखन से, सेक से, और समार्जन से वैश्य की शुद्धि होती है। केश कीटो से अवपन्न होने पर, गौ के घ्रात में, मक्खियों से युक्त में और अन्न में विशुद्धि के लिये मृत्तिका-जल और भस्म का प्रक्षेप कर देना चाहिए। औदुम्बरों का खटाई से, त्रपु और शीशा के पात्रो का जल से, कांसे के पात्रो का भस्म और जल से तथा द्रव की जल मे डुबा देने से शुद्धि होती है। जो अपविन्न और अक्त हो उसकी शुद्धि मिट्टी और जल से होती है और गन्ध के अपहरण से हो जाया करती है ॥१२४-१२६॥

अन्येषां चैव द्रव्याणां वर्णगन्धाश्च हारयेत् ।
शुचि मांसं तु चाण्डालक्रव्यादैर्विनिपातितम् ॥१२७
रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं पयः ।
रजोऽग्निरश्वागोच्छायारश्मयः पवनो मही ॥१२८
विप्लुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ।
अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम् ॥१२९
मातुः प्रस्रवणे(पा)मेध्य शकुनिः फलपातने ।
आसनं शयनं यानं तटौ नद्यास्तृणानि च ॥१३०
सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ।
रथ्यापसर्पणे स्नाने क्षुत्पानाना च कर्मसु ॥१३१

विधर्मिसूतिकाषण्ढविवस्त्रान्त्यावसायिन. ।
मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये ॥१४२
एतदेव हि कर्तव्य प्राज्ञै: शोधनमात्मन ।
अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान् ॥१४३
पतितापविद्धचाण्डालमृताहाराश्च धर्मवित् ।
सस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ ॥१४४
तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि ।
यस्य चानुदिन हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मण. ॥१४५
यश्च ब्राह्मणसत्यक्त. किल्विषाशी नराधम ।
नित्यस्य कर्मणो हानि न कुर्वीत कदाचन ॥१४६
तस्य त्वकरणं वक्ष्ये केवल मृतजन्मसु ।
दशाह ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जित. ॥१४७

यदि उपर्युक्त पुरुषो के साथ कभी आलाप या स्पर्श हो भी जावे तो सूर्य के दर्शन से ही शुद्धि हो जाया करती है । उदक्या (रजस्वला)-संन्यस्त पतित शव विधर्मी सूतिका-पण्ढ-वस्त्र रहित नग्न अन्त्यावसायी-मृत के निर्यातक और जो पराई स्त्री मे रति रखने वाले है उनके साथ आलाप एव स्पर्श करने पर भी प्राज्ञ पुरुषो को अपनी आत्मा के शोधन के लिये भी यही करना चाहिए । अभोज्य, भिक्षु, पापण्डी, मार्जर, गधा, मुर्गा, पतित, अपविद्ध, चाण्डाल और मृत पुरुष को हरण करने वाले अर्थात् ले जाने वालो का स्पर्श करके भी धर्म के वेत्ता की शुद्धि स्नान करने से हो जाती है । उसी भाँति रजस्वला और ग्राम्य शूकर तथा सूतिका के आशौच से दूषित पुरुषो के भी स्पर्श से स्नान द्वारा विशुद्धि हुआ करती है । जिसको अनुदित हानि होती है अर्थात् नित्य कर्म की हानि हुआ करती है और ब्राह्मणो से सत्यक्त, किल्विष के अशन करने वाला नराधम होता है । अतएव नित्य धर्म की हानि कभी भी नही करनी चाहिए ॥१४१-१४६॥ उस नित्य कर्म का अपकरण तो मृत का शौच और जात का शौच मे ही करे । दश दिन पर्यन्त ब्राह्मण दान होम से रहित रहे ॥१४७॥

क्षत्रियो द्वादशाह च वैश्यो मासधर्ममेव च ।
शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जित. ॥१४८
तत. पर निज कर्म कुर्यु: सर्वे यथोचितम् ।
प्रेताय.सलिल देय बहिर्गत्वा तु गोत्रकैः ॥१४६
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा ।
तस्यास्थिसचय. कार्यश्चतुर्थेऽहनि गोत्रकै: ॥१५०
ऊर्ध्वं सचयमात्तेपामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
गोत्रकैस्तु क्रिया. सर्वा. कार्या. सचयनात्परम् ॥१५१
स्पर्श एव सपिण्डाना मृताहनि तथोभयो ।
अन्वर्थमिच्छया शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निपु ॥१५२
विपप्रतापादिमृते प्रायानाशकयोरपि ।
बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३
सद्य शौच मनुष्याणा त्र्यहमुक्तमशौचकम् ।
सपिण्डाना सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥१५४
पूर्वशौच समाख्यात कार्यास्तत्र दिनक्रिया. ।
एप एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके ॥१५५

जैसे ब्राह्मण की दश दिन मे शुद्धि होती है उसी तरह क्षत्रिय, बारह दिन मे, वैश्य पन्द्रह दिन मे और शूद्र एक मास मे शुद्ध होता है अत उतने ही दिन तक इनको नित्य कर्म से वर्जित रहना चाहिए ॥१४८॥ इस उक्त समय के पश्चात् सबको समुचित नित्य कर्म करना चाहिए । गोत्र वाले पुरुषो को बाहिर जाकर प्रेत के लिये जलदान करना चाहिए ॥१४६॥ प्रथम दिन मे, चतुर्थ, सप्तम, अथवा नवम दिन मे उस प्रेत की अस्थियो का सञ्चय करना चाहिए । गोत्र वाले पुरुषो को चौथे दिन मे करना चाहिए ॥१५०॥ अस्थि सञ्चयन के बाद में अनेक अङ्गो का स्पर्श किया जाता है । सञ्चयन करने के पश्चात् ही गोत्र वाले लोगो को सब क्रिया करनी चाहिए ॥१५१॥ सपिण्ड जो हो उनको स्पर्श मे ही होता है और मृत के दिन मे दोनो को होता है । शस्त्र, रज्जु, बन्धन,

अग्नि, विष प्रताप आदि से मृत हो जावेगा तथा प्रायानाशको को भी पालक, दूसरे देश में स्थित और प्रव्रजित (गृह त्याग कर जाने वाले) के मृत हो जाने पर अन्वर्थ इच्छा से तुरन्त ही मनुष्यो की शुद्धि होती है और तीन दिन का आशौच भी कहा गया है। सपिन्डो के मृत होने पर सपिण्ड की शुद्धि है। यदि अन्य में मृत हो तो पूर्व शौच बता दिया गया है उन्ही में क्षिन क्रिया करनी चाहिए । जन्म हो या मृत्यु हो दोनो में अशौच तथा शुद्धि की एक ही सी विधि देखी गयी है ॥१५२-१५५॥

सपिण्डाना सपिण्डेपु यथावत्सोदकेपु च ।
पुत्रे जाते पितुः स्नान सचेलस्य विधीयते ॥१'६
तत्रापि यदि वाऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः परम् ।
तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥१५७
दशद्वादशमासार्धमाससस्यैर्दिनैर्गतैः ।
स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम् ।
दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीपिभि ॥१५६
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे ।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०
पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिल वाहनायुधैः ।
दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णाः कृतक्रियाः ॥१६१

सपिण्डो के सपिण्डो में और यथावत् सोदकोमें पुत्र के समुत्पन्न होने पर पिता को वस्त्रो सहित स्नान करने का विधान होता है ॥१५६॥ उसमें भी यदि अन्य में अनुयात हो या उससे भी पर हो उसमें भी शुद्धि कही गयी है। पूर्व जन्म वाले की दिनो में शुद्धि होती है। जैसे पहिले बताया गया है दश, द्वादश, पक्ष और मास के दिनो में शुद्धि हो जाने पर सभी वर्णों वाले लोग विधि पूर्वक अपनी २ क्रियाएँ करें ॥१५७-१५८॥ इसके अनन्तर प्रेत का उद्देश्य ग्रहण करके एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए । मनीषी लोगो के द्वारा ब्राह्मणो को दान देना चाहिए ॥१५६॥ जो जो भी पदार्थ अधिक इष्ट हो और घर में जो-जो लोक में प्रिय हो वही वही

वस्तु उन-उन गुणों वाले विप्रों को अक्षय होने की इच्छा वाले को दान में देना चाहिए ॥१६०॥ पूर्ण दिवसों के होने पर वाहन और आयुधों से जल का स्पर्श करके प्रेत को जल और पिण्ड दिये जाने वाले सब वर्णों के लोग सफल क्रिया वाले हुआ करते हैं ॥१६१॥

कुर्युः समग्राः शुचिनः परत्रेह च भूतये ।
अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥१६२

धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्य चापि यत्नतः ।
येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्समेति भो द्विजाः ॥१६३

तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजनैः ।
एवमाचरतो विप्राः पुरुषस्य गृहे सतः ॥१६४

धर्मार्थकाम सप्राप्य परत्रेह च शोभनम् ।
इद रहस्यमायुष्य धन्य बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५

सर्वपापहर पुण्य श्रीपुष्ट्यारोग्यद शिवम् ।
यश.कीर्तिप्रद नृणा तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६

इस लोक मे और परलोक मे भूति के लिये सब को शुचि होकर ही करना चाहिए । विद्वान् पुरुष को नित्य ही त्रयी का अध्ययन करना चाहिए ॥१६२॥ धर्म पूर्वक न्यायोचित रीति से धन का अर्जन करे और यत्न पूर्वक यजन करना चाहिए । हे द्विजगण ! जिससे प्रकुपित हुआ आत्मा जुगुप्सा को प्राप्त नही होता है ॥१६३॥ नि शङ्क होकर वही कार्य करना चाहिए जो कार्य महाजनो के द्वारा छिपाने के योग्य न हो । हे विप्रो ! इस उक्त रीति से आचरण करने वाले पुरुष के घर मे ही रहते हुए धर्म-अर्थ और काम तीनो पुरुषार्थों की सम्प्राप्ति हो जाती है और इस लोक तथा परलोक दोनो में भला होता है । यह परम रहस्य युक्त है—आयु का बढ़ाने वाला है, धन्य तथा बुद्धि का वर्धक है ॥१६४-१६५॥ यह समस्त पापो का हरण करने वाला-पुण्यपूर्ण श्री-पुष्टि और आरोग्य का देने वाला है तथा शिव है । मनुष्यो को यश और कीर्त्ति

देने वाला एव तेज बल का वर्धन करने वाला यह सदाचरण होता है ।।१६६।।

अनुष्ठेयं सदा पुंभिः स्वर्गसाधनमुत्तमम् ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च मुनिसत्तमाः ।।१६७
ज्ञातव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ।
ज्ञात्वैव य सदा कालमनुष्ठान करोति वै ।।१६८
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।
सारात्सारतर चेदमाख्यात द्विजसत्तमा. ।।१६९
श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् ।
न नास्तिकाय दातव्य न दुष्टमतये द्विजाः ।।
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने ।।१७०

मनुष्यो को इस सदाचरण का सदा ही अनुष्ठान करना चाहिए । यह परमोत्तम स्वर्ग का साधन है । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र सभी को करना चाहिए ।।१६७।। श्रेय की आकाक्षा वालो को भली भाति सुप्रयत्न पूर्वक इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । जो सदा जानकर ही समय पर इसका अनुष्ठान किया करता है वह सब पापो से छुटकारा पाकर स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है । हे द्विजसत्तमो ! यह सार का भी सार मैंने वर्णित कर बता दिया है ।।१६८-१६९।। यह धर्म की बातें जो हमने अभी वर्णित की हैं वे सब श्रुति और स्मृति मे कही हुई हैं । इस धर्म को चाहे जिस किसी को नही बताना चाहिए । जो ईश्वर के अस्तित्व को नही मानने वाला नास्तिक हो या दुष्ट बुद्धि वाला हो हे द्विजगण ! उसका कभी न बतावे । जो दाम्भिक मूर्ख एव कुतर्क के प्रलाप करने वाले को कभी न देवे ।।१७०।।

—:*:—

वर्णाश्रमधर्मवर्णन

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषतः ।
चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान् ॥१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
शृणुध्वं संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२
दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ॥३
वृत्त्यर्थं याजयेत्त्वन्यान्द्विजानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहादानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः ॥४
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजाः ।
मैत्री समस्तसत्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥५
गवि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजाः ।
ऋतावभिगमः पत्न्या शस्यते वाऽस्य भो द्विजाः ॥६
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि हि ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजाः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हम लोग विशेष रूप से वर्णों के धर्मों का श्रवण करना चाहते हैं। हे द्विज वर्य ! चारों आश्रमों के धर्मों को हमको बतलाइये बड़ी कृपा होगी ॥१॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—आप लोग सब संयत होकर श्रवण करिए। मैं यथाक्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रों के वर्ण धर्मों का वर्णन करता हूँ ॥२॥ एक विप्र को दान-दया-तप देवयज्ञ और स्वाध्याय में तत्पर होना चाहिए तथा नित्य उदकी होकर अग्नि का परिग्रह करना चाहिए ॥३॥ अन्य द्विजों को वृत्ति के लिये यजन करावे तथा अध्यापन कराना चाहिए। हे द्विजो ! ज्ञान से यज्ञ के लिये प्रतिग्रह ग्रहण करे तथा दान देवे ॥४॥ हे द्विजगण ! ब्राह्मण को सब लोगों के हित के लिये किसी का भी अहित न करे और सब लोगों का सदा हित ही करे। समस्त जीवों में मैत्री का भाव ही

ब्राह्मण का सर्वोत्तम धन होता है ॥५॥ हे द्विजो ! ब्राह्मण को गौ मे-रत्न मे और पारक्य में समान बुद्धि वाला होना चाहिए । ऋतुकाल मे ही विप्र को अपनी पत्नी का अभिगमन करना प्रशस्त होता है ॥६॥ इच्छा पूर्वक क्षत्रिय को द्विजो के लिये दान देना चाहिए। विप्र को अध्ययन करना चाहिए और विविध यज्ञो के द्वारा यजन करना चाहिये ॥७॥

शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तस्यापि प्रथमे कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः ।
भवन्ति नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥९
दुष्टाना शासनाद्राजा शिष्टाना परिपालनात् ।
प्राप्नोत्यभिमतांल्लोकान्वर्णसस्थापको नृपः ॥१०
पाशुपाल्यं वणिज्या च कृषिं च मुनिसत्तमा. ।
वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥११
तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठान च कर्मणाम् ॥१२
द्विजातिसंश्रयं कर्म तदर्थं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धनैः कारुभवैस्तु वा ॥१३
दान दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च ।
पित्र्यादिकं च वै सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ॥१४

अब क्षत्रियों के धर्म को बतलाया जाता है—क्षत्रिय को शस्त्रों की आजीविका वाला, भूमि का रक्षण, ये ही दो क्षत्रिय की श्रेष्ठ जीविका हैं। उसका भी प्रथम कल्प मे पृथिवी का परिपालन करना है ॥८॥ नराधिप भूमि के परिपालन से ही कृतकृत्य हो जाया करते हैं क्योंकि यज्ञ आदि कर्मों की सुरक्षा राजा से ही हुआ करती है ॥९॥ राजा दुष्टों को शासन करके दण्ड देता है और जो शिष्ट पुरुष होते हैं उनका परि-पालन करने वाला होता है। इस रीति से वर्णों का संस्थापन करने वाला राजा अपने अभिमत लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥१०॥ पशुपा

का पालन-वाणिज्य और कृषि कर्म है मुनिश्रेष्ठो ! लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने वैश्य के लिये जीविका दी थी। वैश्य का भी यज्ञ-दान-अध्ययन और धर्म प्रशस्त कहा जाता है और नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान भी वैश्य करता है ॥११-१२॥ द्विजातियों के सश्रय मे जो कुछ कर्म है उसी के लिये उससे पोषण होता है। क्रय और विक्रय से समुत्पन्न धनो से तथा कारीगरी हस्त कला से अर्जित धनो से शूद्र भी दान देवे और पाक यज्ञों के द्वारा यजन कर्म करे। पितृ सम्बन्धी आदि सभी कर्म शूद्र को उसी से करना चाहिए ॥१३-१४॥

भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहः।
ऋतुकालाभिगमनं स्वदारेषु द्विजोत्तमाः ॥१५
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥१६
मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्यं द्विजोत्तमाः।
अनसूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणाः ॥१७
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः।
गुणास्तथोपधर्मांश्च विप्रादीनामिमे द्विजाः ॥१८
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यकर्म तथाऽऽपदि।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्माणि चैतयोः ॥१९
सत्यं सामर्थ्ये सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः।
तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०
इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै।
धर्मामाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतोऽपि निबोधत ॥२१

भृत्य आदि के भरण के लिये सबका परिग्रह होता है। हे द्विजोत्तमो ! अपनी दाराओं का ऋतुकाल मे ही अभिगमन करना चाहिये ॥१५॥ समस्त प्राणियों पर दया का भाव तितिक्षा (कष्टों को सहन करना)-अभिमान की अधिकता का अभाव-सत्य शौच (पवित्रता)-आयास न करना मङ्गल प्रिय भाषण करना-मैत्रीभाव अस्पृहा (विशेष इच्छा किसी के लिये न रखना)-अकार्पण्य (कजूसी का अभाव)-

भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्र प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्य तेन वै परम् ॥३२
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः ।
अटन्ति वसुधा विप्रा पृथिवीदर्शनाय च ॥३३
अनिकेता ह्यनाहारा ये तु साय गृहास्तु ते ।
तेषा गृहस्थ सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४
तेषा स्वागतदानानि वक्तव्यमधुर सदा ।
गृहागताना दद्याच्च शयनसनाभोजनम् ॥३५

विधिपूर्वक पत्नी को ग्रहण करने वाला अपने ही शास्त्रोक्त कर्म के द्वारा धन को प्राप्त करे और हे विप्रो ! अपनी शक्ति से सम्पूर्ण गृहास्याश्रम कार्य करना चाहिए ॥२६॥ निर्वाप के द्वारा पितृगण का अर्चन करे—यज्ञों के द्वारा देवों का अभ्यर्चन करे—अन्न के द्वारा अतिथियों का और स्वाध्याय के द्वारा मुनियों का एव सन्तति समुत्पादन के द्वारा प्रजापति का अभ्यर्चन करे ॥३०॥ बलि कर्म के द्वारा भूतों का—वाणी की सत्यता के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का अर्चन करे । इस विधि से गार्हस्थ्य आश्रम मे रहते हुए मनुष्य अपने ही कर्मों द्वारा समार्जित लोकों को प्राप्त कर लिया करता है ॥३१॥ जो कोई भिक्षा वृत्ति भोजन करने वाले परिव्राट् (सन्यासी) तथा ब्रह्मचारी हैं वे भी सब इसी गार्हस्थ्य आश्रम मे प्रतिष्ठित हुआ करते हैं अर्थात् उनका निर्वाह गृहस्थ के द्वारा चला करता है इसी लिये गार्हस्थ्य आश्रम सबसे श्रेष्ठ एव पर माना जाता है ॥३२॥ हे द्विजो ! विप्रगण वेदों के ग्रहण करने के कार्य से—तीर्थों मे अवगाहन करने के लिए और समग्र पृथिवी के दर्शन प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण वसुधा पर पर्यटन किया करते हैं ॥३३॥ जो बिना घर द्वार वाले हैं और जिनको दिनभर आहार नहीं मिलता है उन लोगों के गृहस्थी ही सायकाल मे गृह होते हैं । गृहस्थ निरन्तर उनकी प्रतिष्ठा की योनि (कारण) होता है—ऐसा कहा जाता है ॥३४॥ उन लोगों के लिये स्वागत करना, दान देना, सदा मधुर भाषण करके गृह मे समागत हुए लोगों को गृहस्थ द्वारा शय्या-आसन और भोजन देना चाहिए ॥३५॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चापि गृहे सतः ।
परिवादोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते ॥३७
यश्च सम्यक्करोत्येव गृहस्थः परमं विधिम् ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चोत्तमान् ॥३८
वयःपरिणतौ विप्राः कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३९
पर्णमूलफलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः ।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिः सर्वातिथिर्द्विजाः ॥४०
चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीयके ।
तद्वत्त्रिषवणं स्नानं शस्तमस्य द्विजोत्तमाः ॥४१
देवताभ्यर्चनं होमः सर्वाभ्यागतपूजनम् ।
भिक्षा बलिप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्यते ॥४२

जिस गृहस्थ के घर से भग्न आशा वाला अतिथि वापिस निराश लौट जाया करता है । वह उस गृहस्थ के सम्पूर्ण पुण्य को लेकर तथा पाप देकर ही चला जाया करता है । अतिथि-सत्कार की बड़ी महिमा होती है अतः इसका त्याग कभी नहीं करना चाहिए । इसके करने से महान् पुण्य होता है ॥३६॥ गृह में रहने वाले गृहाश्रमी को अवज्ञान, अहङ्कार, दम्भ, परिवाद, उपघात और कठोरता, इन सब का होना प्रशस्त नहीं कहा जाता है अर्थात् अवगुण गृहस्थ में नहीं होने चाहिए क्योंकि परिणाम अच्छा नहीं होता है ॥३७॥ जो कोई गृहस्थ इस रीति से परम विधि का परिपालन अच्छी तरह से करके गार्हस्थ्य आश्रम में रहता है वह सभी प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पाकर अन्त में अति उत्तम लोकों को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ हे विप्रो ! जब गृहस्थ की अवस्था परिपक्व हो जाती है तो वह कृत कृत्य हो जाया करता है । फिर उसका कर्त्तव्य यही है कि अपनी भार्या की देख-भाल पुत्रों को सौंप कर स्वात्म कल्याण

उपनयन हो जाने वाला बालक जो वेदो के समाहरण मे तत्पर हो। हे विप्रो ! गुरु के गृह मे निवास करते हुए समाहित होकर ब्रह्मचारी रहे ।।२२।। शौच और आचार मे रति रखते हुए वहाँ पर गुरुकुल मे गुरुदेव की शुश्रूषा करनी चाहिए। व्रतो का समाचरण करते हुए कृत-बुद्धि के द्वारा वेद का ग्रहण करना चाहिये ।।२३।। परम समाहित होकर हे विप्रो ! रवि देव का तथा अग्नि का दोना सन्ध्या कालो में उपस्थान करना चाहिये और दोनो संधि कालो में गुरु का भी अभिवादन करे ।।२४।। हे द्विजश्रेष्ठो ! गुरुदेव की सेवा में गुरु की पूर्णतया अनुसरणता होनी चाहिये। गुरु के स्थित होने पर स्वय भी स्थित हो जाना चाहिए। जब गुरु गमन करें तो उनके पीछे स्वय भी गमन करे। जब गुरुदेव बैठें तो स्वय भी बैठ जाना चाहिए। शिष्य को प्रतिकूल कभी नही रहना चाहिए। जो प्रतिकूल शिष्य हो उसका त्याग कर देवे ।।२५।। गुरु के द्वारा बताये हुए वेद को पढना चाहिए और गुरु के सामने स्थित होकर अन्यमनस्क नही रहना चाहिए। जो भी भिक्षा का अन्न लावे उसको गुरु के सामने रखे और जब गुरु द्वारा अनुज्ञा प्राप्त हो जावे तो फिर उसका भक्षण करना चाहिये ।।२६।। पूर्व में गुरु के द्वारा अवगाहित जलो में स्वय अवगाहन करे। गुरु के लिये प्रतिदिन प्रातः काल में नित्य समिधा और जल आदिक शिष्य ब्रह्मचारी को लाकर अर्पित कर देना चाहिए ।।२७।। ग्रहण करने के योग्य वेद को ग्रहण करके फिर गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त करे तथा गुरुदेव की निष्कृति को पूर्ण करके अर्थात् उनकी भेंट पूजा करके दक्षिणा देकर प्राज्ञपुरुष को गार्हस्थ आश्रम में आकर वास करना चाहिए ।।२८।।

विधिनाऽवाप्तदारस्तु धन प्राप्य स्वकर्मणा ।
गृहस्थकार्यमखिल कुर्याद्विप्रा स्वशक्तितः ।।२९
निर्वापेण पितॄनर्च्य यज्ञैर्देवास्तथाऽतिथीन् ।
अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ।।३०
बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिल जगत् ।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ।।३१

के लिये वन में चले जाना चाहिए या भार्या को साथ ही में ले जाना चाहिए। यह तृतीय वानप्रस्थ आश्रम होता है जिसका पालन करना आवश्यक है ॥३९॥ हे द्विजो ! वहाँ वन मे पत्ते, मूल, कन्द और फलो का आहार करे और केश, श्मश्रु और जटा धारण करे। भूमि में शयन करने वाला, सबका अतिथि मुनि होकर निवास करे ॥४०॥ चर्म, कुशा और कांस से अपने शरीर के आवरण करने वाला परिधान और उत्तरीयक बनावे तथा वहा पर भी हे द्विजगणो ! त्रिकाल स्नान, तीनो काल की सन्ध्योपासना करना ही परम प्रशस्त है ॥४१॥ देवो का पूजन, होम, सभी समागत अभ्यागतो का सत्कार, भिक्षा, बलि प्रदान कर्म हो उसको प्रशस्त बताये गये हैं ॥४१॥

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते ।
तपस्या तस्य विप्रेन्द्राः शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥४३
यस्त्वेता नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः ।
स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकाश्च शाश्वतान् ॥४४
चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूप गदतो बुध्यध्व मम सत्तमाः ॥४५
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेह द्विजोत्तमाः ।
चतुर्थमाश्रमस्थान गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥४६
त्रैवर्णिकास्त्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमाः ।
मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७
जरायुजाण्डजादीना वाङ्मनःकर्मभिः क्वचित् ।
युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गाश्च वर्जयेत् ॥४८
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे ।
तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेषो वा नास्य जायते ॥४९

वन में होने वालो के स्नेह से (चिकनाई से) अपने अङ्गो का अभ्यङ्ग भी प्रशस्त बताया जाता है। हे विप्रेन्द्रो ! उसको शीत, उष्ण और वर्षा आदि का सहन करना ही बडा भारी वन मे तपश्चर्या है ॥४३॥ जो वानप्रस्थ धर्म में रहने वाला मनुष्य (मुनि) इन उपर्युक्त तप-

स्याओ का समाचरण किया करता है वह अग्नि के समान ही सब दोषो को जला देता है और जो शाश्वत लोक हैं उन पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ चौथा आश्रम मनीषीयो के द्वारा भिक्षु का आश्रम ही कहा जाया करता है। हे श्रेष्ठ पुरुषो ! उस चौथे सन्यास आश्रम का स्वरूप भी मैं बोल रहा हू। मुझसे आप लोग उसे भी समझ कर जान लो ॥४५॥ ससार मे महान् बन्धन स्वरूप पुत्र-द्रव्य और स्त्री इनमे जो स्नेह होता है उसे सर्वथा त्याग देना चाहिए और मत्सरता को एक दम छोडकर चौथे आश्रम मे गमन करना चाहिए ॥४६॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! फिर तो तीनो वर्णों के जो भी नियम और कर्म हैं उन सबका आरम्भो का त्याग कर देवे। समस्त प्राणियो के प्रति मित्रो के ही समान मैत्री भाव रक्खे ॥४७॥ चार प्रकार की जल वृद्धि हो ी है उन जरायुज और अण्डज आदि का मन-वचन कर्म से युक्त होकर कही पर भी द्रोह नही करे और सब प्रकार के सङ्गो का वर्णन कर देना चाहिए ॥४८॥ सन्यासी एक ग्राम में अपनी स्थिति एक रात्रि तक ही करे और किसी भी पुर मे पाँच रात्रि पर्यन्त सन्यासी को निवास करना चाहिए। इससे अधिक रहना सन्यासी को वर्जित होता है। तिर्यक् गणो मे उस प्रकार की अधिक प्रीति अथवा द्वेष इसको नही करना चाहिए ॥४९॥

प्राणयात्रानिमित्त ं च व्यङ्गारेऽभुक्तज्जने ।
काले प्रशस्तवर्णाना भिक्षार्थी पयटेद्गृहान् ॥५०
अलाभे न विषादो स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१
अतिपूजितलाभास्तु जुगुप्स चै(प्सेचै)व सर्वत. ।
अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मु क्तोऽपि बध्यते ॥५२
काम: क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये ।
तास्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत् ॥५३
अभय ं सर्वसत्वेभ्यो दत्वा यश्चरते महीम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्यु भय ंनोत्पद्यते क्वचित् ॥५४

कृत्वाऽग्निहोत्र स्वशरीरसस्थ,
शारीरमग्नि स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतैर्हविर्भि-
श्चिताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५
मोक्षाश्रम यश्चरते यथोक्त,
शुचिश्च सकल्पितबुद्धियुक्त ।
अनिन्धन ज्योतिरिव प्रशान्त,
स ब्रह्मलोक व्रजति द्विजाति ॥५६

सन्यासी को अपनी प्राण यात्रा के लिये प्रशस्त वर्णों के घर मे उस काल मे जाना चाहिए जब चूल्हो की अग्नि बुझ जावे और घर के लोग भोजन न कर पावें। ऐसे समय मे भिक्षा की याचना वाले को गृहस्थो के गृहो मे पर्यटन करना चाहिए ॥५०॥ यदि लाभ न हो तो हृदय मे विषाद करने वाला न बने और भिक्षा के प्राप्त होने पर हर्षित भी नही होना चाहिए। केवल प्राण यात्रा के निमित्त जितना आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करे तथा मात्रा के सङ्ग से विनिर्गत होना चाहिए ॥५१॥ सभी ओर से अति अधिक पूजित होकर प्राप्त होने वाले लाभो को तथा जुगुप्सा का भी त्याग कर देना चाहिए। अत्यधिक समाज मे पूजा होने वाले सन्यासी मुक्त होकर भी बद्ध हो जाया करते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज मे सन्यासी को अधिक सम्मान तथा पूजा कभी प्राप्त नही करनी चाहिए क्यो कि ऐसा करने से बन्धन ही होता है ॥५२॥ परिव्राड् (सन्यासी अथवा यति) को काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह मात्सर्य आदि जो महान् मानसिक दोष शत्रु के स्वरूप मे रहते हैं उन सब का परित्याग कर देना चाहिए और यति को पूर्णतया ममता से रहित होकर काल यापन करना चाहिए ॥५३॥ जो सन्यासी समस्त जीवो को अभय का दान करके इस भूमि पर विचरण किया करता है वह इस पंच-भौतिक शरीर से विमुक्त हो जाया करता है और फिर उसको कही भी किसी प्रकार का भय नही होता है ॥५४॥ अपने ही शरीर मे रहने वाले अग्निहोत्र को करके उस शारीरिक अग्नि की अपने मुख मे आहुति दिया

करता है वह चित्र दिशा से प्राप्त हवियों के द्वारा चिताग्नि से लोकों को गमन कर गया था ॥५५॥ यह चतुर्थ आश्रम मोक्ष प्राप्त करने का आश्रम है। जैसा इसका विचार बताया गया है उसी प्रकार से जो इसका समाचरण करता है—शुचि और सकल्पित बुद्धि से युक्त होता है तथा बिना ईंधन वाली ज्योति के समान प्रशान्त रहता है वह द्विजाति सीधा ब्रह्म लोक का गमन किया करता है ॥५६॥

—:※:—

संकरजातिलक्षणवर्णन

सर्वज्ञस्त्व महाभाग सर्वभूतहिते रतः ।
भूत भव्य भविष्य च न तेऽस्त्यविदित मुने ॥१
कर्मणा येन वर्णानामधमा जायते गतिः ।
उत्तमा च भवेद्येन ब्रूहि तेषां महामते ॥२
शूद्रस्तु कर्मणा येन ब्राह्मणत्व च गच्छति ।
श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविभूषिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते ॥४
तत्र स्थित महादेव त्रिपुरघ्न त्रिलोचनम् ।
शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम् ॥५
इम प्रश्न पुरा विप्रा अपृच्छच्चारुलोचना ।
तदह सप्रवक्ष्यामि शृणुध्व मम सत्तमाः ॥६

मुनिगण ने कहा—हे महाभाग ! आप तो सर्वज्ञ हैं और सब प्राणियो के हित मे रति रखने वाले हैं। हे मुने ! आपको भूत-भव्य (वर्त्तमान) और भविष्य मे कुछ भी अविदित नही है अर्थात् आप तीनो लोको की बात जानते हैं ॥१॥ हे महामते ! इन चारो वर्णों की ऐति किस तरह के कर्म से अधम हो जाया करती है और कौन सा कर्म पास है जिससे इनकी गति उत्तम होती है—यही आप अब हम लोगो को

बताने की कृपा कीजिए ॥२॥ कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करके शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाया करता है ? हम अब यही श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं कि कौन सा वह कर्म है जिसके करने से ब्राह्मण भी शूद्रता को प्राप्त हो जाया करता है ? ॥ ॥ श्री व्यास देव जी ने कहा— हे विप्रो ! पुरातन काल में सुन्दर नेत्रों वाली जगदम्बा ने ऐसा ही प्रश्न हिमालय गिरि के सुरम्य शिखर पर जो अनेक प्रकार की धातुओं से शोभित-विविध वृक्ष और लताओं से भूषित एवं अनेक आश्चर्यों से संयुत था, श्री त्रिपुरासुर के हनन करने वाले-तीन नेत्रों वाले महादेवजी पूछा था। सर्व प्रथम शैल राज की पुत्री पार्वती देवी ने सुरेश्वर प्रभु को प्रणाम किया था और इसके अनन्तर ऐसा प्रश्न पूछा था ॥४-५॥ उसी को मैं अब आपको बतलाता हूँ। हे श्रेष्ठतमो ! उसका आप लोग श्रवण कीजिए ॥६॥

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन ।
दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा ।
केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥८
वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।
प्रतिलोमे कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥९
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०
एतं मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।
त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११
ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे ।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा निसर्गादिति मे मतिः ॥१२
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति स द्विजः ।
श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४

उमा देवी ने कहा था—हे भगवन् ! आप तो भग के नेत्रों के हनन करने वाले हैं और पूषा के दाँतो को भग्न कर देने वाले हैं। आप दक्ष के यज्ञ का ध्वंस कर देने वाले तथा तीनों नेत्रो से संयुत हैं। मेरे हृदय मे एक बड़ा भारी संशय है उसे आपकी सेवा मे निवेदित करती हूँ ॥८॥ भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व काल में चारों वर्णों का सृजन किया था। उस कर्मों के विपाक में वैश्य शूद्रता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९॥ वैश्य अथवा क्षत्रिय किस से द्विज हो जाता है या द्विज क्षत्रिय हो जाया करता है ? हे देवेश्वर ! प्रतिलोम होने पर धर्म कैसे निवर्तित किया जा सकता है ? ॥१०॥ कौन सा कर्म है जिससे विप्र भी शूद्र योनि मे समुत्पन्न हो जाता है ? हे विभो ! किस कर्म से क्षत्रिय शूद्रता को प्राप्त कर लिया करता है ॥१०॥ हे भूतों के स्वामिन् ! हे अनघ ! हे देव ! इस मेरे हार्दिक संशय के विषय में आप निराकरण कीजिए। इस लोक में तीनों वर्ण किस प्रकार से प्रकृति मे ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥११॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! हे शुभे ! ब्राह्मण्य को प्राप्त करना बहुत ही कठिन है क्योंकि निसर्ग से ही ब्राह्मण हुआ करता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सब स्वभाव से ही हुआ करते हैं—ऐसी मेरी मति है ॥१२॥ वह द्विज यहाँ पर दुष्कृत कर्म्म के द्वारा ही अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाया करता है। श्रेष्ठ वर्ण की प्राप्ति करके उससे पुन आक्षिप्त किया जाता है ॥१३॥ ब्राह्मण का जो धर्म होता है उसी धर्म में स्थित रहने वाला पुरुष ब्राह्मण को उप जीवित रखता करता है। क्षत्रिय हो या वैश्य हो वह ब्रह्म भूतता को प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रधर्मान्निषेवते ।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्ट क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥१५
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रय ।
ब्राह्मण्य दुर्लभ प्राप्य करोत्यल्पमति सदा ॥१६
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्तत शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७

तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ प्रजायते ।।१८
क्षत्रियो वा महाभागो वैश्यो वा धर्मचारिणि ।
स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निषेवते ।।१६
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसंकरतां गतः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ।।२०
यस्तु शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्शुचिः ।
धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ।।२१

जो विप्रत्व का त्याग करके क्षत्रिय के धर्मों का सेवन किया करता है वही ब्राह्मणत्व से परिभ्रष्ट होकर क्षत्रियाणी की योनि में समुत्पन्न होता है ।।१५।। लोभ और मोह के विशेष आश्रय के करने वाले विप्र जो वैश्य के कर्मों को किया करते हैं और इस दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके भी अल्प बुद्धि वाला विप्र सदा वैश्य के ही कर्म करता है । वही द्विज वैश्यता को प्राप्त कर लेता है और शूद्र कर्म करने से विप्र शूद्रता को पा जाया करता है क्यों कि जो विप्र अपने धर्म से च्युत हो जाता है वही शूद्रत्व को पाता है ।।१६-१७।। वहाँ पर वर्ण से भ्रष्ट होकर नरक को प्राप्त हो जाता है और बहिष्कृत होकर ब्रह्म लोक से भ्रष्ट होकर शूद्र योनि में उत्पन्न हो जाता है ।।१८।। हे महाभागे ! आप तो धर्म का आचरण करने वाली हैं । जो अपने कर्मों का त्याग करके शूद्र के कर्मों का सेवन किया करते हैं वे अपने स्थान से परिभ्रष्ट होकर वर्णसङ्करता को प्राप्त कर लिया करते हैं । उसी तरह का ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य शूद्रता को प्राप्त किया करते हैं ।।१६-२०।। जो शूद्र अपने ही धर्म से ज्ञान और विज्ञान वाला तथा परम पवित्र होता है एवं धर्म का ज्ञाता और धर्म में विशेष रति रखने वाला होता है वही धर्म के फल को प्राप्त करता है ।।२१।।

इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
अध्यात्मं नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ।।२२

उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् ।
घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा क्वचित् ॥२३
शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः ।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः ।
आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत् ॥२५
तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः ।
तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७
ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि चाऽश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥२८

हे देवि ! यह दूसरी बात ब्रह्माजी ने कही थी । अध्यात्मक नैष्ठिकी सिद्धि है जो कर्म और काम के द्वारा निषिद्ध की जाया करती है ॥२२॥ हे देवि ! उग्र अन्न, गर्हित अन्न, गणान्न, श्राद्धान्न, सूतकान्न तथा घुष्टान्न एवं शूद्र का अन्न कभी नहीं खाना चाहिए और कहीं पर भी नहीं खावे ॥२३॥ हे देवि ! शूद्र का अन्न सदा ही गर्हित महात्माओं देवों ने बताया है । यह पितामह के भी मुख से उत्सृष्ट है इसीलिये यह प्रमाण होता है-ऐसी मेरी मति है ॥२४॥ द्विज शूद्र का अन्न यदि पेट में अवशिष्ट रह जाता है और वह मर जाता है तो वह चाहे आहित अग्नि वाला हो या यज्वा हो निश्चित रूप से शूद्र की गति को भोगने वाला होता है ॥२५॥ उस शूद्र के अन्न के शेष से ब्रह्म स्थान से अपाकृत हुआ ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी विचारणा नहीं होती है ॥२६॥ जिसके भी अन्न के अवशेष से द्विज उदर में रखते हुए मृत्युगत हो जाता है उसी-उसी योनि को विप्र गमन किया करते हैं जिसके अन्न से वह उपजीवित हुआ करता है ॥२७॥ इस दुर्लभ ब्राह्मणत्व के सुख को प्राप्त करके जो इस ब्राह्मणत्व के सुख का अपमान किया करता है

अथवा न भोजन के योग्य अन्नो का खाता है वह द्विजत्व से निश्चय ही पतित हो जाया करता है ॥२८॥

सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरो भग्नव्रतोऽशुचिः ।
स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२९
अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
विहीनसेवी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः ॥३०
गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च यः ।
ब्रह्मद्विड्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥३१
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्रह्मणता गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियता व्रजेत् ॥३२
शूद्रः कर्माणि सर्वाणि यथान्याय यथाविधि ।
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजन. ॥३३
शुश्रूषा परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णे प्रयत्नतः ।
कुर्यादविमनाः श्रेष्ठ. सतत सत्पथे स्थित. ॥३४
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रत. ।
ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५

जो सुरा का पान करने वाला, ब्राह्मण का हनन करने वाला, चोर, व्रत को भङ्ग करने वाला, अशुचि, स्वाध्याय (वेदाध्ययन) से रहित, पापी, लोभी, नैकृतिक, शठ, व्रत न करने वाला, वृषली (शूद्रा स्त्री) का स्वामी, कुण्डाशी (कुण्ड के यहाँ खाने वाला) स्वामी के रहते हुए जो जार से उत्पन्न होता है वह कुण्ड कहा जाता है। सोम का विक्रय करने वाला विहीन पुरुष की सेवा (चाकरी) करने वाला-जो विप्र होता है वह ब्रह्म योनि से गिर जाया करता है ॥२९-३०॥ गुरु की शय्या पर गमन करने वाला-गुरु से द्वेष रखने वाला, जो गुरु की निन्दा में रति रखता है तथा ब्राह्मणो का शत्रु जो होता है वह ब्राह्मण ब्रह्म योनि से पतित हो जाया करता है ॥३१॥ हे देवि ! इन कर्मों से विप्रत्व का पतन हो जाया करता है, और परम शुभ आचरणो के करने से शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। तथा वैश्य क्षत्रियत्व को प्राप्त

करता है ॥३२॥ शूद्र विधिपूर्वक नियमानुसार समस्त कर्मों को करता हुआ सबके आतिथ्य को करने वाला हो और शेष अन्न से भोजन करता है ॥३३॥ जो शूद्र अपने से बडे वर्ण वालो की शुश्रूषा एव परिचर्या करने वाला होकर प्रयत्न के साथ उत्साह पूर्वक करे वह निरन्तर श्रेष्ठ और सन्मार्ग मे स्थित रहा करता है ॥३४॥ जो शूद्र देव और द्विजातियो के सत्कार के करने वाला है तथा सबके आतिथ्य करने के व्रत को धारण करने वाला है एव ऋतुकाल मे ही गमन किया करता है-नियत और नियमित भोजन करने वाला है वह श्रेष्ठ होना है ॥३५॥

दक्ष. शिष्टजनान्वेषो शेषान्नकृतभोजन. ।
वृथा मास न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ॥३६
ऋतवागनहवादी निर्द्वंद्व. सोमकोविद. ।
यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरम. शुचि. ॥३७
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सववर्णानसूयक: ।
गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्विकालकृतभोजन· ॥३८
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहवद: ।
अग्निहोत्रमुपासानो जुह्वानश्च यथाविधि ॥३९
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन्शेषान्नकृतभोजन ।
त्रेताग्निमात्रविहित वैश्यो भवति च द्विज. ॥४०
स वैश्य क्षत्रियकुले शुचिर्महति जायते ।
स वैश्य क्षत्रियो जाता जन्मप्रभृति सस्कृत ॥४१
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सस्कृत· ।
ददाति यजते यज्ञै. समृद्धै राप्तदक्षिणै. ॥४२

जो शूद्र दक्ष, शिष्टजनो के अन्वेषी, शेष अन्न से भोजन करने वाला है तथा जो वृथा माम का भोजन नही करता है वह वैश्यत्व को प्राप्त कर लिया करता है ॥३६॥ जो वैश्य ऋत वाणी बोलने वाला, अहङ्कार पूर्वक भाषण न करने वाला, निर्द्वन्द्व, सोम का कोविद, नित्य ही यज्ञो के द्वारा यजन करने वाला, स्वाध्याय मे तत्पर और शुचि होता

है ॥३७॥ जो वैश्य दमन शील, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, सब वर्णों की निन्दा न करने वाला, गृहस्थ के व्रत को करने वाला और दो ही कालों में भोजन करने वाला होता है ॥३८॥ जो वैश्य शेषान्न का अशन करने वाला है—आहार पर विजय प्राप्त करने वाला है, कामना से रहित, अहङ्कार की बात न बोलने वाला होता है, नित्य अग्निहोत्र की उपासना करने वाला और विधि के साथ हवन किया करता है ॥३९॥ समस्त अतिथियों के स्वागत-सत्कार को करता हुआ त्रेताग्नि मात्र विहित, आतिथ्य के शेष अन्न से भोजन करने वाला वैश्य दूसरे जन्म मे द्विज हो जाया करता है ॥४०॥ वह वैश्य महान् उच्च क्षत्रिय के कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है और परम शुचि होता है। वह वैश्य जन्म प्रभृति से संस्कार वाला होता है तथा क्षत्रिय कुल मे पैदा हुआ होता है ॥४१॥ उपनयन संस्कार वाला होकर व्रत परायण संस्कारों से युक्त द्विज होता है तथा दान दिया करता है और प्राप्त दक्षिणा वाले समृद्ध यज्ञों के द्वारा यजन करता है ॥४२॥

अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा ।
आर्द्रहस्तप्रदो नित्य प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३
सत्यः सत्यानि कुरुते नित्य यः शुद्धिदर्शनः ।
धर्मदण्डेन निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासक ॥४४
यन्त्रितः कार्यकरणे षड्भागकृतलक्षणः ।
ग्राम्यधर्मान्न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः ॥४५
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा ।
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ॥४६
बहिष्कान्तरिते(?) नित्य शयानोऽग्नि सदा गृहे ।
सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमना सदा ॥४७
शूद्राणां चान्नकामाना नित्य सिद्धमिति ब्रुवन् ।
स्वार्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत् ॥४८
पितृदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत् ।
स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च ॥४९

अध्ययन करके त्रेताग्नि की रक्षा वाला सदा स्वर्ग की इच्छा करता हुआ नित्य ही गीले हाथो से प्रदान करने वाला होता है और अपनी प्रजा का धर्म पूर्वक परिपालन किया करता है ॥४३॥ स्वय सच्चा होता है और सत्यो का करना है जो नित्य ही शुद्धि का दर्शन करता है । वह धर्म के दण्ड से निर्दग्ध होता है तथा धर्म काम और अर्थ की साधना वाला है ॥४४॥ वह कार्य करणो से यन्त्रित रहता है तथा षड् भागो से कृत लक्षण है । उसे ग्राम्य धर्मों का सेवन नही करना चाहिए और वह स्वच्छता से अर्थ का पण्डित होता है ॥४५॥ वह सदा ही ऋतुकाल मे अपनी पत्नी का धर्मात्मा उपाश्रय किया करता है । यह सदा उपवास करने वाला, नियत, शुचि और स्वाध्याय मे निरत रहता है ॥४६॥ वह सदा गृह मे बाहिर एकान्त मे नित्य शयन किया है तथा त्रिवर्ग का सदा सुन्दर मन वाला सम्पूर्ण आतिथ्य करने वाला होता है ॥४७॥ अन्न की कामना वाले शूद्रो का नित्य ही सिद्ध है—ऐसा बोलता है तथा स्वार्थ से अथवा काम से कुछ भी उपलक्षित नही करना चाहिए ॥४८॥ पितृगण और अतिथियो के एव देवताओ के लिये जो साधन किया करता है अपने घर मे न्यायपूर्वक भैक्ष्य की ही उपासना करता है ॥४९॥

द्विकालमग्निहोत्र च जुह्वानो वै यथाविधि ।
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हन ॥५०
त्रेताग्निमन्नपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत् ।
ज्ञानविज्ञानसपन्न सस्कृतो वेदपारगः ॥५१
वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेनकर्मणा ।
एतै. कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भव ॥५२
शूद्रोऽप्यागमसपन्नो द्विजो भवति सस्कृत ।
ब्राह्मणो वाऽप्यसद्वृत्तः सवसकरभोजन ॥५३
स ब्राह्मण्य समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश ।
कर्मभि· शुचिभिर्देवो शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ॥५४
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् ।
स्वभावकर्मणा चैव यत्र (श्र) शूद्रोऽधितिष्ठति ॥५५

विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मतिः ।
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च सततिः ॥५६

दोनों समयों में प्रातः सायं यथाविधि अग्निहोत्र की आहुतियाँ देता है और गौ तथा ब्राह्मणों के हित के लिये रण में युद्ध करते हुए सम्मुख में हत होता है ॥५०॥ त्रेताग्नि के मन्त्रों से पवित्र समाविष्ट होकर वह द्विज हो जाता है। वह ज्ञान एवं विज्ञान से समन्वित होकर संस्कारों वाला वेदों का पारगामी होता है ॥५१॥ वैश्य इन कर्मों के फलों से अपने कर्म द्वारा धर्मात्मा क्षत्रिय हो जाता है और हे देवि ! न्यून जाति और कुल में भी उत्पन्न होकर समुच्च वर्ण वाला हो जाया करता है ॥५२॥ उसी तरह से शूद्र भी आगम से सम्पन्न होकर संस्कारों वाला द्विज हो जाता है। ब्राह्मण भी यदि असत् आचरण वाला है तथा सब सङ्करों का भोजन करने वाला होता है तो वह ब्राह्मणत्व का त्याग करके उसी प्रकार का शूद्र हो जाया करता है। हे देवि ! ब्रह्माजी ने स्वयं ऐसा बतलाया है कि जो पवित्र कर्मों के द्वारा विशुद्ध आत्मा वाला और अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला शूद्र भी हो तो उसकी भी सेवा द्विज की ही भाँति करनी चाहिए। स्वभाव और कर्म से जहाँ पर शूद्र अधिष्ठित होता है वह द्विजातियों से भी विशुद्ध होता है ऐसा ही समझना चाहिए—मेरी ऐसी ही बुद्धि है। जन्म से द्विजाति होते हैं किन्तु वास्तविक रूप से इस द्विजत्व के कारण केवल योनि-संस्कार-श्रुति और सन्तति नहीं होते हैं ॥५३-५६॥

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति ।
ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ।
एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९
स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ।
ब्राह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरित पादवत् ॥६०

यत्तत्र बीज पतति सा कृषि. प्रेत्य भाविनी ।
सतुष्टेन सदा भाव्य सत्पथालम्बिना सदा ॥६१
ब्राह्म हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्य बुभूषता ।
सहिताध्यायिना भाव्य गृहे वै गृहमेधिना ॥६२
नित्य स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना ।
एवभूतो हि यो विप्रः सतत सत्पथे स्थित. ॥६३
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
ब्राह्मण्य देवि सप्राप्य रक्षितव्य यतात्मना ॥६४
योनिप्रतिग्रहादान. कर्मभिश्च शुचिस्मिते ।
एतत्ते गुह्यमाख्यात यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥६५

इस महत्त्व पूर्ण द्विजत्व का कारण एव भाव चरित्र ही होता है। इस लोक मे सब वृत्त (सच्चरित्र) से ब्राह्मण हो जाया करते है ॥५७॥ यदि कोई शूद्र भी है और चरित्र मे स्थित रहता है तो निश्चित रूप से वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाया करता है। हे सुश्रोणि ! सर्वत्र ब्रह्म के स्वभाव वाला मेरे मन मे समान होता है ॥५८॥ जहाँ पर अर्थात् जिस व्यक्ति के अन्त.करण मे निर्गुण और निर्मल ब्रह्म की स्थिति होती है वही वस्तुतः द्विज होता है। हे देवि ! जो ये सब विमल हैं वे सब स्थान और भाव के निदर्शक हैं ॥५९॥ वरदान प्रदान करने वाले ब्रह्माजी ने प्रजाओं का सृजन करते हुए स्वय अपने मुख से इनको बतलाया है। ब्रह्म का महान् क्षेत्र लोक मे पाद की भाँति चरण किया करता है ॥६०॥ जो बीज जहाँ पर गिरता है मरकर वह होने वाली कृषि है। अतएव सबका निष्कर्ष (निचोड़) यही है कि सदा सत्यमार्ग के अवलम्बन करने वाला होता हुआ सन्तुष्ट रहना चाहिए ॥६१॥ भविष्य मे कुछ प्राप्ति करने के लिये ब्राह्म मार्ग का आक्रमण करके ही रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्मज्ञान का पथ ही वास्तविक श्रेय सम्पादन करने वाला होता है। जो गृहस्थाश्रमी है उस गृह मे सहिता का अध्ययन शील रहना चाहिए ॥६२॥ नित्य ही स्वाध्याय (वेदाध्ययन) से युक्त होना चाहिए तथा अध्ययन

जीवी न होवे। इस प्रकार से रहन-सहन रखने वाला जो विप्र होता है तथा निरन्तर सन्मार्ग मे स्थित होता है। आहित अग्नि वाला अध्ययन शील पुरुष ब्रह्म के ही स्वरूप वाला होता है। हे देवि! ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सयत आत्मा वाले के द्वारा उस ब्राह्मण्य की पूर्ण रूप से रक्षा करनी चाहिए॥६३-६४॥ हे शुचिस्मित रखने वाली! योनि प्रति ग्रहादान कर्मों से जो होता है वह सब परम गोपनीय बात मैंने तुमको बतला दी है जिस तरह से एक शूद्र भी द्विज हो जाया करता है। तथा ब्राह्मण भी अपने धर्म कर्म से च्युत होकर जिस रीति से शूद्रत्व को प्राप्त कर लिया करता है॥६५॥

—:*:—

मनुष्यो के उत्तम गति प्राप्ति का वर्णन

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत।
धर्माधर्मे नृणा देव ब्रूहि मे सशय विभो॥१
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहिनः सदा।
बध्यन्ते बन्धनै कैर्वा मुच्यन्ते वा कथ वद॥२
केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा।
समाचारैर्गुणै र्यैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवा॥३
देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा।
सर्वप्राणहित. प्रश्न. श्रूयता बुद्धिवर्धन॥४
सत्यधर्मरता शान्ता. सर्वलिङ्गविवर्जिताः।
नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसशया.॥५
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञा. सर्वज्ञाः सवदर्शिनः।
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषा. कर्मबन्धनै.॥६
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन।
ये न मज्जन्ति कस्मिश्चित्ते न बध्नन्ति कर्मभिः॥७

जगदम्बा उमा देवी ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त भूतो के स्वामी हैं और सभी सुरो और असुरो के द्वारा वन्द्यमान हैं तथा सभी आपको नमस्कार किया करते है। हे विभो ! हे देवेश्वर ! अब आप कृपा करके मुझे मनुष्यो के धर्मों तथा अधर्मों को बतलाइये। मेरे हृदय मे बडा भारी इस विषय मे संशय विद्यमान है ॥१॥ इस देह धारी मनुष्य का मन वाणी और कर्म के द्वारा तीन प्रकार के किन किन बन्धनो से ये बद्ध हुआ करते है और किन कर्मों से मुक्त हो जाया करते है–यही मुझे आप स्पष्ट रूप से बतला दीजिए ॥२॥ हे देवेश्वर ! किस प्रकार के शील स्वभाव से अथवा कैसे कर्म से एव किस समाचरणो से अथवा गुणो से मनुष्य यहाँ से स्वर्ग लोक को गमन किया करते हैं ? ॥३॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—हे देवि ! हे उमे ! आप तो स्वय धर्म के तत्त्वो की जानने वाली हैं और सदा एव नित्य ही धर्म मे रत रहने वाली हैं आपका यह प्रश्न तो सभी प्राणियो के हित करने वाला भी है ॥४॥ जो सत्य धर्म मे रति रखने वाले हैं–परम शान्त हैं तथा समस्त संशयो को छिन्न कर देने वाले हैं वे कभी भी अधर्म और धर्म से बद्ध नही हुआ करते हैं। बन्धनो से विमुक्त रहने के लिये सत्य धर्म मे रति-संशयो का छेदन और परमाधिक शान्ति ये ही तीन प्रमुख कारण होते हैं ॥५॥ महा प्रलय और उत्पत्ति के तत्त्वो का ज्ञाता सभी कुछ के जानने एव समझने वाले-सर्व दर्शी-सांसारिक राग से रहित पुरुष कर्मों के बन्धनो से विमुक्त हो जाया करते हैं ॥६॥ जो प्राणी कर्मों-मन और वचनों से किसी को भी हिंसित नही किया करते हैं अर्थात् पीड़ा नही दिया करते हैं और जो किसी मे भी सज्जित नही होते हैं अर्थात् जिनके चित्त मे किसी भी सांसारिक भावनाओ मे मग्नता नही होती है वे कर्मों से बद्ध नही हुआ करते हैं ॥७॥

प्राणातिपाताद्विरता शीलवन्तो दयान्विता ।
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनं. ॥८
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ।
त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिन. ॥९

परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः ।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१०

मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्य दुहितृवच्च ये ।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११

स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ।
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२

स्तैन्यान्निवृत्ताः सतत सतुष्टाः स्वधनेन च ।
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१३

परदारेषु ये नित्य चारित्रावृतलोचनाः ।
जितेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१४

जो प्राणो के अतिपात से भी विरत होते हैं, शील वाले और दया से युक्त हुआ करते हैं। जो शत्रु तथा मित्र दोनो को समान भाव से देखते हैं अर्थात् जिनका न कोई शत्रु होता है और न कोई मित्र ही होता है–जो दमन शील होते हैं वे कर्मों के बन्धनो से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥८॥ जो समस्त भूतो पर दया रखने वाले हैं–विश्वास करने के योग्य है तथा सब जन्तुओ पर हिंसा का समाचरण करना जिन्होने त्याग दिया है वे मनुष्य स्वर्ग मे गमन करने वाले होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य पराये धन मे ममता बिल्कुल भी नही रखते हैं और नित्य ही पराई स्त्रियो से बहुत दूर रहा करता है और न्यायोचित मार्ग के द्वारा धर्म पूर्वक अर्थ के भोग करने वाले होते है वे मनुष्य स्वर्ग लोक में जाया करते है ॥१०॥ जो मानव सर्वदा पराई स्त्रियो के विषय मे माता के समान–भगिनी के तुल्य और पुत्री के सदृश मानकर बरताव किया करते है वे ही मनुष्य स्वर्ग मे जाने के अधिकारी होते है ॥११॥ जो मनुष्य अपनी ही भार्या में रति रखने वाले तथा उनका भी गमन केवल ऋतु काल में ही किया करते हैं और ग्राम्य सुखो के उपभोगो से रहित होते है वे ही लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥१२॥ जो निरन्तर स्तैन्य वृत्ति अर्थात् चोरी के कर्म से निवृत्त होते हैं और जितना भी दैव वश अपना धन प्राप्त

होता है उसी मे सन्तोप करके रहा करते हैं तथा जैसा भी अपना भाग्य मे बदा है उसी से उपजीवित रहा करते हैं वे ही मानव स्वर्ग लोक के निवासी हुआ करते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य पराई दारा (स्त्रियो) मे नित्य ही चरित्र के द्वारा समावृत लोचनो वाले होते हैं अर्थात् अपने सच्चरित्र के बल से नेत्रो को हटाये रखते हैं और अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करके जितेन्द्रिय रहते हैं जो शील (शान्त स्वभाव) मे सदा तत्पर रहते हैं वे मनुष्य स्वर्ग मे गमन किया करते हैं ॥१४॥

एप देवकृतो मार्गः सवितव्यः सदा नरैः ।
अकपायकृतश्चैव मार्गः सेव्य. सदाबुधै. ॥१५
अतृषापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ।
दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥
स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥१६
वाचा तु वध्यते येन मुच्यते ह्यथवा पुनः ।
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥१७
आत्महेतोः परार्थे वा अधर्माश्रितमेव च ।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१८
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकरात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नरा. स्वर्गगामिन. ॥१९
श्लक्ष्णा वाणी स्वच्छवर्णा मधुरा पापवर्जिताम् ।
स्वगतेनाभिभाषन्ते ते नरा. स्वर्गगामिनः ॥२०
परुष ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१

यह मार्ग देव के द्वारा बनाया हुआ है अतएव इसका ही सेवन मनुष्यो को सर्वदा करना चाहिए । जो कषाय से रहित अर्थात् दोषो से वर्जित है वही मार्ग बुध पुरुषों को सर्वदा सेवन करना चाहिए ॥१५॥ जो अतृषा तथा अपकृत मार्ग है वही बुध जनों के द्वारा सेवन करने के योग्य होता है । जो दान कर्म और तप से युक्त है और जो शील-शौच एवं दया के स्वरूप वाला है उ ी मार्ग को स्वर्ग मार्ग की इच्छा ...

वाले लोकों के द्वारा सेवन करना चाहिए। इससे भिन्न असत् पथ का कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए ॥१६॥ उमा देवी ने कहा—हे भूतों के स्वामिन् ! हे अनघ ! जिस वचन से मनुष्य बद्ध हो जाता है अथवा जिस वचन से फिर छुटकारा पा जाता है अब आप कृपया मुझे उन्हीं कर्मों के विषय में हे देवेश्वर ! मुझे बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा—असत्य भाषण बहुत बड़ा वाणी का दोष है। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये अथवा दूसरों के स्वार्थ के लिये अधर्म का आश्रय ग्रहण करके कभी मिथ्या नहीं बोलते हैं वे ही मनुष्य वाचिक दोष से रहित होते हुए स्वर्ग गामी होते हैं ॥१८॥ अपनी वृत्ति (जीविका) के लिये अथवा धर्म के कारण से तथा काम कार से कभी भी झूठ नहीं बोलते हैं। वे ही मनुष्य स्वर्ग में गमन करने वाले होते हैं ॥१९॥ जो श्लक्ष्ण-स्वच्छ वर्णों से युक्त-मधुर और पापों से वर्जित स्वागत पूर्वक वाणी का अभिभाषण किया करते हैं। वे मनुष्य स्वर्ग गामी होते हैं ॥२०॥ जो मनुष्य कभी भूलकर भी कठोर वचन अपने मुँह से नहीं बोला करते हैं और जो दूसरे सुनने वालों के कानों में कटु (कड़ुवे) लगें एवं निष्ठुरता से भरे हुए हों ऐसे वचन कभी नहीं कहते हैं और पैशुन्य (चुगली-बुराई-निन्दा) में रति नहीं रखने वाले हैं वे ही महान् सन्त महा पुरुष स्वर्ग में गमन किया करते हैं ॥२१॥

पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं तथा।
परपीडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२
ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम्।
शान्तिं विन्दन्ति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः।
शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः ॥२६

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा ।
तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक् ॥२७

वाणी के द्वारा जो कुछ किया जाता है इसका बड़ा महत्त्व होता है अतएव बहुत समझ बूझकर और तोलकर ही मुख से समुचित वचन निकालने चाहिए। इसीलिये महा पुरुष मौन रखते हैं या मित भाषण किया करते हैं। अधिक प्रलाप से शक्ति का भी निरर्थक ह्रास होता है। जो मनुष्य पिशुनता का भाषण नहीं करते हैं—मित्रों से जो भेद नहीं करते हैं और जो दूसरों को कभी भूलकर भी पीड़ा नहीं दिया करते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग वासी हुआ करते हैं ॥२२॥ जो मानव कठोर वचन का त्याग कर देते हैं और दूसरों के साथ द्रोह नहीं किया करते हैं। जो समस्त प्राणियों को अपने ही समान समझते हैं और दमन शील होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग लोक को गमन करते हैं ॥२३॥ जो लोग शठ लोगों जैसा या शठों के साथ प्रलाप करने से विरत होते हैं तथा जो धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं करते हैं और नित्य ही सौम्य सलाप करने वाले हैं वे ही नर स्वर्ग गामी होते हैं ॥२४॥ जो कोप से भी हृदय को विदारण करने वाली वाणी का व्याहरण नहीं करते हैं अर्थात् किसी के दिल को विदीर्ण करने वाले वचन नहीं बोलते हैं और जो क्रुद्ध होकर भी शान्ति को प्राप्त करते हैं वे ही मानव स्वर्ग में जाया करते हैं। हे देवि ! यह ही वाणी के द्वारा किये जाने वाला धर्म है जिसका सेवन मनुष्यों को नित्य ही करना आवश्यक है। बुध पुरुषों के द्वारा शुभ और सत्य गुणों से नित्य ही मृषा का परिवर्जन कर देना चाहिए ॥२५-२६॥ उमा देवी ने कहा—हे महाभाग ! हे देवों के भी देव देवेश्वर ! आप तो पिनाक धनुष के धारण करने वाले हैं। अब आप मुझे यह बतलाइये कि पुरुष सदा मन के द्वारा किस कर्म से बद्ध हुआ करते हैं ? ॥२७॥

मानसेनेह धर्मेण सयुक्ताः पुरुषाः सदा ।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥२८
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः ।
नरो बध्येत येनेह शृणु वा त गभानने ॥२९

अरण्ये विजने न्यस्त परस्व दृश्यते सदा ।
मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३०
तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिन. ॥३१
शत्रु मित्र च ये नित्य तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्र्य सगम्य ते नराः स्वर्गगामिन. ॥३२
श्रुतवन्तो दयावन्त शुचयः सत्यसगरा. ।
स्वर्थै. परिसतुष्टास्ते नरा· स्वर्गगामिन· ॥३३
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरता सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नरा स्वर्गगामिन ॥३४
ज्ञानवन्तः क्रियावन्त क्षमावन्त सुहृत्प्रिया ।
धर्माधर्मविदो नित्य ते नरा. स्वर्गगामिन ॥३५

महेश्वर भगवान् ने कहा—हे कल्याणी ! इस लोक मे मानस धर्म से सयुक्त पुरुष सदा ही स्वर्ग को जाया करते हैं । मैं उस मानस धर्म को बतलाता हूँ उसका मुझसे श्रवण करो ॥२८॥ हे शुभ आनन वाली ! दुष्प्रणीत मन से दुष्प्रणीत अन्तरावृत्ति वाला पुरुष जिससे बद्ध हो जाता है । उसका तुम अब श्रवण करो ॥२९॥ वियावान मे नितान्त एकान्त स्थल मे रक्खा हुआ पराया धन जब भी कभी दिखलाई देता है जो जो मनुष्य उसकी ओर अपना मन भी नही चलाते है वे ही मनुष्य स्वर्ग मे गमन करने के अधिकारी होते हैं ॥३०॥ उसी भाँति जो पराई दाराओं को एकान्त मे काम से आविष्ट होकर मन से भी हिंसित नही किया करते हैं अर्थात् अपने मन मे भी उनसे भोग करने की इच्छा नही करते हैं वे ही नर स्वर्ग गामी होते हैं ॥३१॥ जो नर शत्रु और मित्र को भी तुल्य रूप से नित्य देखा करते हैं या व्यवहार किया करते हैं और मन मे भी दुर्भाव नही रखते हैं और समागम होने पर मैत्री भावना रखते हैं वे ही मानव स्वर्ग में जाने के योग्य होते हैं ॥३२॥ जो श्रुत वाले-दया से युक्त-शुचि-सत्यसगर तथा अपने पास प्राप्त होने वाले धन से ही सन्तुष्ट रहा करते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग मे गमन किया करते हैं ॥३३॥ जो वैर

भाव से रहित-विना आयास वाने-सदा मैत्री भाव से चित्त मे रति रखने वाले एव सब प्राणियो मे दया रखने वाले होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग गामी हुआ करते हैं। जो ज्ञान वाले-क्रिया वाले-क्षमा से युक्त-सुहृदो के प्यारे और धर्म क्या है तथा अधर्म क्या है—इसको नित्य जानने वाले हैं वे मानव स्वर्ग मे गमन करते हैं ॥३४-३५॥

शुभानामशुभाना च कर्मणा फलसचये ।
निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नरा स्वर्गगामिनः ॥३६
पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपराः सदा ।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिन ॥३७
शुभं कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।
स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८
महान्मे सशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।
तस्मात्त्व निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९
केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।
तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानव. ।
विपाक कर्मणा देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥४१
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे ।
अकुलीनाः कुलीनाश्च सभवन्ति तथा परे ॥४२

हे देवि ! जो शुभ और अशुभ कर्मों के फल के सचय में आकाक्षा रहित होते हैं वे ही नर स्वर्ग वासी होते हैं ॥३६॥ हे देवि ! पापो से उपेत जनो को जो वर्जित कर दिया करते हैं और सदा द्विजो की सेवा मे परायण होते हैं तथा समुत्थान के अनुप्राप्त होते हैं वे मनुष्य स्वर्ग-गामी हुआ करते हैं ॥३७॥ हे देवि ! शुभ कर्मों के फलो से मैंने इनका वर्णन कर दिया है जो स्वर्ग के मार्ग मे जाने वाले हैं। अब फिर तुम क्या श्रवण करना चाहती हो ? ॥३८॥ उमा देवी ने कहा—हे महेश्वर ! इन मनुष्यों के विषय मे एक महान् सशय विद्यमान है। अतएव आप बहुत ही अच्छी तरह से आज मेरे सामने इस विषय मे व्याख्या करने के

योग्य होते हैं ॥३९॥ हे प्रभो ! कौन सा वह कर्म है जिससे मनुष्य सुदीर्घ आयु को प्राप्त किया करता है ? हे देवेश्वर ! वह तप भी कौन-सा है जिससे मानव महान् आयु का लाभ किया-करता है ? ॥४०॥ किस कर्म से मनुष्य क्षीण आयु वाला हो जाता है ? इस भूमण्डल में हे अनिन्दित ! मनुष्यों के कर्मों के विपाक आप बतलाने के योग्य हैं ॥४१॥ कुछ लोग महान् भाग्य वाले होते हैं तथा दूसरे इस लोक में बहुत ही मन्द भाग्य वाले हुआ करते हैं और कुछ अकुलीन तो कतिपय लोग कुलीन उत्पन्न हुआ करते हैं ॥४२॥

दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव ।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥४३
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः ।
महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥४४
अल्पवाचास्तथा केचिन्महावाचास्तथा परे ।
दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हसि ॥४५
हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् ।
मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्व फलमश्नुते ॥४६
प्राणातिपाती योगीन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा ।
नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥४७
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः ।
अपि कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥४८
एवंभूतो नरो देवि निरय प्रतिपद्यते ।
विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९

इस भूमि में कुछ लोग देखने में बहुत ही बुरे प्रतीत वे काष्ठमय ही होवें और कुछ ऐसे भी होते हैं जो देखन में लगने हैं और दर्शन मात्र से ही उनके दर्शनों को हर्ष ही ज प्यारे हैं ॥४३॥ कुछ मनुष्य बड़े ही दुष्ट बुद्धि वाले होते हैं और कुछ पण्डित और सद्-असत् के विवेक रखने वाले दिखलाई दिया करते हैं। कतिपय ऐसे भी लोग हैं जो महान् प्राज्ञ और ज्ञान-विज्ञान की भावना

रक्खा करते हैं ॥४४॥ कुछ मनुष्य बहुत ही कम बोलते ही रहा करते हैं। हे देव ! यह क्या कारण है ? इस विषय मे आप कृपा कर व्याख्या करने के लिये परम योग्य हैं ॥४५॥ भगवान् शिव ने कहा—बहुत ही खेद का विषय है। हे देवि ! मैं आपके समक्ष मे कर्मों के फल का उदय जैसे हुआ करता है उसे बतलाऊंगा जिससे इस मनुष्य लोक मे सभी मनुष्य अपने कर्म-फल को भोगा करते हैं ॥४६॥ प्राणों का अति पातन करने वाला, योगीन्द्र, हाथ मे दण्ड लेकर नित्य ही सदा मनुष्य उद्यत शस्त्र वाला होकर भूतगणों का हनन किया करता है ॥४७॥ दया से रहित और समस्त प्राणियों को नित्य ही उद्वेग करने वाला-कीट और पतङ्गों को भी रक्षा न देने वाला बहुत निघृंणित जो इस प्रकार का मनुष्य है वह हे देवि ! नरक मे गमन किया करता है। इन उपर्युक्त दुर्गुणों से जो रहित होता है वह धर्मात्मा होता है और सुन्दर रूप वाला होकर ही उत्पन्न हुआ करता है ॥४८-४९॥

निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः ।
यातना निरये रौद्रा सकृच्छ्रा लभते नरः ॥५०
य कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् ।
मनुष्य लभते वाऽपि हीनायुस्तत्र जायते ॥५१
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः ।
अहित सर्वभूताना हीनायुरुपजायते ॥५२
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः ।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन ॥५३
न घातयति नो हन्ति घ्नन्त नैवानुमोदते ।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४
ईदृशः पुरुषो नित्य देवि देवत्वमश्नुते ।
उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युत. ॥५५
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते ।
एष दीर्घायुषा मार्गः सुवृत्ताना सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६

निष्कर्षार्थ यही है कि जो इस लोक मे हिंसा करने वाला मनुष्य होता है वह नरक मे गमन निश्चित रूप से किया करता है और जो किसी भी प्राणी की कायिक एव मानसिक हिंसा नही करता है वही स्वर्गगामी होता है। हिंसक प्राणी नरक मे भी महान् रौद्र और कृच्छ्र यातना भोगा करता है ॥५०॥ जो कोई भी किसी प्रकार से चिरकाल तक नारकीय यातनाएँ भोग कर उससे उत्तीर्ण होता है तो फिर वह मनुष्य योनि को प्राप्त करता है तो उसमें भी हीन आयु वाला हो जाया करता है ॥५१॥ हे देवि ! पाप पूर्ण कर्मों से सयुत-हिंसा आदि से सबका अहित करने वाला होता है इसीलिये वह हीन आयु वाला हो जाया करता है और बहुत कम दिन तक ही जीवित रहता है ॥५२॥ हे देवि ! परम शुभ कर्म के द्वारा प्राणियों के घात से रहित होने वाला—शस्त्रो को एक ओर डाल देने वाला, दण्ड रहित मनुष्य कभी भी हिंसा नहीं किया करता है। तात्पर्य यह है कि अहिंसक पुरुष को कभी भी हाथ में शस्त्र और दण्ड नही रखना चाहिए तथा सर्वदा अशुभो का त्याग कर शुभ कर्म ही करने चाहिए ॥५३॥ मनुष्य का कर्त्तव्य यह है कि किसी पर कभी भी भूलकर भी आघात नही करे और न किसी भी प्राणी का हनन करे और यदि कोई किसी पर आघात करता हो या हनन कर रहा हो तो उसके कर्म का अनुमोदन नहीं करना चाहिए। सब प्राणियो पर स्नेह से युक्त रहता है जैसा अपनी आत्मा और शरीर होता है वैसा ही दूसरो का भी समझना चाहिए ॥५४॥ हे देवि ! इस प्रकार से रहने वाला जो नित्य ही उपर्युक्त सदाचरण से रहता है वह देवत्व को प्राप्त कर लिया करता है और वह आनन्द से युक्त होकर सर्वदा उपपन्न सुखों के उपभोगो का लाभ प्राप्त करता है ॥५५॥ इसके पश्चात् यदि किसी समय में वह इस मनुष्य लोक मे समुत्पन्न होता है तो यही दीर्घ आयु वालों का सदाचारियों का और सुन्दर शुभ कर्म करने वालो का मार्ग है। ब्रह्माजी ने प्राणियों की हिंसा के विमोक्ष से ही यह सुन्दर शुभ और मोक्ष का मार्ग बतलाया था ॥५६॥

देवलोकप्राप्तिकारणकथन

किंशील: किंसमाचार: पुरुष: कैश्च कर्मभि: ।
स्वर्गं समभिपद्येत सम्प्रदानेन केन वा ।।१
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु ।
भक्षभोज्यान्नपानाना वाससा च महामति: ।।२
प्रतिश्रयान्सभा: कुर्यात्प्रपा: पुष्करिणीस्तथा ।
नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयत: शुचि: ।।३
आसन शयन यान गृह रत्न धन तथा ।
सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यथ योषित ।।४
सुप्रशान्तमना नित्य य: प्रयच्छति मानव. ।
एवभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ।।५
तत्रोष्य सुचिरं काल भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ।।६
तस्माच्च्युतो महेशानि मानुषेपूपजायते।
महाभागकुले देवि धनधान्यसमाचिते ।।७

जगदम्बा उमादेवी ने कहा—हे भगवन् ! अब आप यह बतलाइये कि किस शील-स्वभाव वाला पुरुष किस आचरण से युक्त मानव, किन कर्मों से अथवा किसके दान करने से स्वर्ग को प्राप्त किया करता है ? ।।१।। महेश्वर प्रभु ने कहा—भक्ष्य भोज्य अन्न और पानो वस्त्रों का दीन-आर्त्त और कृपण आदि के लिये दान करने वाला तथा सर्वदा ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला महान् बुद्धिमान् पुरुष देवलोक में समुत्पन्न हुआ करता है ।।२।। प्रतिश्रय सभा की रचना करावे अर्थात् धर्मशाला बनवावे—प्याऊ तथा पुष्करिणी का निर्माण जो कराता है। जो प्रयत एवं शुचिता धारण कर नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों को जो किया करता है, जो आसन, शय्या, यान, गृह, रत्न, धन सभी सस्य-क्षेत्र-योषित् का परम प्रशान्त मन वाला होकर दान में दिया करता है—इस प्रकार का

मनुष्य हे देवि ! देवलोक में जाकर समुत्पन्न हुआ करता है ।।३-५।। वहाँ स्वर्ग मे निवास करके बहुत समय तक अत्युत्तम सुखोपभोगो को भोग कर तथा अप्सराओ के साथ नन्दन आदि वनो मे प्रसन्न होते हुए रमण करता है । हे महेशानि ! उससे च्युत होकर वह फिर मनुष्यो मे जन्म ग्रहण करता है । हे देवि ! यहाँ पर भी धन धान्य से संयुत महान् भाग वालो के कुल मे उत्पन्न होता है ।।६-७।।

तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदाऽन्वितः ।
महाकार्यो महाभोगो धनी भवति मानवः ।।८
एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः ।
ब्रह्मण वं पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ।।९
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः ।
येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ।।१०
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि ।
याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमान्विताः ।।११
न धनानि न वासासि न भोगान्न च काञ्चनम् ।
न गाश्च नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ।।१२
अप्रलुब्धाश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिता. ।
एवभूता नरा देवि निरय यान्त्यबुद्धय. ।।१३
ते वै मनुष्यता यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् ।
धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ।।१४

वहाँ पर उस कुल मे भी समस्त कामनाओ के गुणो से समन्वित होकर आनन्द से युक्त, महान् कार्यो वाला, महान् भोगो वाला और धनवान् होता है ।।८।। हे देवि ! ये प्राणी दानशाली महान् भाग वाले होते हैं। ब्रह्माजी ने पहिले ही इनको सबके प्रिय दर्शन वाले बता दिया है ।।९।। दूसरे लोग हे देवि ! प्रदान करने मे कृपण द्विज होते हैं । ऐसे भी बुद्धि हीन मानव होते हैं कि वे सब कुछ विद्यमान रहते हुए भी अन्न का दान नही किया करते है ।।१०।। दीन, अन्धे, कृपण, भिक्षुक और भी देख कर जिह्वा के लोभ से युक्त होकर याचना करते

हुए लौट जाया करते हैं और धन-वस्त्र-भोग्यवस्तु-सुवर्ण-गौ अन्न की विकृति इनमें से कभी कुछ भी नहीं किया करते हैं ।।११-१२।। जो अप्रलुब्ध-लोभी-नास्तिक और दान से वर्जित होते हैं हे देवि ! इस प्रकार के बुद्धि से रहित नर नरक को गमन किया करते हैं ।।१३।। वे कभी भी जब काल के परिवर्तित होने पर मनुष्यता को प्राप्त करते हैं तो अल्प बुद्धि वाले वे धनहीन कुल में ही जन्म ग्रहण किया करते हैं ।।१४।।

क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः ।
निराशा सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः ।।१५
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः ।
अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ।।१६
अपरे दम्भिनो नित्य मानिनः परतो रताः ।
आसनार्हस्य ये पीठ न यच्छन्त्यल्पचेतसः ।।१७
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः ।
अर्घार्हांश्च सत्कारैरचयन्ति यथाविधि ।।१८
पाद्यमाचमनीय वा प्रयच्छन्त्यभिवुद्धयः ।
शुभ चाभिमत प्रेम्णा गुरु नाभिवदन्ति ये ।।१९
अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन सममास्थिताः ।
समान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च ।।२०
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ।
ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च ।।२१

ऐसे मनुष्य क्षुधा-पिपासा से दुःखित हुए सभी लोगों के द्वारा समाज मे बहिष्कृत होकर निराश सभी प्रकार के भोगों से निराश अधर्म से पूर्ण जीविका करते हुए जीवन यापन किया करते हैं ।।१५।। हे देवि ! बहुत ही कम भोगों के प्राप्त होने वाले कुल मे जन्मे हुए और अत्यन्त अल्प भोगों मे रत मनुष्य इस कर्म से धन रहित ही मनुष्य होते हैं ।।१६।। दूसरे दम्भ युत, नित्य ही बड़े भारी मानी-पराये धनजनों मे रति रखने वाले मनुष्य जो होते हैं वे अल्प चित्त वाले आसन के योग्य

पीठ को कभी भी नही गमन करते है ॥१७॥ योग्य मार्ग के पथ को जो अल्प बुद्धि वाले नहीं दिया करते है और पूजा के योग्य पुरुषो का सत्कार हीनता के कारणो से विधि पूर्वक अभ्यर्चन नही किया करते है ॥१८॥ अभिमान से भरी हुई बुद्धि वाले महापुरुषो के लिये पाद्य और आचमन भी नही दिया करते है तथा परम शुभ एव अभिमत गुरुदेव को भी प्रणाम जो लोग नही करते हैं ॥१९॥ जो लोग अभिमान से बढे हुए लोभ के साथ आश्रित है और सम्मान करने के योग्य वृद्धो का भी अपमान किया करते हैं ॥२०॥ हे देवि ! इस तरह के जो मनुष्य इस लोक मे होते हैं व सभी नरको में गमन करने वाले ही हुआ करते है । वे नर यदि कभी चिरकाल के पश्चात् उस नरक से उद्धार भी पाते हैं तो नीच कुल मे यहाँ आकर जन्म लिया करते है ॥२१॥

वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ।
श्वपाकपुल्कसादीना कुत्सितानामचेतसाम् ॥२२
कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिन ।
न दम्भी न च मानी यो देवतातिथिपूजक ॥२३
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुर वच ।
सर्वकर्मप्रियकर सर्वभूतप्रिय सदा ॥२४
अद्वेषी सुमुख श्लक्ष्ण स्निग्धवाणीप्रद सदा ।
स्वागतेनैव सर्वेषा भूतानामविहिंसक ॥२५
यथार्थं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठते ।
मार्गार्हाय ददन्मार्ग गुरुमभ्यर्चयन्सदा ॥२६
अतिथिप्रग्रहरस्तथाऽभ्यागतपूजक ।
एवभूतो नरो देवि स्वर्गति प्रतिपद्यते ॥२७
ततो मानुष्यमासाद्यविशिष्टकुलजा भवेत् ।
तत्रासौ विपुलैर्भोगै सवरत्नसमायुत ॥२८

ऐसे नरको से समागत पुरुष बहुत से वर्षों के बाद ही श्वपच और पुल्कस आदि अत्यन्त नीच कुलो मे जो महान् कुत्सित एव चेतनाहीन होते हैं जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥२२॥ गुरु और वृद्धों के उपताप

पहुंचाने वाले कुल मे जन्मते हैं। जो न तो कभी दम्भ ही करता है, न मान ही किया करता है और जो देव तथा अतिथियों का पूजन करता है ॥२३॥ वह लोको का पूज्य नमस्कार करने वाला समुत्पन्न होता है तथा सर्वदा मधुर वचन मुंह से बोला करता है। सभी प्रिय कर्मों के करने वाला और सदा ही समस्त प्राणियो का प्रिय होता है ॥२४॥ द्वेष न करने वाला, सुन्दर मुख से युक्त, श्लक्ष्ण, सदा स्नेह से सनी हुई वाणी बोलने वाला होता है तथा सदा सभी प्राणियो का स्वागत करते हुए अहिंसा (किसी भी प्रकार का कष्ट , न करने वाला होता है ॥२५॥ यथार्थ वास्तविक जो सत्कार है उसी के अनुसार सबका अर्चन करते हुए इस लोक मे अवस्थित रहा करता है। जो मार्ग देने के योग्य हो उसे मार्ग देता हुआ तथा गुरुजनो का अभ्यर्चन करने वाला होता है ॥२६॥ जो कोई भी अतिथि आवे तो उसके स्वागत मे रति रखने वाला और अभ्यागतो का पूजन करने वाला रहता है। हे देवि ! इस तरह से जैसा मैं अभी बता चुका हूँ रहने वाला मनुष्य निश्चित रूप से स्वर्गति को प्राप्त किया करता है ॥२७॥ फिर वह जब कभी भी मनुष्य की योनि प्राप्त करता है तो किसी विशिष्ट ही कुल मे जन्म लेने वाला होता है और उसमे वह बहुत से भोगो से संयुत तथा सभी प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण हुआ करता है ॥२८॥

यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् ।
समतः सर्वभूताना सर्वलोकनमस्कृत ॥२९
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नर सदा ।
एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः ॥३०
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः ।
हस्ताभ्या यदि वा पद्भ्या रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥३१
लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधेत शोभने ।
हिंसार्थं निष्कृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव हि ॥३२
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा ।
एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३

न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नाऽऽयुधेन च ।
उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८
एव शीलसमाचार स्वर्गे समुपजायते ।
तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥३९
स चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येपूपजायते ।
अल्पायासो निरातङ्क स जात. सुखमेधते ॥४०
सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः ।
एप देवि सता मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥४१

दूसरी तरह का मनुष्य वह है जो सब प्राणियो पर दया वाला होकर कृपा की दृष्टि से सभी को देखा करता है । जिसकी सबके साथ मित्रता से परिपूर्ण दृष्टि होती है-पिता के तुल्य-वैर से रहित-नियत इन्द्रियो वाला होता है ॥३६॥ ऐसा मनुष्य प्राणियो को उद्वेग नही देता है और दया से परम परायण रहकर किसी का हनन भी नही करता है । अपने हाथ तथा पैरो से न सता कर सभी जन्तुओ मे परम विश्वास के योग्य होता है ॥३७॥ यह शुभ कर्मों के करने वाला दया मे परायण रज्जु-दण्ड लोष्ट और आयुधो से प्राणियो को उद्वेग नही किया करता है ॥३८॥ इस प्रकार के शील स्वभाव तथा आचरण वाला मनुष्य स्वर्ग मे जाकर समुत्पत्ति प्राप्त किया करता है । वही पर यह देवो के दिव्य भवन में आनन्द के साथ देवताओ की ही तरह स निवास किया करता है ॥३९॥ यदि स्वर्ग वास की अवधि पुण्य फलो के समाप्त होने पर क्षीण हो जाती है तो यह मनुष्य योनि मे उपजात होता है । वह अल्प आयास वाला-आतङ्क से रहित समुत्पन्न होकर सुख प्राप्त किया करता है ॥४०॥ आयास से रहित और उद्वेग से हीन होकर सुखो के भोगने वाला सदा ऐसा मनुष्य रहा करता है । हे देवि ! यही सत्पुरुषों का मार्ग है जहा पर कोई भी बाधा नहीं होती है ॥४१॥

इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदा. ।
ज्ञानविज्ञानसपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदा ॥४२

दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ।
केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत् ।।४३
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथ भवति मानवः ।
एव त्वं संशय छिन्धि सर्वधर्मभृता वर ।।४४
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।
नराः क्लीवाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रू हि तत्र वैं ।।४५
ब्राह्मणान्वेद विदुष. सिद्धान्धर्मविदस्तथा ।
परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशल सदा ।।४६
वर्जयन्तोऽशुभ कर्म सेवमानाः शुभ तथा ।
लभन्ते स्वर्गति नित्यमिह लोके यथासुखम् ।।४७
स चेन्मनुष्यता याति मेधावी तत्र जायते ।
श्रुत यज्ञानुग यस्य कल्याणमुपजायते ।। ८
परदारेपु ये चापि चक्षुर्दु ष्ट प्रयुञ्जते ।
तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ।।४६

उमा देवी ने कहा—ये मनुष्य ऊहापोह मे अर्थात् बुरा-भला विचार करने मे विशारद होते हैं और ज्ञान तथा विज्ञान से सम्पन्न होते हैं। ये प्रज्ञा वाले तथा अर्थ के भी जानने वाले हैं ।।४२।। हे देव ! दूसरे प्रकार के मनुष्य दुष्ट बुद्धि वाले तथा ज्ञान और विज्ञान से रहित होते है। अब आप कृपा कर मुझे यह बता दीजिए कि किस तरह के कर्मों के विपाक से यह मनुष्य प्रज्ञा वाला हुआ करता है ।।४३।। हे विरूपाक्ष ! यह मानव अल्प बुद्धि वाला कैसे हो जाया करता है ? आप तो सभी धर्मों के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ हैं। अब कृपया मेरे इस सशय का छेदन कर दीजिए ।।४४।। हे देव ! दूसरे लोग जाति से ही अन्धे होते हैं और कुछ रोगो से आर्त्त हुआ करते है। कतिपय लोग इस ससार मे क्लीव (नपु सक) दिखलाई दिया करते है इसमे क्या कारण होता है-यह मुझे बतलाइये ।।४५।। महेश्वर प्रभु ने कहा—जो मनुष्य वेदो के विद्वान् ब्राह्मणो से-सिद्धो से, धर्म के ज्ञाताओ से अहर्निश सदा कुशल और अकुशल कर्मों के विषय मे पूछा करते हैं ।।४६।। और बुरे-भले कर्मों का

ज्ञान प्राप्त करके जो अशुभ कर्मों का त्याग कर दिया करते हैं तथा शुभ कर्मों का सेवन किया करते हैं वे ही पुरुष यहा लोक मे नित्य ही सुख पूर्वक स्वर्गति को प्राप्त करते हैं ॥४७॥ यदि वह पुरुष स्वर्गीय पुण्य फलों के भोग की अवधि समाप्त हो जाने पर मनुष्य लोक मे आकर मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करते हैं तो परम मेधावी उत्पन्न होते हैं। जिसका श्रुत यथानुग होता है और कल्याण ही हुआ करता है ॥४८॥ जो लोग पराई स्त्रियो पर दोष युक्त नजर डालते हैं उसी दुष्ट स्वभाव के कारण से वे जाति (जन्म) से ही अन्धे होकर जन्म लिया करते हैं ॥४९॥

मनसाऽपि प्रदुष्टेन नग्ना पश्यन्ति ये स्त्रियम् ।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकारिणः ॥५०
ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः ।
पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥५१
पशूंश्च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः ।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः ॥५२
अवद्य कि तु वै कर्म निरवद्य तथैव च
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥५३
श्रेयास मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् ।
धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४
यदि मानुष्यता देवि कदाचित्सनियच्छति ।
मेधावी धारणायुक्त प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५
एष देवि सता धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः ।
नृणा हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृत. ॥५६

जो दुष्ट मन से भी कभी किसी स्त्री को नग्न देखा करते हैं वे ही मनुष्य यहा पर आकर रोगो से दु खित हुआ करते हैं। ऐसे मनुष्य दुष्कृतो के ही करने वाले होते हैं ॥५०॥ जो मूढ दुष्ट आचरण वाले तथा वियोनि मे मैथुन करने मे रति रखने वाले होते हैं वे पुरुषो मे बहुत ही अधिक दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य क्लीबत्व को प्राप्त ...

पुंस्त्व से हीन होते है ॥५१॥ जो मनुष्य पशुओ का वन्धन किया करते है और जो गुरु की भार्या के साथ गमन करते है तथा जो प्रकीर्ण मैथुन वाले होते हैं वेही मनुष्य यहा पर नपुसक होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं अर्थात् जन्म जात क्लीव होते हैं ॥५२॥ उमा देवी ने कहा—हे देवो मे परम श्रेष्ठ ! क्या कारण है यह मानव श्रेय करता हुआ अवद्य तथा निरवद्य (बुरे-भले) कर्म को प्राप्त किया करता है ? ॥५३॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—जो परम श्रेय सम्पादन करने वाले मार्ग की अभिलाषा रखता हुआ सर्वदा द्विजो से उस विषय का जिज्ञासा किया करता है वह धर्म का सदा अन्वेषण करने वाला-गुणो की हृदय मे आकांक्षा रखने वाला पुरुष स्वर्ग का भोग भोगा करता है ॥५४॥ हे देवि ! किसी समय मे यदि यह ऐसा पुरुष मनुष्यता प्राप्त कर लेता है तो मनुष्य योनि मे भी परम मेधावी-धारणा से समन्वित और प्राज्ञ होकर ही जन्मता है ॥५५॥ हे देवि ! यह ही सत्पुरुषो का धर्म है जो भूति के करने वाला होता है और उसी का गमन करना भी चाहिए । मनुष्यो के हित-सम्पादन करने के लिये ही सदा मैंने इसको बताया है और इस प्रकार से व्याख्या की है ॥५६॥

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥५७
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः ।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥५८
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथा परे ।
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९
आगमालोकधर्माणा मर्यादा. पूर्वनिर्मिताः ।
प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते हृ दृढव्रताः ॥६०
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः ।
अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१
ये वै कालकृतोद्योगात्सम्भवन्तीह मानवाः ।
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२

एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते ।
कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३

उमा देवी ने कहा—दूसरे ऐसे ही मनुष्य भी होते हैं जिनका विज्ञान बहुत ही स्वल्प होता है तथा धर्म के विद्वेषी होते हैं। ऐसे लोग वेदों के पण्डित ब्राह्मणों के समीप मे कभी गमन करने की तथा धर्म विषयक जिज्ञासा करने की इच्छा ही नही किया करते हैं ॥५७॥ कुछ मनुष्य व्रतों वाले तथा श्रद्धा-दमन मे तत्पर होते हैं। तथा कुछ पुरुष व्रतो से रहित-भ्रष्ट नियमो वाले और राक्षसो के ही तुल्य हुआ करते हैं ॥५८॥ अन्य पुरुष ऐसे होते हैं जो नित्य ही यजन करने वाले हैं। कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो मोह रहित होते है। हे भगवन् ! ये विभिन्न प्रकार के शील स्वभाव वाले मनुष्य इस ससार मे किस कर्म विपाक से हुआ करते हैं ? यही मुझे प्राय कृपा करके बतला दीजिए ॥५९॥ महेश्वर प्रभु ने कहा—हे देवि ! आगम और लोकों के धर्म तथा किसकी क्या मर्यादा होनी चाहिए—यह सभी पूर्व मे ही निर्मित कर दी गई हैं। जो उन्ही के अनुसार प्रमाण मानकर अनुवर्तन किया करते हैं वे ही लोग दृढ व्रतो वाले दिखलाई दिया करते हैं ॥६०॥ जो मनुष्य अधर्म को ही धर्म है—ऐसा कहा करते हैं और मोह के वश मे प्राप्त हो गये हैं वे व्रतो से रहित नष्ट मर्यादा वाले साक्षात् ब्रह्म राक्षस ही मनुष्य होते हैं ॥६१॥ जो काल कृत उद्योग से अर्थात् समय की अवधि पूर्ण हो जाने पर मानव जन्म प्राप्त किया करते हैं वे विना होम वाले-वषट् कार से रहित नरो मे महान् अधम ही होते हैं ॥६२॥ हे देवि ! मैंने यह सब आपके समस्त सशयों के छेदन करने के लिये ही मनुष्यों के कुशल-अकुशल वाला धर्मों का सागर व्याख्यात (वर्णित) कर दिया है ॥६३॥

मुनिमहेश्वरसंवादमेंवासुदेवमहिमावर्णन

श्रुत्वैव सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादित ।
हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजा ॥१
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारे समीपत ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजा ॥२
तेऽपि संपूज्य त देव शूलपाणि प्रणम्य च ।
पप्रच्छु संशय चैव लोकाना हितकाम्यया ॥३
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षक्रतुविनाशन ।
पृच्छामस्त्वा जगन्नाथ संशय हृदि संस्थितम् ॥४
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे ।
भ्रमन्ति सुचिर काल पुरुषाश्चाल्पमेधस ॥५
येनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात् ।
ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छाम पर कौतूहल हि न ॥६

श्री व्यास देवजी ने कहा—उस जगदम्बा ने इस प्रकार से अपने स्वामी के वचनों को आदि से श्रवण करके हे द्विजो ! वह बहुत ही हर्षित हुई परम प्रीति युक्त और उस समय मे बहुत ही विस्मित भी हो गयी थीं ॥१॥ हे द्विजगण ! जो भगवान् त्रिपुरारि के समीप मे मुनिवर थे व सभी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से उस गिरि पर चले गये थे ॥२॥ उन्होंने भी उन शूलपाणि प्रभु की भली भाँति पूजा करके तथा प्रणाम करके लोकों की हित कामना से अपने हृदय मे स्थित संशय के विषय में प्रभु महेश्वर से पूछा था ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे त्रिलोचन प्रभो ! आपने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया था आपकी सेवा मे हम सबका प्रणाम समर्पित है । हे जगत् के नाथ ! हम इस समय मे अपने हृदय में स्थित संशय के विषय में उसके छेदन करने के लिये ही आप से कुछ पूछ रहे हैं ॥४॥ यह संसार महान् घोर है—परमाधिक भीषण है और लोमहर्षण अर्थात् रोमाञ्चित कर देने वाला है । इसमे अल्पज्ञ मेधावाले

पुरुष जिनको इसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है बहुत अधिक समय तक चक्कर काटा करते हैं ॥५॥ वह कौन सा उपाय है जिसके द्वारा जन्म-मरण रूपी संसार के महान् दुस्सह बन्धन से मुक्त हो सकते हैं उसी को आप हम लोगों को बतलाइये। आपकी महती दया होगी। हमारे हृदय में इस सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल होता है ॥६॥

कर्मपाशनिबद्धाना नराणा दु खभागिनाम् ।
नान्योपाय प्रपश्यापि वासुदेवात्पर द्विजा ॥७
ये पूजयन्ति त देव शङ्खचक्रगदाधरम् ।
वाङ्मन कर्मभि. सम्यक्ते यान्ति परमा गतिम् ॥८
किं तेषा जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन च ।
येषा न प्रवण चित्त वासुदेवे जगन्मये ॥९
पिनाकिन्भगनेत्रघ्न रावलोनमस्कृत ।
माहात्म्य वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छाम शङ्कर ॥१०
पितामहादपि वर शाश्वत. पुरुषो हरि. ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदित. ॥११
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदन ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेश सर्वदेवतयूथप. ॥१२
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याह च शिरोभव ।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींपि रोमभ्यश्च सुरासुरा ॥१३
ऋषयो देहसभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वता ।
पितामहगृह साक्षात्सर्वदेवगृह च स ॥१४

महेश्वर भगवान् ने कहा—हे द्विजो ! इस संसार में कर्मों का पाश बड़ा बलवान् है उसी से निबद्ध समस्त प्राणी रहा करते हैं अतएव महान् दुःखों के वे भागी नरों के लिये छुटकारा दिलाने वाले भगवान् वासुदेव से परम अन्य कोई भी उपाय मैं नहीं देखता हूँ ॥७॥ जो भगवान् शङ्ख चक्र और गदा को धारण करने वाले उनका अर्चन किया करते हैं और मन वचन तथा कर्म द्वारा भली भांति ध्यान करते हैं वे लोग परम गति को प्राप्त करते हैं ॥८॥ ऐसे जो पुरुष हैं जिनका चित्त

जगन्मय भगवान् वासुदेव मे प्रवण (झुका हुआ) नही होता है उनके एक पशु की भाँति चेष्टा करने वाले जीवन से इस ससार मे क्या लाभ है ? अर्थात् ऐसा जीवित व्यर्थ ही होता है ॥६॥ ऋषियो ने कहा--हे पिनाक के धारण करने वाले ! आपने तो भग के नेत्रों का हनन कर दिया था और हे शङ्कर ! आप सभी लोको के द्वारा वन्द्यमान हैं। हम लोग अब आपके मुखारविन्द से भगवान् वासुदेव के माहात्म्य के श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं ॥१०॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—परमेष्ठी पितामह से भी श्रेष्ठ एव शाश्वत पुरुष श्री हरि भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बूनद की आभा के समान आभा वाले हैं और उगते हुए सूर्य के तुल्य भ्राजमान हैं ॥११॥ दश बाहुओ वाले, महान् तेज से युक्त, देवो के शत्रु असुरो के निहनन करने वाले, श्री वत्स के चिह्न से सयुत *भगवान् हृषीकेश समस्त देवो के वृन्द के स्वामी हैं ॥१२॥ यह ब्रह्माजी* भी उनके ही उदर से समुत्पन्न हुए हैं और हम भी उनके ही शिर से उद्भूत हुए थे। उन्हीं हृषीकेश भगवन् के मस्तक के केशो से समस्त ज्योतिर्गण उत्पन्न हुए हैं तथा रोमो से सब सुर और असुर प्रसूत हुए हैं ॥१३॥ सब ऋषिगण उन्ही के देह से सम्भूत हुए हैं और ये शाश्वत लोक भी उन्ही से समुत्पन्न हुए हैं। वे भगवान् पितामह के गृह हैं और सब देवो के भी गृह हैं ॥१४॥

सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः।
सहर्ता चैव भूताना स्थावरस्य चरस्य च ॥१५
स हि देवदेवः साक्षाद्देवनाथः परतपः।
सर्वज्ञः सर्वसस्रष्टा सर्वग- सर्वतोमुखः ॥१६
न तस्मात्परमं भूत त्रिषु लोकेषु किंचन।
सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुत· ॥१
स सर्वान्पार्थिवान्सख्ये घातयिष्यति मानदः।
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुष्य वपुरास्थितः ॥१
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः।
भुवने देवकार्याणि कर्तु नायकवर्जिताः ॥१६

नायकः सर्वभूताना सर्वभूतनमस्कृत ।
एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०
ब्रह्मभूतस्य सतत ब्रह्मर्षिशरणस्य च ।
ब्रह्मा वसति नाभिस्थ शरीरेऽह च सस्थित ॥२१

वे ही त्रिभुवन के ईश्वर इस समग्र पृथिवी के सृजन करने वाले हैं और स्थावर तथा जङ्गम सम्पूर्ण भूतो के सहार करने वाले भी वे ही हैं ॥१५॥ वही निश्चित रूप से देवो के भी देव हैं—साक्षात् देवो के नाथ हैं, परन्तप सर्वज्ञ, सबके सम्रष्टा सर्व म गमन करने वाले और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ उन हृषीकेश भगवान् से परम भूत तीनो लोकों मे कोई भी नही है । वे सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) महान् भाग से सयुत हैं और गोविन्द इस नाम से विश्रुत हैं ॥१७॥ वे मान के प्रदान करने वाले प्रभु युद्ध म सभी पार्थिवो का हनन कर देंगे । हृषीकेश प्रभु सुरो के कार्यों के पूर्ण करने के लिये ही इस मनुष्य क शरीर मे समास्थित हुए हैं ॥१८॥ भगवान् त्रिविक्रम के बिना किये हुए, नायक से विरहित देवगण देवो के कार्यों को करने मे भुवन में समर्थ नही होते हैं ॥१९॥ इस देवो के नाथ के तथा पर के कार्य के नायक हैं और समस्त भूतो के भी व नायक हैं एव सब प्राणियो के द्वारा वन्दित हैं ॥२०॥ ब्रह्मभूत और निरन्तर ब्रह्मर्षियो के रक्षक के नाभि म स्थित ब्रह्माजी निवास किया करते हैं और मैं भी उनके शरीर म सस्थित रहता हूँ ॥२१॥

सर्वा सुख सस्थिताश्च शरीरे तस्य देवता ।
स देव पुण्डरीकाक्ष श्रीगर्भ श्रीसहोषित ॥२२
शार्ङ्गचक्रायुध खड्गी सर्वनागरिपुध्वज ।
उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च ॥२३
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च ।
आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसपदा ॥२४
आनृशस्येन रूपेण बलेन च समन्वित ।
अस्त्र समुदित सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनै ॥२५

योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामना. ।
वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६
क्षमावाश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मदायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्रानन्दविवर्धनः ॥२७
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रत. ।
श्रुतवानथ सपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८

उन हृषीकेश भगवान् के शरीर सब देवता सुख पूर्वक संस्थित रहा करते हैं। वे देवेश्वर पुण्डरीकाक्ष हैं–श्रीगर्भ हैं–श्री (महालक्ष्मी देवी) के साथ विराज मान हैं ॥२२॥ भगवान् शार्ङ्ग धनुष और सुदर्शन चक्र के आयुधों वाले हैं–खड्ग धारण किये हुए हैं–सब नागों के शत्रु गरुड की ध्वजा से संयुत हैं। भगवान् हृषीकेश में अत्युत्तम शील है शुचिता है दम है आरोह का परिमाण के अनुसार ही वीर्य है तथा सरलता की सम्पदा है एवं अनृशंसता-रूप और बल से युक्त हैं। सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र एवं देखने में अद्भुत शस्त्रों से समुदित हैं ॥२३-२५॥ योग माया से युक्त सहस्र नेत्रों वाले विरूपाक्ष और वे भगवान् महान् मन वाले हैं। वाणी से अपने मित्र जनों की श्लाघा करने वाले हैं तथा ज्ञाति और बन्धुजनों के परम प्रिय हैं ॥२६॥ वे देवेश्वर परम क्षमा वाले तथा अहङ्कार से नहीं बोलने वाले हैं और ब्रह्म के दायक हैं। भगवान् भय से दुःखित पुरुषों के भय को हरण किया करते हैं तथा मित्रों के आनन्द को बढ़ाने वाले हैं ॥२७॥ वे समस्त जीवों शरण्य हैं भगवान् सर्वदा दीनों के परिपालन में रति रखने वाले हैं। वे परम श्रुतवान् सम्पन्न एवं समस्त भूतों के द्वारा नमस्कृत होते हैं ॥२८॥

समाश्रितानामुपकृच्छत्रूणां भयकृत्तथा ।
नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रिय. ॥२९
भवार्थमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसस्कृते ॥३०
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मन. ।
अशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१

अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दित. ।
प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजा. ॥३२
तस्य प्रचेत.प्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजा. ।
प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥३३
दाक्ष.यण्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः ।
मनोश्च वशज इला सुद्यु म्नाश्च भविष्यति ॥३४
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति ।
नहुपो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५

जो भगवान् के समाश्रय ग्रहण कर लेते हैं उन अपने आश्रित भक्त-जनो के उपकार करने वाले है तथा जो भगवान् के शत्रुता का भाव रखते हैं उनको भय देने वाले हैं। वे बहुत बडे नीति के ज्ञाता-नीति से सुसम्पन्न ब्रह्म वादी और जितेन्द्रिय हैं ॥२६॥ देवो के भव के ही लिये परम बुद्धि से युक्त होकर शुभ प्राजापत्य एव धर्म सस्कृत मानव मार्ग मे महात्मा मनु के वश मे भगवान् गोविन्द समुत्पन्न होगे। मनु के पुत्र अशनाम वाले है। इसके पश्चात् अन्तर्धामा होगा ॥३०-३१॥ अन्तर्धामा के पुत्र अनिन्दित प्रजापति हविर्धामा होगा। फिर हे द्विजो ! हविर्धामा का पुत्र प्राचीन बर्हि होगा ॥३२॥ उस प्राचीन बर्हि के प्रचेत प्रमुख दश पुत्र होगे। यहा पर प्राचेतस दक्ष प्रजापति होगा ॥३३॥ दाक्षायण्य तथा आदित्य और फिर आदित्य से मनु होगा। मनु के वश मे उत्पन्न होने वाले इला और सुद्युम्न होगे ॥३४॥ बुध से पुरुरवा भी होगा। उससे आयु होगा। उससे नहुष उत्पन्न होगा और इस का आत्मज ययाति होगा ॥३५॥

यदुस्तस्मान्महासत्त्व. क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति ।
क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६
वृजिनीवतश्च भविता उपङ्गुरपराजितः ।
उपङ्गोर्भविता पुत्र-शूरश्चित्ररथस्तथा ॥३७
स्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति ।
तेषा विख्यातवीर्याणा चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८

यज्विनां च विशुद्धानां वशे ब्राह्मणसत्तमाः ।
स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ॥३९
स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम् ।
वसुदेवमिति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति ।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१
राज्ञो बद्धान्स सर्वान्वै मोक्षयिष्यति यादवः ।
जरासंध तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे ॥४२

उस ययाति से महान् सत्त्व वाला यदु होगा फिर उसका पुत्र क्रोष्टा होगा। इस क्रोष्टा का महान् पुत्र वृजिनीवान् होगा। वृजिनीवान् का का पुत्र अपराजित उषद्गु होगा। उषद्गु का पुत्र शूर तथा चित्ररथ होगा ॥३६-३७॥ उसका अवरज पुत्र शूर नाम धारी होगा। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चरित्र और गुणशाली-परम विशुद्ध-विख्यात वीर्य पराक्रम वाले और यजन कर्त्ताओं के वश में वह शूर क्षत्रियों में श्रेष्ठ-महान् यश वाला और महान् वीर्य वाला था ॥३८-३९॥ वह अपने वंश के विस्तार को करने वाले-मान के प्रदाता 'वसुदेव'-इस नाम से विख्यात आनक दुन्दुभि पुत्र को जन्म ग्रहण करायेगा ॥४०॥ उन वसुदेवजी के चार भुजाओं वाले वासुदेव पुत्र होंगे। यह दाता-ब्राह्मणों के सत्कार करने वाले-ब्रह्मभूत और द्विजों पर प्यार करने वाले होंगे ॥४१॥ वह यादव बद्ध हुए सब नृपों को मुक्त कर देंगे। जो जरासन्ध राजा होगा उसको गिरि की गुफा में निर्जित कर दिया था ॥४२॥

सर्वपार्थिवरत्नाढ्या भविष्यति स वीर्यवान् ।
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः ।
शूरः संहननो भूतो द्वारकाया वसन्प्रभुः ॥४४
पालयिष्यति गां देवो विनिर्जित्य दुराशयान् ।
तं भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हणैर्वरैः ॥४५

अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ।
यो हि मा द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान् ।
दृष्टे तस्मिन्नह दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥४७
पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः ।
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥४८
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ।
यस्तु त मानवो लोके सश्रयिष्यति केशवम् ॥४९

वह सभी पार्थिव रत्नो से आढ्य और वीर्यवान् होंगे । इस पृथिवी में बल वीर्य के द्वारा भी अप्रतिहत होगे ॥४३॥ विक्रम भी बहुत अधिक होगा और सब राजाओ के भी राजा होगे । स हनन भूत शूर प्रभु द्वारकापुरी मे निवास करते हुए दुष्ट आशय वालो को निर्जित करके पृथिवी देवी का परिपालन करेगे । आप लोग उनके पास जाकर योग्य एव श्रेष्ठ ब्राह्मणो के द्वारा शाश्वत ब्रह्माजी की भाँति न्याय पूर्वक अभ्यर्चन करें । जो कोई भी मुझे देखने की इच्छा करे और ब्रह्माजी के दर्शन करने की अभिलाषा रक्खे उसको प्रतापवान् भगवान् वासुदेव का दर्शन करना चाहिए । उनके दर्शन कर लेने पर मेरे दर्शन भी हो गये हैं- ऐसा ही समझ लो । इस विषय मे मेरी कुछ भी विचारणा नाम मात्र को भी नही है ॥४४-४७॥ हे तपोधनो ! जिसके चित्त मे यह है कि भगवान् वासुदेव ही पितामह है उस पर भगवान् पुण्डरीकाक्ष प्रीति से युक्त हो जायगे ॥४८॥ जो मानव इस लोक मे उन भगवान् केशव का समाश्रय ग्रहण करेगा उस पर ब्रह्म पूर्व देवगण प्रसन्न हो जायगा ॥४९॥

तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
धर्माणा देशिकः साक्षाद्भविष्यति स धर्मवान् ॥५०
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः ।
धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नभ्यर्चिते विभो ॥ १
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ।
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटी. ससर्ज च ॥५२

ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने ।
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ॥५३
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवाः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ॥५४
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत् ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्य स देवो द्विजसत्तमाः ॥५५
एव तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः ।
आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥५६

वैकाय भगवान् के समाश्रित पुरुष की कीर्ति-यश और स्वर्ग भी होगा। वह पुरुष धर्मों का साक्षात् देशिक (आचार्य) और धर्म वाला हो जायेगा ॥५०॥ धर्म के वेत्ताओं के द्वारा वह देवेश्वर भगवान् अच्युत सदा नमस्कार करने के योग्य हैं। इन विभु के समर्चित करने पर सदा धर्म ही होता है ॥५१॥ वह देव महान् तेज वाले हैं और पुरुष व्याघ्र उनने प्रजाजनों के हित सम्पादन के करने की इच्छा से धर्म के ही लिये ऋषियों के समुदाय का सृजन किया था ॥५२॥ उस विधाता ने गन्धमादन पर्वत पर उन प्रजाओं का सृजन किया था। वहाँ पर सनत कुमार जिनमें प्रमुख हैं वे तप से समन्वित होते हुए वहाँ पर स्थित हुआ करते हैं ॥५३॥ हे द्विज पुङ्गवो ! इसी कारण से वह वाग्मी और धर्मज्ञ नमस्कार करने के योग्य है वन्दित वह वन्दना करते हैं और मानित वह मान करते हैं ॥५४॥ जो उनका दर्शन किया करते हैं वह दृष्ट होकर अहर्निश उनकी ओर अपनी दृष्टि रखते हैं। जो उनका समाश्रय ग्रहण किया करते हैं उनका वह प्रति संश्रय किया करते हैं। वे स्वयं अर्चित होकर नित्य ही सबका अर्चन किया करते हैं। हे द्विज श्रेष्ठो ! वह देव अपने अर्चकों को समर्चित करने वाले हैं ॥५५॥ इस प्रकार से निर्दोष उन भगवान् विष्णु का यह परम तप है। उन महान् आदि देव का सदा सज्जनों का सा आचरित होता है ॥५६॥

सुवर्णेऽन्नार्पितो नित्य देवैरपि गतागतः ।
असर्वेनानुमन्येन प्रपद्य समनुव्रजा. ॥५७

कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा ।
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५८
एप वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः ।
त दृष्ट्वा सर्वदेवेश दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥५९
महावराहं तं देव सर्वलोकपितामहम् ।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०
तत्र च त्रितय दृष्टं भविष्यति न सशयः ।
समस्ता हि वय देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः ।
हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥६२
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभोः ।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३

वह सनातन प्रभु भुवन मे नित्य ही देवो के द्वारा अभ्यर्चित हुआ करते हैं । अनुरूप अभय के द्वारा अनुव्रत लोग उनकी शरणागति मे प्राप्त होते हैं ॥५७॥ वह सदा द्विजगणो के द्वारा कर्म-वचन और मन से नमस्कार करने के योग्य हैं । यत्नशीलो के द्वारा उपस्थान करके देवकी देवी के पुत्र भगवान् वासुदेव का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥५८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैंने यह मार्ग विदित किया है । उन सब देवो के स्वामी का दर्शन करके समस्त सुरो मे श्रेष्ठ देखे हुए हो जाया करते हैं अर्थात् उन एक के ही दर्शन से सब देवो का दर्शन हो जाता है ॥५९॥ सब लोको के पितामह महावराह उन देव को जो नित्य ही जगत् के स्वामी हैं मैं भी नमस्कार करता हूं ॥६०॥ वहा पर तीनो का दर्शन हो जाया करता है—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है । क्योकि हम लोग सब देवगण उनके ही देह मे वास किया करते हैं ॥६१॥ उन्ही वासुदेव भगवान् के एक बडे भाई हैं जो श्वेत गिरि के समुदाय के प्रभा के समान प्रभा वाले हैं । वह हली और बलराम-इन नामों से विख्यात हैं और धराधर होंगे ॥६२॥ उन प्रभु देव को त्रिशिरा और अनन्त देखा गया है । जिस कश्यप के वीर्य से बली सुपर्ण आत्मज हुआ था ॥६३॥

अन्तं नैवाशकद्द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः ।
स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ॥६४
अन्तर्वसति भोगेन परिरम्भ वसुंधराम् ।
य एष विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः ॥६५
यो रामः स हृषीकेशोऽच्युतः सर्वधराधरः ।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ ।
एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः ॥
तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः ॥६७

उन परमात्मा देव के अन्त को देख नहीं सका था । और वह शेष परम प्रसन्नता से युक्त होकर विचरण किया करते हैं ॥६४॥ वसुंधरा का परि रम्भण करके भोग से अन्दर वास किया करते हैं । जो यह भगवान् विष्णु हैं वही अनन्त वसुधा के धारण करने वाले हैं ॥६५॥ जो राम हैं वही समस्त धरा को धारण करने वाले अचुत हृषीकेश हैं । ये दोनों पुरुष व्याघ्र दिव्य पराक्रम वाले परम दिव्य हैं ॥६६॥ ये दोनों ही दर्शन करने के योग्य-माननीय और सुदर्शन चक्र तथा लाङ्गल के धारण करने वाले हैं । हे तपो धन तपस्वियो ! मैंने अपना अनुग्रह करके ही यह सब वर्णित आप लोगों के समक्ष मे कर दिया है जो परम पुण्यमय है । इसलिये आप लोग यदुवंश मे परम श्रेष्ठ उन भगवान् का प्रयत्न पूर्वक अभ्यर्चन करें ॥६७॥

मुनिव्याससंवाद में विष्णुपूजाकथन

अहो पुण्यस्य माहात्म्यं यत्तुमस्माभिरद्भुतम् ।
हर्षपापहरं पुण्यं धन्यं संसारनाशनम् ॥१

संपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने ।
का गतिं यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रताः ॥२
किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्षं किंवा स्वर्गं महामुने ।
अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ॥३
छेत्तु महंसि सर्वज्ञ संशयं नो हृदि स्थितम् ।
छेत्ता नान्योऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वदृते मुनिसत्तम ॥४
साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्यदुदाहृतम् ।
शृणुध्वमानुपूर्व्येण वैष्णवानां सुखावहम् ॥५
दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै ।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः ॥६
न तेषां दुर्लभः स्वर्गो मोक्षश्च मुनिसत्तमाः ।
लभन्ते वैष्णवाः कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति दुर्लभान् ॥७

मुनिगण ने कहा—अहो ! भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य हमने सुन लिया है जो बहुत ही अद्भुत, समस्त पापों के हरण करने वाला, पुण्यमय, परम धन्य और संसार के आवागमन के महान् बन्धन को नष्ट कर देने वाला है ॥१॥ हे महामुने ! विधिपूर्वक भक्ति की भावना से भगवान् वासुदेव के अर्चन मे निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त किया करते हैं ? ॥२॥ हे महामुने ! क्या वे मानव मोक्ष प्राप्त किया करते हैं अथवा स्वर्ग का लाभ करते हैं या हे मुनिश्रेष्ठ ! क्या वे दोनो ही फल प्राप्त कर लेते हैं ? ॥३॥ हे सर्वज्ञ ! हमारे हृदय मे स्थित इस संशय को आप छिन्न करने की योग्यता रखते हैं । हे मुनिसत्तम ! आपके बिना इस लोक मे अन्य कोई भी संशय का छेदन करने वाला नहीं है ॥४॥ श्रीव्यास देव जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो कुछ भी आपने कहा है यह बहुत ही उत्तम मुक्त का प्रश्न है । अब आप वैष्णवों का अतिशय सुख देने वाला जो है उसको आनुपूर्वी से श्रवण करिए ॥५॥ भगवान् श्रीकृष्ण का केवल दीक्षा से ही नर मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं । हे द्विजो ! उनके विषय मे फिर क्या कहना है जो सर्वदा भक्ति की भावना से भगवान् अच्युत की पूजा किया करते

हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उन भक्तों के लिये नये स्वर्ग का प्राप्त करना दुर्लभ है और न मोक्ष की प्राप्ति ही दुर्लभ होती है। वैष्णव लोग अन्य भी जो कल्पनाऐं दुर्लभ है जिनकी वे इच्छा किया करते हैं उनको प्राप्त कर लेते हैं ॥७॥

रत्नपर्वतमारुह्य नरो रत्न यथाऽऽददेत् ।
स्वेच्छया मुनिशार्दूलास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥८
कल्पवृक्ष समासाद्य फलानि स्वेच्छया यथा ।
गृह्णाति पुरुषो विप्रास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥९
श्रद्धया विधिवत्पूज्य वासुदेव जगद्गुरुम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा प्राप्नुवन्ति नरा. फलम् ॥१०
आराध्य त जगन्नाथ विशुद्धेनान्तरात्मना ।
प्राप्नुवन्ति नराः कामान्सुराणामपि दुर्लभान् ॥११
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
न तेषा दुर्लभ किंचिद्विद्यते भुवनत्रये ॥१२
धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम् ।
सर्वपापहर देव सर्वकामफलप्रदम् ॥१३
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ।
सपूज्य त सुरवर प्राप्नुवन्ति परा गतिम् ॥१४

हे मुनिशार्दूलो ! नर रत्न पर्वत पर समारूढ होकर जिस प्रकार से रत्नो को ग्रहण किया करता है और स्वेच्छा पूर्वक प्राप्त कर लेता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् कृष्ण से मनुष्य मनोरथो को भी स्वेच्छा से प्राप्त कर लेता है ॥८॥ हे विप्रो ! जिस तरह से कल्पवृक्ष के समीप मे पहुँच कर मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार फलो को प्राप्त कर लेता है उसी भाँति भगवान् श्री कृष्ण से मनोरथो की प्राप्ति कर लिया करता है ॥९॥ श्रद्धा से विधि पूर्वक जगत् के गुरु वासुदेव का पूजन करके मनुष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के फलों को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ परम विशुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा उन प्रभु जगन्नाथ की

समाराधना करके मानव देवो को भी दुर्लभ कामनाओ को प्राप्त कर लेते हैं ॥११॥ जो मनुष्य सदा ही भक्ति से वासुदेव नाम वाले अविनाशी भगवान् का अर्चन करते हैं उनको तीनो भुवनो मे कुछ भी दुर्लभ पदार्थ नही है ॥१२॥ वे पुरुष इस लोक मे परम धन्य हैं जो सदा ही श्री हरि भगवान् की अर्चना किया करते हैं। यह भगवान् समस्त पापो के हरण करने वाले और सम्पूर्ण कामनाओ के फलो को प्रदान करने वाले देव हैं ॥१३॥ चाहे ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य स्त्रीगण शूद्र और अन्त्यज कोई भी क्यो न हो उन सुरो मे, परम श्रेष्ठ भगवान् श्रीहरि की पूजा करके परमगति का लाभ ग्रहण किया करते हैं ॥१४॥

तस्माच्छृणुध्व मुनयो यत्पृच्छत ममानघा. ।
प्रवक्ष्यामि समासेन गति तेषा महात्मनाम् ॥१५
त्यक्त्वा मानुष्यक देह रोगायतनमध्रुवम् ।
जरामरणसयुक्त जलबुद्बुदसनिभम् ॥१६
मासशोणितदुर्गन्ध विष्ठामूत्रादिभिर्युतम् ।
अस्थिस्थूणममेध्य च स्नायुचर्मशिरान्वितम् ॥१७
कामगेन विमानेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
तरुणादित्यवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥१८
उपगीयमाना गन्धर्वैरप्सरोभिरलङ्कृता ।
व्रजन्ति लोकपालाना भवन तु पृथक्पृथक् ॥१९
मन्वन्तरप्रमाण तु भुक्त्वा काल पृथक्पृथक् ।
भुवनानि पृथक्तेषा सर्वभोगैरलङ्कृता ॥२०
ततोऽन्तरिक्ष लोक ते यान्ति सर्वसुखप्रदम् ।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्दशमन्वन्तर द्विजा ॥२१

इसीलिये हे मुनिगणो ! हे अनघो ! मुझ से जो आप पूछ रहे हैं उसका श्रवण कीजिए। मैं उन महान् आत्मा वालों की जो गति होती है उसको सक्षेप से बतलाऊँगा ॥१५॥ मनुष्य का यह शरीर रोगों का घर और विनाशशील अस्थिर है। भक्तों का भी वैसा ही मनुष्य-देह होता है। इसका त्याग करके ही भगवद्भक्त परागति प्राप्त किया करते

है। मानवीय शरीर जरा (बुढापा) और मरणशील होता है तथा एक जल के बुलबुले के ही तुल्य ही बहुत ही अस्थिर होता है ॥१६॥ यह मनुष्य का शरीर मास और रक्त की दुर्गन्ध वाला है और इसमें मलमूत्र आदि भरे रहते हैं। यह एक अस्थियो का ही ढाँचा है अपवित्र और स्नायु-चर्म और शिराओ से युक्त है ॥१७॥ ऐसे महान् दूषित शरीर का त्याग कर देने के पश्चात् इच्छानुकूल गमन करने वाले, दिव्य गन्धर्वों के नाद से सयुत तरुणसूर्य के समान वर्ण युक्त किङ्कणी जालो की माला वाले विमान के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गान किये गये अप्सराओ से अलकृत भगवद्भक्त जन पृथक् २ लोकपालो के भवन को जाया करते हैं ॥१८-१६॥ एक मनु के अन्तर का जितना काल होता है उतने प्रमाण वाले समय तक अलग २ भोगो का उपभोग करके उनके पृथक् भुवनों मे निवास करते हैं और फिर समस्त भोगो से अलकृत होकर सभी सुखो के प्रदाता अन्तरिक्ष लोक मे वे गमन करते हैं। हे द्विजो ! वहा पर भी वे दश मन्वन्तरो मे काल पर्यन्त परमाधिक श्रेष्ठ भोगो के सुखो का उपभोग किया करते हैं ॥२०-२१॥

तस्माद्गन्धर्वलोक तु यान्ति यै वैष्णवा द्विजा ।
विशन्मन्वन्तर काल तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२
भोगानादित्यलोक तु तस्माद्यान्ति सुपूजिता. ।
त्रिशन्मन्वन्तर तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदैवतान् ॥२३
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोक सुखप्रदम् ।
मन्वन्तराणा ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४
काल भुक्त्वा शुभान्भोगाञ्जरामरणवर्जिता. ।
तस्मान्नक्षत्रलोक तु विमानैः समलकृतम् ॥२५
व्रजन्ति ते मुनिश्रेष्ठा गुणैः सर्वैरलकृताः ।
मन्वन्तराणा पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥२६
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्रा देवलोक सुदुर्लभम् ।
षष्टि मन्वन्तर यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७

भोगान्नानाविधान्विप्रा ऋग्व्यष्टकसमन्वितान् ।
शक्रलोकं पुनस्तस्माद्गच्छन्ति सुरपूजिताः ॥२८

हे द्विजो ! वे वैष्णव वहाँ से फिर गन्धर्व लोक को जाया करते हैं। बीस मन्वन्तर के काल पर्यन्त वहाँ भोग के मनोरम सुखों का उपभोग करते हैं ॥२१॥ वहाँ से भी सुपूजित होते हुए फिर सूर्य लोक मे जाते हैं। वहा पर भी बीस मन्वन्तर तक अति दैवत भोगों को भोग किया करते हैं। हे विप्रो ! वहा से फिर चन्द्र लोक मे जाते हैं जो बहुत सुख प्रद है। वहा पर चालीस मन्वन्तर पर्यन्त काल तक भोग प्राप्त करते हैं ॥२२-२४॥ इतने लम्बे समय तक शुभ भोगों का आनन्द प्राप्त कर जरा-मरण से रहित होते हुए विमानों से अलङ्कृत नक्षत्रों के लोक को सब गुणगणों से समलङ्कृत होते हुए हे मुनिश्रेष्ठो वे गमन करते हैं ॥२५॥ वहा पर पचास मन्वन्तर तक यथेप्सित भोगों का सुख भोगा करते हैं ॥२६॥ वहा से फिर वे वैष्णव भक्त जन परम दुर्लभ देव लोक को जाते हैं ॥२७॥ वहा साठ मन्वन्तरों के काल के प्रमाण तक सुदुर्लभ भोगों का उपभोग किया करते हैं। हे विप्रो ! ऋग्व्यष्टक समन्वित नाना प्रकार के भोगों का सुख प्राप्त किया करते हैं। फिर देवों के द्वारा समर्पित होते हुए इन्द्रलोक में गमन करते हैं ॥२८॥

मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् ।
भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९
तस्माद्व्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् ।
भुक्त्वा तत्राप्सितान्भोगान्सर्वकामगुणान्वितान् ॥३०
मन्वन्तरमशीतिं च कालं सर्वसुखप्रदम् ।
तस्मात्पैतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः ॥३१
मन्वन्तराणां नवतिं क्रीडित्वा तत्र वै सुखम् ।
इहाऽऽगत्य पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२
जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः ।
एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥३३
इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् ।

सभवे सभवे ते तु शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४
भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तर ततः ।
दशजन्म यदा तेषा क्रमेणैव प्रपूर्यते ॥३५

सत्तर मन्वन्तरों के समय तक वहा पर उच्चावच दिव्य और मन की प्रीति को वर्धन करने वाले भोगो का सुख प्राप्त करते हैं ॥२६॥ वहा से भी अत्युत्तम प्राजापत्य लोक मे गमन करते हैं और वहा सब काम और गुणो से समन्वित ईप्सित भोगो का उपभोग प्राप्त करते हैं ॥३०॥ अस्सी मन्वतरो के काल पर्यन्त सब सुखो के देने वाले उस लोक मे निवास करके वैष्णव गण वहा से पितामह के लोक मे जाते हैं ॥३१॥ नब्बे मन्वन्तर तक वहा पर सुख पूर्वक आनन्द क्रीडा करके पुन ये लोग यहा पर इस लोक मे जो वास्तविक कर्म भूमि है आया करते हैं। तथा किसी विप्र के परम श्रेष्ठ कुल मे जन्म ग्रहण करते हैं ॥३२॥ हे विप्रो ! यहा पर वे योगी होते हैं और वेदो तथा शास्त्रो के अर्थ के पारगामी विद्वान् होते हैं इस तरह से सब लोको मे यथेप्सित भोगो का उपभोग करते हैं ॥३३॥ यहा आकर वे पुन ऊपर २ क्रम से जाते हैं। हे द्विजोत्तमो ! प्रत्येक जन्म मे सौ-सौ वर्ष तक अपने अभीष्ट भोगो का उपभोग करके फिर दूसरे लोकों को गमन किया करते हैं। ऐसे ही क्रम से जब दश जन्म उनके पूर्ण हो जाया करते हैं ॥३४ ३५॥

तदा लोक हरेर्दिव्य ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते ।
गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६
मन्वन्तरशत यावज्जन्ममृत्युविवर्जिताः ।
गच्छन्ति भुवन पश्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमा ॥३७
दिव्यदेहा कुण्डलिनो महाकाया महाबला. ।
क्रीडन्ति तत्र विप्रेन्द्रा. कृत्वा रूप चतुर्भुजम् ॥३८
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणा द्विजसत्तमा. ।
तिष्ठन्ति शाश्वते भावे सर्वदेवैर्नमस्कृताः ॥३९
ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृह द्विजा. ।
क्रीडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०

तदन्ते वैष्णव यान्ति पुर सिद्धनिषेवितम् ।
क्रीडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१

ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः ।
तत्र स्थित्वा चिर काल वर्षकोटिशतान्बहून् ॥४२

इसके पश्चात् उस समय मे वे उस ब्रह्म लोक से श्रीहरि भगवान् के दिव्य लोक को गमन करते हैं। वहा पर जाकर सब गुणो से समन्वित अक्षय भोगो का उपभोग किया करते हैं और जब तक सौ मन्वन्तरो का काल पूर्ण होता है जन्म-मृत्यु से रहित होकर निवास करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् वाराह भगवान् के भुवन मे जाते हैं ॥३६-३७॥ वहा पर वे दिव्य देह वाले-कुण्डल धारी महान् काया वाले-महान् बल से युक्त चार भुजाधारी स्वरूप करके क्रीडा किया करते हैं ॥३८॥ दश करोड सहस्र वर्षों के समय तक उस शाश्वत भाव मे सब देवो से नमस्कृत होते हुए स्थित रहा करते हैं ॥३९॥ हे द्विजो ! वहा से वे धीर पुरुष नरसिह भगवान् के भुवन मे गमन किया करते हैं और वहा पर परम मुदित होते हुए दश हजार करोड वर्षों तक क्रीडा किया करते हैं ॥४०॥ इसके अन्त मे सिद्ध गणो से सेवित विष्णु भगवान् के पुर मे जाते हैं वहाँ पर दश सहस्र वर्षों तक सुख से क्रीडा करते हैं ॥४१॥ हे विप्रो ! वे साधको मे परमोत्तम पुनः ब्रह्म लोक मे गमन करते हैं। वहा पर बहुतसे करोडो सौ वर्षों तक चिरकाल पर्यन्त स्थित रहते हैं ॥४२॥

नारायणपुर यान्ति ततस्ते साधकेश्वरा ।
भुक्त्वा भोगाश्च विविधान्वर्षकोट्यर्बुदानि च ॥४३
अनिरुद्धपुर पश्चाद्दिव्यरूपा महाबला ।
गच्छन्ति साधकवरा स्तूयमानाः सुरासुरं ॥४४
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश ।
तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः ॥४५
प्रद्युम्नस्य पुर पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः ।
तत्र तिष्ठन्ति ते विप्रा शतकोटिशतत्रयम् ॥४६

स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा बलशक्तिसमन्विताः ।
स्वच्छन्ति योगिनः पश्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः ॥४७
तत्रोषित्वा चिर काल भुक्त्वा भोगान्सहस्रश ।
विशन्ति वासुदेवेति विरूपाख्ये निरञ्जने ॥४८
विनिर्मुक्ताः परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते ।
तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशयः ॥४६
एव क्रमेण भुक्ति ते प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ।
मु[illegible] च मुनिशार्दूला वासुदेवार्चने रता ॥५०

इसके अनन्तर वे साधना करने वालो के शिरोमणि वहाँ से नारायण के पुर मे जाते है । वहा पर अर्बुद करोड वर्षों तक नाना भाँति के भोगो का उपभोग करते हैं । इसके पश्चात् वे दिव्य स्वरूप धारी महान् बल से युक्त साधक वर सुर और असुरो से स्तुत होते हुए अनिरुद्ध भगवान् के पुर को गमन किया करते हैं ॥४३-४४॥ वहा चौदह करोड सहस्र वर्षों तक जरा-मरण से रहित होते हुए वैष्णव गण समवस्थित रहा करते है ॥४५॥ पीछे प्रद्युम्न प्रभु के पुर मे विगत ज्वर वाले होकर गमन करते हैं । वहा पर एक लाख करोड तीन सौ वर्षों तक स्थिति किया करते हैं ॥४६॥ स्वच्छन्दता पूर्वक गमन करने वाले-बल और शक्ति से समन्वित परम प्रसन्न वे योगिजन इसके पश्चात् वहा जाते हैं जहां पर सङ्कर्षण प्रभु विराजमान रहा करते है ॥४७॥ वहा पर भी चिरकाल पर्यन्त निवास करके और सहस्रों ही भोगो का उपभोग करके निरालय निरञ्जन भगवान् वासुदेव मे प्रवेश कर जाया करते हैं ॥४८॥ जरा-मरण से वर्जित उस परात्पर तत्त्व मे पहुँच कर सब बन्धनो एव भोगो से छुटकारा पाते हुए पूर्णतया विमुक्त हो जाया करते हैं—इस विषय मे लेशमात्र भी सशय नही है ॥४६॥ इसी प्रकार से क्रम से मनीषीगण मुक्ति की भुक्ति को प्रथम प्राप्त करते है मुनि शार्दूलो ! व भगवान् वासुदेव के अर्चन में रति रखने वाले वैष्णव जन मोक्ष का लाभ लिया करते है । भगवान् वासुदेव के चरणों की भक्ति और उनकी अर्चना करने की ऐसी महिमा है ॥५०॥

व्यासमुनिसंवाद मे विष्णुपूजाकथन [२]

एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः ।
स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः ॥१

संपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः ।
पुष्पैर्गन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैस्तथा ॥२
उपहारैर्बहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३

दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः ।
एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ॥४
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायणः ।
याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः ॥५

प्रजागरे गीतिकायाः फलं विष्णोर्महामुने ।
ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम् ॥७

श्री महा मुनीन्द्र व्यास देवजी ने कहा—मास के कृष्ण और शुक्ल दोनो पक्षो में जो दो एकादशी तिथियां आती है उनमे आहार न करके समाहित रहना चाहिए। भली रीति से स्नान करके इन्द्रियो को जीत कर धौत वस्त्र धारण करके ॥१॥ परमाधिक श्रद्धा से सुसमाहित होकर विधि-विधान के साथ भगवान् विष्णु का अच्छी तरह से पूजन करना चाहिए। इस अर्चन मे सभी उपचारो को ग्रहण करे। धूप-दीप-पुष्प गन्ध और नैवेद्य आदि सबके द्वारा पूजन करना चाहिए ॥२॥ बहुत प्रकार के उपहार, जप्य, होम, प्रदक्षिणा, अनेक स्तोत्र, दिव्य गीत, मनोहर वाद्य, दण्ड की भांति प्रणिपात तथा उत्तम जय शब्दो के द्वारा भगवान् की अर्चना करे और रात्रि मे विधि पूर्वक जागरण करना चाहिए ॥३-४॥ भगवान् विष्णु की भक्ति मे परायण होकर विष्णु के गीतो का तथा मय-

वान् की कथा का गान करना चाहिए । इस प्रकार से दोनों मास की एकादशी मे करने वाले विष्णु परायण मनुष्य भगवान् विष्णु का जो परमपद है उसमे अन्त मे गमन किया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥५॥ मुनिगण ने कहा— हे महामुने ! एकादशी की रात्रि मे प्रजागरण करने मे और भगवान् विष्णु के गुणानुवादो के गीतो का फल हे महामुने ! अब आप बतलाइये । उनके श्रवण करने की हम लोग इच्छा करते हैं। हमारे हृदय में इस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का बडा भारी कौतूहल विद्यमान है ॥६॥ श्री महामुनि व्यास देव जी ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! आपने जो मुझसे पूछा है उस विषय का मैं आनुपूर्वी से वर्णन करूंगा आप लोग श्रवण कीजिए । भगवान् विष्णु के गुणो के गान करने का तथा भगवान् विष्णु के समक्ष मे एकादशी के दिन रात्रि मे जागरण करने मे जो फल बताया गया है उसको मैं बतलाऊंगा ॥७॥

अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता ।
तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥८
यस्या नगर्याः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः ।
सद्वृत्त्योत्पादितधनो भृत्यानां भरणे रतः ॥६
विष्णुभक्तः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः ।
एकादश्यां समागम्य सोमवासोऽस्य गायति ॥१०
गीतिका विष्णुनामाङ्का प्रादुर्भावसमाश्रिताः ।
गान्धारषड्जनैषादस्वरपञ्चमधैवतः ॥११
रात्रिजागरणे विष्णुं गाथाभिस्पगायति ।
प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च ॥१२
नामातृभागिनेयांश्च भोजयित्वा सकन्यकाः ।
ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः ॥१३
एवं तस्याऽऽव्रतस्तत्र कुर्वतो विष्णुप्रीणनम् ।
गीतिकाभिर्विचित्राभिर्वयः प्रतिगतं बहु ॥१४

इस भूमण्डल मे एक अवन्ती नाम वाली परम प्रसिद्ध नगरी हुई थी। वहाँ पर शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने भगवान् विष्णु विराजमान रहते हैं ॥८॥ उस महानगरी के पर्यन्त भाग मे गीति शास्त्र का महान् पण्डित एक चाण्डाल निवास किया करता था जो कि सद्वृत्ति से धन का अर्जन करने वाला था और सर्वदा अपने भृत्यो के पालन-पोषण मे निरत रहा करता था ॥९॥ वह चाण्डाल तो जाति से था किन्तु भगवान् विष्णु का पूर्वाजित संस्कारो के अधीन परम भक्त था। वह प्रत्येक मास मे दृढ व्रत वाला होकर एकादशी तिथि मे उपवास किया करता था और इसके अनन्तर भगवान् के गुणो की गीतिकाओ का गान भी किया करता था ॥१०॥ वे समस्त गीतिकाएँ भगवान् विष्णु के शुभ नामों से युक्त थी तथा विष्णु भगवान् के जो-जो प्रादुर्भाव हुए है उनका भी उन गीतिकाओ मे वर्णन था। उन गीतिकाओ मे षड्ज-गान्धार-निषाद-ऋषभ-मध्यम-पञ्चम और धैवत ये सातो स्वर समाविष्ट थे ॥११॥ एकादशी तिथि मे रात्रि के समय मे जागरण मे भगवान् विष्णु के चरित्र की गाथाओ का वह गान किया करता था। प्रभात के समय हो जाने पर वह भगवान् को प्रणाम करके द्वादशी के दिन गृह मे आ जाया करता था। यह नियम प्रत्येक एकादशी मे वह करता था ॥१२॥ अपने घर मे आकर वह जामाता-भागिनेय और कन्याओ को प्रथम भोजन कराता है द्विजोत्तमो! इसके पश्चात् वह अपने सम्पूर्ण परिवार के सहित भोजन किया करता था ॥१३॥ इसी रीति से वहाँ पर वह चाण्डाल निवास करता हुआ भगवान् विष्णु को प्रसन्नता किया करता था और अनेक गीतिकाओ के द्वारा उनको रिझाया करता था जो कि गीतिकाएँ बहुत ही अद्भुत होती थी। ऐसे रहते हुए उसकी बहुत-सी आयु व्यतीत हो गयी थी ॥१४॥

एकदा चैत्रमासे तु कृष्णैकादशिगोचरे।
विष्णुशुश्रूषणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम् ॥१५
वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भक्तितत्परः।
क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरधः ॥१६

दृष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम् ।
चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम् ॥१७
प्रातर्भोक्ष्यसि कल्याण सत्यमेष्याम्यहं पुनः ।
अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८
श्वः सत्येन समेष्यामि ततः खादसि मामिति ।
विष्णुशुश्रूषणार्थाय रात्रिजागरणं मया ॥
कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९
तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम् ।
ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०
न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम् ।
निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह ॥
सान्त्वञ्श्लक्ष्णया वाचा स सत्यवचनैर्दृढैः ॥२१

एक बार चैत्र मास मे कृष्ण पक्ष की एकादशी के आने पर वह भगवान् विष्णु की शुश्रूषा करने के लिये एक परम श्रेष्ठ वन में नगर से बाहिर चला गया था ॥१५॥ वहाँ पर भक्ति मे परायण होकर वह वन मे समुत्पन्न पुष्पो को लेने के लिये महान् अरण्य मे क्षिप्रा नदी के तीर पर विभीषण नाम वाले वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। वहाँ पर एक राक्षस ने उसको देखा था और उसे भक्षण करने के लिये राक्षस ने उसे पकड लिया था। उस समय मे उस चाण्डाल ने उस राक्षस से कहा था कि आप आज मेरा भक्षण न करें ॥१६-१७॥ हे कल्याण ! कल प्रातः काल के समय मे आप मुझे खा लेना। मैं सर्वथा सच २ निवेदन करता हूँ कि मैं यहाँ पर ही कल सुबह के समय मे उपस्थित हो जाऊँगा। हे राक्षस ! आज मेरा एक महान् कार्य है अतएव आप इस समय मे मुझको छोड़ दीजिए ॥१८॥ कल प्रातः काल मे मैं निश्चित रूप से आ जाऊँगा यह मेरी प्रार्थना सर्वथा सत्य है फिर आप मेरा भक्षण कर लेना। भगवान् विष्णु की शुश्रूषा करने के लिए मुझे रात्रि मे आज एकादशी के दिन जागरण करना है। हे राक्षस ! मेरा यह व्रत है अतएव इसमे आप

कोई भी विघ्न न करने के योग्य हैं ॥१९॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—उस समय मे उस राक्षस ने उससे यह कहा था कि मुझे दश रात्रि पर्यन्त भोजन न किये हुए हो गया है। हे मतङ्गज ! दश दिन के पश्चात् आज तू मुझको प्राप्त हुआ है ॥२०॥ मैं तो आज भूख से अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ इसलिये अब मैं तुझको नही छोड़ूँगा और खा ही जाऊँगा। उस निशाचर के इस वचन का श्रवण कर वह मातङ्ग उससे बोला था और परमाधिक श्लक्ष्ण वाणी से अति सुदृढ वचनो के द्वारा उसे सान्त्वना देते हुए उसने कहा था ॥२१॥

सत्यमूल जगत्सर्व ब्रह्मराक्षस तच्छृणु ।
सत्येनाह शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२
आदित्यश्चन्द्रमा वह्निर्वायुर्भू र्द्यौर्जल मन. ।
अहोरात्र यम. सध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३
परदारेपु यत्पाप यत्परद्रव्यहारिपु ।
यच्च ब्रह्महन: पाप सुरापे गुरुतल्पगे ॥२४
वन्ध्यापतेश्च यत्पाप यत्पाप वृपलीपतेः ।
यच्च देवलके पाप मत्स्यमासाशिनश्च यत् ॥२५
कोडमासाशिनो यच्च कूर्ममासाशिनश्च यत् ।
वृथा मासाशिनो यच्च पृष्ठमासाशिनश्च यत् ॥२६
कृतघ्ने मित्रघातके यत्पाप दिधिपूपतौ ।
सूतकस्य च यत्पाप यत्पाप क्रूरकर्मण ॥२७

यह मातङ्ग बोला—हे ब्रह्म राक्षस ! यह सम्पूर्ण जगत् सत्य के मूल वाला है—यह आप श्रवण कीजिए। मैं उसी सत्य से शपथ खाकर कहता हूँ यदि मेरा वचन गलत हो तो मैं उस सत्य से गिर जाऊँगा। मैं पुन. कल यहाँ पर ही आने की बात पूर्णतया सत्य निवेदन कर रहा हूँ ॥२२॥ सूर्य, चन्द्र, वह्नि, वायु, भू, द्यौ, जल, मन, अहोरात्र, यम, दोनो सन्ध्या काल ये सभी मनुष्य की समस्त चेष्टाओ को देखते और जानते हैं ॥२३॥ पराई स्त्रियों के अभिगमन करने मे जो पाप होता है—पराये धन के अपहरण करने मे जो पाप होता है, किसी ब्राह्मण के हनन करने मे जो

पाप है, सुरा के पान करने मे जो पाप होता है, गुरु पत्नी की शय्या पर गमन करने मे जो महा पाप होता है ॥२४॥ बाँझ स्त्री के पति होने का का जो पाप है–वृषली (शूद्रा) स्त्री को घर मे रख लेने से जो महा पाप होता है, देवलक (देवो की पूजा कर जीविका करने वाला) के होने मे जो पाप होता है और जो मत्स्य के मास खाने मे जो पाप होता है ॥२५॥ क्रोड व मास का अशन करने वाले को जो पाप होता है–वृथा ही मास के खान से और पृष्ठ भाग के मास खाने से जो पाप होता है ॥२६॥ किये हुए उपकार को न मानने वाले को, मित्र के साथ घात करने वाले को, दिधिपूपपति को, सूतकी को और क्रूर कर्म करने वाले को जो पाप लगता है ॥२७॥

कृपणस्य च यत्पाप यच्च वन्ध्यातिथेरपि ।
अमावास्याऽष्टमी षष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी ॥२८
तासु यद्गमनात्पाप यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् ।
रजस्वला तथा पश्चाच्छ्राद्ध कृत्वा स्त्रिय व्रजेत् ॥२९
सर्वस्वस्नातभोज्याना यत्पाप मलभोजने ।
मित्रभार्या गच्छता च यत्पाप पिशुनस्य च ॥३०
दम्भमायानुरक्ते च यत्पाप मधुघातिन. ।
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पाप तदयच्छत ॥३१
यच्च कन्यानृते पाप यच्च गोश्वतरानृते ।
स्त्रीबालहन्तुर्यत्पाप यच्च मिथ्याभिभाषिण. ॥३२
देववेदद्विजनृपपुत्रमित्रसतीस्त्रियः ।
यच्च निन्दयता पाप गुरुमिथ्यापचारत. ॥३३
अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वने ।
गृहेष्टया पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्द्विजाधमे ॥३४
यत्पाप परिवित्ते च यत्पाप परिवेदिनः ।
तयोर्दातृग्रहीत्रोश्च यत्पाप भ्रूणघातिनः ॥३५

कृपण को जो पाप होता है और वन्ध्या तिथि को जो पाप लगता है– अमावस्या, अष्टमी, षष्ठी, दोनो पक्षो की चतुर्दशी के दिन स्त्री का

गमन करने से विप्र को जो पाप होता है, रजस्वला पत्नी तथा श्राद्ध करने के पश्चात् गमन करने से जो पाप होता है, सर्वस्व स्नान भोज्यो के एव मल के भोजन मे जो पाप लगता है ॥२८-२९॥ मित्र की भार्या के साथ अभिगमन से, पिशुनता से, दम्भ तथा माया मे अनुरक्तता से और मधुधाती को जो पाप लगता है, ब्राह्मण को कुछ वचन देकर प्रदान करने से जो पाप हुआ करता है ॥३०-३१॥ जो कन्यानृत मे एव गोश्वतरानृत मे पाप होता है, स्त्री एव बालक को हनन करने वाले को तथा मिथ्या भाषण करने वाले को जो पाप होता है ॥३२॥ देवता, द्विज, वेद, नृप, पुत्र, मित्र और सती स्त्री की निन्दा करने वाले को एव गुरुजन के साथ मिथ्या अपचार से जो पाप होता है ॥३३॥ अग्नि का त्याग करने वालो को तथा वन मे अग्नि लगाने वालो को, गृह की ईंटो के पातक मे, गौ के हनन करने मे और अधम द्विज मे जो पाप होता है ॥३४॥ परविति करने वाले को तथा परिवेदी को एव इन दोनो के दाता और गृहीता को तथा भ्रूणघाती को जो पाप होता है ॥३५॥

किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस ।
श्रूयता शपथ भीम दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६
स्वकन्याजीविनः पाप गूढसत्येन साक्षिणः ।
अयाज्ययाजके पण्ढे यत्पाप श्रवणेऽधमे ॥३७
प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके ।
एतैस्तु पापैर्लिप्येऽह यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८
मातङ्गवचन श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षस. ।
प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९
इत्युक्तः श्वपचस्तेन श्वपाक. कुसुमानि तु ।
समादायागमच्चैव विष्णोः स निलय गतः ॥४०
तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा ।
विष्णुमभ्यर्च्य निलय जगाम स तपोधना. ॥४१
सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु ता निशाम् ।
गायद्वि बाह्य[illegible]

हे राक्षस ! यहाँ पर बहुत अधिक शपथो के करने से क्या लाभ है मैं आपसे यही निवेदन करता हूँ कि वही मुझे लगेगा । अब आप सबसे भीषण और न कहने के योग्य भी शपथ मैं कहता हूं ॥३६॥ अपनी कन्या के द्वारा जीविका को चलाने वाले को तथा सचाई को गूढ रखकर गवाही देने वाले को, जो यजन न कराने के योग्य हो उससे यजन कराने वाले को, षण्ढ को, श्रवण करने मे भी अधम को जो पाप होता है प्रव्रज्या (सन्यास) को समाप्त करने वाले को, कामुक ब्रह्मचारी को जो भी पाप हुआ करते हैं इन सभी उपर्युक्त पापो से मैं लिप्त हो जाऊँ यदि कल प्रातःकाल मे मैं आपके समीप मे उपस्थित न होऊँ ॥३७-३८॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—मातङ्ग के इन वचनो का श्रवण करके वह ब्रह्म राक्षस बहुत अधिक विस्मय मे भर गया था और कहा—चले जाओ और अपने सत्य वचन का परिपालन करना ॥३९॥ कुण पाश के द्वारा इस तरह से कहा हुआ । वह श्वपाक कुसुमो को लाकर वहाँ से आ गया था तथा भगवान् विष्णु के आयतन मे चला गया था ॥४०॥ उन कुसुमो को ब्राह्मण के लिये दे दिया था और उसने भी उनको जल से प्रक्षालित किया था । वह तपोधन भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करके अपने घर को चला गया था ॥४१॥ वह मातङ्ग दायाद भी उस रात्रि मे उपवास वाला रहा था और बाहिर की भूमि मे स्थित होकर भगवान् के गुणगणो का गान करता हुआ रात्रि मे उसने जागरण किया था ॥४२॥

प्रभाताया तु शर्वर्यां स्नात्वा देव नमस्य च ।
सत्य स समय कर्तुं प्रतस्थे यत्र राक्षसः ॥४३
त व्रजन्त पथि नरः प्राह भद्र क्व गच्छसि ।
स तथाऽकथयत्सर्वंन सोऽप्ये पुनरब्रवीत् ॥४४
धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यतः ।
महता तु प्रयत्नेन शरीर पालयेद्बुध- ॥४५
जीवधर्मार्थसुख नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम् ।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६

मेव वदस्व भद्र ते सत्य लोकेषु पूज्यते ।
सत्येनावाप्यते सौख्य यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥५२
सत्येनार्क. प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिका. ।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुत. ॥५३
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा ।
सत्येन जायते पु सा तस्मात्सत्य न सत्यजेत् ॥५४
सत्य ब्रह्म पर लोके सत्य यज्ञेषु चोत्तमम् ।
सत्य स्वर्गसमायात तस्मात्सत्य न सत्यजेत् ॥५५

गौ-स्त्री द्विज इनके परिरक्षण के लिये-विवाह के समय मे सुरत प्रसङ्ग मे-प्राणो के विनाश मे और सब धन के अपहरण मे इन पाच स्थानों पर मिथ्या भाषण करना पातक नही हुआ करता है ऐसा कहा गया है ॥५०॥ स्त्रियो के विषय मे विवाह मे-शत्रु के विषय मे वञ्चन मे अर्थ की हानि होने पर और अपने नाश होने पर अनृत बोल दिया जाया करता है और पाप नहीं होता है । इस प्रकार के उसके वाक्य को सुनकर मातङ्ग ने प्रत्युत्तर दिया था ॥५१॥ मातङ्ग ने कहा—आप इस प्रकार से मत बोलो । आपका कल्याण होवे । सत्य ही लोको मे पूजा जाया करता है । इस जगती तल में जो कुछ भी सौख्य है वह सत्य से ही प्राप्त किया जाता है ॥५२॥ सत्य से ही सूर्य ताप देता है—सत्य स जल रसात्मक है—अग्नि सत्य से जला करती है और वायु भी सत्य से बहन करता है ॥५३॥ धर्म अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, वह भी पुरुषो को सत्य से ही प्राप्त हो जाती है । इस कारण से सत्य का त्याग कभी नही करना चाहिए ॥५४॥ सत्य ही लोक मे परब्रह्म है—यज्ञो मे सत्य उत्तम होता है, सत्य स्वर्ग समायात है अतएव सत्य का कभी भी त्याग नही करना चाहिए ॥५५॥

इत्युक्त्वा सोऽथ मातङ्गस्त प्रक्षिप्य नरोत्तमम् ।
जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस. ॥५६
तमागत समीक्ष्यासौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षस. ।
विस्मयोत्फुल्लनयन शिर कम्प तमब्रवीत् ॥५७

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक ।
न मातङ्गमहं मन्ये भवन्तं सत्यलक्षणम् ॥५८
कर्मणाऽनेन मन्ये त्वां ब्राह्मण शुचिमव्ययम् ।
यत्किंचित्त्वां भद्रमुखं प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम् ॥
किं तत्र भवता रात्रौ कृतं विष्णुगृहे वद ॥५९
तमभ्युवाच मातङ्गः शृणु विष्णुगृहे मया ।
यत्कृत रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते ॥६०
विष्णोर्देवकुलस्याघः स्थितेनाऽऽनम्रमूर्तिना ।
प्रजागरः कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम् ॥६१
त ब्रह्मराक्षसः प्राह कियन्तं कालमुच्यताम् ।
प्रजागारो विष्णुगृहे कृतं (तो) भक्तिमता वद ॥६२
तमभ्युवाच प्रहसन्विंशत्यब्दानि राक्षस ।
एकादश्या मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागरः ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥६३

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इसके अनन्तर उस मातङ्ग ने उस नरोत्तम को प्रक्षिप्त करके वह वहाँ पर ही चला गया था जहा पर वह प्राणियो के हनन करने वाला ब्रह्मराक्षस विद्यमान था ॥५६॥ वह ब्रह्मराक्षस उस आये हुए चाण्डाल को देखकर विस्मय से उत्फुल्ल लोचनो वाला हो गया था और अपना शिर कपाते हुए उससे बोला ॥५७॥ ब्रह्म राक्षस ने कहा—हे महाभाग ! बहुत अच्छा बहुत उत्तम है । आप तो पूर्णतया सत्य वचनो के अनुपालन करने वाले हैं । मैं सत्य के लक्षण से युक्त आपको मातङ्ग नहीं मानता हूँ ॥५८॥ आपके इस कर्म से तो मैं आपको परम पवित्र और अव्यय ब्राह्मण ही समझता हूँ । मैं आप भद्र मुख से जो कुछ धर्म का संश्रय कहूँगा । आपने वहा पर रात्रि मे भगवान् विष्णु के मन्दिर मे क्या किया था ?—यही मुझको बतला दो ॥५६॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—मातङ्ग ने उस ब्रह्मराक्षस से कहा था —सुनिये, मैंने रात्रि के भाग मे जो भी कुछ किया था उसको ठीक २ आपको

बतलाता हूँ ॥६०॥ देव कुल के भगवान् विष्णु के नीचे भाग मे विनम्र होकर स्थित हुए मैंने विष्णु देव के गुणो के गीतो का गान करते हुए रात्रि मे जागरण किया था ॥६१॥ उस ब्रह्मराक्षस ने उससे कहा— कितने समय तक किया था—उसे बतलाओ । भक्तिमान् आपने जागरण विष्णु के मन्दिर मे किया था यह बोलो ॥६२॥ उस मातङ्ग ने हँसते हुए कहा था—हे राक्षस ! बीस वर्ष हो गये हैं । प्रत्येक मास मे एकादशी के दिन वहा पर प्रजागरण किया करता हूँ । मातङ्ग के इस वचन का श्रवण कर वह ब्रह्मराक्षस बोला ॥६३॥

यदद्य त्वा प्रवक्ष्यामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
एकरात्रिकृत साधो मम देहि प्रजागरम् ॥६४
एव त्वा मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नान्यथा ।
त्रिः सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह ॥६५
मातङ्गस्तमुवाचाथ मयाऽस्मा ते निशाचर ।
निवेदितः किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम् ॥६६
नमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् ।
सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपा कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसवद्धमुच्यते ।
खादस्व स्वेच्छया मां त्व न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा आह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८
को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् ।
धर्षयितु पीडयितुं रक्षित धर्मकर्मणा ॥६९
दीनस्य पापग्रस्तस्य विपर्यमोहितस्य च ।
नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०
तन्मम त्व महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् ।
यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलय स्वकम् ॥७१

ब्रह्मराक्षस ने कहा—मैं आज जो भी कुछ कहूँगा वह क्या आप बोल देने के योग्य होते हैं ? हे साधो ! केवल एक रात्रि का किया हुआ जागरण आप मुझे दे दीजिए ॥६४॥ इसी प्रकार से मैं आपको मुक्त कर

दूगा अन्यथा मैं आपको मारे बिना नही छोड़ूगा। हे महाभाग ! तीन बार सत्यता से स्वीकार करो–इतना कह कर वह फिर चुप हो गया था ॥६५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—मातङ्ग ने कहा था—हे निशाचर ! मैंन अपना शरीर आपकी सेवा मे निवेदित कर दिया है। इसके कथन से क्या लाभ है। स्वेच्छा से आप मुझको खा लीजिए ॥६६॥ उस राक्षस ने पुन. उस मातङ्ग से कहा था–केवल दो ही प्रहर का जागरण और सगीत मुझको दे दो। आप मुझ पर कृपा करने के योग्य होते हैं ॥६७॥ मातङ्ग ने राक्षस से कहा—यह क्या असबद्ध आप कहते हैं ? आप स्वेच्छा से मुझे खा लीजिए। मैं आपको अपना प्रजागरण नही दूगा। मातङ्ग के इस वचन का श्रवण कर वह ब्रह्मराक्षस उससे बोला था। ब्रह्मराक्षस ने कहा—कौन दुष्ट बुद्धि वाला–मन्द है जो आपको देखने की हिम्मत कर सके क्योकि आप तो धर्म के कर्म द्वारा स्वय सुरक्षित हैं। आपका धर्षण और पीडन करने की किसी मे भी हिम्मत तक नही है ॥६६॥ जो दीन है-आर्त्त है पापो से ग्रस्त है-विषयो से मोहित है और नारकीय यातनाओ से दु खित हैं तथा मूढ हैं उन पर साधु लोग दया युक्त हुआ करते हैं ॥७०॥ हे महाभाग ! आप मुझ पर कृपा करके एक प्रहर का जागरण दे दीजिए अथवा अपने घर पर चले जाइये ॥७१॥

त पुन प्राह चाण्डालो न यास्यामि निज गृहम् ।
न चापि तव दास्यामि कथ चिद्यामजागरम् ॥
त प्रपस्याथ चाण्डाल प्रोवाच ब्रह्मराक्षस. ॥७२
राज्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया ।
तस्या. फल प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर ॥७३
एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह ॥७४
किं पूर्वं भवता कर्म विकृत कृतमञ्जसा ।
येन त्व दोपजातेन सभूतो ब्रह्मराक्षस. ॥७५
तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्ग ब्रह्मराक्षसः ।
प्रोवाच दु खसतप्तः सस्मृत्य स्वकृत कृतम् ॥७६

महा मुनीन्द्र व्यासदेव जी ने कहा—वह चाण्डाल मातङ्ग उस ब्रह्म राक्षस से पुन बोला—मैं अपने घर पर भी नही जाऊँगा और मैं अपना एक प्रहर का भी प्रजागरण किसी भी तरह से आपको नही दूँगा। इसके पश्चात् वह ब्रह्म राक्षस हँसकर उस चाण्डाल से बोला ॥७२॥ ब्रह्म राक्षह ने कहा—रात्रि के अवसान मे जो गीता और कौतुक के आश्रय वाली गीतिका है जिनका गान तुमने किया था उसका ही पुण्य फल मुझको दे दो और मेरे पाप से मेरी रक्षा करो तथा मेरा उद्धार कर दो ॥७३॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—उस ब्रह्म राक्षस के द्वारा इस प्रकार से उच्चारण करने पर मातङ्ग ने उससे कहा ॥७४॥ मातङ्ग बोला—आपने पहिले जन्म मे अचानक ऐसा विकृतक्या कर्म किया है जिस दोष-जात के कारण से तुम ब्रह्म राक्षस होकर सम्भूत हुए हो ॥७५॥ व्यास-देव जी ने कहा—उसके इस वाक्य को सुन कर वह ब्रह्म राक्षस उस मातङ्ग से बोला था और अपने किये हुए कर्म का स्मरण करके वह दुःख से बहुत अधिक सतप्त हो गया था ॥७६॥

श्रूयता योऽहमास वै पूर्वं यच्च मया कृतम् ।
यस्मिन्कृते पापयोनि गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७
सोमशर्मा इति ख्यात पूर्वमासमह द्विज ।
पुत्रोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वन ॥७८
कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबहिष्कृत ।
कृपस्य कर्मसक्तेन यूपकर्मसुनिष्ठित ॥७९
आग्नीध्र चावरोधन लोभमोहप्रपीडित ।
तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्ख्याद्दम्भमनुष्ठित ॥८०
यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाह महाक्रतुम् ।
प्रवर्तमाने तस्मिस्तु कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१
सपूर्णे दशरात्रे तु न समाप्ते तथा क्रतौ ।
विरूपाक्षस्य दीपन्त्यामाहुत्या राक्ष । सगे ॥८२
कृतोऽह तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षस ।
मूर्खेण मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३

अजानता यज्ञविद्या यदिष्ट याजित च यत् ।
तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षस ॥८४
तन्मा पापमहाम्भोधो निमग्न त्व समुद्धर ।
प्रजागरे गीतिकैका पश्चिमा दातुमर्हसि ॥८५

ब्रह्मराक्षस ने कहा—हे मातङ्ग ! तुम अब सुनो मैं जो पहिले था और जो मैंने किया था जिसके करने पर मैं इस राक्षसी पाप योनि को प्राप्त हो गया हूँ ॥७७॥ पहिले जन्म मे मैं सोम शर्मा नाम वाला विप्र था। मेरे पिता अध्ययन शील और यजन करने वाले देव शर्मा थे जिनका मैं पुत्र था ॥७८॥ किसी यजमान नृप के कर्म मे सक्त ने सूत्र मन्त्र से वहिष्कृत भूपकम सुनिश्चित किया था ॥७६॥ लोभ के मोह मे प्रपीडित होकर यज्ञ मे आग्नीध्र किया था। उसके परि समाप्त होने पर मूर्खता से दम्भ अनुष्ठित किया था ॥८०॥ मैंने बारह दिन का महा क्रतु यजन करने का आरम्भ किया था। उसके प्रवृत्त मान होने पर मुझे कुक्षि शूल हो गया था ॥८१॥ दश रात्रियो के समाप्त होने पर वह क्रतु पूर्ण हो गया था। राक्षस गण म विरूपाक्ष की दी हुई आहुति मे मैं उसी दोप से मृत हो गया था और ब्रह्म राक्षस होकर मैंने जन्म ग्रहण किया है। मैं तो मूर्ख था और मन्त्रो से भी हीन था अर्थात् मन्त्रो का ज्ञान बिल्कुल नही था जो भी मैं करता कराता था वह सून एव स्वर से रहित ही होता था ॥८२ ८३॥ यज्ञादि कराने की विद्या को न जानते हुए मैंने जो भी यजन किया था या यजन कराया था उसी कर्मों के विपाक से मैं ब्रह्मराक्षस होकर उत्पन्न हुआ हूँ ॥८४॥ सो इस पापो के महासागर मे निमग्न मुझको आप उद्धृत कीजिए। तुम अपने प्रजागर की एक आखिरी गीतिका को प्रदान करने योग्य होते हैं ॥८५॥

तमुवाचाथ चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान् ।
निवृत्ति कुरुते दद्या तत पश्चिमगीतिकाम् ॥८६
बाढमित्यवदत्सोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा ।
गीतिकाफलमामन्त्र्यमुहूर्तार्धप्रजागरम् ॥८७

तस्मिन्गीतिफले दत्ते मातङ्गं ब्रह्मराक्षस. ।
प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तीर्थवर्यं पृथूदकम् ॥८८
तत्रानशनसकल्प कृत्वा प्राणाञ्जहौ द्विजाः ।
राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलवृंहितः ॥८९
पृथूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोक च दुर्लभम् ।
दश वर्षसहस्राणि निरातङ्कोऽवसत्तत. ॥९०
तस्यान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशी ।
तस्याह चरित भूयः कथयिष्यामि भो द्विजाः ॥९१

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इसके उपरान्त वह चाण्डाल उस ब्रह्मराक्षस से बोला यदि आप प्राणियो के वध से अपनी निवृत्ति करते हैं तो मैं अपनी पश्चिम गीतिका को दे दूंगा ॥८६॥ उसने भी 'बहुत अच्छा' अर्थात् ऐसा ही करूंगा कह दिया था और उस समय मे मातङ्ग ने भी दे दी थी। गीतिका के फल को आमन्त्रित करके आधे मुहूर्त का प्रजागरण दे दिया था ॥८७॥ उस गीतिका के फल के देने पर उस ब्रह्मराक्षस ने मातङ्ग को प्रणाम किया था और परम हर्षित होकर पृथूदक तीर्थ वर्य को वहा से चला गया था ॥८८॥ हे द्विजगणो ! वहाँ पर अनशन का सकल्प करके उसने प्राणों का त्याग कर दिया था उस गीतिका के पुण्य फल से वृंहित होकर वह राक्षसत्व से निर्मुक्त हो गया था ॥८९॥ पृथूदक तीर्थ के प्रभाव से उसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त निरातङ्क होकर परम दुर्लभ ब्रह्म लोक मे निवास किया था ॥९०॥ उसके अन्त मे वह ब्राह्मण होकर समुत्पन्न हुआ था और वशी तथा स्मृतिमान् हो गया था। हे द्विजो ! मैं फिर उसके चरित को आपके समक्ष मे वर्णन करूंगा ॥९१॥

मातङ्गस्य यथाशेष शृणुध्व गदतो मम ।
राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान् ॥९२
तद्विप्रचरित स्मृत्वा निर्विण्णः शुचिरप्यसौ ।
पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य ददौ भूम्या. प्रदक्षिणाम् ॥९३
कोकामुखात्समारभ्य यावद्वै स्कन्ददर्शनम् ।
दृष्ट्वा स्कन्द ययौ धारायां चापि प्रदक्षिणाम् ॥९४

ततोऽद्रिवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् ।
पापप्रमोचनं तीर्थमाससाद स तु द्विजाः ॥९५

स्नानं पापहरं चक्रे स तु चाण्डालवंशजः ।
विमुक्तपापः सस्मार पूर्वजातीरनेकशः ॥९६

स पूर्वजन्मन्यभवद्भिक्षुः संयतवाङ्मनाः ।
यतकायश्च मतिमान्वेदवेदाङ्गपारगः ॥९७

एकदा गोषु नगराद्ध्रियमाणासु तस्करैः ।
भिक्षाऽवधूता रजसा मुक्ता तेनाथ भिक्षुणा ॥९८

अब तो मातङ्ग की जो शेष कथा है उसको [illegible] बतलाता हूं । आप लोग कहने वाले मुझसे उसका श्रवण कर लो । उस राक्षस के वहां से चले जाने पर वह परम धीमान् मातङ्ग जो यत आत्मा वाला था अपने गृह में आ गया था ॥९२॥ वह परम पवित्र भी था किन्तु उस विप्र के चरित का स्मरण करके उसको बड़ा निर्वेद हो गया था । उसने अपने पुत्रों के ऊपर अपनी भार्या का भार सौंप दिया था और फिर समग्र पृथिवी की प्रदक्षिणा दी थी ॥९३॥ कोका मुख से आरम्भ करके जहां तक स्कन्द का दर्शन है वह गया था । स्कन्द प्रभु के दर्शन करके धारा चक्र में भी प्रदक्षिणा की थी ॥९४॥ इसके अनन्तर गिरियों में श्रेष्ठ-उच्च शिलाओं के उच्चय वाले *विन्ध्य पर्वत पर पहुंच कर वह फिर हे द्विजो ! पाप प्रमोचन तीर्थ पर प्राप्त हो गया था* ॥९५॥ वह चाण्डाल वंश में जन्म लेने वाला था और उसने यहां पर पापों के हरण करने वाला स्नान किया था । जब समस्त पापों से विमुक्त हो गया तो अपनी अनेक पूर्व की जातियों का स्मरण किया था ॥९६॥ वह अपने पूर्व में होने वाले जन्म में संयत वाणी और मन वाला भिक्षु हुआ था जो यत काया वाला-मतिमान् और वेदों तथा षट् वेदों के अङ्ग शास्त्रों का पार गामी विद्वान् था ॥९७॥ एक समय की बात है जब नगर से तस्करों के द्वारा गौओं का हरण किये जाने पर रज से भिक्षा अवधूत हो गयी थी और उस भिक्षु ने उन गायों को मुक्त किया था ॥९८॥

स तेनाधर्मदोषेण चाण्डाली योनिमागतः ।
पापप्रमोचने स्नातः स मृतो नर्मदातटे ॥९९
मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः ।
तत्रास्य वसतोऽब्दैस्तु त्रिंशद्भिः सिद्धपूरुषः ॥१००
विरूपरूपी बभ्राम योगमायाबलान्वितः ।
त दृष्ट्वा सोपहासार्थमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१
कुशल सिद्धपुरुष कुतस्त्वागम्यते त्वया ॥१०२
एव सभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु ।
प्रत्युवाचाथ वन्द्यस्त स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३
त सिद्ध प्राह मूर्खोऽसौ किं त्व वेत्सि त्रिविष्टपे ।
नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४
सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम् ।
स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसभवाम् ॥१०५

वह उस अधर्म के दोष से चाण्डाल की योनि को प्राप्त होगया था । जब ब्रह्म ने पाप प्रमोचन नामक तीर्थ मे स्नान किया था और नर्मदा के तट पर मृत होगया था ॥९९॥ हे द्विजो ! वह फिर ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ किन्तु मूर्ख वाराणसी मे हुआ था। वहाँ पर निवास करते हुए तीस वर्षों मे विरूप रूपी एक सिद्ध पुरुष योग माया के बल से अन्वित होता हुआ भ्रमण किया करता था। उसको देखकर उपहास के लिये प्रणाम करके उससे कहा था और कुशल उस सिद्ध पुरुष से पूछते हुए आप कहाँ से आरहे हैं ॥१००-१०२॥ श्री व्यासदेवजी ने कहा—उसके द्वारा इसलिये सभाषण किये गये उसने यह सोच कर कि मैं जान लिया गया हूँ । इसके अनन्तर उस वन्दना करने के योग्य ने उससे कहा था । मैं स्वर्ग लोक से उपागत हुआ हूँ ॥१०३॥ वह मूर्ख उस सिद्ध से बोला था कि क्या आप स्वर्ग मे भगवान् नारायण के ऊरु से समुत्पन्न हुई श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी को जानते हैं ? ॥१०४॥ सिद्ध ने उससे कहा था कि चक्र और चामर धारिणी उस उर्वशी को [illegible] जानता हूँ । वह

उर्वशी तो साधु से सम्भव होने वाली है और उस स्वर्ग लोक की मुख्य भूषण स्वरूपा है ॥१०५॥

विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः ।
तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६
कथनाया यच्च सा ते ब्रूयादाख्यास्यते भवान् ।
बाढमित्यब्रवीत्सिद्ध. सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७
बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम् ।
समेत्य चोर्वशी प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८
सा प्राह तं सिद्धवर नाहं काशिपतिं द्विजम् ।
जानामि सत्यमुक्तं ते न चेतसि मम स्थितम् ॥१०९
इत्युक्त प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुन. ।
वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः ॥११०
दृष्टः पृष्टः किल भूयः किमाहोरुभवा तव ।
सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११
सिद्धवाक्य तत. श्रुत्वा स्मितभिन्नोष्ठसपुटः ।
पुनः प्राह कथ वेत्सीत्येव वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२

सरल सीधे मार्ग से रहित वह विप्र इसके अनन्तर उस सिद्ध से बोला था कि हे मित्र ! आपको मेरे लिये आदर से उस उर्वशी से कुछ वार्त्ता कह देनी चाहिए । और जो वह बोले उसे आप मुझ को कह देंगे । उस सिद्ध ने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा और वह विप्र भी आनन्द से सयुत होगया था ॥१०६-१०७॥ वह सिद्ध भी मेरु पृष्ठ सुरालय को चला गया था । वहाँ पर उर्वशी के समीप मे पहुच कर उसने वह कह दिया था । जो कुछ उस द्विज के द्वारा उससे कहा गया था ॥१०८॥ वह उर्वशी उस श्रेष्ठ सिद्ध से बोली कि मैं काशिपति द्विज को नहीं जानती हूँ । आपने तो सत्य कहा है किन्तु मेरे चित्त मे कुछ भी स्थित नहीं है ॥१०९॥ इस रीति से कहे गये वह सिद्ध पुरुष पुनः बहुत काल के पश्चात् वाराणसी पुरी मे समागत हुआ था और फिर उस मूर्ख ने सिद्ध को देखा था ॥११०॥ उस सिद्ध को जब

उस मूर्ख द्विज ने देखा था तो उसी समय मे उससे फिर पूछा था कि उस नारायण के उरुओं से समुत्पन्न हुई उर्वशी ने आपको क्या उत्तर दिया था। उस सिद्ध ने कहा था कि उर्वशी ने स्वयं मुझ से यही कह दिया था कि मैं उस विप्र को नहीं जानती हूँ ॥१११॥ इसके उपरान्त सिद्ध के कहे हुए वाक्य को सुनकर स्मित (धीमी हँसी) से समिन्न ओष्ठों वाले उस सिद्ध ने पुन उस सिद्ध से कहा था कि आप को उस उर्वशी से यह कहना चाहिए कि वह किस प्रकार से मुझको जानेगी ॥११२॥

बाढमेव करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिवं गत ।
ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमथोर्वशीम् ॥११३
प्रोवाच तां सिद्धवर सा च तं सिद्धमब्रवीत् ।
नियमं कञ्चिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४
येनाहं कर्मणा सिद्ध तं जानामि न चान्यथा ।
तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५
कथयामास सिद्धस्तु सोऽपीमं नियमं जगौ ।
तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽद्य कृतो मया ॥११६
न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वै शकटं सत्यमीरितम् ।
इत्युक्त प्रययौ सिद्ध स्वर्गे दृष्ट्वोर्वशीमथ ॥११७
प्राहासौ शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित् ।
तं सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साम्प्रतं मया ॥११८
नियमग्रहणादेव मूर्खो मा(ऽय)मुपहासक ।
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं वासं नारायणात्मजा ॥११९

अच्छा ऐसा ही करूँगा—यह कह कर वह सिद्ध स्वर्ग लोक को चला गया था और वहां पर उस उर्वशी के इन्द्र देव के भवन से निष्क्रमण करती हुई को उसने देखा था ॥११३॥ उस श्रेष्ठ सिद्ध ने उससे कहा था और उर्वशी ने उस सिद्ध को यही उत्तर मे कहा था कि वह श्रेष्ठ द्विज किसी भी नियम का पालन करे जिस कर्म के द्वारा हे सिद्ध ! मैं उसको जान सकूँ अन्यथा बिना नियम का पालन किये

जाने पर मैं नहीं जाना करती हूँ। उर्वशी के द्वारा कहे हुए उत्तर-वचन को सिद्ध ने आकर उस मूर्ख द्विज से कह दिया था ॥११४-११५॥ वह मूर्ख भी उसी नियम का पालन करने लगा था और उसने कहा था कि हे सिद्ध पुरुष तुम्हारे ही आगे यह नियम मैंने पूर्ण नया कर लिया है ॥११६॥ आज से लेकर मैं शकट का उपभोग नहीं करूँगा यह मैंने सर्वथा सत्य कह दिया है। इस प्रकार से उस मूर्ख द्विज के द्वारा कहे गये वह सिद्ध पुरुष पुन. स्वर्ग लोक मे चले गये थे और इसके अनन्तर स्वर्ग मे उस उर्वशी को देखा था ॥११७॥ इस सिद्ध ने कहा कि उसने यह कहा है कि आज से लेकर मैं शकट का कभी भी उपभोग नहीं करूँगा। तब तो उर्वशी ने उस सिद्ध पुरुष से कहा था कि अब मैंने उसको जान लिया है ॥११८॥ यह मूर्ख केवल एक नियम के ग्रहण करने ही से मेरा उपहास करने वाला होगया है। यह कह कर वह नारायण की आत्मजा शीघ्र ही अपने आवास स्थान को चली गयी थी ॥११९॥

सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महीतलम् ।
उर्वश्यपि वरारोहा गत्वा वाराणसी पुरीम् ॥१२०
मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा ।
अथासावपि मूर्खस्तु नदी मत्स्योदरी मुने ॥१२१
जगामाथ ददर्शासौ स्नायमानामथोर्वशीम् ।
तां दृष्ट्वा ववृधेऽप्यास्य मन्मथः क्षोभकृद्दृढम् ॥१२२
चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम् ।
तं मूर्खं सिद्धगदितं ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३
किमिच्छसि महाभाग मत्तः शीघ्रमिहोच्यताम् ।
करिष्यामि वचस्तुभ्यं त्वं विश्रब्धः करिष्यसि ॥१२४
आत्मप्रदानेन मम प्राणाग्रश्च शुचिस्मिते ॥१२५

वह सिद्ध भी काम चारी था और स्वेच्छा से इस मही तल पर विचरण किया करता था। वह श्रेष्ठ आरोह वाली उर्वशी भी वाराणसी

पुरी में चली गयी थी ॥१२०॥ वहाँ पर मत्स्योदरी के जल मे स्नान किया था और परम दिव्य शरीर के धारण करने वाली होगयी थी। हे मुने! इसके पश्चात् यह मूर्ख द्विज भी उस मत्स्योदरी नदी पर पहुच गया। वहा पर जाकर उसने स्नान की हुई या स्मरन करती हुई उर्वशी को देख लिया था। उसको देखकर अधिक दृढ क्षोभ करने वाला काम देव इसका बढ गया था ॥१२१-१२२॥ उस मूर्ख ने बहुत सी चेष्टाएँ की थी और उर्वशी उसको स्वय ही जान गयी थी। सिद्ध पुरुष के द्वारा बतलाये हुए उस महा मूर्ख द्विज को जान कर उर्वशी ने मन्द मुस्कराहट के साथ उस द्विज से कहा था ॥१२३॥ उवशी बोली—हे महा भाग! आप मुझ से क्या अभिलाषाएँ रखते हैं। यह मुझ को शीघ्र ही बतलाइये। मैं तेरे लिये वही करूगी और तू भी विश्रब्धता के साथ करेगा ॥१२४॥ मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—हे शुचि स्मित वाली! अपनी आत्मा का प्रदान करके अर्थात् स्वय अपने आप को मुझे समर्पित करके इस समय मे मेरे प्राणो की रक्षा करो ॥१२५॥

त प्राहाथोर्वशी विप्र नियमस्थाऽस्मि साप्रतम् ।
त्व तिष्ठस्व क्षणमथ प्रतीक्षस्वाऽऽगन मम ॥१२६
स्थितोऽस्मीत्यब्रवीद्विप्र साऽपि स्वर्ग जगाम ह ।
मासमात्रेण साऽऽगाता ददर्श त कृश द्विजम् ॥१२७
स्थित्य मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना ।
त दृष्ट्वा निश्चययुत भूत्वा वृद्धवपुस्तत ॥१२८
सा चकार नदीतीरे शकट शकरावृतम् ।
घृतेन मधुना चैव नदी मत्स्यादरी गता ॥१२९
स्नात्वाऽण भूमो वसन्ती शकट च यथार्थत ।
त ब्राह्मण समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०
मया तीव्र व्रत विप्र चीर्ण सौभाग्यकारणात् ।
व्रतान्ते निष्कृति दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१
स प्राह किमिद लोके दीयते शकरावृतम् ।
क्षुत्क्षामकण्ठ पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुत ।
इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम् ॥१३३

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इसके अनन्तर उस उर्वशी ने उस मूर्ख विप्र से कहा था कि मैं इस समय में नियम में स्थित हूँ। आप क्षण मात्र यहा पर स्थित रहिए और मेरे समागमन की प्रतिक्षा करिए ॥१२६॥ वह विप्र बोला था कि मैं यहीं पर स्थित हू। और वह भी पुन स्वर्ग लोक को चली गयी थी। एक मास के समय के बाद वह वहा पर समागत हुई थी और उसने उस अत्यन्त कृश द्विज को देखा था। वह एक मास तक बिना आहार किए हुए उस नदी के तट पर स्थित था और बद्ध शरीर वाले निश्चय से युक्त उसको देखा था ॥१२७-१२८॥ उस उर्वशी ने उस नदी के तीर पर एक शर्करा से आवृत शकर की रचना कर दी थी और वह शकर घृत तथा मधु से भी समावृत था। इसके उपरान्त वह मत्स्योदरी नदी म चली गयी थी ॥१२९॥ उस नदी मे स्नान करके फिर भूमि मे निवास करती हुई और यथार्थ रूप से शकर पर स्थित होकर उस मूर्ख ब्राह्मण को बुलाया था तथा उस सुलोचना ने उससे वाक्य कहा था ॥१३०॥ उर्वशी बोली—हे विप्र ! मैंने सौभाग्य प्राप्त करने के कारण से एक परम तीव्र व्रत को चीर्ण किया था। हे द्विज ! इस व्रत के अन्त मे मैं कुछ निष्कृति दूगी। उसे आप ग्रहण कीजिए ॥१३१॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—उस विप्र ने कहा था कि लोक में शर्करा से समावृत यह क्या दिया जाया करता है ? हे भद्रे ! क्षुधा से क्षाम कण्ठ वाला मैं आपसे यह पूछ रहा हूं। आप मुझे यह बतलाइए ॥१३२॥ उस उर्वशी ने कहा था कि हे विप्र ! यह शकट शर्करापिष्ट से समन्वित है। अब आप इसका ग्रहण करके अपने प्राणो की तृप्ति करो और इसमे विलम्ब मत करो ॥१३३॥

स तच्छ्रुत्वाऽथ संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन् ।
प्राह भद्रे न गृह्णामि नियमो हि कृतो मया ॥१३४
पुरतः सिद्धवर्गस्य न मोक्ष्ये शकटं त्विति ।
परिज्ञानार्थमुर्वश्या दद[illegible] ॥१३५

साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृत काष्ठमये त्वया ।
नासौ काष्ठमयो भुङ्क्ष्व क्षुधया चातिपीडितः ।।१३६
ता ब्राह्मण प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् ।
कृत भद्रेऽय नियम सामान्येनैव मे कृत ।।१३७
त भूय प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण ।
गृह गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्ब तव भोक्ष्यति ।।१३८
स तामुवाच सुदति न तावद्यामि मन्दिरम् ।
इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येप्यधिका गुणै. ।।१३९
सा मया मदनार्तेन प्रार्थिताऽऽश्वासितस्तया ।
स्थीयता क्षणमित्येव स्थास्यामीति मयोदितम् ।।१४०

इसके अनन्तर उर्वशी के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके तथा पूर्व सङ्कल्पित वचन का स्मरण करके क्षुधा से पीडित होते हुए भी उस विप्र ने उस उर्वशी से कहा था कि हे भद्रे ! मैं इसका ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैंने पहिले ही शकट न ग्रहण करने का नियम धारण किया है ।।१३४।। यह नियम भी सिद्धों के समक्ष में धारण किया था सो मैं तो इस शकट का उपभोग नहीं करूँगा । उर्वशी के परिज्ञान के लिये किसी अन्य को ही दे दीजिए ।।१३५।। उस उर्वशी ने कहा था कि हे भद्र ! पुन यह नियम काष्ठमय शकट के विषय में ही किया था और यह शकट काष्ठमय नहीं है अत इसका उपभोग आप कीजिए इसके उपभोग से आपके किये हुए नियम म कोई भी बाधा नहीं होगी क्योंकि आप इस समय म क्षुधा स भी अत्यन्त पीडित हो रहे हैं ।।१३६।। वह ब्राह्मण उससे बोला था कि हे भद्रे ! मैंने यह नियम करने के समय में कोई भी विशेषता का ध्यान करके नहीं किया था अपितु यह नियम सामान्य रूप से ही धारण किया था ।।१३७।। फिर वह उर्वशी उस ब्राह्मण से कहने लगी कि हे ब्राह्मण ! यदि आप इसका उपभोग नहीं करेंगे तो आप इसको ग्रहण कर अपने घर पर चले जाइये । आपका कुटुम्ब ही इसका उपभोग करेगा ।। १३८।। वह विप्र उससे बोला था कि हे सुन्दर दाँतो वाली ! मैं तब तक अपने घर को नहीं जाता हूँ । आप इस त्रिलोक

म गुणगणो के द्वारा सबसे अधिक है और श्रेष्ठ आरोह वाली हैं। आप इस समय में यहां पर समागत हो गई हैं ऐसी आपकी मैंने मदन से मोहित होकर उपभोग करने की प्रार्थना की थी और आपने मुझको पूर्ण रूप से सम्भोग कराने का आश्वासन भी प्रदान किया था कि क्षण भर यहां पर ही ठहरिए और मैंने उत्तर दिया था कि मैं यहीं पर स्थित रहूँगा ॥१३६ १४०॥

मासामात्र गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च ।
मम सत्यानुरक्तस्य सगमाय धृतव्रते ॥१४१
तस्य सा वचन श्रुत्वा स्व रूपमुत्तमम् ।
विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह त द्विजम् ॥१४२
साधु सत्य त्वया विप्र व्रत निश्चितचेतसा ।
निष्पादित हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३
अहमेवोर्वशा विप्र त्वा जिज्ञासार्थमागता ।
परीक्षितो निश्चितवान्भवान्सत्यतपा ऋषि ॥१४४
गच्छ शूकरकोद्देश रूपतीर्थेति विश्रुतम् ।
सिद्धि यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्व मामवाप्स्यसि ॥१४५
इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा ।
स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६
तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि ।
देहोत्सर्गे जगामासौ गान्धर्वं लोकमुत्तमम् ॥१४७

हे भद्रे ! उस आपके चले जाने पर एक मास का समय व्यतीत हो गया था और मैं यहीं पर स्थितवत रहा था। हे धृतव्रते ! मैं तुम्हारे साथ सङ्गम करने के लिये सत्य अनुराग वाला था ॥१४१॥ उस उर्वशी ने उस विप्र के इस वचन का श्रवण करके अपना अत्युत्तम रूप धारण कर लिया था। उस उर्वशी ने गम्भीर भाव के साथ विहँस कर उस द्विज से कहा था ॥१४२॥ उर्वशी बोली—हे विप्र ! आपने बहुत ही अच्छा और सत्य व्रत निश्चित चित्त वाले होकर पूर्ण किया था और बहुत हठ के साथ

ही मेरे दर्शन की अभिलाषा भी आपने की थी ॥१४३॥ हे विप्र ! मैं उर्वशी भी आपके पास आपकी जिज्ञासा के ही लिये आपके समीप मे समागत हो गई थी । मैंने आपकी परीक्षा भी अच्छी तरह से करली थी और आप पूर्ण निश्चय वाले परम सत्य तप से युक्त ऋषि हैं ॥१४४॥ अब आप शूकर कोद्देश मे चले जाइये वह रूप तीर्थ—इस नाम से विश्रुत है । हे विप्रेन्द्र ! वहाँ पर आप सिद्धि को प्राप्त होंगे और फिर आप मेरी प्राप्ति कर लेंगे ॥१४५॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विजो ! इतना कहकर वह उर्वशी ऊपर की ओर उडकर दिवलोक को चली गयी थी और वह सत्य तप वाला विप्र रूप तीर्थ को चला गया था ॥१४६॥ वहाँ पर परम शान्ति परायण होकर वह नियम व्रत धारण करते हुए पवित्र हो गया था और यह अपने शरीर के त्याग करने पर अत्युत्तम गान्धर्व लोक को चला गया था ॥१४७॥

तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा यथार्थतः ।
बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्परः ॥१४८
स यज्वा विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
पुत्रेषु राज्य निक्षिप्य ययौ शौकरव पुनः ॥१४६
रूपतीर्थे मृतो भूयः शक्रलोकमुपागतः ।
तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत ॥१५०
प्रतिष्ठाने पुरवरे बुधपुत्रः पुरूरवाः ।
बभूव तत्र चोर्वश्याः सगमाय तपोधनाः ॥१५१
एव पुरा सत्यतपा द्विजाति-
स्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसज्ञे ।
आराध्य जन्मन्यथ चार्च्य विष्णु-
मवाप्य भोगानथ मुक्तिमेति ॥१५२

वहाँ पर एक सौ मन्वन्तर पर्यन्त यथार्थ रूप से भोगो को भोगकर फिर इसके पश्चात् एक परम सुन्दर कुल में अपनी प्रजा के मनुष्यों के रञ्जन करने मे परायण होने वाला राजा हुआ था ॥१४८॥ वह राजा ■ घर मे जन्म ग्रहण करके बहुत ही नृपति हुआ था और अनेक यज्ञो के

द्वारा यजन किया था जिनमे परम श्रेष्ठ दक्षिणा दी गयी थी। इसके पश्चात् वह अपने पुत्रों को राज्य शासन का भार सौंप कर पुनः उसी शौकरन स्थल को चला गया था ॥१४६॥ उस रूप तीर्थ मे ही तपश्चर्या करते हुए पुनः उसने वहीं पर अपने देह को त्याग कर मृत्यु की प्राप्ति की थी और फिर इन्द्र के लोक में प्राप्त हो गया था। वहाँ पर एक सौ मन्वन्तर तक भोगो का उपभोग उसने किया था और दिव्यभोग ,भोगने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहां से भी च्युत हो गया था ॥१५०॥ फिर वह पुरवर प्रतिष्ठान मे प्रघ का पुत्र पुरूरवा हुआ था और वह तपोधन उर्वशी के साथ सङ्गम करने के लिये वहां पर हुआ था ॥१५१॥ इस प्रकार से पूर्वकाल मे सत्य तप वाला वह द्विज रूप नाम वाले परम प्रसिद्ध तीर्थ मे जीवन मे समाराधना करके तथा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करके मूर्ख होते हुए भी उसने भोगो की प्राप्ति की थी और इसके पश्चात् मुक्ति को भी प्राप्त कर लिया था ॥१५२॥

--:※:--

व्यासमुनिसवादमेविष्णुभक्तिहेतुकथन

श्रुत फल गीतिकाया अस्माभिः सुप्रजागरे ।
कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमा गतिम् ।
यथा विष्णौ भवेद्भक्तिस्तन्नो ब्रूहि महामते ।
तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम साप्रतम् ॥२
शृणुध्व मुनिशार्दूला. प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
यथा कृष्णे भवेद्भक्तिः पुरुषस्य महाफला ॥३
ससारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे ।
महामोहकरे नृणा नानादुःखशताकुले ॥४
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमान. पुन. पुनः ।
कथचिल्लभते जन्म देही मानुष्यक द्विजा. ॥५

मानुषत्वेऽपि विप्रत्व विप्रत्वेऽपि विवेकिता ।
विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेय सा ग्रह ॥६
यावत्पापक्षय पु सा न भवेज्जन्म सचितम् ।
तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रजागण मे जो गीतिका का गान किया जाता है उसका पुण्य फल हमने भली-भाँति श्रवण कर लिया है जिसके प्रभाव के द्वारा चाण्डाल भी परम गति को प्राप्त हो गया था ॥१॥ हे महामते ! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि किस प्रकार से भगवान् विष्णु मे भक्ति का भाव समुत्पन्न हो जावे । हम लोग तप और कर्म से इसके सुनने की बडी भारी उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनियो मे शार्दूलो ! मैं आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त पर्यन्त पूर्ण बतलाऊँगा आप लोग श्रवण करने मे सावधान हो जाइये कि जिस रीति से मनुष्य की महान् फल प्रदान करने वाली श्रीकृष्ण मे भक्ति हुआ करती है ॥३॥ यह ससार बडा घोर स्वरूप वाला है और समस्त प्राणियों को भय देने वाला है। इस ससार मे महान् मोह भरा हुआ है जो कि मनुष्यो को फँसा लिया करता है और यह ससार सैकडो ही दु खो से घिरा हुआ है ॥४॥ इस ससार मे तिर्यकों की सहस्र योनियाँ हैं उनमें यह बारम्बार जन्म लिया करता है । हे द्विजो ! यह देही बहुत ही कठिनाई के पश्चात् किसी प्रकार से मनुष्य का शरीर प्राप्त किया करता है ॥५॥ इस दुर्लभ मनुष्य देह मे भी विप्रत्व प्राप्त करना महान् कठिन है और विप्र होकर भी विवेकशीलता कठिन है । विवेक मे धर्म की बुद्धि का होना तथा उस बुद्धि के बल से श्रेय का ग्रहण होना महान् कठिन होता है ॥६॥ जब तक मनुष्यो के पूर्व जन्मों मे किये हुए पापो का क्षय नही होता है तब तक जगन्मय भगवान् वासुदेव मे भक्ति नही हुआ करती है ॥७॥

तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्ति कृष्णे यथा भवेत् ।
अन्यदेवेषु या भक्ति पुरुषस्येह जायते ॥८

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना ।
तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥६
स करोति ततो विप्रा भक्ति चाग्नेः समाहितः ।
तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥१०
पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः ।
प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥११
पूजा करोति विधिवत्स तु शम्भोः प्रयत्नतः ।
तुष्ट त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवतिः केशवे ॥१२
सपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
ततो भुक्ति च मुक्ति च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ॥१३

हे विप्रो ! इसी कारण से मैं वही उपाय अब बतलाता हूँ जिससे भगवान् श्रीकृष्ण मे भक्ति समुत्पन्न होवे । जो अन्य देवो मे भक्ति होती है वह भी इस लोक मे पर पुरुष की ही हुआ करती है ॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तद्गत अन्तरात्मा से कर्म-मन और वचन के द्वारा भगवान् के भजन करने मे ही उनकी भक्ति हुआ करती है ॥६॥ हे विप्रो ! इसके पश्चात् अग्नि से समाहित होकर वह मनुष्य भगवान् की भक्ति किया करता है । भगवान् हुताशन के सन्तुष्ट होने पर उसकी भगवान् भास्कर देव मे भक्ति होती है ॥१०॥ हे द्विजो ! जो मनुष्य निरन्तर भगवान् आदित्य की पूजा किया करता है उस पर भगवान् भास्कर प्रसन्न हुआ करते हैं और उनके प्रसन्न होने पर भगवान् शङ्कर मे भक्ति हो जाया करती है ॥११॥ वह मनुष्य जो प्रयत्न पूर्वक विधि विधान के साथ भगवान् शम्भु की पूजा किया करता है उस पर शम्भु प्रसन्न हो जाते हैं और त्रिलोचन प्रभु के सन्तुष्ट हो जाने पर भगवान् केशव मे भक्ति भाव उत्पन्न हो जाया करता है ॥१२॥ अव्यय (अविनाशी) वासुदेव नाम धारी उन जगत् के नाथ की भली-भाँति पूजा करके हे द्विजोत्तमो ! वह मनुष्य भुक्ति और मुक्ति दोनो को प्रा, [illegible] ता है ॥१३॥

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने ।
किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारण द्विज ॥१४

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ।
आसुरश्च तथा दैवः पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा ॥१५
दैवी प्रकृतिमाश्रित्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम् ।
आसुरी योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम् ॥१६
मायया हतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः ।
अप्राप्य त हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमा गतिम् ॥१७
तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः ।
महामोहकरी नृणा दुस्तरा चाकृतात्मभिः ॥१८
इच्छामस्ता महामाया ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम् ।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ पर कौतूहल हि नः ॥१९
स्वप्नेन्द्रजालसंकाशा माया सा लोककर्षणी ।
कः शक्नोति हरेर्माया ज्ञातुं ता केशवादृते ॥२०
या वृत्ता ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायार्थे नारदस्य च ।
विडम्बना तु ता विप्राः शृणुध्व गदतो मम ॥२१

मुनियो ने कहा—हे महामुने ! इस ससार मे बहुत-से अवैष्णव अर्थात् भगवान् विष्णु को नही मानने वाले मनुष्य दिखलाई दिया करते है। हे द्विज ! क्या और क्यो वे भगवान् विष्णु का अर्चन नही किया करते हैं ? इसका क्या कारण है कि वे विष्णु भगवान् को नही पूजते हैं ? उसे ही अब आप बतलाइये ॥१४॥ *श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनि* सत्तमो ! इस लोक मे दो प्रकार के प्राणियो की सृष्टि विख्यात है। एक तो आसुरी भावना वाले प्राणी होते हैं और दूसरे दैवी प्रकृति वाले जीव हुआ करते हैं। भगवान् स्वयम्भू ने आरम्भ मे ही पुरातन काल मे इन दोनो प्रकार के प्राणियों का सृजन किया था ॥१५॥ जो प्राणी दैवि प्रकृति को प्राप्त करते हैं भगवान् अच्युत की पूजा किया करते हैं और जो आसुरी योनि को प्राप्त हुए हैं वे नर श्री हरि को दूषित किया करते हैं अर्थात् उनमे दोष बता कर बुराई किया करते हैं ॥१६॥ भगवान् विष्णु की माया से वे हत विज्ञान् वाले होते हैं और नरो मे महान् अधम

ही हुआ करते हैं। हे विप्रो ! ऐसे अज्ञान दुष्ट आसुरी प्रकृति वाले उन श्रीहरि को न पाकर अन्त में परमाधम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥१७॥ उन भगवान् की माया इतनी गम्भीर है कि सुर और असुर कोई भी नहीं जानते हैं सबके लिये दुर्विज्ञेय होती है। यह भगवान् की माया मनुष्यों को महान् मोह उत्पन्न कर देने वाली होती है और जो आत्म-ज्ञान से रहित हैं उनके द्वारा वह बहुत ही दुस्तर हुआ करती है ॥१८॥ मुनियों ने कहा—हम लोग भगवान् विष्णु की उसी महा माया के विषय में जानने की इच्छा करते हैं जो कि परम दुस्तर है। हे धर्मज्ञ ! आप उसकी व्याख्या करने के लिये बहुत ही सुयोग्य महा पुरुष हैं। हमारे हृदय में इस सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥१९॥ महा मुनीन्द्र श्रीव्यासदेवजी ने कहा—वह भगवान् की माया स्वप्न और इन्द्र जाल के ही तुल्य लोकों के हृदय का समाकर्षण करने वाली होती है। भगवान् केशव के बिना उनकी उस महा माया को कौन जान सकता है ? ॥२०॥ जो ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म वेत्ता नारद को माया के चक्कर में डालने के लिये वृत्त हुई थी हे विप्रो ! उस विडम्बना (गलत विचार धारा) को सुनिये। मैं उसको बतलाता हूँ ॥२१॥

प्रागासीन्नृपतिः श्रीमानाग्नीध्र इति विश्रुतः ।
नगरे कामदमनस्तस्याथ तनयः शुचिः ॥२२
धर्मारामः क्षमाशीलः पितृशुश्रूषणे रत. ।
प्रजानुरञ्जको दक्षः श्रुतिशास्त्रकृतश्रम. ॥२३
पिताऽस्य त्वकरोद्यत्नं विवाहाय न चेच्छन ।
स पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४
सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छति मनुजाः किल ।
सुखमूलाह दाराश्च तस्मात्त्वं समाचर ॥२५
स पितुर्वचनं श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात् ।
मुहुर्मुस्तं च पिता चोदयामास भो द्विजा. ॥२६
अथामौ पितरं प्राह तात नामानुरूपता ।
मया समाश्रिता व्यक्ता वैष्णवी परिपालिनी ॥२७

त पिता प्राह सगम्य नैष धर्तोऽस्ति पुत्रक ।
न विधारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ।।२८

पहिले परम पुरातन काल मे एक श्रीमान् नृपति था जो आग्नीध्र- इस नाम से नगर मे प्रसिद्ध था । उसका पुत्र कामदमन था और इसका भी तनय परम शुचि क्षमा के शील स्वभाव वाला धर्माराम था जो अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा मे रति रखने वाला था । यह अपनी प्रजा के जनो का अनुरञ्जन करने वाला दक्ष और श्रुति तथा शास्त्र मे श्रम करने वाला था ।।२२-२३।। इसके पिता ने तो किया था किन्तु इसने विवाह करने के लिये इच्छा ही नहीं की थी । उसके पिता ने उससे पूछा था कि तुम दारा का सग्रह क्यो नही करना चाहते हो ।।२४।। मनुष्य इस सब कार्य को सुख के लिये ही अभिलाषा किया करता है। दाराएँ तो सुख की मूल हुआ करती हैं । अतएव मेरी आज्ञा है कि इस कार्य का तुम अवश्य ही समाचरण करो ।।२५।। वह अपने पिता के इस वचन का श्रवण कर गौरव से चुप हो गया था । हे द्विजो ! उसके पिता ने बार-बार प्रेरित किया था ।।२६।। इसके अनन्तर वह अपने पिता से बोला था कि हे तात ! मैंने अपन नाम की अनुरूपता का अर्थात् धर्माराम का जो अर्थ होता है उसी अर्थ के अनुसार रहने का समाश्रय ग्रहण किया है जो कि वैष्णवी परिपालनी व्यक्त है अर्थात् वैष्णवता के परिपालन करने वाली स्पष्ट है ।।२७।। उसके पिता ने उससे मिलकर कहा था कि हे पुत्र ! यह धर्म नहीं है और विद्वान् पुरुष को ऐसी धारणा नही करनी चाहिए ।।२८।।

कुरु मद्वचन पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव ।
मा निमज्ज कुल मह्य नरके सततिक्षयात् ।। ९

स हि त पितुरादेश श्रुता प्राह सुतो वशी ।
प्रीत. सस्मृत्य पौराणी ससारस्य विचित्रताम् ।।३०

शृणु तात वचो मह्य तत्त्वाक्य सहेतुकम् ।
नामानुरूप कर्तव्य सत्य भवति पार्थिव ।।३१

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च ।
प्राप्तानि दारसयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२
तृणगुल्मलतावल्लीसरीसृपमृगद्विजाः ।
पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया. ॥३३
गणकिन्नरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ।
यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुरा. ॥३४
नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः ।
सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ सहारे चापि संहृतः ॥३५

हे पुत्र ! मेरे वचन का पालन करो । मैं तुम्हारा पिता होने के कारण प्रभु हूँ । सन्तति के क्षय होने से नरक में मेरे कुल को निमग्न मत करो ॥२९॥ उसने पिता के उस आदेश को सुना था और वही वह सुत परम प्रसन्न होकर इस ससार की पौराणी विचित्रता का स्मरण करके बोला ॥३०॥ पुत्र ने कहा—हे तात ! मेरे तत्त्व से संयुत और हेतु वाले वचन श्रवण करिए । हे राजन् ! नाम के अनुरूप ही कर्त्तव्य सत्य होता है ॥३१॥ मैंने सहस्रों बार जन्म लिया है और सैकड़ों ही बार जरा और मृत्यु को प्राप्त किया है ॥३२॥ मैंने तृण-गुल्म-लता-वल्ली-सरीसृप मृग-पक्षी-पशु-स्त्री और पुरुष आदि का जन्म सैकड़ों ही बार प्राप्त किया है ॥३३॥ हे तात ! इसके अतिरिक्त गण-किन्नर-गन्धर्व-विद्याधर-महोरग-यक्ष गुह्यक-राक्षस दानव-अप्सरा सुर और नदीश्वरों के मैंने हे तात ! बार-म्बार सहस्रों जन्म प्राप्त किये हैं । मेरा बहुत बार इस सृष्टि में सृजन हुआ है और संहार में संहृत हुआ हूँ ॥३४-३५॥

दारसयोगयुक्तस्य तातेदृङ्मे विडम्बना ।
इतस्तृतीये यद्वृत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसम्भवम् ॥३६
अतीत्य जन्मानि बहूनि तात,
नृदेवगन्धर्वमहोरगाणाम् ।
विद्याधराणां सकिन्नराणां,

ततो महाभूदचला हि भक्ति-
जनार्दने लोकपतौ मधुघ्ने।
व्रतोपवासैर्विविधैश्च भक्त्या,
सतोषितश्चक्रगदास्त्रधारी ॥३८

तुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा,
विष्णु समारुह्य वरप्रदो मे।
प्राहोच्चशब्दं व्रियतां द्विजाते,
वरो हि य वाञ्छसि त प्रादस्ये ॥३६

ततोऽहमूचे हरिमीशितारं,
तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमि।
या सा त्वदीया परमा हि मया,
ता वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०

अथाब्रवीन्मे मधुकैटभारि.,
किं ते तया ब्रह्मन्मायया वै।
धर्मार्थकामानि ददानि तुभ्यं,
पुत्राणि मुख्यानि निरामयत्वम् ॥४१

ततो मुरारि पुनरुक्तवानह,
भूयोऽर्थधर्मार्थजिगीषितैव यत्।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे,
ममाद्य ता दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२

दारा के सयोग से युक्त मेरी हे तात ! ऐसी ही बिडम्बना है। यहाँ से मेरे तीसरे जन्म मे जो कुछ हुआ था उसका श्रवण आप कीजिए। मैं तीर्थ माहात्म्य से सम्भव को अत्यन्त सक्षेप से कहता हू ॥३६॥ हे तात ! मनुष्य, देव, गन्धर्व, महोरग, विद्याधर, खग, किन्नरो के बहुत से जन्मो मे उत्पन्न होकर और समाप्त करके एक वश मे मैं सुतपा महर्षि उत्पन्न हुआ था ॥३७॥ इसके पश्चात् मेरी मधु दैत्य के हनन करने वाले लोकों के स्वामी भगवान् जनार्दन मे महती अचला भक्ति हो गयी थी।

अनेक प्रकार के व्रतो और उपवासो के द्वारा भक्ति की भावना से मैंने सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले भगवान् को सन्तुष्ट कर लिया था ॥३८॥ वे महान् आत्मा वाले भगवान् विष्णु पक्षियो के स्वामी गरुड पर समारूढ होकर परम सन्तुष्ट होते हुए मुझे वरदान देने वाले पधारे थे और बहुत ही ऊचे स्वर से बोले —हे विप्र ! जो भी कुछ तुम चाहते हो वही वर मुझसे प्राप्त करलो मैं वही वरदान तुमको दे दूँगा ॥३९॥ इसके अनन्तर मैंने ईश श्री हरि से प्रार्थना की थी कि हे केशव ! यदि आप मुझ पर पूर्णतया सतुष्ट हैं तो मैं यही वर चाहता हू कि जो आपकी यह परम विचित्र माया है हे जनार्दन प्रभु मैं उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥४०॥ इसके उपरान्त वे मधु और कैटभ के हनन करने वाले प्रभु मुझसे बोले थे कि हे ब्रह्मन् ! उस माया से तुमको क्या प्रयोजन है । मैं तुमको धर्म, अर्थ, काम, मुख्य पुत्र और निरामयत्व (स्वस्थता) देता हूँ ॥४१॥ इसके अनन्तर पुन मैंने भगवान् मुरारि से कहा था कि पुन जो धर्म, अर्थ धर्म की जिगीषिता (जीतने की इच्छा) है यही आपकी माया है । मैं इसी के विषय मे ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ । हे पुष्कराक्ष ! आज आप मुझको उसे दिखा दीजिए ॥४२॥

ततोऽभ्युवाचाथ नृसिहमुरय,
श्रीश प्रभुर्विष्णुरिद वचो मे ।
माया मदीया न हि वेत्ति कश्चि
न्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३
पूर्व सुरर्पिद्विज नारदाख्यो,
ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्त ।
तेनापि पूर्व भवता यथव,
सतोपितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४
वर च दत्त (दातु) गतवानह च,
स चापि वव्रे वरमेतदेव ।
निवारितो मामतिमूढभावाद्-
भवान्यथैव वनवान्वर च ॥४५

तनो नमः,मोऽनर्थमिदं भारद ! स,
  मायां हि न वेत्ति मे कश्चन ।
ततो विप्रर्षिरवेद भगवतः,
  न वा कश्चिद् वेत्ति सुशीला ॥४९
स मोहमागतस्तस्य भारतोत्तमः,
  विप्रमेवारूढवान् मे वरो ।
त्व(मु)चरेत् नारद मया वरेण,
  किं चैव भक्त्या तु समं द्विज ॥५०
त्वमपि मोहतो विप्रर्षि प्रसादतः
  नारद भक्त्यानुसारेण दृढ ।
विस्मयात् परितापतः ।
  पूर्वं त्वं तदैव हि दृढोऽभूत् ॥५१
तथापि मृदभूमितो मृगसंगतः,
  वाचामस्तोम मम सुगुप्तम् ।
तव नाम प्राप्य (प) मनुजेषु,
  विस्मयात्सर्वाविशेषात्मि सुखे ॥५२

इसके पश्चात् मुनि सुन्दर श्रीमद् विष्णु भगवान् सुनाते यह वचन बोले। श्री विष्णु भगवान् ने कहा—मेरी माया को कोई भी नहीं जानता है और न कभी कोई जान ही सकता ॥४९॥ पहिले देवर्षि नारद नाम-धारी हे द्विज ! ब्रह्मा के पुत्र हुए थे जो मेरी भक्ति से युक्त थे। उन्होंने भी पहिले आपके ही समान मुझे सन्तोषित किया था क्योंकि आपके ही तुल्य वह भी पूर्ण भक्तिमान् थे ॥५०॥ मैं उनको भी वरदान देने के लिये उनके समीप में गया था और उन्होंने भी मुझ से यही वरदान जैसा तुम चाहते हो माँगा था। अज्ञान मूढ़भाव से मुझको विचलित किया था जैसा कि आपने वरदान प्राप्त करना मन किया है ॥५१॥ इसके अनन्तर मैंने उनसे कहा था कि हे नारद ! तुम जल में निमग्न होकर मेरी माया को जान सकोगे। इसके पश्चात् वह नारद जल में निमग्न हो गये थे और काशी के स्वामी की सुशीला कन्या होकर शोभित

हुए थे ॥४६॥ उस यौवन युक्त कन्या को सुन्दर धर्म वाले विदर्भ देश के राजा के पुत्र सुधर्मा के लिये दे दिया था। उस महर्षि ने भी उसके साथ अतुल कामो का सेवन किया था ॥४७॥ पिता के स्वर्ग मे चले जाने पर प्रतापवान् वह क्रम से समागत राज्य को प्राप्त कर बहुत ही हर्षित हो गया था। वह विदर्भ के राज्य का परिपालन करते हुए वह बहुत से पुत्र-पौत्रो से युक्त हो गया था ॥४८॥ इसके अनन्तर भूमिपति उस सुधर्मा का काशी के स्वामी के साथ बडा भारी युद्ध हुआ था। उस युद्ध मे पुन पौत्रो के सहित विदर्भ के राजा और काशीपति दोनो ही क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥४९॥

ततः सुशीला पितर सपुत्रं,
ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्।
पुराद्विनिःसृत्य रणावनिं गता,
दृष्ट्वा सुशीला कदन महान्तम् ॥५०
भर्तुर्बले तत्र पितुर्बले च,
दुखान्विता सा सुचिरं विलप्य।
जगाम सा मातरमार्तरूपा,
भ्रातृन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान् ॥५१
भर्तारमेषा पितरं च गृह्य,
महाश्मशाने च महाचितिं सा।
कृत्वा हुताशं प्रददौ स्वयं च,
यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव ॥५२
तदा सुशीला प्रविवेश वेगा-
द्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा।
तदा पुनः सा मुनिर्नारदोऽभूत,
स चापि वह्निः स्फटिकामलाभः ॥५३
पूर्णं सरोऽभूदथ चोत्ततार,
तस्याग्रतो देववरस्त केशव.।

प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम् ॥५४

कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे,
मृत च कं शोचसि नष्टबुद्धिः ।
व्रीडान्वितोऽभूदय नारदोऽसौ,
हतोऽहमेनं पुनरेव चाऽऽह ॥५५
इतीदृशा नारद कष्टरूपा,
माया मदीया कमलासनाद्यैः ।
शक्या न वेत्तुं समहेन्द्ररुद्रैः,
कथ भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम् ॥५६

इसके अनन्तर वह सुशीला पुत्रो के सहित पिताओ और पुत्र-पौत्रों के साथ पति को क्षीण समझ कर पुर से निकल कर रणभूमि मे चली गई थी और उस सुशीला ने वहां पर महान् विनाश देखा था ॥५०॥ अपने पिता की सेवा मे और स्वामी के बल मे उस महान् विनाश को देख कर वह सुशीला बहुत भारी दुःखित हुई थी और बहुत समय तक विलाप करके आर्त्त स्वरूप वाली वह माता के समीप मे गई थी। भाइयो को सुतो को, भाइयो के पुत्रो और पौत्रो को, स्वामी को और पिता को लेकर महान् श्मशान मे चली गयी थी तथा वहाँ पर एक बहुत बडी चिता बनाकर स्वय ही अग्नि लगा दी थी। जब वह अग्नि प्रज्वलित हो गई थी उस समय मे 'हा पुत्र ! हा पुत्र ! यह बोलती हुई वह सुशीला भी उसमे बडे वेग से प्रविष्ट हो गई थी। उस समय मे पुनः वह नारद मुनि हो गये थे। वह अग्नि भी स्फटिक के समान अमल आभा वाली हो गई थी ॥५१-५३॥ वह पूर्ण भरा हुआ सरोवर हो गया था और उसके ही आगे देववर भगवान् केशव वहाँ पर उतरे थे। और हँस कर वे देवर्षि नारद से बोले ॥५४॥ हे महर्षे ! अब मुझे यह बतला दो कि तुम्हारा पुत्र कौन है और नष्ट बुद्धि वाले होकर किस मृतपुत्र का आप शोक कर रहे हैं ? यह नारदमुनि इसके उपरान्त लज्जित हो गये थे।

इसके पश्चात् मैंने पुन- भी यही कहा था ॥५५॥ हे नानद ! इस रीति से यह मेरी माया वहुत ही कष्टों के स्वरूप वाली है। यह मेरी माया ब्रह्मा-रुद्र और इन्द्र आदि के द्वारा भी जानी नही जा सकती है। इस महान् दुर्विभाव्य (कठिनाई से भी न जानने के योग्य) मेरी माया को आप कि प्रकार से जान लेंगे ॥५६॥

स वाक्यमाकर्ण्य महामहर्षि-
रुवाच भक्ति मम देहि विष्णो ।
प्राप्तेऽय काले स्मरण तथैव,
सदा च सदर्शनमीश तेऽस्तु ॥५७
यत्राहमार्तस्त्रितिमद्य रूढः
स्तत्तीर्थं मस्त्वच्युतपापहन्त्रा ।
अधिष्ठित केशव नित्यमेव,
त्वया सहाऽऽस(हेद) कमलोद्भवेन ॥५८
ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ,
तीर्थं सितोदे [द] हि चितिस्तवास्तु ।
स्यास्याम्यह चात्र सदैव विष्णु-
र्महेश्वरः स्यास्यति चोत्तरेण ॥५९
यदा विरश्चे वंदन त्रिनेत्र.
स च्छेत्स्यतेय च मम् त्वय चो] प्रयाचम् ।
तदा कपालस्य तु मोचनाय,
समेष्यते तीर्थमिद त्वदीयम् ॥६०
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य,
पतिष्यते भूमितले कपालम् ।
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचन,
ख्यात पृथिव्या च भविष्यते तत् ॥६१
तदा प्रभृत्यम्बुदवाहनोऽसौ,
न मोक्ष्यते तीर्थवर सुपुण्यम् ।

न चैव तस्मिन्द्विज सप्रचक्षते,
तत्क्षेत्रमुग्र त्वथ ब्रह्मवध्या ॥६२
यदा न मोक्षत्यमरारिहन्ता,
तत्क्षेत्रमुख्य महदाप्तपुण्यम् ।
सदा विमुक्तेति सुरै रहस्य,
तीर्थं स्तुत पुण्यदमव्ययाख्यम् ॥६३

वह महा महर्षि मेरे इस वाक्य को सुनकर बोले थे कि हे विष्णो ! मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए। जब भी समय प्राप्त हो और आपका स्मरण करूँ उसी समय मे हे ईश ! सदा ही आपका मुझे दर्शन प्राप्त हो जाया करे ॥५७॥ जहा पर मैं अत्यन्त आर्त्त होकर आज चिता मे समारूढ हुआ था। हे अच्युत ! वह पापो का हनन करने वाला तीर्थ हो जावे। हे केशव ! नित्य ही कमलोद्भव आपके साथ अधिष्ठित रहू ॥५८॥ इसके अनन्तर हे द्विज ! मैंने उस देवर्षि नारद से कहा था कि उस श्वेत जल मे तेरी चिता तीर्थ हो जावेगा और मैं सदा ही विष्णु स्वरूप वहाँ पर स्थित रहूँगा और उत्तर भाग मे महेश्वर प्रभु सस्थित रहेंगे ॥५६॥ जिस समय मे भगवान् त्रिनेत्र विरञ्चि (ब्रह्मा) के मुख को करेंगे और मुझको उग्र वाणी कहेंगे तभी कपाल के मोचन करने के लिये तुम्हारे इस तीर्थ मे आयेंगे ॥६०॥ इस तीर्थ मे स्मयन करने वाले त्रिपुरान्तक के कपाल भूमि तल मे गिरेगा। तभी से यह तीर्थ 'कपाल मोचन" नाम से इस पृथिवी मे विख्यात होगा ॥६१॥ तभी से लेकर यह अम्बुदवाहन भी इस परम सुपुण्य तीर्थ को नही छोडेंगे। हे द्विज ! उसमे वह क्षेत्र ब्रह्म बध्या नही कहा जाता है ॥६२॥ जिस समय मे अमरो (देवो) के शत्रुओ के हनन करने वाले भगवान् विष्णु उस मुख्य क्षेत्र को नही छोडेंगे तभी से उस क्षेत्र ने महान् पुण्य कोप्राप्त किया है। उस समय मे सुरो के द्वारा यह विमुक्त करने वाला है यह रहस्य प्रकट हुआ और यह तीर्थ अव्यय नाम वाला पुण्य प्रदाता स्तुत हुआ है ॥६३॥

कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति,
तस्मिन्प्रविष्ट शुचिरप्रमादी ।

यदा तू मा चिन्तयते स शुद्ध,
प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादत् ॥६४
भूत्वा तस्मिन् द्रपियाचसज्ञो-
योऽन्यन्तरे दु स्वमुपाश्नुतेऽसौ ।
विमुक्तपापो वहुवर्षपूगै-
रुत्पत्तिमायास्यति विप्रगेहे ॥६५
शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले,
रुद्रो ह्रित तारकमस्य कीर्तयेत् ।
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्य नारद,
गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम् ॥६६
स चापि विप्रस्त्रिदिव चचार,
गन्धर्वराजेन समर्च्यमान. ।
एतवोक्त ननु वोधनाय
माया मदीया नहि शक्यते सा ॥६७
ज्ञातु भवानिच्छति चेत्तनोऽद्य,
एव विशस्वाप्सु च वेत्सि येन ।
एव द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो,
माव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये ॥६८
सोयामुखे तात ततो हि कन्या,
चाण्डालवेश्मन्यभवद्द्विजः स. ।
रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना,
अथाप सा यौवनमाससाद ॥६९
चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि,
विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
पतिर्न तस्या हि मनो बभूव,
सा तस्य चैवानिमता बभूव ॥७०
मनुष्य महान् से भी महान् पापों का समाचरण करके जिस समय
में इस तीर्थ में प्रविष्ट हो जाता है तो परम शुचि और ब्रह्मचारी हो

जाया करता है। जिस समय मे वह विशुद्ध होकर मेरा चिन्तन किया करता है तो वह भगवान् के प्रसाद से मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥६४॥ उसमे रुद्र पिशाच संज्ञा वाला होकर यह दूसरी योनियों मे दुःखो को भोगता है और बहुत से वर्षों के समूह मे पापो से विमुक्त होता हुआ एक विप्र के घर मे उत्पत्ति को प्राप्त करेगा ॥६५॥ फिर इसके अनन्तर अन्त काल मे यह शुचि तथा यतात्मा रुद्र देव इसको परम हित करने वाला और तारक नाम कीर्तित किया करते हैं। हे द्विज वर्य ! इस प्रकार से नारद से कह कर मैं अपने निवा संग्रह क्षीर सागर मे चला गया था ॥६६॥ वह विप्र भी फिर त्रिदिव मे सञ्चरण करने लगा था और गन्धर्वों के राजा के द्वारा समर्चित हो गया था। इसी के ज्ञान कराने के लिये मैंने यह कहा है मेरी माया ऐसी है कि वह नही जानी जा सकती है ॥६७॥ यदि अब आज इसका ज्ञान आप प्राप्त करना चाहते हैं तो इस जल मे प्रवेश करिए जिससे आप जान सकते हैं। इस प्रकार से भगवान् श्रीहरि के द्वारा वह द्विज प्रबोधित किया गया था और भावि अर्थ के योग से वह जल मे निमग्न हो गया था ॥६८॥ हे तात ! इसके उपरान्त वह द्विज कोवा मुख मे कन्या होकर एक चाण्डाल के घर मे उत्पन्न हुआ था। वह कन्या रूप लावण्य से समन्वित और शील के गुणो से उपपन्न थी। इसके पश्चात् उसने यौवन प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ एक रूप के सौन्दर्य से रहित सुबाहु नाम धारी चाण्डाल के पुत्र ने उससे विवाह कर लिया था। उस कन्या को वह अपना पति अभिमत नहीं हुआ था क्योंकि वह रूप से रहित था किन्तु वह पति को बहुत ही अधिक रूप लावण्य युक्त होने के कारण अभिमत हो गयी थी ॥७०॥

पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव,
कन्या च पश्चाद्वधिरा तथाऽन्या।
पतिर्दरिद्रस्त्वप साऽपि मुग्धा,
नदीगता रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१

गता कदाचित्कलश गृहीत्वा,
साऽन्तजल स्नातुमथ प्रविष्टा ।
यावद्द्विजोऽसौ पुनरेव ताव
ज्जात क्रियायोगरत सुशील ॥७२
तस्या स भार्ताऽथ चिरगतेति,
द्रष्टु जगामाथ नदी सुपुण्याम् ।
ददर्श कुम्भ न च ता तटस्था,
ततोऽतिदु खात्प्ररुरोद नादयन् ॥७३
ततोऽन्धयुग्म वधिरा च कन्या,
दु खान्विताऽसौ समुपाजगाम ।
ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा,
दु खान्विता वै रुरुदुर्भृशार्ता ॥७४
तत स पप्रच्छ नदीतटस्था
न्द्विजान्भवद्भिर्यदि योपिदेका ।
दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती,
आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५
नदी न भूयस्तु समुत्ततार,
एतावदेवेह समीहित न ।
स तद्वचो घोरतर निशम्य,
रुरोद शोकाश्रुपरिप्लुताक्ष ॥७६
त वै रुदन्त ससुत सकन्य,
दृष्ट्वाऽहमात सुतरा बभूव ।
आर्तिश्च मेऽभूदथ सम्स्मृतिश्च,
चाण्डालयोपाऽहमिति क्षितीश ॥७७

उसके दो पुत्र नत्रो स हीन हुए थे और पीछे एक कन्या बधिर समुत्पन्न हुई थी । फिर उसका पति भी बहुत दरिद्र हो गया था और इसके पश्चात् वह मुग्धा भी नदी पर जाकर नित्य ही रुदन किया करती थी

॥७१॥ किसी समय मे वह एक कलश ग्रहण करके वहा पर गयी थी और वह जल के अन्दर स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई थी। जब तक वह क्रिया योग मे रत सुशील द्विज पुन जात हुआ था। तब तक उसका स्वामी वह चाण्डाल पुत्र सुबाहु "बहुत देर की गयी हुई है"—यह विचार कर उस सुपुण्य नदी पर गया था। वहा पर उसने न तो उस कलश को ही देखा था और न नदी के तट पर स्थित उस अपनी पत्नी को ही देखा था। तब तो वह अत्यन्त दु ख से जोर से चिल्लाता हुआ क्रन्दन करने लग गया था ॥७२-७३॥ इसके अनन्तर वे दोनो अन्धे पुत्र और वधिर कन्या दु ख से समन्वित होकर वही पर आ गई थी। उन सबने अपने पिता को रुदन करते हुए देखकर वे सब बहुत ही आर्त्त होकर और दु खान्वित होते हुए रोदन करने लग गये थे ॥७४॥ इसके पश्चात् उसने उस नदी के तट पर स्थित द्विजो से पूछा था कि क्या आप लोगो ने जल ग्रहण करने के लिये आयी हुई कोई एक स्त्री को देखा था तबतो उन्होंने उसको यह उत्तर दिता था—कि वह स्त्री इस नदी के जल मे प्रविष्ट हो गई थी ॥७५॥ फिर वह इस नदी से वाहिर नही निकली थी–यही इतना हम सबने देखा था। उस चाण्डाल पुत्र सुबाहु ने उन द्विजो के द्वारा कहे हुए इस अत्यन्त घोर वचन का श्रवण कर वह शोक के आसुओ से परिप्लुत नेत्रो वाला होकर रुदन करने लग गया था ॥७६॥ अपने पुत्रो के और अपनी कन्या के सहित उसको करुणापूर्ण रुदन करते हुए देख कर मैं सुतरा बहुत ही आर्त हो गया था। हे क्षितीश ! मुझे उस समय मे आर्त्ति हुई थी और साथ ही मुझे स्मृति भी हो गई थी कि वह चाण्डाल की कन्या जो इसकी धर्मपत्नी थी वह मैं ही तो था ॥७७॥

ततोऽब्रव त नृपते मतङ्ग ,
किमर्थमार्तेन हि रुद्यते त्वया ।
तस्या न लाभो भविताऽतिमौर्ख्या-
दाक्रन्दितेनेह वृथा हि किं ते ॥७८

स मामुवाचाऽऽत्मजयुग्ममन्धं.
कन्या चैका वधिरेयं तथैव ।
कथ द्विजाते अधुनाऽऽत्तमेत-
माश्वासयिष्येऽप्यथ पोपयिष्ये ॥७६
इत्येवमुक्त्वा स सुतैश्च सार्धं,
फूत्कृत्य फूत्कृत्य च रोदिति स्म ।
यथा यथा रोदिति स श्वपाक-
स्तथा तथा मे ह्यभवत्कृताऽपि ॥८०
ततोऽहमार्तं तु निवार्य त वै,
स्ववशवृत्तान्तमथाऽऽचचक्षे ।
ततः स दुःखात्सह पुत्रकै-
सविवेश कोकामुखमार्तरूपः ॥८१
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्ग-
स्तीर्थप्रभावाच्च विमुक्तपापः ।
विमानमारुह्य शशिप्रकाश,
ययौ दिव तात ममोपपश्यतः ॥८२
तस्मिन्प्रविष्टे सलिले मृते च,
ममार्तिरासीदतिमोहकर्त्री ।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्य कोका-
जले प्रविष्टस्त्रिदिव गतश्च ॥८३
भूयोऽभव वैश्यकुले व्यथार्तो,
जातिस्मरस्तीर्थवरप्रसादात् ।
ततोऽतिनिर्विण्णमना गतोऽहं,
कोकामुख सयतवाक्यचित्तः ॥८४

हे नृपते ! उसके पश्चात् मैंने उस मतङ्ग से कहा था कि तुम किस-लिये इतने आर्त्त होकर रुदन कर रहे हो। उस तुम्हारी पत्नी का तो लाभ अब हो नहीं सकता है। अत्यन्त मूर्खता से यहाँ पर वृथा क्रन्दन करने से तुमको क्या लाभ होगा ॥७८॥ वह फिर मुझसे बोला था कि

ये दो मेरे अन्धे पुत्र हैं और यह एक बहिरी कन्या है। हे विप्र! इन सब परमाधिक आर्त्तों को मैं कैसे समाश्वासन दूँ और मैं किस तरह से इनका पोषण करूँगा? ॥७९॥ बस, इतना भर इस प्रकार से कह कर वह फूट-फूट कर रुदन करने लग गया था। जैसे जैसे वह श्वपाक (चाण्डाल) रोता था वैसे ही वैसे मुझे भी बहुत वेदना हुई थी ॥८०॥ इसके उपरान्त मैंने उस परमाधिक आर्त्त को निवारित करके फिर मैंने अपने वश का सारा वृत्तान्त उसको कहा था। इसके उपरान्त वह [illegible]ख से अपने पुत्रों के सहित आर्त्त रूप वाला होकर कोका मुख मे प्रवेश कर गया था ॥८१॥ उस तीर्थ मे जैसे ही उसने प्रवेश किया था वह मातङ्ग प्रविष्ट होते ही उस तीर्थ के प्रभाव से वह समस्त पापों से विमुक्त हो गया था। हे तात! वह फिर मेरे देखते-देखते हुए चन्द्र के समान प्रकाश वाले एक विमान पर समारूढ होकर दिव्य लोक को चला गया था ॥८२॥ उस सलिल मे उसके प्रविष्ट होने पर तथा मृत हो जाने पर मेरी आर्त्ति अत्यन्त मोह के करने वाली हो गई थी। हे नृपवर्य! इसके पश्चात् मैं भी उस अत्यन्त पुण्यमय कोका के जल मे प्रविष्ट हो गया था और त्रिदिव लोक को चला गया था ॥८३॥ पुन: मैं व्यथा से आर्त्त होता हुआ एक वैश्य के कुल मे समुत्पन्न हुआ था। उस श्रेष्ठ तीर्थ के प्रसाद से मुझे अपनी जाति का स्मरण था। इसके अनन्तर मैं निर्वेद युक्त मन वाला तथा संयत वाक्य और चित्त वाला होकर कोका के मुख में चला गया था ॥८४॥

व्रतं समास्थाय कलेवरं स्व,
सशोषयित्वा दिवमारुरोह।
तस्माच्च्युतस्त्वद्भवने च जातो,
जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात् ॥८५

सोऽहं समाराध्य मुरारिदेव,
कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छः।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य,
गत्वा च कोकामुखमग्रतीर्थम्।

विष्णु समाराध्य वराहरूप-
मवाप सिद्धि मनुजर्षभोऽसौ ॥८६
इत्थ स कालदमन सहपुत्रपौत्रः,
कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये ।
त्यक्त्वा तन दोषमयी ततस्तु,
गतो दिव सूर्यमयैर्विमानै ॥८७
एव मयोक्ता परमेश्वरस्य,
माया सुराणामपि दुर्विचिन्त्या ।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारे-
र्यया जगन्मोहमुपैति विप्र' ॥८८

यतो मे समास्थित होकर अपने शरीर का शोषण करके देव लोक में पहुंच गया था । उसके भोगो की अवधि समाप्त होने पर वहाँ से च्युत होकर अब इस समय मे आपके भवन मे मैंने जन्म ग्रहण किया है । हे तात ! भगवान् श्रीहरि के प्रसाद से ही मैं अपनी पूर्वारत जातियो के स्मरण करने वाला हूँ ॥८५॥ वही मैं अब देवेश्वर श्री मुरारि की समाराधना करके उसी कोका के मुख मे अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों के त्याग करने की इच्छा वाला हूँ । बस, केवल इतना इस प्रकार से कह कर और अपने पिता को प्रणाम करके वहा कोका के मुख उग्र तीर्थ पर पहुंच गया था और वहाँ पर वराह स्वरूप भगवान् विष्णु की समाराधना करके वह मनुष्यो मे श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त हो गया था ॥८६॥ इस प्रकार से वह काल दमन अपने पुत्रो तथा पौत्रो के साथ ही सुपुण्य मय श्रेष्ठ तीर्थ कोका मुख मे उस दोषो से परिपूर्ण शरीर का त्याग करके उसके अनन्तर सूर्यमय विमानो के द्वारा दिव लोक मे चला गया था ॥८७॥ इस रीति से मैंने परमेश्वर प्रभु की माया को जो देवो के द्वारा भी बहुत ही दुर्विन्तनीय है आप लोगो के समक्ष मे वर्णित कर बतला दिया है । यह भगवान् मुरारि की माया स्वप्न और इन्द्र जाल के ही समान है । हे विप्र ! जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् महा मोह को प्राप्त हुआ करता है ॥८८॥

व्यासमुनिसंवाद में महाप्रलयवर्णन

अस्माभिस्तु श्रुत व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् ।
प्रादुर्भावाश्रित पुण्य माया विष्णोश्च दुर्विदा ॥१

श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसहृतिम् ।
महाप्रलयसज्ञा च कल्पान्ते च महामुने ॥२

श्रयता भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसहृतिः ।
कल्पान्त प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३

अहोरात्र पितृणा तु मासोऽब्द त्रिदिवौकसाम ।
चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहर्द्विजोत्तमाः ॥४
कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
देवैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५
चतुर्युगाण्यशेपाणि सदृशानि स्वरूपत ।
आद्य कृतयुग प्रोक्त नयोऽन्त्य तथा कलिम् ॥६

आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यत. ।
क्रियते चोपसहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७

मुनिगण ने कहा—हे व्यास देव जी ! आपने इस समय मे जो भगवान् विष्णु की दुर्विदा (ज्ञान मे न आने वाली) माया और प्रादुर्भाव के आश्रित महापुण्य का भली भाँति वर्णन किया है वह हमने अच्छी तरह से सुन लिया है ॥१॥ हे महामुने ! अब हम लोग आपके मुख से महा प्रलय की सज्ञा वाली जो उपसहृति है जो कल्प के अन्त मे होती है उसके विपय में यथावत् श्रवण करने की बडी उत्कट अभिलाषा रखते हैं ॥२॥ श्री व्यास देव जो ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! जिस तरह से कल्प के अन्त मे तथा प्राकृत प्रलय मे उपसहार हुआ करता है उसको अब आप लोग सुनिये ॥३॥ पितृगणो का जो अहोरात्र का एक शब्द होता है वही देवो का एक मास हुआ करता है । एव सहस्र सत्ययुग त्रेता-द्वापर-कलियुग इन चारों युगो की चौकड़ी को जब एक सहस्र सख्या पूरी हो

जाती है तभी ब्रह्माजी का एक दिन हुआ करता है। हे द्विजोत्तमो ! कृतादि चार युग ऊपर अभी बता दिये गये हैं। ये चारों युग देवो के बारह वर्षों से कहे जाते हैं ॥४-५॥ ये चारो युग सम्पूर्ण स्वरूप से समान होते हैं। सबसे आदि मे होने वाला कृतयुग होता है और अन्त में होने वाला कलियुग इन चारो युगो मे हुआ करता है ॥६॥ आदि मे होने वाले कृतयुग मे ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि की जाया करती है और अन्त मे कलियुग मे उपसहार किया जाता है ॥७॥

कलेः स्वरूप भगवन्विस्तराद्वक्तु महंसि ।
धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८
कलिस्वरुप भो विप्रा यत्पृच्छध्व ममानघाः ।
निबोधध्व समासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।
न सामऋग्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुकी ॥१०
विवाहा न कलौ धर्मा न शिष्या गुरुसस्थिताः ।
न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च वह्निक्रियाक्रमः ॥११
यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वश्वरः कलौ ।
सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो नरः कन्योपजीविनः ॥१२
येन तेनैव योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च विप्रेन्द्राः प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३
सर्वमेव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विजाः ।
देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्य चाऽऽश्रमः ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप कलि का स्वरूप विस्तार पूर्वक बताने के योग्य हैं। इसमे चारपादो वाला भगवान् धर्म विकलता को प्राप्त हो जाता है ॥८॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे विप्रो ! हे अनघो ! कलियुग का स्वरूप जो आप मुझसे पूछ रहे हो उसको संक्षेप से जो महत्तर होता है उसे समझ लो ॥९॥ कलियुग में वर्ण-आश्रम और आचार वाली मनुष्यो की प्रवृत्ति नहीं हुआ करती है और वह साम-ऋक् और यजुर्वेद के निष्पादन के हेतु वाली नहीं हुआ करती है ॥१०॥ इस

कलियुग में विवाह धर्म नहीं माने जाते हैं और विलासिता का ही एक उपभोग सामग्री समझते हैं। शिष्य लोग गुरु की आज्ञा में संस्थित नहीं होते हैं पुत्रगण धर्म के मार्ग में रहने वाले नहीं हैं और कलि में अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी यहाँ कोई क्रम नहीं हुआ करता है ॥११॥ जहाँ सदा किसी भी कुल में समुत्पन्न होने वाला मनुष्य इस कलि में जो बलवान् होता है वही सर्वेश्वर हुआ करता है। सभी वर्णों के लिये मनुष्य कन्योपजीवी होते हैं। जिस किसी भी योग से द्विजाति कलियुग में दीक्षित हो जाता है। हे विप्रेन्द्रो! इस कलियुग में जो ही हो वह ही प्रायश्चित्त की क्रिया हुआ करती है या मान ली जाया करती है ॥१३॥ हे द्विजो! इस कलियुग में जो भी कुछ कहीं कहा या लिखा होता है तथा कोई किसी का वचन होता है वही शास्त्र मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और सभी कुछ सबका आश्रय होता है। तात्पर्य यह है कि वास्तविक आश्रय किसी का नहीं होता है ॥१४॥

उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ ।
धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५
वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ।
स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६

सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षयं गते ।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृताः ॥१७
परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।
भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥१८

यो यो ददाति बहुलं स स स्वामी तदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुः सम्बन्धो भावी नाभिजनस्तदा ॥१९
गृहान्ता द्रव्यसंघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
अर्थाश्चात्मोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ।
अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः ॥२१

उपवास तथा आयास और वित्त का उत्सर्ग कलियुग मे होता है। अपनी रुचि के अनुसार अनुष्ठानो से अनुष्ठित ही धर्म हुआ करता है ॥१५॥ कलियुग मे बहुत थोड़े से ही धन से मद हो जाता है। स्त्रियो को रूप का मद केशो से ही होगा ॥१६॥ इस कलियुग मे स्वर्ण-मणि और रत्न आदि और वस्त्रो के उपक्षीण हो जाने पर उस समय मे स्त्रियाँ केवल अपने केशो से ही अलङ्कृत हुआ करेंगी ॥१७॥ स्त्रियाँ वित्त से हीन अपने स्वामी को त्याग देगी और नारियो का भर्त्ता कलि मे धनवान् ही हुआ करेगे ॥१८॥ जो-जो भी अधिक दिया करता है वही उस कलि के समय मे मनुष्यो का स्वामी होता है। उस समय मे स्वामित्व के हेतु का सम्बन्ध अभिजन ही होगा ॥१९॥ द्रव्य के सघात गृहो के अन्त कर देने वाले होगे तथा मति द्रव्यो को समाप्त कर देने वाली हो जायगी। जो भी अर्थ होगे वे वर्णन मे सब उपभोग मे समाप्त होने वाले हो जायेंगे ॥२०॥ कलियुग मे स्त्रियाँ सभी ललित स्पृहा की रखने वाली स्वैरिणी हो जायँगी अर्थात् आजाद स्वभाव वाली और दुराचार मे निरत हो जायगी। पुरुषो के भी अन्याय से वित्त प्राप्त करने मे चित्त हो जायेंगे और सर्वदा ऐसी ही स्पृहा उनके मन मे रहा करेगी ॥२१॥

अभ्यर्थितोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं तु मानवः।
पणस्यार्धार्धमात्रेऽपि करिष्यति सदा द्विजाः ॥२२
सदा सपौरुप चेतो भावि विप्र तदा कलौ।
क्षीरप्रदानसबन्धि भाति गोषु च गौरवम् ॥२३
अनावृष्टिभयात्प्राय प्रजा. क्षुद्भयकातरा।
भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टय. ॥२४
मूलपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः।
आत्मान घातयिष्यन्ति त-ऽनावृष्ट्याऽभिदु.खिता. ।२५
दुर्भिक्षमेव सतत सदाक्लेशमनीश्वराः।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखा प्रमादान्मानवा. कलौ ॥२६
अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम्।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियान् ॥२७

लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्परा ।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८

हे द्विजो ! उस कलियुग के समय मे सुहृदो के द्वारा अभ्यर्थित भी मानव पण के अर्धार्ध मात्र मे भी स्वार्थ की हानि करेगा ॥२२॥ हे विप्र ! उस कलियुग के समय मे सदा पौरुष से युक्त चित्त होगा और गौओ मे दूध के प्रदान से सम्बन्ध रखने वाला ही गौरव होता है अर्थात् धार्मिक दृष्टि से गौ की मान्यता कोई नही करेगा ॥२३॥ वर्षा के न होने के भय से प्रजा सर्वदा ही भूखो मरने के डर से कातर रहा करेगी । उस कलियुग के समय मे सभी प्रजाजन गगन मे ही आसक्त दृष्टि वाले रहा करेंगे और वृष्टि होने की प्रतीक्षा करते रहगे ॥२४॥ मानवगण अन्न के अभाव होने के कारण मूल-पर्ण (पत्ते) और फलो के आहार करने वाले तापसो के ही समान रहा करेंगे । अवृष्टि के होने से अत्यन्त अभिदु खित होते हुए उस कलि मे अपने आप का घात अर्थात् प्राण त्याग किया करेंगे ॥२५॥ कलियुग मे प्रमाद के कारण मनुष्य निरन्तर अकाल को तथा सदा ही क्लेश को सुख को व्याहत करके असमर्थ होते हुए प्राप्त किया करेंगे ॥२६॥ कलि के प्राप्त हो जाने पर मनुष्य बिना ही स्नान किये भोजन करने होकर अग्नि-देवता तथा अतिथियो का भी पूजन नही करेंगे और पिण्डोदक की भी कोई क्रिया नही करेंगे ॥२७॥ कलियुग मे स्त्रियाँ-अत्यन्त लालची-छोटे कद वाले बहुत-से अन्न के खाने मे तत्पर-अधिक सन्तति वाली और अल्प भाग्य वाली होंगी ॥२८॥

उभाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तॄणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनावृता ॥२९
स्वपोषणपराः क्षुद्रा देहसंस्कारवर्जिताः ।
परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०
दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वत्यः सततं स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१
वेदादानं करिष्यन्ति वटवाश्च तथाऽव्रताः ।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ॥३२

भवेयुर्वनवासा वै ग्राम्याहारपरिग्रहाः ।
भिक्षवश्चापि पुत्रा हि स्नेहसबन्धयन्त्रकाः ॥३३
अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवा. ।
हारिणो जनवित्तानां सप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति ।
यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५

स्त्रियाँ अपने दोनो हाथो से अपने मस्तक को करती हुई अनावृत होकर गुरु-भर्त्ता की आज्ञा का भेदन किया करेंगी ॥२९॥ कलियुग मे स्त्रियाँ अपने पोषण मे ही परायण-क्रुद्ध-देह के सस्कार से रहित-कठोर और मिथ्या भाषण करने वाली होंगी ॥३०॥ बुरे शील स्वभाव वाली और दुष्ट शील वालो मे निरन्तर स्पृहा करती हुई कुलाङ्गनाएँ भी पुरुषो के विषय मे असत् चरित्र वालो होंगी ॥३१॥ बडवा तथा बिना व्रत वाले गृहस्थ लोग हवन नही किया करेंगे और जो उचित पदार्थ होंगे उनको भी नही दिया करेंगे ॥३२॥ ग्राम्य आहार के परिग्रह वाले व मे निवासी भिक्षुगण होंगे और पुत्र स्नेह के सम्बन्ध यन्त्रक मात्र होंगे ॥३३॥ कलियुग मे राजा शुल्क के व्याज (मिष) से धन के हरण करने वाले तथा प्रजा की रक्षा न करने वाले होकर मनुष्यो के वित्त का अपहरण किया करेंगे ॥३४॥ जिस जिसके समीप मे अश्व और रथ होंगे वही-वही राजा हो जायगा और कलियुग के सम्प्राप्त होने पर जो जो भी मनुष्य बलहीन होगा वही वही सब भृत्य अर्थात् परिचर्या करने वाला हो जायगा ॥३५॥

वैश्याः कृषिवणिज्यादि सत्यज्य निजकर्म यत् ।
शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारुकर्मोपजीविन. ॥३६
भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
पाखण्डसश्रया वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसस्कृताः ॥३७
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जनाः ।
गोधूमान्नयवान्नाढ्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८

वेदमार्गे प्रलीने च पाखण्डाढ्ये ततो जने ।
अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ।।३९
अशास्त्रविहित घोर तप्यमानेषु वै नप. ।
नरेपु नृपदोपेण बालमृत्युर्भविष्यति ।।४०
भवित्री योषिता सूति पञ्चषट्सप्तवार्षिकी ।
नवाष्टदशवर्षाणा मनुष्याणा तथा कलौ ।।४१
पलितोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिक. ।
न जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ।।४२

वैश्य वर्ण वाले मनुष्य कृषि और वाणिज्य तथा पशुओ का पालन आदि अपने कर्मों का परित्याग करके कारु (दस्तकारी द्वारा कारीगर का काम करने वाले) के कर्मो से जीविका करने वाले शूद्रो की वृत्ति से युक्त हो जांयगे ।।३६।। शूद्रगण भिक्षा से प्राप्त अन्न के खाने वाले साधु सन्यासियो के चिह्नो क धारी-अधम बहुत तरह के पाखण्ड करने वाले सस्कारो से हीन वृत्ति का आश्रय ग्रहण करेंगे ।।३७।। दुर्भिक्षो (अकाल) और करो (टैक्स) की पीडाओ से महान् दु खित एव उपद्रवों से युक्त मनुष्य अतीव पीडित होते हुए गेहूँ यवान्न आदि को अन्य देशो का ले जायगें ।।३८।। वेदो के बताये मार्ग के प्रलीन होजाने तथा मनुष्यो के पाखण्डो से समुत होने पर अधर्म की वृद्धि हो जायगी और धर्म के अभाव तथा अधम के बढ़ जाने स लोगो की आयु बहुत ही कम हो जाया करेंगी ।।३९।। जिसका कही भी शास्त्रो मे विधान नही है ऐसा ही महान् घोर तप मनुष्य कलियुग मे करेंगे और नृपो के दोपो के होने से बालको की बहुत छोटी अवस्था म मृत्यु हो जाया करेगी ।।४०।। पाँच छँ और सात वर्ष की स्त्रियो के ही सन्तति का प्रसव होने लग जायगा तथा मनुष्यो की इस घोर कलियुग मे नौ-आठ तथा दश वर्ष की आयु हुआ करेगी ।।४१।। जब मनुष्य बारह वर्ष का होगा तभी उसके बाल सफेद हो जाया करेंगे अर्थात् वृद्धता के चिह्न उत्पन्न हो जायगे इस घोर कलियुग मे मनुष्य कोई भी बीस वर्ष तक जीवित नहीं रहा करेगा ।।४२।।

अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्त करणा. कलौ ।
यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवा ॥४३
यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणै ॥४४
यदा यदा सता हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणै ॥४५
प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृता नृणाम् ।
तदाऽनुमेय प्राधान्य कलेर्विप्रा विचक्षणै ॥४६
यदा यदा न यज्ञानामीश्वर. पुरुपोत्तम ।
इज्यते पुरुपैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेय कलेर्बलम् ॥४७
न प्रीतिर्वेदवादेपु पाखण्डेपु यदा रति. ।
कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया द्विजोत्तमा ॥४८
कलौ जगत्पति विष्णु सर्वस्रष्टारमीश्वरम् ।
नार्चयिष्यन्ति भो विप्रा पाखण्डोपहता नरा. ॥४९

कलि मे मनुष्य बहुत ही कम बुद्धि वाले निरर्थक चिह्नो के धारी तथा दूपित अन्त करण वाले हो जायगे । मनुष्य जहाँ तहाँ थोडे ही समय मे विनष्ट हो जायगे ॥४३॥ जब-जब यहाँ पर पाखण्डो से परिपूर्ण वृत्ति दिखलाई देवे तभी-तभी विचक्षण पुरुषो को इस कलियुग की वृद्धि होने का अनुमान लगा लेना चाहिए ॥४४॥ जिस जिस समय मे वेदों के निर्दिष्ट मार्गों के अनुसरण करने वाले सत्पुरुषो की हानि दिखलाई देवे उसी-उसी समय मे कुशल और बुद्धिमान् पुरुषो को अनुमान कर लेना चाहिए कि अब कलियुग का बढाव होता चला आ रहा है ॥४५॥ हे विप्रो ! धर्म करने वाले मनुष्यो के प्रारम्भ जब अवसन्नता को प्राप्त होते हैं तभी यह अनुमान विचक्षण पुरुषो को लगा लेना चाहिए कि कलियुग की प्रधानता हो रही है ॥४६॥ जब जब यज्ञो के अधिष्ठाता पुरुषोत्तम प्रभु का मनुष्यो के द्वारा यजन नही किया जाया करता है तभी-तभी इस घोर कलियुग के बल की वृद्धि का ज्ञान कर लेना चाहिए ॥४७॥ हे

द्विजोत्तमो ! जिस समय मे वेदो के पादो मे मनुष्यो की प्रीति न होवे और जब पाखण्डपूर्ण कर्मों मे लोग रति करने लगेंगे उसी समय मे प्राज्ञ पुरुषो को कलि की वृद्धि का होना समझ लेना चाहिए ॥४८॥ कलियुग मे सभी का सृजन करने वाले जगत् के स्वामी ईश्वर भगवान् विष्णु का हे विप्रो ! पाखण्डो से उपहत मनुष्य अभ्यर्चन नही किया करेंगे ॥४६॥

कि देवै. कि द्विजैर्वेदै: कि शौचेनाम्बुजल्प(न्म)ना ।
इत्येव प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहला नरा: ॥५०
अल्पवृष्टिश्च पर्जन्य: स्वल्प सस्यफल तथा ।
फल तथाऽल्पसार च विप्रा: प्राप्ते कलो युगे ॥५१
जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहा: ।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलो युगे ॥५२
अणुप्रायाणि धान्यानि आजप्राय तथा पय: ।
भविष्यति कलो प्राप्त औशीर चानुलेपनम् ॥५३
श्वश्रूश्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणा कलो ।
शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तमा: ॥५४
कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मक: पुमान् ।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नरा: ॥५५
वाङ्मन.कायजैर्दोषैरभिभूता: पुन: पुन: ।
नरा पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधस: ॥५६

पाखण्डो से उपहत हुए मनुष्य कलियुग मे इन देवो के पूजन से क्या लाभ है–द्विजो के अर्चन क्यो किये जावें और वेदो से क्या फल होता है तथा जल के द्वारा शुद्धि करना अर्थात् हाथ पैर धोने और स्नानादि करने का कार्य व्यर्थ ही है इनसे क्या लाभ होता है'–इस प्रकार से प्रलाप किया करेंगे ॥५०॥ मेघ बहुत ही थोडी वृष्टि करने वाले होगे तथा फसल भी बहुत कम फलो के देने वाली हो जायगी हे विप्रो ! कलियुग के प्राप्त हो जाने पर फल भी बहुत ही अल्पसार वाला होगा ॥५१॥ प्राय घुटनो तक वस्त्र हुआ करेंगे और शमी (छोंकर) वृक्ष ही अधिकता से होंगे–सभी

वर्णों मे शूद्रता भाव हो जायगे—ऐसा ही सब ओर से ह्रास इस कलियुग में होगा ॥५२॥ सभी धान्य अणुप्राय अर्थात् कणो के रूप वाले होगे और दूध बहुधा बकरियो का-सा होगा । इस कलियुग के आ जाने पर उशीर का ही अनुलेपन हो जायगा ॥५३॥ कलि मे मनुष्यो के गुरुवर्ग वे ही होगे जिनमे सास श्वशुर की प्रधानता होगी । हे मुनिश्रेष्ठो ! कलियुग मे शालादि के आहरण करने वाली भार्या वाले लोग ही सुहृद हुआ करेंगे ॥५४॥ जब मनुष्य कर्मात्मक अर्थात् काम धाम सँभालने वाले हो जायगे तब यही कहा करेंगे कि कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता है अर्थात् माँ बाप कुछ भी नही हैं—इसी प्रकार से ससुराल मे श्वशुर के ही अनुगामी होकर मनुष्य उदाहरण दिया करेंगे अर्थात् अपने मुँह से कहेंगे ॥५५॥ बारम्बार मन-वाणी और शरीर से समुत्पन्न दोषो से अभिभूत हुए मनुष्य अल्प बुद्धि वाले होने के कारण से आधे दिन पाप कर्मो को ही किया करेंगे ॥५६॥

नि.सत्यानामशौचाना निर्ह्रीकाणा तथा द्विजाः ।
यद्यद्दु.खाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५७
नि स्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।
तदा प्रविरलो विप्रः कश्चिल्लोके भविष्यति ॥५८
तत्राल्पेनैव कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।
करोति यः कृतयुगे क्रियते तपसा हि य. ॥५९
यस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहाफलम् ।
वक्तुर्महस्यदोषेण श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०
धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम् ।
तथा भवेता स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फल द्विजा. ।
प्राप्नोति पुरुपस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम् ॥६३

हे द्विजगण ! सत्य से सर्वथा रहित अर्थात् सदा मिथ्या भाषण और व्यवहार करने वाले–सुचिता (पवित्रता) से हीन अर्थात् सर्वदा अपवित्र लज्जा से हीन मनुष्यों के लिये जो-जो भी अत्यन्त दुःख के पाने के लिये हो सकते हैं वे सभी कलि काल में होंगे ॥५७॥ स्वाध्याय (वेदों का पठन-पाठन) से रहित वषट् कार से हीन और स्वाहा तथा स्वधा वर्जित इस कलियुग मे कोई भी बिरला विप्र होगा । तात्पर्य यह है कि बहुत कठिनाई से इस कलि मे ऐसा विरला विप्र दिखाई दिया करेगा जो अपने कर्म धर्म मे निष्ठा रखने तथा उसे करने वाला हो क्योंकि कलियुग एक ऐसा भीषण युग है जब कही भी होम अर्चन वेदाध्ययन श्राद्ध आदि नही हुआ करेंगे ॥५८॥ किन्तु इस युग मे एक ही विशेषता होगी कि कृतयुग मे जो बडे लम्बे समय तक तप करके किया करता है उस उत्तम पुण्य स्कन्ध को मनुष्य बहुत ही थोडे समय मे कर लिया करता है ॥५९॥ मुनियों ने कहा—किस समय मे बहुत थोडा सा ही किया हुआ धर्म महान् फल का देने वाला हुआ करता है–यह सब आप अब बतलाने के योग्य होते हैं । हम लोगो की यह श्रवण करने के लिये बडी भारी इच्छा हो रही है ॥६०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्र ! इस दृष्टि से यह कलि-युग बडा ही धन्य है कि बहुत थोडे ही क्लेशों को सहन करने से बडा भारी फल इसमे प्राप्त हो जाया करता है और इसमे स्त्री एव शूद्र भी परम धन्य हो जाते हैं । उसको भी समझ लो ॥६१॥ दश वर्षों मे जो कृतयुग मे करने पर–एक वर्ष के समय मे त्रेता मे जिसके करने पर और द्वापर मे एक मास तक करने पर जो पुण्य फल अर्जित हुआ करता है वह इस कलि में एक ही अहोरात्र के समय म करने से स्वल्प काल मे ही हो जाया करता है ॥६२॥ हे द्विजो ! तपस्या का ब्रह्मचर्य का और जपादि का जो फल होता है उसको मनुष्य कलि मे साधु भाषण से ही प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥६४

धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।
स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ ॥६५

व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदा. पूर्वं द्विजातिभिः ।
ततस्तु धर्मसंप्राप्तैर्यष्टव्य विधिवद्धनैः ॥६६

वृथा कथा वृथा भोज्य वृथा स्व च द्विजन्मनाम् ।
पतनाय तथा भाव्य तैस्तु संयतिभिः सह ॥६७

असम्यक्करणे दोषास्तेषां सर्वेषु वस्तुषु ।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकर द्विजा. ॥६८

पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषां कार्येषु वै तत. ।
लोकाञ्क्लेशेन महता यजन्ति विनयान्विताः ॥६९

द्विजशुश्रूषणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निज जयति वै लोक शूद्रो धन्यतरस्ततः ॥७०

सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता मे यज्ञो के द्वारा यजन करने से, द्वापर मे अर्चन से जो फल प्राप्त होता है वह सभी फल इस कलियुग में केवल शुद्ध मन से भगवान् केशव के कीर्त्तन करने से ही हो जाया करता है ॥६४॥ कलियुग मे पुरुष अत्यधिक धर्म का उत्कर्ष प्राप्त कर लेता है तथा धर्म के ज्ञाता पुरुष बहुत ही थोडे से आयास के द्वारा धर्म की उत्कृष्ट साधना कर लिया करते हैं । इसीलिये मैं इस कलियुग मे तुष्ट होता हूँ ॥६५॥ सबसे पूर्व द्विजातियों के द्वारा ब्रह्मचर्य मे तत्पर होकर वेदो का ग्रहण करना चाहिए । इसके पश्चात् धर्म से न्यायोचित रीतियों के द्वारा प्राप्त धनो से विधि विधान के साथ यजन करना चाहिए ॥६६॥ कथा वार्त्ता का करना व्यर्थ ही है—विप्रातिथियों को भोजन कराना भी सब निरर्थक है तथा द्विजन्माओ को दान देने का कोई फल नही होता है—ऐसा विचारना संयतियियो के साथ केवल पतन के ही लिये हुआ करता है ॥६७॥ उनकी सभी वस्तुओं में भली भाँति न करने में दोष ही दोष हुआ करते हैं । हे द्विजो ! इन लोगो का भोज्य और पेय आदि इच्छाओं की प्राप्ति के करने वाले नहीं होते हैं ॥६८॥ इन लोगों के समस्त कार्यों

मे परतन्त्रता से अर्थात् विवशता प्राप्त हो जाने पर ही लोग महान् क्लेश से विनयान्वित होकर लोको का अर्चन किया करते हैं ॥६६॥ पाक यज्ञो के करने का अधिकार वाला शूद्र द्विजो की शुश्रूषा के द्वारा ही अपने लोक पर विजय प्राप्त कर लिया करता है अतएव अन्य द्विजातियो की अपेक्षा वह शूद्र अधिक धन्य होता है ॥७०॥

भक्ष्याभक्ष्येषु नाशा(सा)स्ति येषा पापेषु वा यतः ।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितम् ॥७१
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लभ्य धन सदा ।
प्रतिपादनीय पात्रेषु यष्टव्य च यथाविधि ॥७२
तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः ।
तथा सद्विनियोगाय विज्ञेयं गहन नृणाम् ॥७३
एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः ।
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा ।
एतद्विषयमोप्नोति तत्सालोक्य यतो द्विजाः ॥७५
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।
तृतीय व्याहृत तेन मया साध्विति योषित. ॥७६
एतद्वः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः ।
तत्पृच्छ्च यथाकाममह वक्ष्यामि वः स्फुटम् ॥७७

हे मुनिशार्दूलो ! भक्ष्यो और अभक्ष्यों मे अथवा जिनके पापों में आशा नही होती है और न कोई नियम ही होता है इसी कारण से यह शूद्र साधु पुरुष इस कलिकाल मे कहा गया है ॥७१॥ मनुष्यो को वही धन प्राप्त करना चाहिए जो सदा धर्म का विरोध न करने से होता है। उसी धन के द्वारा पात्र अर्थात् सुयोग्य एव अधिकारी पुरुषो को दान करके धर्म का प्रतिपादन करना चाहिए और विधि पूर्वक यजन भी करना आवश्यक है ॥७२॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसे धर्म के समाचरण द्वारा धन के अर्जन करने में महान् क्लेश होता है तथा उसके पालन अर्थात् रक्षा करने मे भी क्लेश हुआ करता है फिर मनुष्यों को उस धन का

भली भांति विनियोग करना अर्थात् उचित रीति से सत्पात्रो को देना बहुत ही गहन कार्य है ऐसा जान लेना चाहिए ॥७३॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मनुष्य इन तथा ऐसे ही अन्य क्लेशो से क्रम से प्राजापत्यादिक अपने लोको पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं ॥७४॥ हे द्विजो ! स्त्री मन-वाणी और कर्म से अपने स्वामी की शुश्रूषा के द्वारा इस विषय को प्राप्त कर लिया करती है क्योंकि वही उसकी सालोक्य मुक्ति है ॥७५॥ पुरुष उनको जिस प्रकार से अत्यधिक महान् क्लेश से भी नही प्राप्त कर पाता है उसको स्त्री केवल अपने भर्त्ता की सच्चे मन से सेवा करके प्राप्त कर लिया करती हैं। इसी कारण से स्त्री का यह तीसरा साधु धर्म मैंने वर्णन करके भली भांति बतला दिया है ॥७६॥ जिस निमित्त से आप लोग यहाँ पर समागत हुए हैं। वह सब बतला दिया है। अब आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार जो कुछ भी मुझसे पूछना हो उसे पूछ लीजिए। मैं स्पष्ट रूप से वह सभी आपको बतलाऊँगा ॥७७॥

अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्म. सिध्यति वै कलौ।
नरैरात्मगुणाम्भोभि क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमा.।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ॥७६
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतम मतम्।
धर्मसराधने क्लेशो द्विजातीना कृतादिषु ॥८०
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धि यास्यन्ति मानवा.।
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमा. ॥८१
भवद्भिर्यदभिप्रेत तदेतत्कथित मया।
अपृष्टेनापि धर्मज्ञाः किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥८२

इस कलियुग मे अपनी आत्मा के गुणरूपी जलो से समस्त किल्बिषों के धो डालने वाले मनुष्यो के द्वारा बहुत स्वल्प प्रयत्न के द्वारा धर्म सिद्ध हो जाया करता है ॥७८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! द्विजो की सेवा मे परायण रहने वाले शूद्रों के द्वारा और स्त्रियों के द्वारा अपने भर्त्ता की शुश्रूषा के द्वारा अनायास से ही धर्म की सिद्धि हो जाया करती है ...॥ इसीलिये

उससे ये त्रितप अर्थात् तीनो कार्य मुझे परम धन्यतम प्रतीत होते हैं। कृतादि युगो मे द्विजातियो के धर्मों की सराधना करने मे महान् क्लेश होता है ॥८०॥ हे मुनियो! इस युग मे अत्यन्त अल्प धर्म से ही मानव सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे। जो पुरुष धर्म का युगान्त मे समाचरण करेंगे वे धन्य हैं? आपका जो भी अभिप्रेत प्रश्न था उसका उत्तर एव वर्णन मैंने भली-भाँति कर दिया है और जिसको आप लोगो ने जो मुझसे नही भी पूछा था वह भी मैंने बतला दिया है। हे धर्म के ज्ञाता द्विजो! अब अन्य क्या करू? ॥८१-८२॥

--:*:--

व्यासमुनिसवाद में द्वापरयुगान्तकथन

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि काल न विद्महे।
ततो द्वापरविध्वस युगान्त स्पृहयामहे ॥१
प्राप्ता वय हि तत्कालमनया धर्मतृष्णया।
आदद्याम परं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥२
सत्रासोद्वेगजनन युगान्त समुपस्थितम्।
प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥३
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवा।
युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥४
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५
श्रोत्रियाः काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च।
एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः ॥६
अशिष्टवन्तोऽर्थपरा नरा मद्यामिषप्रियाः।
मित्रभार्यां भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७

मुनियों ने कहा—यदि हम आसन्न या विप्रकृष्ट काल को नहीं जानते हैं। इसके अनन्तर हम लोग द्वापर के विध्वंस करने वाले युगान्त

की स्पृहा किया किया करते हैं ॥१॥ इस धर्म की तृष्णा से हम लोग उस काल को प्राप्त हो गये थे और अन्य काल मे ही अत्यल्प कर्म से परम धर्म प्राप्त करते हैं ॥२॥ सन्त्रास और उद्वेग का उत्पन्न करने वाला यह युगान्त समुपस्थित हो गया था। हे धर्म के ज्ञाता ! धर्म के प्रनष्ट होने वाले उसको आप निमित्तो के द्वारा वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥३॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—युगान्त मे पार्थिव लोग प्रजाजनो की सुरक्षा करने वाले और बलिभाग के अपहरण करने वाले एव अपने ही रक्षण करने म परायण हो जांयगे ॥४॥ राजा लोग वे ही होगे जो क्षत्रिय नही होंगे—विप्रगण शूद्रो से अपनी जीविका चलाने वाले हो जायगे। शूद्र लोग उस युग क्षय मे ब्राह्मणो के समान समाचरण करने वाले हो जांयगे ॥५॥ श्रोत्रिय लोग काण्ड पृष्ठ वाले होग तथा सब हवियाँ निष्कर्म हो जायगी। हे मुनिगणो ! युगान्त के समय मे सभी लोग एक ही पक्ति मे बैठकर भोजन किया करेंग ॥६॥ मनुष्य अशिष्टता मे परायण-अर्थ मे ही सलग्न रहन वाले मद्य तथा मास से प्यार करने वाले होगे और अधम पुरुष युगान्त मे अपने ही मित्रो की भार्याओं का सेवन किया करेंगे ॥७॥

राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिन ।
भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥८
धनानि श्लाघनीयानि सता वृत्तमपूजितम् ।
अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥९
प्रनष्टनासा पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः ।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसाष्यन्ति तथा स्त्रियः ॥१०
अट्टशूला जनपदा शिवशूलाश्चतुष्पथा ।
प्रमदा केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥११
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिका. ।
शूद्राभा वादिनश्चैव ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥१२
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डा-काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः ॥१३

श्वापदप्रचुरत्व च गवा चैव परिक्षय. ।
साधूना परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४

चोरी करने के स्वभाव वाले पुरुष ही राजाओ की वृत्ति मे स्थित होगे और राजा भी चोरो जैसे शील स्वभाव के हो जाँयगे युग के क्षय मे भृत्यगण जो होगे वे भी निर्देश किये हुए पदार्थों के भोग करने वाले हो जायगे ॥८॥ युग के क्षय मे सत्पुरुषो के धन ही श्लाघा करने के योग्य होते हैं और पतित मे अपूजित वृत्त (चरित्र) तथा अकुशलता होगी ॥९॥ प्रणष्ट नासिका वाले केशो के खुले हुए रखते हुए और विरूप धारी तथा षोडश वर्ष से भी कम उम्र वाले पुरुष स्त्रियो का प्रशोषण करेंगे ॥१०॥ युगक्षय मे सब जनपद अट्टो के शूल वाले होगे समस्त चतुष्पथ शिव के शूल वाले होगे-प्रमदाएं केशो के शूल वाली अर्थात् केशो के ही आभूषण वाली होगी ॥११॥ हे द्विजो ! सतवाजसनेयिक लोग ब्रह्म का वाद करेंगे । जो शूद की आभा वाले हैं वे ही वाद करने वाले होगे और ब्राह्मण अन्त्य वासी हो जायगे ॥१२॥ शुक्ल दांतो वाले-जिताक्ष-मुण्डित और कापाय वस्त्र धारण करने वाले शूद्र लोग धर्म का वाद किया करेंगे जो कि शाठ्य से युक्त बुद्धि द्वारा उपजीवित रहा करते ॥१३॥ ससार मे *सर्वत्र श्वापदो की प्रचुरता होगी और गौओं का परिक्षय हो जायगा ।* अन्तगत युग मे साधु गणो की एक क्रम परिवृत्ति हो जायगी । अर्थात् साधुओ मे बहुत बड़ा परिवर्तनशन के मर्म-धर्मों द्वारा हो जायगा ॥१४॥

अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिन. ।
निर्ह्रीकाश्च प्रजा सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५
तपोयज्ञफलाना च विक्रेतारो द्विजोत्तमा· ।
ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६
तथा द्विहायना दम्या: कलौ लाङ्गलधारिण ।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७
सर्वे शूरकुले जाता· क्षमानाथा भवन्ति हि ।
मधा निम्ना प्रजा· सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८

पितृदेयानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुता: ।
न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१६

ऊपरा बहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वे""वाणिकाश्चै व भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०
पितृदायाददत्तानि विभजन्ति तथा सुताः ।
हरणे यत्नवन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिनः ॥२१

जो अन्त मे होने वाले हैं वे मध्य में निवास करेंगे और जो मध्य हैं वे अन्त निवासी होंगे। उस युग के क्षय मे सारी प्रजाएँ निर्लज्ज एवं नष्ट हो जायगी ॥१५॥ श्रेष्ठ द्विज भी अपने तप और यज्ञो के फलो को बेच देने वाले होंगे। इस युगक्षय मे सभी ऋतुऐं विपरीत धर्म वाली हो जायगी ॥१६॥ कलिकाल मे लाङ्गल धारी दो हायन वाले दमन के योग्य होंगे और मेघ विचित्र ढग से वर्षा करने वाला हो जायगा अर्थात् कही समय-असमय पर ज्यादा कम तथा बिल्कुल हीन वर्षा करने वाला होगा। यह सभी घटनाएँ युग के क्षय मे होगी। शूर के कुल मे सब क्षमानाथ होते हैं इस युग क्षय मे सभी प्रजा के जन निम्न श्रेणी मे रहने वाले हो जायगे ॥१७-१८॥ जो पितृदेव हैं वे दत्त होंगे और सुत धम का आचरण नही करेंगे इस निर्गत युग मे मानव बिल्कुल धर्म से हीन हो जायगे ॥१९॥ बहुधा भूमि ऊपर अर्थात् बिना उपज वाली हो जायगी और प्रायः सभी मार्ग तस्करों के द्वारा घिरे हुए होंगे। इस युग क्षय में सब वणिक हो जायगे अर्थात् वाणिज्य वृत्ति का ही व्यवहार करने वाले हो जायगे ॥२०॥ पुत्रगण पितृ दायाद के दत्त का विभाजन किया करेंगे। लोभ आदि के द्वारा विरोध करने वाले और हरण करने मे प्रयत्न शील हो जायगे ॥२१॥

सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते ।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्य- केशैरलङ्कृताः २२
निर्वीर्यस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति ।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रतिः ॥२३

कुशीलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विता. ।
पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥२४
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् ।
राजचौराग्निदण्डादिक्षीणः क्षयमुपैष्यति ॥२५
अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशीलिनः ।
अशीला. सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६
वर्षासु परुषा वाता नीचाः शर्करवर्षिणः ।
सदिग्धः परलोकश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥२७
वैश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविनः ।
युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवाः ॥२८

इस युग के अन्त मे सौकुमार्य-रूप लावण्य और रत्न आदि सबका उपक्षय हो जाने पर नारियाँ केवल अपने केशो की बनावट करके अलङ्कृत हुआ करेंगी ॥२२॥ वीर्य हीन गृहस्थो की उनमे रति हो जायगी इस युगान्तर के समनुप्राप्त होने पर अन्य भार्या के समान रति नही है ॥२३॥ बुरे कुत्सित शील स्वभाव वाले-अधिक नारियां रखने वाले वृथा रूप से समन्वित मनुष्य होगें पुरुष बहुत कम और स्त्रियो की अधिकता का होना यही युगान्त का लक्षण है ॥२४॥ बहुत अधिक याचना करने वाले लोग हो जायगे । वे परस्पर मे कोई भी किसी को कुछ नही दिया करेगा । राजा-चोर अग्नि आदि के दण्डो से क्षीण हुआ लोक एक दम क्षय को प्राप्त हो जायगा ॥२५॥ सस्य (फसल) फल से हीन होगी और तरुण पुरुषो वृद्धो जैसे शील स्वभाव वाले होगें । इस युग में जो शील रहित पुरुष हैं वे सुखी होगे ॥२६॥ वर्षा ऋतु मे कठोर-नीच और शर्करा (धूलि) के वर्षा करने वाली वायु चलेगी और युग क्षय मे परलोक सदिग्ध हो जायगा ॥२७॥ युग के अपक्रमण मे क्षत्रिय लोग वैश्यो के समान धन धान्यों से उपजीविका करने वाले वैश्यों के सदृश हो जाँयगे । और कोई भी किसी के बान्धव साथ देने वाले नहीं होंगे ॥२८॥

अप्रवृत्ता. प्रपश्यन्ति समयाः शपथास्तथा ।
ऋणं सविनयभ्रंश युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९

भविष्यत्यफलो हर्ष. क्रोधश्च सफलो नृणाम् ।
अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये ॥३०
अशास्त्रविहिता यज्ञ एवमेव भविष्यति ।
अप्रमाण करिष्यन्ति नरा. पण्डितमानिन ॥३१
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति न सशयः ।
सर्वः सर्वं विजानाति वृद्धाननुपसेव्य वै ॥३२
न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते ।
नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातयः ॥३३
चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते समुपस्थिते ।
कुण्डीवृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः ॥३४
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमा. ।
याजयिष्यन्त्ययाज्यास्तु तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिण ॥३५

प्रतिज्ञाएँ-समझौते और शपथ जो भी होंगे वे सब प्रवृत्ति हीन होंगे अर्थात् इनका कोई भी पालन नहीं करेंगे और इन पर गम्भीरता से बिल्कुल भी विचार नहीं करेंगे। इस युग के क्षय के समय मे ऋण विनय के साथ भ्रंश हो जायगा ॥२९॥ मनुष्यों का जो हर्ष होगा वह तो निष्फल हुआ करेगा। और जो क्रोध होगा वह सफल हुआ करेगा। युग क्षय मे पय के अर्थ मे बकरियाँ भी निरुद्ध हो जायगी ॥३०॥ यदि कोई यज्ञ भी करेगा तो वह शास्त्र में विहित पद्धति वाला नहीं होकर चाहे जैसा-तैसा इसी प्रकार से होगा। जो अपने आपको पण्डित होने का मान रखते है वे मनुष्य बिना ही शास्त्र के प्रमाण के करते हैं। ब्राह्मण युग क्षय मे शास्त्र के प्रवक्ता नहीं होंगे-इसमें कुछ भी सशय नहीं है। वृद्धों की सेवा न कर भी कलियुग म सब सभी कुछ जानने का दावा किया करते हैं ॥३१-३२॥ युगान्त के उपस्थित होने पर कोई भी अकवि अर्थात् कविता न करने वाला अविद्वान् नहीं हुआ करता है अर्थात् सभी कवि बनते हैं। नक्षत्र बिना योग वाले होंगे और द्विजाति वर्ग अपने कर्मों मे स्थित नहीं होंगे ॥३३॥ युगान्त के आ जाने पर राजा लोग चोरप्रायः

होंगे तथा कुण्डी वृप-नैकृतिक-सुस्मान करने वाले और झूठ-मूठ ब्रह्म के वाद करने वाले हो जाँयगे ॥३४॥ युगान्त मे हे द्विजो ! श्रेष्ठ द्विज अश्व-मेध यज्ञ का यजन करेंगे और जो यजन न करने वाले होंगे उनको भी यजन करायेंगे तथा अभक्ष्य पदार्थों के भी भक्षण करने वाले हो जाँयगे ॥ ५॥

ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते ।
भो-शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६
एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धका(?) ।
नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७
सध्यारागो विदग्धाङ्गो भविष्यति युगक्षये ।
प्रेषयन्ति पितॄन्पुत्रा वधूः श्वश्रूः स्वकर्मसु ॥३८
युगेष्वेव निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा ।
अकृत्वाऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चं वाहुताग्नयः ॥३९
भिक्षा वलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ।
वञ्चयित्वा पतीन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥४०
न व्याधिताग्नाप्यरूपान्नोद्यताग्नाप्यसूयकान् ।
कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१

युगान्त के उपस्थित होने पर ब्राह्मण धन की तृष्णा से आर्त्त होकर यो: शब्द का कहा करेंगे और इनमे कोई भी पढ़ेगा नही प्रायः विप्रो का समुदाय मूर्ख रहगा ॥३६॥ तथा नारियाँ एक शङ्ख वाली और गवेधुक विनद्धक हो जांयगी । नक्षत्र निवर्ण होंगे और दशो दिशाएँ भी विपरीत हो जाँयगी ॥३७॥ युगक्षय के समय सन्ध्या राग भी विदग्ध अङ्ग वाला हो जायगा । पुत्र अपने कर्मों के करने के लिये अपने माता-पिता को और बहुएँ अपनी सासो को प्रेषित किया करेंगे अर्थात् पुत्र पिता पर तथा बहू सास पर हुकम चलायेंगे ॥३८॥ युगो मे इसी प्रकार से नर तथा प्रमदाएँ रहा करेंगे और अपने बडो को न खिलाकर स्वय ही पहिले खा लिया करेंगे और द्विजगण अग्नि मे आहुतियाँ नही देंगे ॥३९॥ पुरुष स्वयं भिक्षा तथा बलि न देकर ही भोजन कर लिया करेंगे । स्त्रियाँ अपने पतियो को और सुतो को वंचित करके अर्थात् धोखा देकर या

छोडकर अन्यत्र चली जाया करेंगी ॥४०॥ युग के क्षीण होने पर रुण-रूप रहित-उद्यत और असूया से रहित जनो के लिये भी प्रति कर्त्ता न होंगे। अर्थात् इनके प्रति भी कोई सहानुभूति की भावना नही रक्खा करेंगे ॥४१॥

एव विलम्बिते धर्मे मानुपाः कष्टपीडिताः ।
कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिणः ॥४२
किंकर्माणः किमीहन्त किंप्रमाणाः किमायुपः ।
का च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥४३
अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा ।
शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्रासमायुषः ॥४४
आयुर्हान्याबलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता ।
वैवर्ण्याद्व्याधिसपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥४५
निर्वेदादात्मसबोधः सबोधाद्धर्मशीलता ।
एव गत्वा परा काष्ठा प्रपत्स्यन्ति कृत युगम् ॥४६
उद्देशतो धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थता गताः ।
किंधर्मशीलाः केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७
प्रत्यक्षमनुमान च प्रमाणमिति निश्चिताः ।
अप्रमाण करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे जनाः ॥४८
नास्तिक्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः ।
भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९

मुनिगण ने कहा—इस प्रकार से धर्म के विलम्बित हो जाने पर मनुष्य कष्ट से पीडित होते हुए किस देश मे निवास किया करेंगे और उनके फिर आहार-विहार क्या होंगे ? ॥४२॥ मनुष्यो के उस समय मे कौन से कर्म होंगे ? क्या वे चाह रखने वाले होंगे ? उनके लम्बाई चौडाई का कितना प्रमाण होगा तथा उनकी आयु कितनी हुआ करेगी ? पुनः वे किस दिशा को प्राप्त करके कृतयुग को प्राप्त किया करेंगे ? ॥४३॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—इससे आगे धर्म-कर्म के सर्वथा च्युत हो जाने पर प्रजा गुणो से हीन हो जायगी तथा शील व्यसन को प्राप्त करके

मनुष्य असम आयु को प्राप्त किया करेंगे ॥४४॥ आयु की हानि के होने से अवलग्न और निर्बलता से वर्ण की हीनता हो जाया करेगी। फिर उस विवर्णता से व्याधियों के द्वारा पीडा प्राप्त हुआ करेंगी तथा व्याधियों की अत्यधिक पीडा के होने पर लोगो को निर्वेद (वैराग्य) हो जायगा। सासारिक समस्त विषय भोगो मे विरक्तता की भावना उत्पन्न हो जायगी ॥४५॥ निर्वेद जब होगा तो उसके हो जाने पर फिर उन मनुष्यो को अपनी आत्मा का ज्ञान उत्पन्न हो जाया करेगा। जब भली भाँति बोध होगा तो उनमे धर्म के करने की स्वभाव शीलता समुत्पन्न हो जाया करेगी। इस रीति से जब वे पराकाष्ठा अर्थात् अन्तिम सीमा तक पहुँच कर ही पुन कृतयुग को प्राप्त किया करेंगे ॥४६॥ कुछ लोग उद्देश से धर्म के शील स्वभाव वाले होगे और कुछ मध्य स्थिति मे प्राप्त होने वाले होगे। कुछ लोग ऐसे होगे कि किस धर्म के शील वाले होवें तथा कुछ लोग इस धर्म के विषय मे कुतूहल रखने वाले होगे ॥४७॥ दो ही प्रमाण होते हैं–प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसा निश्चय वाले लोग भी सभी कुछ प्रमाण से रहित ही कर्म किया करेगे। दूसरे लोग नास्तिकता मे परायणता रखने वाले होगे अर्थात् वे ईश्वर की सत्ता को ही नही मानेंगे तथा कुछ लोग धर्म के विलोप करने वाले हो जाँयगे। हे द्विजो ! सभी मनुष्य महान् मूढ और पण्डित मानी अर्थात् अपने आपको पण्डित मानने वाले हो जाँयगे ॥४८-४६॥

तदात्मवमानश्रद्धया शास्त्रज्ञानबहिष्कृता ।
दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिता. ॥५०

तथा विलुलिते धर्मे जना श्रेष्ठपुरस्कृता ।
शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणा ॥५१

सर्वभक्षा स्वयगुप्ता निर्घृणा निरपत्रपा ।
भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२

कषायोपप्लवे काले ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने ।
सिद्धिमल्पेन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३

विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः ।
सश्रयिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य लक्षणाम् ॥५४

महायुद्धं महावर्षं महावातं महातपः ।
भविष्यन्ति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५५

विप्ररूपेण यक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः ।
पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६

वर्त्तमान समय मे होने वाले ही पदार्थो मे श्रद्धा करने वाले और शास्त्रीय ज्ञान से बहिष्कृत हो जायगे । ज्ञान से रहित होते हुए मनुष्य बहुत ही दम्भ करने वाले हो जायगे ॥५०॥ उस तरह से धर्म के विप्लुत हो जाने पर जो मनुष्य श्रेष्ठजनों को आगे करके उनके ही अनुसरण करने वाले होगे वे दान के शील स्वभाव मे परायण होकर शुभ कर्मों का समाचरण किया करेंगे ॥५१॥ उस युग के कषाय का लक्षण ही यह है कि मनुष्य सब कुछ भक्ष्याभक्ष्य के खाने वाले स्वय अपनी रक्षा करने वाले-निर्घृण और निर्लज्ज उस समय मे लोक मे हो जाया करेंगे ॥५२॥ यह काल समय की कषायता से उपप्लुत हो जायगा तो उस काल मे ज्ञान की निष्ठा का एकदम विनाश ही हो जायगा । उस अवसर मे निरुपद्रुत मनुष्य अल्प काल मे ही सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करेंगे ॥५३॥ जिस समय मे नीच मनुष्य विप्रो की शाश्वती वृत्ति का समाश्रय ग्रहण करेंगे तो हे विप्रो ! वही कषाय का लक्षण होता है ॥५४॥ युग के क्षीण होने पर महान् युद्ध परस्पर मे होगे, बहुत अधिक वर्षा होगी, महान् वायु का सचार होगा और बहुत ही अधिक सूर्य का ताप होगा, यही युग की क्षीणता के कषाय का लक्षण होगा ॥५५॥ युगान्त मे उपस्थित होने पर यक्ष विप्रो के रूप वाले होंगे और राजा लोग कानों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने वाले हो जायगे तथा कानो के कच्चे नृप ही इस सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग किया करेंगे ॥५६॥

निःस्वाध्यायवषट्काराः धुनेतारोऽभिमानिनः ।
क्रव्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७

मूर्खाश्चार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः ।
व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च [च] शाश्वतात् ॥५८
हर्तारः पररत्नाना परदारप्रधर्षकाः ।
कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९
तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः ।
अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥६०
कलौ युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये ।
कथयोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ।
भोक्ष्यभोज्यहराश्चैव करण्डाना च हारिणः ॥६२
चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति ।
चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेम भविष्यति ॥६३

समस्त ब्राह्मणो का समुदाय राक्षसो जैसा हो जायगा यद्वा राक्षस ही ब्राह्मणो के रूप मे उत्पन्न हो जाँयगे जो कभी भी वेदो का स्वाध्याय नही करेंगे, वषट्कार से रहित होगे, बुरे समाज के नायक महान् अभिमान रखने वाले, सभी कुछ का भक्षण करने वाले व्यर्थ व्रतो वाले हो जाँयगे ॥५७॥ ये लोग महान् मूर्ख-अर्थ ही मे अहर्निश तत्पर रहने वाले-महान् लोभी- क्षुद्र- बहुत ही क्षुद्र परिच्छदो (वस्त्रो) वाले व्यवहार से उपकृत अर्थात् सुन्दर व्यवहार न करने वाले तथा परम शाश्वत धर्म से च्युत हो जाँयगे ॥५८॥ युगक्षय के समय मे प्राय. लोग पराये रत्नो के अपहरण करने वाले-पराई स्त्रियो को प्रधर्षित करने वाले स्वेच्छया कर्म करने वाले अर्थात् स्वेच्छाचारी, दुष्ट आत्मा वाले, अनेक उपधाओ को रखने वाले और अत्यधिक बुरे कर्मों के करने मे साहस वाले हो जाँयगे ॥५९॥ सभी ओर उन ऐसे जनो के समुत्पन्न होने पर बहुरूपी मुनिगण अभाव वाले हो जाँयगे ॥६०॥ इस कलियुग मे जो भी समुत्पन्न होगे और जो प्रधान पुरुष होगे उन सबकी मानव कथा योग के द्वारा पूजा किया करेंगे ॥६१॥ मनुष्य सस्यो (फसलो) की चोरी करने वाले, वस्त्रों का अपहरण करने वाले-भक्ष्य और भोज्य अर्थात् खाने के पदार्थों का

हरण करने वाले-मुण्डो को हरने वाले-चोर और चोरो के हर्त्ता-स्वय हनन करने वाले और हन्ता के भी हनन करने वाले होंगे। चारो के ही द्वारा चोरो का क्षय होने पर कृतयुग मे क्षेम होगा ॥६२-६३॥

> नि सारे क्षुभिते काले निष्क्रिये सव्यवस्थिते ।
> नरा वन श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४
> यज्ञकर्मण्युपरते रक्षासि श्वापदानि च ।
> कीटमूर्षिकसमर्पाश्च घर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५
> क्षेम सुभिक्षमारोग्य सामग्र्य चैव वन्धुषु ।
> उद्देशेषु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६
> स्वयपालाः स्वय चौराः प्लवसभारसभृताः ।
> मण्डलै. सभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक् ॥६७
> स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा नि.सारा सह वन्धुभि. ।
> नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥६८
> तत. सर्वे समादाय कुमारान्प्रद्रुता भयात् ।
> कौशिकी सनरिष्यनि नराः क्षुद्भयपीडिता ॥६९
> अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गाश्च काश्मीरानथ कोशलान् ।
> ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः सश्रयिष्यन्ति मानवा. ॥७०

निस्सार क्षुभित काल मे निष्क्रिय के सव्यवस्थित होने पर करो के भार से प्रपीडित नर वन का सश्रय ग्रहण करेगे ॥६४॥ यज्ञ कर्म के उपरत हो जाने पर राक्षस-श्वापद-कीट-मूषिक-सर्प मानवो का प्रघर्षित करेगे ॥६५॥ युगक्षय मे क्षेम-सुभिक्ष-आरोग्य और बन्धुओ मे समग्रता रखने वाले नर उद्देशों मे श्रेष्ठ होगे ॥६६॥ नृपगण स्वय ही पालक होंगे और स्वय ही चोर होंगे तथा प्लव के भार से सम्भृत होगे। देश-देश मे पृथक् पृथक् मण्डलो के द्वारा सभूत हो जाँयगे। उस समय मे काल के परिक्षय के होने से अपने देशो से परिभ्रष्ट होते हुए बन्धुओ के साथ निस्सार होने वाले सब नरा हो जाँयगे ॥६७-६८॥ इनके पश्चात् सब कुमारो को लेकर भय से भाग गये थे। नर भूख के डर से पीड़ित होकर कौशिकी

सन्तरण करेंगे ॥६९॥ मनुष्य अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्ग-काश्मीर-कोशल और ऋषिकान्त गिरि द्रोणी का समाश्रय लेंगे ॥७०॥

कृत्स्नं च हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः ।
विविधं जीर्णपत्रं च वल्कलान्यजिनानि च ॥७१
स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये ।
अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह ॥७२
नव शून्या नवारण्या भविष्यति वसुधरा ।
अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति नराधिपा. ॥७३
मृगमत्स्यैर्विहङ्गैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः ।
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥७४
शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च ।
स्वय कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा ॥७५
बीजानामकृतस्नेहा आहताः काष्ठशङ्कुभिः ।
अजैडक खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥७६
नदीस्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः ।
पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥७७

हिमवान् का पार्श्व और क्षार सागर का कूल का आश्रय लेंगे । वहां पर अनेक प्रकार के जीर्ण पत्र-वल्कल (पेडो की छाल) और अजिनो को धारण करके उस भूतयुग क्षय मे निवास करेंगे । मनुष्यो के समुदाय जगलो मे म्लेच्छ गणो के साथ वास किया करेंगे ॥७१-७२॥ यह वसुन्धरा न तो शून्य अरण्यो वाली ही होगी और न सर्व सम्पन्न ही होगी । जो रक्षा के करने वाले नराधिप होगे वे ही अरक्षक हो जायँगे ॥७३॥ मृग-मत्स्य-विहङ्ग-श्वापद-सर्प कीटक-मधु-शाक-फल और मूल-इनसे ही मानव गण अपनी उदर पूर्त्ति किया करेंगे ॥७४॥ शीर्ण पर्ण और फलो के आहार करने वाले तथा वल्कल और अजिनो को धारण करने वाले मनुष्य जैसे मुनिजन हुआ करते हैं वैसे ही निवास करेंगे ॥७५॥ बीजों का स्नेह किये हुए काष्ठ और शङ्कुओ से आहत मनुष्य नित्य ही बकरी-एडका (मेढ़)-गधा और ऊँटो का पालन किया करेंगे ॥७६॥ तट पर

समाश्रित होकर जल के लिये नदियो के सोतो को रोकेंगे तथा पाकाग्र के व्यवहार के द्वारा परस्पर मे विपणी करते हुए रहेंगे ॥७७॥

तनूरुहैर्यथाजातः समलान्तरसभृत ।
वह्वपत्या. प्रजाहीना: कुलशीलविवर्जिताः ॥७८
एव भविष्यन्ति तदा नराश्चाधमंजीविनः ।
हीना हीन तथा धर्म प्रजा समनुवत्स्यति ॥७९
आयुस्तत्र च मर्त्याना पर त्रिंशद्भविष्यति ।
दुर्बला विषयग्लाना जराशोकैरभिप्लुताः ॥८०
भविष्यन्ति तदा तेषा रोगैरिन्द्रियसक्षय ।
आयु.प्रत्ययसरोधाद्विषयादु[पैरु] परस्यते ॥८१
शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूना दर्शने रता. ।
सत्य च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसक्षयात् ॥८२
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः ।
करिष्यन्ति च सस्कार स्वय च क्षयपोडिता. ॥८३
एव शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राण्यभिरक्षणे ।
ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मे श्रेयो निपत्स्यते ॥८४

समयान्तर से सभृत तनूरुहो (रोमो) के समान समुत्पन्नो से बहुत अपत्यो (सन्तानो) वाले होंगे किन्तु प्रजाहीन एव कुल तथा शील से रहित ही हुआ करेंगे ॥७८॥ इसी रीति से उस समय मे नर अधर्म जीवी और हीन होंगे एव हीन ही धर्म को प्रजा ग्रहण कर निवास किया करेगी ॥७९॥ उस समय मे मनुष्यो की परमाधिक से अधिक आयु तीस वर्ष की हुआ करेगी । सभी मनुष्य बहुत ही दुर्बल विषयो मे म्लान और जरा (वार्धक्य) और शोक से अभिप्लुत (घिरे हुए) हो जायगे ॥८०॥ वह ऐसा समय होगा कि उनके भीषण रोगो से इन्द्रियो का एकदम सक्षय हो जायगा । आयु के विश्वास के सरोध होने से सभी लोग विषयो के दर्शन करने मे रति रखने वाले होते हुए उनकी शुश्रूषा करने की अभिलाषा वाले हो जायगे । व्यवहारो के उपसक्षय से सत्य को प्रतिपन्न

होगे ॥८१-८२॥ अपनी कामनाओ के लाभ न होने से मानव धर्मशीलता वाले हो जायगे ॥८३॥ इस प्रकार से इनके अनन्तर धर्म के पाद के प्रवृत्त होने पर दान मे, सत्य मे और प्राणियो के अभिरक्षण मे शुश्रूषा करने की इच्छा वाले होगे और फिर श्रेय को प्राप्त करेंगे ॥८४॥

तेषा लब्धानुमाना गुणेषु परिवर्ततताम् ।
स्वादु किंस्विदिति विज्ञाय धर्म एव च दृश्यते ॥८५
यथा हानिक्रम प्राप्तास्तथा वृद्धिक्रम गता ।
प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति कृत युगम् ॥८६
साधुवृत्ति कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते ।
एक एव तु कालोऽत्र हीनवर्णो यथा शशी ॥८७
छन्नश्च तमसा सोमो यथा कलियुग तथा ।
मुक्तश्च तमसा सोम एव कृतयुग च तत् ॥८८
अर्थवाद. पर ब्रह्म वेदार्थ इति त विदु. ।
अविविक्तमविज्ञात दायाद्यमिह धार्यते ॥८९
इष्टवादस्तपा नाम तपो हि स्थविरीकृत. ।
गुणै. कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणा शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०
आशीस्तु पुरुष दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी ।
युगे युगे यथाकालमृषिभि. समुदाहृता ॥९१
धर्मार्थकाममोक्षाणा देवाना च प्रतिक्रिया ।
आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२
तथा युगाना परिवर्तनानि,
चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात् ।
क्षण न सतिष्ठति जीवलोक.,
क्षयोदयाभ्या परिवर्तमानः ॥९३

इन लब्ध अनुमान वाले और गुणो मे परिवर्तित हुए मानवों को स्वादु क्या है-यह ज्ञान प्राप्त करके धर्म ही दिखलाई दिया करता है ॥८५॥ जिस प्रकार से ये धर्म-कर्म आदि की हानि को प्राप्त हुए थे उसी भाँति से वृद्धि के क्रम को प्राप्त हुए थे । इसके अनन्तर धर्म के प्रगृहीत

किये जाने पर कृतयुग को देखा करते हैं ॥८६॥ कृतयुग में मानवों की साधुवृत्ति हुआ करती है और कषाय में हानि नहीं जाया करती है। यह एक ही काल होता है जो शशी के समान ही हीन वर्णों वाला हुआ करता है ॥८७॥ तम अर्थात् अन्धकार से छन्न चन्द्रमा जिस प्रकार से वर्ण से हीन हो जाया करता है उसी प्रकार से कलियुग भी सबको छन्न करके अदृष्ट बना देता है। अन्धकार से मुक्त चन्द्रमा जैसे प्रकाशक होता है वैसे ही यह कृतयुग भी होता है ॥८८॥ अथवाद परम ब्रह्म ही है और उसको वेद य है—यह जाना करते हैं। यहाँ पर उसको अविविक्त-अविज्ञात और दायाद्य धारण किया जाता है ॥८९॥ जो अपने इष्ट का वाद है वही तप नाम वाला होता है और वह तप स्थविर जैसा करा दिया गया है। स्थविर नाम वृद्ध पुरुष का होता है। गुणों से कर्मों की अभिनिर्वृत्ति हो जाती है और गुण कर्म के द्वारा ही शुद्ध हुआ करते हैं ॥९०॥ ऋषियों ने पुरुष को देखकर देश-काल के अनुवर्त्तन करने वाली आशीर्वादोक्ति युग-युग में यथासमय समुदाहृत की हैं ॥९१॥ धर्म अर्थ-काम और मोक्ष की तथा देवों की जो प्रतिक्रिया और आशिष हैं वे शिव और पुण्य तथा आयु युग युग में उसी प्रकार भी होती हैं ॥९२॥ उसी भाँति युगों के परिवर्त्तन जो कि विधि के स्वभाव से चिरकाल से प्रवृत्त हैं। क्षय और उदय से परिवर्त्तमान यह जीवलोक क्षणभर भी सुस्थिर नहीं होता है ॥९३॥

योगाभ्यासनिरूपण

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम्।
[illegible] विदित्वाऽव्ययं तत्र युञ्जाम पुरुषोत्तमम् ॥१
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा।
अब्रवीत्परमप्रीतो [illegible]

योग वक्ष्यामि भो विप्राः शृणुध्वं भवनाशनम् ।
यमभ्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्षं परमदुर्लभम् ॥३
श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तितः ।
इतिहासं पुराणं च वेदांश्चैव विचक्षणः ॥४
आहारं योगदोषांश्च देशकालं च बुद्धिमान् ।
ज्ञात्वा समभ्यसेद्योगं निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ॥५
भुञ्जन्सक्तुं यवागूं च तक्रमूलफलं पयः ।
यावकं कणपिण्याकमाहारं योगसाधनम् ॥६
न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा ।
न द्वंद्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! इस समय मे अब आप दुःख के सयोग की महौषध स्वरूप जो योग है उसी के विषय मे बतलाइए जिसका ज्ञान प्राप्त करके वहाँ पर अव्यय (अविनाशी) पुरुष को योजन करें ॥१॥ उस समय मे भगवान् कृष्ण द्वैपायन महामुनि ने उन मुनियो के वचन का श्रवण करके योग के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ व्यासजी परम प्रसन्न होकर बोले ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रो ! अब आप लोग इस ससार के विनाश करने वाले योग का श्रवण करिए योगी जिसका अभ्यास करके परमाधिक दुर्लभ मोक्ष का प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ विलक्षण पुरुष को चाहिए सबके आदि मे योग शास्त्रो का श्रवण करे और फिर भक्ति की भावना से अपने श्री गुरुदेव की समाराधना करे । इसके उपरान्त इतिहास-पुराण और वेदो का अध्ययन करना चाहिए ॥४॥ आहार-योग के अभ्यास मे उत्पन्न होने वाले दोष और देश तथा काल को बुद्धिमान् मानव अच्छी तरह से समझ कर ही निर्द्वन्द्व एव निष्परिग्रह होकर यज का अभ्यास करे ॥५॥ योगाभ्यास के समय मे सक्तू (सतुआ) यवागू, तक्र, (मट्ठा), फल, मूल, दूध, यावक और कण पिण्याक का ही आहार करना चाहिए । ऐसा ही हलका आहार योग का साधन हुआ करता है ॥६॥ योगाभ्यास मे बहुत सी बाधाऐं होती हैं और उनको उन

मे नहीं किया जा सकता है अतएव मन की विकलता की अवस्था मे-ध्यान होने पर-श्रान्त-क्षुधा से युक्त होने के समय मे द्वन्द्व मे-शीत-उष्णता में और अनिलात्मक दशा मे कभी भी योग का अभ्यास नही करना चाहिए ।।७।।

सशब्दे न जलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सरीसृपे श्मशाने च न नद्यन्तेऽग्निसंनिधौ ।।८
न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसंनिधौ ।
न शुष्कपर्णनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ।।९
देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ।
प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारकाः ।।१०
बाधिर्यं जडता लोप. स्मृतेर्मूकत्वमन्धताः ।
ज्वरश्च जायते सद्यस्तद्वदज्ञानसंभवः ।।११
तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यत. ।।१२
आश्रमे विजने गुह्ये नि.शब्दे निर्भये नगे ।
शून्यागारे शुचौ रम्ये चैकान्ते देवतालये ।।१३
रजन्या. पश्चिमे यामे पूर्वे च सुसमाहितः ।
पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि युक्ताहारो जितेन्द्रियः ।।१४

जहा बहुत शब्द होरहा हो उस स्थान मे-जलाशय के समीप मे-जीर्ण गोष्ठ मे-चौराहे पर-सरीसृपों के निकट श्मशान मे-नदी के अन्त मे-अग्नि की सन्निधि मे-चैत्य मे-वल्मीकों के समीप मे भययुक्त स्थल मे-कूप की सन्निधि म-सूख हुए पत्तो के ढेर के समीप मे एक योग की साधना करने वाले पुरुष को कभी भी उसका अभ्यास नही करना चाहिए ।।८-९।। इन उपर्युक्त देशों का अनादर करके जो मूढता से जो योगाभ्यास किया करता है उसमे होने वाले दोषो को मैं बतलाता हू जो कि बहुत बड़ी हानि के करने वाले हुआ करते हैं तथा विघ्न उपस्थित कर दिया करते हैं ।।१०।। बधिरता (बहरापन)-जड़ता-स्मृति का लय-अन्धापन और ज्वर भी बहुत ही शीघ्र हो जाया करता है जो कि उसी की भाँति अज्ञान से समुद्भूत होते

है ॥११॥ इसीलिये सर्वात्म भाव से सदा ही योग के ज्ञाता के द्वारा अपनी पूर्ण रूप से रक्षा करनी चाहिए क्योंकि धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का साधन करने वाला यह शरीर ही हुआ करता है। सत्पुरुष भी इसी दृष्टिकोण से अपने शरीर की सुरक्षा करना परमावश्यक समझते हैं। यह विनाश शील होते हुए भी नित्योत्तम पदार्थों का निश्चित् साधन स्वरूप होता है क्योंकि इस मानव देह से नित्य एवं स्थायी सुगति की प्राप्ति की जाया करती है ॥१२॥ अब यह बताया जाता है कि योग का अभ्यास कैसे स्थल में किया जाना चाहिए जो फलदायी हो सकता है। किसी भी आश्रम में जहाँ पर कोई भी जन न हों-गोपनीय स्थल में-ध्वनि से रहित स्थान में-भय रहित में-नग (पर्वत) पर-शून्य आगार में जो परम शुचि एवं सुरम्य हो-एकान्त में किसी देवता के आयतन में-रात्रि के पश्चिम प्रहर के समय में और पूर्व में भी भली भाँति सावधान होकर करे-पूर्वाह्न में-मध्य दिन में युक्त आहार वाला होकर-अपनी सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके ही योग का अभ्यास करना चाहिए ॥१३-१४॥

आसीनः प्राङ्मुखो रम्य आसने सुखनिश्चले ।
नातिनीचे न चोच्छ्रिते निस्पृहः सत्यवाक्शुचिः ॥१५
युक्तनिद्रो जितक्रोधः सर्वभूतहिते रत. ।
सर्वद्वन्द्वसहो धीरः समकायाङ्घ्रिमस्तकः ॥१६
नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्तः पद्मासने स्थितः ।
संस्थाप्य दृष्टिं नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यतः ॥१७
समाहृत्येन्द्रियग्रामं मनसा हृदये मुनिः ।
प्रणवं दीर्घमुद्यम्य संवृतास्य. सुनिश्चलः ॥१८
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ।
संछाद्य निर्मले शान्ते स्थितः संवृतलोचनः ॥१९
हृत्पद्मकोटरे लीनं सर्वव्यापि निरञ्जनम् ।
युञ्जीत सततं योगी मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥२०
करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथमं न्यसेत् ।
क्षेत्रज्ञञ्च परे योज्यस्ततो युञ्जीत योगवित् ॥२१

परम सुरम्य एवं सुखद सुनिश्चल आसन पर पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित होवे । योगाभ्यासी का आसन अत्यन्त नीचा और अधिक ऊँचा भी नहीं होना चाहिए । योगी सदा निःस्पृह सत्यवाणी वाला और पवित्र रहे ॥१५॥ युक्त अर्थात् उचित निद्रा करने वाला अर्थात् न अति अधिक और न कम सोने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, सब प्राणियों पर उनके हित करने में निरत, सभी प्रकार के द्वन्द्वों को सहने वाला, धीर और समान शरीर, चरण और मस्तक को रखने वाला एक योगाभ्यासी को होना चाहिए ॥१६॥ अपनी नाभि की जगह पर दोनों हाथों को रखकर-परम शान्त होते हुए पद्मासन लगाकर बैठ जावे । अपनी नासिका के अग्रभाग में मौन होकर मुख बन्द करते हुए प्राणयाम करना चाहिए ॥१७॥ मुनि को मन के द्वारा समस्त इन्द्रियों के समुदाय का हृदय में संयमन करना चाहिए । प्रणव (ओङ्कार) का दीर्घता से उद्यम करके मुख बन्द करके एक दम सुनिश्चल हो जाना चाहिए ॥१८॥ रजोगुण के द्वारा तमोगुण की वृत्ति का और सत्त्व गुण से रजोगुण को सञ्छन्न करके निर्मल एवं एक दम शान्त हृदय में स्थित होकर अपने नेत्रों को मूँद लेवे ॥१९॥ फिर ऐसा ध्यान करे कि मेरे हृदय में एक अष्ट दलों वाला कमल है उस पर सबका निरञ्जन प्रभु लीन (विराजमान) हैं । योगाभ्यासी सदा उसी परम पुरुषोत्तम प्रभु का जो मुक्ति का प्रदान करने वाले हैं निरन्तर ध्यान किया करे ॥२०॥ सबसे प्रथम करणेन्द्रियों को और भूतों को क्षेत्रज्ञ में विन्यस्त करना चाहिए और क्षेत्रज्ञ को फिर पर पुरुष में योजित करके ही योग के ज्ञाता को योगाभ्यास करना चाहिए और इसी तरह से योगी किया करते हैं ॥२१॥

मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम् ।
संत्यज्य विषयांस्तस्य योगसिद्धिः प्रकाशिता ॥२२
यदा निर्विषयं चित्तं परे ब्रह्मणि लीयते ।
समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्येति परं पदम् ॥२३
असंसक्तं यदा चित्तं योगिनः सर्वकर्मसु ।
भयत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति ॥२४

शुद्धं धामत्रयातीतं तुर्याख्यं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्य योगबलाद्योगी मुच्यते नात्र संशयः ॥२५
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः सर्वत्र प्रियदर्शनः ।
सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित् ।
सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र संशयः ॥२७

जिस योगाभ्यासी का मन अन्त को प्राप्त हो जाता है उस चंचल मन को परमात्मा में भली-भाँति से त्याग कर और विषयों से मुक्त होकर अभ्यास करते रहने पर ही योग की सिद्धि प्रभासित हुआ करती है ॥२२॥ जिस समय में विषयों से रहित वह चित्त पर ब्रह्म में लीन हो जाया करता है उसी समय में योग से युक्त की समाधि लग जाया करती है और समाधि में स्थित योगी उस समय में परम ब्रह्म में लीन हो जाया करता है और वह परम पद को भी प्राप्त कर लेता है ॥२३॥ जिस समय में योगी का चित्त सभी कर्मों में ससक्त नहीं होता है तभी वह आनन्द की प्राप्ति करके निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥२४॥ योग के बल से योगी तीनों धाम से भी परे विशुद्ध-तुर्य नाम धारी पुरुषोत्तम प्रभु को प्राप्त करके छुटकारा अवश्य ही पा जाया करता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२५॥ जो योगी राज सभी इच्छाओं से रहित होता है और सर्वत्र देखने में प्रिय लगा करता है तथा सभी में उसकी अनित्यता रहने की बुद्धि होती है ऐसा ही योगी इस सम्पूर्ण सांसारिक जन्म मरण जरा के पुनः पुनः आवागमन के महान् दुःखद बन्धन से निश्चित रूप से मुक्त हो जाया करता है-इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। अन्य किसी भी प्रकार से छुटकारा कभी भी नहीं हुआ करता है ॥२६॥ योग के वेत्ता को कभी भी मूल इन्द्रियों का सेवन नहीं करना चाहिए और युग के ज्ञाता को वैराग्य धारण करना ही उचित होता है। इस रीति से योगी को सदा ही अभ्यास का योग करते रहना चाहिए। इससे वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२७॥

न च पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८
एवं मया मुनिश्रेष्ठा योगः प्रोक्तो विमुक्तिदः ।
संसारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६
श्रुत्वा ते वचनं तस्य साधु साध्विति चाब्रुवन् ।
व्यासं प्रशस्य संपूज्य पुनः प्रष्टुं समुद्यता: ॥३०

केवल कोई पद्मासन लगा लिया करे और अपनी नासिका के अग्र-भाग का निरीक्षण करता रहे तो योग की पूर्णता कभी नहीं हुआ करती है। मन और इन्द्रियों का जो संयोग का न होना है वही वास्तव मे योग कहा जाया करता है ॥२८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार मैं इस विमुक्ति के प्रदान करने वाले योग का वर्णन करके इसे बतला दिया है। इसके अति-रिक्त इस संसार से मुक्ति पाने का हेतु अन्य क्या श्रवण करना आप लोग चाहते हैं ॥२६॥ लोमहर्षण महा मुनीन्द्र ने कहा—उन मुनिगण ने उनके इस वचन का श्रवण करके 'साधु साधु'-ऐसा कहा था अर्थात् आपने कुछ भी बतलाया है और अब जो हम लोगों से पूछ रहे हैं कि आगे क्या सुनना चाहते हैं–यह बहुत ही अच्छा है। फिर उन्होंने श्रीव्यासदेव की प्रशंसा की थी और उनकी भली-भाँति अर्चना करके उनसे वे पुन पूछने के लिये समुद्यत हो गये थे ॥३ ॥

—:※:—

सांख्ययोगनिरूपण

तव वक्त्राब्धिसंभूतममृतं वाङ्मयं मुने ।
पिबतां नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१
तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम् ।
सांख्यं च द्विपदां श्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२

प्रज्ञावाञ्छ्रोत्रियो यज्वा ख्यातः प्राज्ञोऽनसूयकः ।
सत्यधर्ममतिर्ब्रह्मन्कथ ब्रह्माधिगच्छति ॥३
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया ।
सांख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व नः ॥४
मनसश्चेन्द्रियाणां च यथैकाग्र्यमवाप्यते ।
येनोपायेन पुरुषस्तत्त्व व्याख्यातुमर्हसि ॥५
नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन ॥६
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टिः स्वयंभुवः ।
भूयिष्ठं प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७

मुनिगण ने कहा—हे महा मुनीन्द्र ! आपके मुख रूपी सागर से समुत्पन्न वाङ्मय अमृत का पान करने वाले हम लोगों को हे द्विजश्रेष्ठ ! अभी तक तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ हे मुने ! इसलिये अब आप उस परमाधिक उत्तम योग को जो विमुक्ति प्रदान करने वाला है विस्तार के साथ वर्णन कीजिए। हे वदों में परम श्रेष्ठ ! हमको योग के साथ ही साथ सांख्य को भी बतलाइये। हम सब लोग बड़ी अभिलाषा के साथ यह श्रवण करना चाहते हैं ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! श्रोत्रिय प्रज्ञावाला यज्वा-असूया न करने वाला-सत्य और धर्म में मति रखने वाला होता है वह किस प्रकार से ब्रह्म को जानकर उसे प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ तप से ब्रह्मचर्य से-सभी कुछ का त्याग कर देने से मेधा से सांख्य में अथवा योग में जो सिद्धि एवं मुक्ति होती है वही आप हम लोगों को बतलाइए और यही आपसे पूछा गया है ॥४॥ जिस किसी भी उपाय से जिस प्रकार से मन और इन्द्रियों की एकाग्रता प्राप्त की जाया करती है और पर परात्पर पुरुष की उपलब्धि होती है उसकी व्याख्या आप करने के लिये बहुत ही सुयोग्य हैं ॥५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—कोई भी ज्ञान और तप से अन्यत्र नहीं-इन्द्रियों के निग्रह से अन्यत्र भी नहीं और सभी कुछ के भली भाँति त्याग करने के अतिरिक्त अन्य किसी से भी सिद्धि को प्राप्त

नहीं किया करता है ॥६॥ स्वयम्भू भगवान् की पूर्ण सृष्टि सभी महाभूत होते हैं। जो अधिकता से शरीर धारियों में प्राणभृद् ग्राम में निविष्ट हुए हैं ॥७॥

भूमेर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते ।
प्राणापानाश्रयो वायुः कोष्ठाकाशं शरीरिणाम् ॥८
क्रान्तौ विष्णुर्बले शक्रः कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति ।
कर्णयोः प्रदिशःश्रोत्रे जिह्वाया वाक्सरस्वती ॥९
कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
दश तानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०
शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसं गन्धं च पञ्चमम् ।
इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११
इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते अवश्या(शा)निव राजिन (नः)
मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२
इन्द्रियाणां तथैवैषां सर्वेषामीश्वरं मनः ।
नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनसस्तथा ॥१३
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मन. ।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम् ॥१४

भूमि से प्राणियों का देह-जल से स्नेह ज्योति से दोनों नेत्र प्राण और अपान का आश्रय वाला वायु और शरीर धारियों के कोष्ठ में आकाश है ॥८॥ क्रान्ति में भगवान् विष्णु-बल में इन्द्र-कोष्ठ में अग्नि कानों के श्रोत्र में प्रदिशाएँ तथा जिह्वा में वाक् सरस्वती भोग करने की इच्छा किया करते हैं ॥९॥ दोनों कर्णत्वक् दोनों नेत्र जिह्वा पाँचवी नासिका ये दश इन्द्रियाँ बतलाई गयी हैं जो आहार की सिद्धि के लिये द्वार हुआ करती हैं ॥१०॥ इन इन्द्रियों के लिये नित्य ही शब्द-स्पर्श रूप-रस और पाँचवा गन्ध ये इन्द्रियों के विषय हैं इन सबको भी पृथक् पृथक् जान लेना चाहिए ॥११॥ ये सब इन्द्रियाँ आवश्यक रूप से मन के साथ योग किया करती हैं और वह मन भी सदा हृदय में समाश्रित भूतात्मा के साथ योग किया करता है ॥१२॥ इन समस्त इन्द्रियों का ईश्वर एक मात्र मन ही हुआ

करता है उस मन के नियिमन मे तथा विसर्ग मे भूतात्मा ईश्वर होता है ॥१३॥ इन देह धारियो के देहो मे नित्य ही इन्द्रियाणि-इन्द्रियो के स्वभाव चेतना मन प्राण अपान और जीव रहा करते हैं ॥१४॥

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतना ।
सत्त्व हि तेज सृजति न गुणान्वं कथचन ॥१५
एव सप्तदश देह वृत पोडशभिर्गुण ।
मनीषी मनसा विप्रा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६
न ह्यय चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः ।
मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७
अशब्दस्पर्शरूप तच्च (त्वा) रसागन्धमव्ययम् ।
अशीर शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥१८
अव्यक्त सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमार्चितम् ।
योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत ॥१९
विद्याविनयसपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥२०
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च ।
वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिद ततम् ॥२१

सत्त्व का आश्रय न गुण शब्द है और न चेतना ही है । यह सत्त्व ही तेज का सृजन किया करता है और किसी भी प्रकार से गुणो का सृजन नही करता है ॥१५॥ इस रीति से यह सत्रहवाँ देह सोलह गुणो से वृत होता है । हे विप्रो ! जो मनीषी होता है जो मन से अपनी आत्मा मे ही आत्मा को देखा करता है ॥१६॥ यह आत्मा नेत्र से देखने के योग्य नही है और अन्य भी इन्द्रियो के द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त नही किया जा सकता है कि इस आत्मा की रूप रता कैसी है । केवल प्रदीप्त मन के ही द्वारा यह महान् आत्मा प्रकाशित हुआ करता है ॥१७॥ शब्द-स्पर्श रूपस रहित तथा रस और गन्ध से विहीन अव्यय शरीर से वर्जित और बिना इन्द्रियो वाला आत्मा अपने शरीर म देखा करता है ॥१८॥ सब के देहों मे मनुष्यो मे अव्यक्त स्वरूप वाला और परम समर्चित इस आत्मा को

जो भी कोई देख लेता है वह मृत्युगत होकर ब्रह्म की ही समता को प्राप्त कर लिया करता है ॥१८॥ जो परम पण्डित अर्थात् सत्-असत् की विवेक बुद्धि के रखने वाले पुरुष होते हैं वे विद्या और विनय से समन्वित ब्राह्मण में-गौ में-हाथी में-कुत्ते में और श्वपच में एक ही समान आत्मा के दर्शन करने वाले हुआ करते हैं तथा सब में एक ही आत्मा को समझ करके वैसी ही सहानुभूति पूर्णता रखते हैं ॥२०॥ वही एक परमात्मा का अंश यह जीवात्मा समस्त प्राणियों में-चर और अचरों में महान् आत्मा निवास किया करता है जिस परमात्मा ने इस सम्पूर्ण विश्व का विस्तार किया है ॥२१॥

सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥२२
यावानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि ।
य एव सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥२४
शकुन्तानामिवाऽऽकाशे मत्स्यानामिव चोदके ।
यथा गतिर्न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः ॥२५
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि ।
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन ॥२६
न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च नाधो न च पुनः पुनः ।
न मध्ये प्रतिगृह्णीते नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७
सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन ।
यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८

समस्त प्राणियों में जब वही एक परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म तत्त्व की दृष्टि से कुछ भी अन्तर नहीं है तो समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को और सब प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा में जब देखता है तो उस समय में ऐसा सच्चा दृष्टिकोण हो जाने पर वह स्वयं ही ब्रह्मवत् हो जाया करता है ॥२२॥ जितना ही आत्मा में आत्मा

को जानता है उतना ही पराई आत्मा में भी आत्मा को देखा करता है। जो इस प्रकार से निरन्तर समझता है वह अमृतत्व के लिये ही कल्पित हुआ करता है ॥२३॥ सब प्राणियो का आत्मभूत और सब प्राणियो का हित करने वाले के मार्ग में जो अपद है भी पद की अभिलाषा रखने वाला है देवगण भी मोह को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥२४॥ जिस तरह से अन्तरिक्ष में पक्षियो की और जल मे मत्स्यो की गति हुआ करती है उसी भाँति से ज्ञान के वेत्ताओ की गति भी दिखलाई नही दिया करती है ॥२५॥ आत्मा के द्वारा आत्मा मे समस्त प्राणियो को यह काल पाचन किया करता है। यह काल जिसमे पचन किया करता है उसको कोई भी नही जानता है और इस लोक मे काल के विषय मे सभी अनभिज्ञ रहा करते है कि कैसे यह प्राणियो का पाचन किया करता है ॥२७॥ ये सभी लोक उसी म स्थित रहा करते हैं और उसके बाहर इनमे से कुछ भी बाहिर नही है। यद्यपि यह उसी भाँति आग की ओर जाया करता है जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है ॥२८॥

नैवान्त कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजव ।
तस्मात्सूक्ष्मतर नास्ति नास्ति स्थूलतर तथा ॥२९
सवत पाणिपाद तत्सवतोक्षिशिरोमुखम् ।
सवत श्रुतिमल्लोके सवमावृत्य तिष्ठति ॥३०
तदवाणोरणुतर तन्महद्भ्यो महत्तरम् ।
तदन्त सवभूताना ध्रुव तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१
अक्षर च क्षर चव द्वेधा भावोऽयमात्मन ।
क्षर सर्वेषु भूतेषु दिव्य त्वमृतमक्षरम् ॥३२
नवद्वार पुर कृत्वा हसो हि नियतो वशी ।
ईदृश सवभतस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥३३
हानेनाभिविकल्पाना नराणा सचयेन च ।
शरीराणामजस्याऽऽहुहसत्व पारदर्शिन ॥३४
हसोक्त च क्षर चैव कूटस्थ यत्तदक्षरम् ।
तद्विद्वानक्षर प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५

यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अन्त तक प्राप्त नही हो पाता है क्योकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म नही है तथा वह स्थूल भी इतना है कि उससे अधिक कोई भी स्थूल नही है ॥२६॥ उस परम पिता परमात्मा के हाथ पैर सभी ओर होते हैं। उसके नेत्र-मुख और शिर भी सभी ओर हैं—लोक मे वह श्रुति वाला है और सभी को समावृत करके स्थित है ॥३०॥ वही अणु से भी अधिक अणु है और वह महान् से भी अधिक महान् है। वह समस्त प्राणियो के अन्त करण में निश्चित् रूप से स्थित हुआ भी नही दिखलाई दिया करता है ॥३१॥ इस आत्मा का क्षर और अक्षर दो प्रकार का भाव होता है। समस्त प्राणियो में क्षर विद्यमान रहा करता है और जो अक्षर होता है वह परम दिव्य और अमृत है ॥ ३२॥ नौ द्वारो वाले इस शरीर रूपी पुर को बनाकर वह हस नियत और वशी उसमें निवास किया करता है। चाहे कोई स्थावर हो या चर हो सभी प्राणी का इसी प्रकार का हुआ करता है ॥३३॥ मनुष्यो के जो अभिविकल्प स्वरूप होते हैं हानि होन से और सचय होने से शरीरो के पारदर्शी अज को हसत्व कहा करते हैं अर्थात् हस इस नाम से कहा था वह समझा जाया करता है ॥३४॥ वह हस नाम से कहा गया क्षर और जो कूटस्थ है वह अक्षर है। विद्वान् पुरुष उस अक्षर की प्राप्ति करके प्राणो का जन्म तथा मरण का त्याग कर दिया करता है ॥३५॥

भवता पृच्छता विप्रा यथावदिह तत्त्वत ।
साख्य ज्ञानेन सयुक्त तदेतत्कीर्तित मया ॥३६
योगकृत्य तु भो विप्रा कीर्तयिष्याम्यत परम् ।
एकत्व बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणा च सवश ॥३७
आत्मनो व्यापिनो ज्ञान ज्ञानमेतदनुत्तमम् ।
तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८
आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्य शुचिकर्मणा ।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदु ॥३९

काम क्रोध च लोभ च भय स्वप्न च पञ्चमम् ।
क्रोध शमेन जयति काम सकल्पवर्जनात् ॥४०

सत्त्वससेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तु महंति ।
धृत्या शिश्नोदर रक्षेत्पाणिपाद च चक्षुषा ॥४१

चक्षु श्रोत्र च मनसा मनो वाच च कर्मणा ।
अप्रमादाद्भय जह्याद्दम्भ प्राज्ञोपसेवनात् ॥४२

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रगणो ! आप लोगो ने जो पूछा था वह सात्त्व ज्ञान है सयुक्त यथावत् रीति से मैंने कीर्तित तात्विक रूप से इस समय मे कर दिया है ॥३६॥ हे विप्रो ! इससे आगे मैं योग के कृत्य को कीर्तित करूँगा । सभी ओर से बुद्धि और मन की एकता तथा इन्ही के साथ मे सब इन्द्रियो की एकता होनी चाहिए ॥३७॥ आत्मा सर्वत्र व्यापक है-ऐसा उस व्यापी आत्मा का ज्ञान बहुत ही उत्तम ज्ञान है । यह ज्ञान परम शुचि कर्म्म वाले-बुद्ध और आत्माराम के द्वारा तथा उपशान्त ध्यानशील और आत्मज्ञान के शील स्वभाव के द्वारा जानना चाहिए। योग के जो दोष हैं उनका समूलोच्छेदन करके जिनको कि कविगण पाँच बतलाया करते हैं आत्मज्ञान कुछ किया जा सकता है ॥३८-३६॥ वे पाच दोष-काम, क्रोध, लोभ,भय और पञ्चम स्वप्न हैं । योगी क्रोध को शम के द्वारा जीतता है-काम को हृदय में होने वाले सङ्कल्पों को एक दम वर्जित करने से निर्जित किया करता है-सदासत्व के भली भांति सेवन करने से धीर पुरुष निद्रा का उच्छेद कर दिया करता है । धृति (धैर्य) से शिश्न और उदर की सुरक्षा करनी चाहिए एव चक्षु से हाथो और पैरो की रक्षा करे-श्रोत्र तथा चक्षु को मन के द्वारा तथा मन और वाणी को कर्म्म के द्वारा सुरक्षा करे । प्रमाद नही करने से ही भय का त्याग करे तथा दम्भ का परित्याग प्राज्ञ पुरुषों की सेवा करने से करना चाहिए ॥४०-४२॥

एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः ।
अग्नीश्च ब्राह्मणाश्चाथ देवता. प्रणमेत्सदा ॥४३

दर्जयेदुद्धतां वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम् ।
ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ॥४४

एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ।
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ॥४५

शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः ।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥४६
समः सर्वेषु भूतेषु लभ्यालभ्येन वर्तयन् ।
धूतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥४७

कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मणः पदम् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ॥४८
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मनः ।
जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्लिन्नमिन्द्रियम् ॥४९

इस प्रकार से इन उपर्युक्त योग मे होने वाले जो दोष हैं उनको नित्य ही अतन्द्रित होकर जीत लेना चाहिए। अग्नियों को, ब्राह्मणों को और देवगणो को सदा ही प्रणाम करना चाहिए ॥४३॥ अत्यन्त उद्धत हिंसा से युक्त अर्थात् दूसरो के हृदय को आघात पहुचाने वाली तथा अपने ही मन की अनुगामिनी अर्थात् जैसी भी मन में आ गयी वैसी वाणी का त्याग कर देना चाहिए। ब्रह्म एक तेज से परिपूर्ण शुक्र है जिसका कि यह सम्पूर्ण जगत् है ॥४४॥ इसी भूत भूत का यह स्थावर और जङ्गम जगत् देखा गया है। ध्यान-अध्ययन-दान सत्य-लज्जा-आर्जव (सरलता)-क्षमा शौच-आत्मा की शुद्धि और समस्त इन्द्रियों का निग्रह इनसे तेज की विशेष वृद्धि होती है और पापों का अपकर्षण होता है ॥४५-४६॥ समस्त प्राणियों मे समान व्यवहार करने वाला-जो लभ्य हो या जो अलभ्य हो अर्थात् जैसा भी जो कुछ प्राप्त हो उसी से उदर पूर्ति करता हुआ-पापों को धून करने वाला-तेजस्वी बहुत कम आहार करने वाला-जितेन्द्रिय योगाभ्यासी पुरुष काम और क्रोध इन दोनों महान् प्रबल शत्रुस्वरूप दोषो पर विजय प्राप्त करके और इनको वश

में रख कर ब्रह्म के पद का सेवन करे। परम समाहित होकर मन और इन्द्रियो की एकाग्रता करके पूर्व रात्रि मे और परार्घ मे मन को धारण करना चाहिए। इस पाच इन्द्रियों वाले जन्तु की यदि इन पाँचो इन्द्रिय मे से कोई भी एक इन्द्रिय भी क्लिन्न होजाती है अर्थात् वश से बाहर निकल जाती है तो बुद्धि भ्रष्ट होजाया करती है ॥४७-४६॥

ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा गिरे पादादिवोदकम् ।
मनस पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव मत्स्यहा ॥५०
तत श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राण च योगवित् ।
तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१
तथैवापोह्य सकल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत् ।
पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मन षष्ठानि चाऽऽत्मनि ।
प्रसीदन्ति च सस्थाया तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥५३
विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४
सर्वं तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते ।
त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५
धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता ।
एव परिमित कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६

इस तरह से इन्द्रियो के काबू से बाहिर हो जाने पर चाहे कोई सी भी इन्द्रियें पाँचो में से क्यों न हो। फिर तो इस पुरुष की प्रज्ञा का स्रवण हो जाया करता है जैसे किसी पर्वत की चोटी से जल नीचे आकर पतित हो जाता है। मत्स्यो का हनन करने वाले को सब से प्रथम कर्मों की तरह मन को ही वश मे लाना चाहिए ॥५०॥ इसके अनन्तर श्रोत्र को फिर चक्षु को इसके पश्चात् जिह्वा को और फिर घ्राणेन्द्रिय को वश मे योग के वेत्ता को करना चाहिए। इसके उपरान्त इन सबका सयम करके मन मे ही स्थापित करना चाहिए ॥५१॥ उसी प्रकार से अपोह करके सकल्प से मन को अपनी आत्मा में धारण

करे। यदि पाँचो इन्द्रियो को मन में एवं हृदय मे सस्थापित यदि कर ले ॥५२॥ जिस समय मे पाँचो इन्द्रियाँ और छटवाँ मन आत्मा मे अवस्थित हो जाते हैं तो उस सस्थिति मे इन मे एक प्रकार का प्रसाद होता है तथा सभी परम प्रसन्नता का अनुभव किया करती हैं और उस समय मे ब्रह्म का प्रकाश हुआ करता है ॥५३॥ धूम से रहित अग्नि की भाँति दीप्तिमान् मानो स्वय आकाश आकाश मे विद्युत की अग्नि के समान ही उस आत्मा को अपनी आत्मा के अन्दर देख लिया करते हैं ॥५४॥ उसके सब मे व्यापक होने के कारण से वहा सभी कुछ दिखलायी दिया करता है। जो ब्राह्मण परमाधिक मनीषी और महान् आत्मा वाले हुआ करते हैं वेही उसको देखते हैं ॥५५॥ जो परम धृति वाले-महा प्राज्ञ और सब भूतो के हित मे रति रखने वाले होते हैं वे ही उसका दर्शन किया करते हैं ॥५६॥

आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम् ।
प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राण श्रवणदर्शने ॥५७
अद्भुतानि रसः स्पर्शः शीतोष्णमारुताकृतिः ।
प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिसगृह्य योगत ॥५८
तास्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत् ।
कुर्यात्परिचय योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनि. ॥५६
गिरिशृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत् ।
सनियम्येन्द्रियग्राम कोष्ठे भाण्डमना इव ॥६०
एकाग्र चिन्तयेन्नित्य योगान्नोद्विजते मनः ।
येनोपायेन शक्येत नियन्तु चञ्चल मनः ॥६१
तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्तत ।
शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत् ॥६२
नातिव्रजेत्परं वाचा कर्मणा मनसाऽपि वा ।
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धसमो भवेत् ॥६३

इस प्रकार से परिमित ग्रास पर्यन्त से नियत आहार [illegible]

को प्राप्त करना चाहिए। प्रमोद-भ्रम आवर्त्त-घ्राण-श्रवण-दर्शन मे अद्भुत हैं। रस-स्पर्श शीत उष्ण-मारुताकृति-प्रतिमा और अनुपसर्ग इनका योग के प्रभाव से प्रति संग्रह करके तत्त्ववेत्ता को उनका अनादर करके साम्य भाव से ही निवृत्त कर देना चाहिए। नियत् मुनि को इस त्रिलोकी मे योग मे अवश्य ही परिचय कर लेना चाहिए ।।५७-५८।। गिरि की चोटी पर तथा चैत्य मे एव वृक्ष के मूल मे योजित करना चाहिए। भाण्ड मना की तरह कोप मे इन्द्रियो के समुदाय का सयम करना चाहिए ।।५६-६०।। नित्य प्रति एकाग्र मन वाला होकर चिन्तन करे और योग से मन को उद्विग्न नही करना चाहिए। जिस भी किसी उपाय से इस चञ्चल मन को नियन्त्रित किया जासके वैसा ही करना चाहिए। उसमे युक्त होकर निषेवण करना चाहिए और वहाँ से मन को विचलित नही करे। अपने निवास करने के लिये एकाग्र मन वाला होकर शून्य आगारो का उपक्रम करना चाहिए ।।६१-६२।। वचन कर्म और मन के द्वारा पर का कभी अति वर्जन नही करे। जो उपेक्षक और यत आहार वाला लब्ध तथा अलब्ध के सम होजाया करता है ।।६३।।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत् ।
समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ।।६४
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् ।
समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वन. ।।६५
एव स्वस्थात्मन साधो सर्वत्र समदर्शिन. ।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ।।६६
वेदनार्तान्परान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चन. ।
एव तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहित. ।।६७
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी ।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम् ।।६८
अज पुराणमजरं सनातनं,
यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजाः ।

अवेक्ष्य चेमा परमेष्ठिसाम्यता,
प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनीषिणः ॥६९

जो कोई इसका अभिनन्दन किया करता है और जो इसका अभिवादन करता है। समस्तो का और दोनो का शुभा शुभ का अभिध्यान नही करना चाहिए। जब कभी लाभ हो तो उन पर प्रहर्ष नही करे अधिक फूल न जावे और कभी अलाभ हो अर्थात् हानि होजावे तो अधिक चिन्ता मे मग्न नही होजाना चाहिए। आयु की भाँति समस्त प्राणियो के साथ समान समान व्यवहार वाला होना चाहिए ॥६४,६५॥ इस तरह से स्वस्थ आत्मा वाले और सर्वत्र समदर्शी साधु पुरुष जो छै मास तक नित्य ही नियम से योगाभ्यास मे युक्त होता है उसको शब्द ब्रह्म अभिवर्तित हो जाता है ॥६६॥ वेदना से आर्त्त दूसरो को देखकर लोष्ठ (मिट्टी का ढेला) और सुवर्ण दोनों का समान भावना से समझने वाला रहे। इस प्रकार से निरत रहता हुआ विमोहित होकर मार्ग से कभी भी विराम ग्रहण न करे ॥६७॥ चाहे कोई वर्ण से अव इष्ट हो अथवा धर्म की आकाङ्क्षा रखने वाली नारी हो वे दोनो भी इसी मार्ग के द्वारा परम गति को गमन किया करते हैं ॥६८॥ हे द्विजो! मनीषी गण अज पुराण अजर सनातन इन्द्रियो के अतिगमन करने वाला अगोचर जिसको देखकर इस अनावृत्ति गति वाली अर्थात् पुन इस ससार मे जन्म ग्रहण कर न आने वाली परमेष्ठी की साम्यता को गमन किया करते हैं ॥६९॥



ज्ञानिनामोक्षप्राप्तिनिरूपण

यदोव वेदवचन कुरु कर्म त्यजेति च।

एतद्वै श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः ।
एतदन्योन्यवैरूप्य वर्तते प्रतिकूलतः ॥२
शृणुध्व मुनिशार्दूला यत्पृच्छध्व समासतः ।
कर्मविद्यामयौ चोभौ व्याख्यास्यामि क्षराक्षरौ ॥३
या दिश विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा ।
शृणुध्व साप्रत विप्रा गहन ह्येतदुत्तरम् ॥४
अस्ति धर्म इति युक्त नास्ति तत्रैव यो वदेत् ।
यक्षस्य सादृश्यमिद यक्षस्येदं भवेदथ ॥५
द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषित. ॥६
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतय. पारदर्शिन. ॥७

मुनिगण ने कहा—अमुक कर्म को करो और अमुक कर्म का त्याग कर दो—यदि ऐसा वेदो का वचन आज्ञा के रूप मे मानवो के लिये है तो हे भगवन् । अब आप हमको कृपा करके यह बतला दीजिए कि मानव विद्या से तो किस दिशा को गमन किया करते हैं और कर्म्म के द्वारा किस दिशा को जाया करते है ? ॥१॥ हम लोग इस समय मे यही श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं । आप हम लोगो को यह स्पष्ट रूप से बतला दीजिए ये दोनो ही बातें प्रतिकूलता से परस्पर मे विरूपता रखती हैं ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! आप जो मुझ से पूछ रहे है उस विषय मे सक्षेप मे सुनिये । मैं कर्म और विद्या स परिपूर्ण ये दोनो क्षर और अक्षर है । इनकी मैं व्याख्या कर दूँगा ॥ ॥ इस लोक में मनुष्य विद्या के द्वारा जिस दिशा को गमन किया करते हैं और कर्म्मों के करने के द्वारा जिस दिशा को जाते हैं । हे विप्रो ! आप अब इस विषय में श्रवण करिए । यह उत्तर अत्यन्त ही गहन है ॥४॥ धर्म है-यह वचन करना और ऐसा ही मानना बहुत युक्त है । वहाँ पर जो ऐसा कहता है कि धर्म नाम का कुछ भी नहीं है अर्थात् धर्म के नाम एक निरर्थक आडम्बर मात्र है तथा

धर्म एक विडम्बना ही है। ऐसा कथन करना एक यक्ष के ही समान है और यक्ष का ही होता है ।।५।। इसके अनन्तर ये ही मार्ग है जिसमे धर्म प्रतिष्ठित रहा करते हैं। जो प्रवृत्ति वाला अर्थात् प्रवृत्ति ही जिसका लक्षण होता है वह तो धर्म होता है और दूसरा निवृत्ति कराने वाला होता है ऐसा कहा गया है कर्म से यह जन्तु बद्ध हो जाता है और विद्या के द्वारा वह मुक्त होजाया करता है अर्थात् बन्धन से प्रवृत्ति लक्षण धर्म से होता है उससे छुटकारा पा जाता है। इसी कारण से पार-दर्शी यति लोग कर्मों का त्याग कर उन्हे सर्वथा नही किया करते हैं यद्यपि वे कर्म्म भी धर्म्मानुकूल ही होते हैं और धर्म से विपरीतता नही होती है ।।६-७।।

कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः ।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्त ह्यक्षरात्मकम् ।।८
कर्म त्वेके प्रशसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः ।
तेन ते देहजालेन रमयन्त उपासते ।।९
ये तु बुद्धि परा प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः ।
न ते कर्म प्रशसन्ति कूप नद्या पिबन्निव ।।१०
कर्मणा फलमाप्नोति सुखदु खे भवाभवौ ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ।।११
न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते ।
न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ।।१२
यत्र तद्ब्रह्म परमव्यक्तमचल ध्रुवम् ।
अव्याकृतमनायाममृत चाधियोगवित् ।।१३
द्वंद्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा ।
समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ।।१४

कर्म से यह मानव मृत्युगत होकर पुन. मूर्तिमान् सोलह वर्ष का होकर समुत्पन्न होता है और विद्या से नित्य-अव्यक्त अक्षरात्मक हुआ करता है ।.८।। जो नर स्वल्प बुद्धि में रति रखने वाले कुछ लोग हैं वे

कर्म की ही विशेष प्रशंसा किया करते हैं उसी कारण से वे लोग देहो को धारण करते रहने के जाल से रमण करते हुए उपासना किया करते हैं ॥६॥ और लोग परा बुद्धि को प्राप्त करने वाले हैं तथा धर्म की निपुणता को देख लेने वाले होते है वे नदी मे या कूप मे पीते हुए की भाँति ही कभी भी कर्म की प्रशसा नही करते हैं ॥१०॥ कर्म करने वाले अवश्य कृत कर्मों का शुभाशुभ फल प्राप्त किया करते है वे फल सुख और दु.ख के रूप मे होते हैं। शुभ कर्म का फल सुख और बुरे कर्मों का फल दु ख होता है। कर्म से संसार मे जन्म तथा यहा से मरण भी प्राप्त हुआ करते हैं। विद्या से तो ऐसा फल मिला करता है जहाँ पर पहुँच कर पुनः स सार में निवृत्त होकर जन्म नही लेते है। विद्या से जो पद मिलता है वह ऐसा है जहा पहुँच कर न जराही होती है और न कोई वृद्धि ही हुआ करती है ॥११-१२॥ वह तो वैसा स्थल है जहा पर वह ब्रह्म है जो परम-अव्यक्त-अचल-ध्रुव-अव्याकृत-आयास शून्य और अमृत है। और आधियोग के वेत्ता मानस कर्म के द्वारा जहा पर द्वन्द्वो से बध्य नही होते हैं। सभी वहाँ पर समान-सर्वत्र मित्र भाव रखने वाले और समस्त प्राणियो के हित मे निरत रहते हैं ॥१३-१४॥

विद्यामयोऽन्य. पुरषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः ।
विप्राश्चन्द्रसमस्पर्शः सूक्ष्मया कलया स्थितः ॥१५
सदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुगीयते ।
न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं चक्रतन्तुमिवाम्बरे ॥१६
एकादशविकारात्मा कलासभारसभृत ।
मूर्तिमानिति त विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम् ॥१७
देवो यः सश्रितस्तस्मिन्बुद्धीन्दुरिव पुष्करे ।
क्षेत्रज्ञं त विजानीयान्नित्य योगजितात्मकम् ॥१८
तमो रजश्च सत्त्व च ज्ञेय जीवगुणात्मकम् ।
जीवमात्मगुण विद्यादात्मान परमात्मनः ॥१६
सचेतनं जीवगुण वदन्ति,
स चेष्टते जीवगुणं च सर्वम् ।

ततः पर क्षेत्रविदो वदन्ति,
प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०
प्रकृत्यास्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञास्ते परिश्रुता ।
ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१

जो विद्या से परिपूर्ण पुरुष होता है वह हे द्विजो ! अन्य होता है और दूसरा कर्ममय हुआ करता है । हे विप्रो ! सूक्ष्म कला से युक्त होकर स्थित होने वाला चन्द्रमा के ही समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है ॥१५॥ वही यह ऋषि ने कहा है और विस्तार के साथ गान किया जाया करता है । वह वस्त्रों में चक्र के तन्तु के ही समान देखा जा सकता है किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है ॥१६॥ हे विप्रो ! वह एकादश विकारात्मक स्वरूप वाला और कला के सम्भार से सम्भृत हुआ करता है तथा मूर्तिमान् होता है—ऐसा ही उसे कर्म गुणात्मक जान लेना चाहिए ॥१७॥ जो कोई देव पुष्कर बुद्धीन्दु के ही समान संश्रित किया जाता है । उसको नित्य ही योग से जित आत्मा वाले उसको क्षेत्रज्ञ ही जान लेना चाहिए ॥१८॥ इस जीव को तमोगुण-रजोगुण और सत्त्वगुण के स्वरूप वाला जानना चाहिए । उस परमात्मा के आत्मा को जीवात्मा के गुणों वाला जान लेना चाहिए ॥१९॥ चेतना से युक्त जीव का गुण कहते हैं और वह सर्वत्र समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है । इससे पर सात भुवनों की प्रकल्पना करते हुए क्षेत्रवेत्ता कहते हैं ॥२०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—प्रकृति के जो विकार होते हैं । वे क्षेत्रज्ञ परिश्रुत होते हैं और वे तो इसको नहीं जानते हैं और वह उनको भी नहीं जाना करता है ॥२१॥

तैश्चैव कुरुते कार्यं मनःषष्ठैरिहेन्द्रियैः ।
सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः परमवाजिभिः ॥ २
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥२३
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम् ।
अमृतान्न परं किंचित्सा काष्ठा परमा गतिः ॥२४

एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥२५
अन्तरात्मनि सलीय मन षष्ठानि मेधया ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६
ध्यानेऽपि परम कृत्वा विद्यासपादित मनः ।
अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्पर पदम् ॥२७
इन्द्रियाणा तु सर्वेषा वश्यात्मा चलितस्मृति ।
आत्मन सप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥२८

जिस तरह से सुन्दरता से दमनशील बहुत ही उत्तम श्रेणी के अश्वो के द्वारा परम दृढ सुयन्ता होता है उसी भाँति छटवें मन वाली इन्द्रियो के द्वारा उन्ही से वह कार्य किया करता है ॥२२॥ इन इन्द्रियो से पर तो अर्थ हुआ करते हैं और इन अर्थो से भी परम मन होता है। इस मन से परा बुद्धि है तथा बुद्धि मे पर महान् आत्मा है ॥२३॥ महत् से पर अव्यक्त और उस अव्यक्त से भी पर अमृत है। उस अमृत से पर कुछ भी नही होता है। वही परमकाष्ठा (सीमा) गति हुआ करती है अर्थात् उस अमृतत्व पद को प्राप्त कर लेना ही परमाधिक गति को प्राप्त करना है ॥२४॥ इस प्रकार से समस्त भूतो मे गूढ स्वरूप वाला वह प्रकाश नही किया करता है। सूक्ष्म दर्शन करने वाले मानवो के द्वारा वह परम सूक्ष्म उत्तम श्रेणी की बुद्धि से ही दिखाई दिया करता है ॥२५॥ वह अन्तरात्मा मे सलीन होकर पाँच इन्द्रियाँ और छटवाँ मन और मेधा के द्वारा इन्द्रियों के अर्थों को बहुचित्तता पूर्वक सोचा करते हैं ॥२६॥ ध्यान मे भी विद्या से सम्पादित मन को परम बनाकर प्रशान्त आत्मा वाला अनीश्वर वह फिर परम पद को प्राप्त किया करता है ॥२७॥ सब इन्द्रियो के वश मे रहने वाला चलित आत्मा एव चलित स्मृति वाला आत्मा के सम्प्रदान से मानव मृत्यु को प्राप्त किया करता है ॥२८॥

विहृत्य सर्वसकल्पान्सत्त्वे चित्त निवेशयेत् ।
सत्त्वे चित्त समावेश्य ततः कालजरो भवेत् ॥२९

चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते ॥३०
लक्षण तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुख भवेत् ।
निर्वाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१
एव पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२
रहस्य सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम् ।
आत्मप्रत्यायक शास्त्रमिद पुत्रनुशासनम् ॥३३
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु ।
दशवर्षसहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ॥३४
नवनीत यथा दध्न. काष्ठादग्निर्यथैव च ।
तथैव विदुषा ज्ञान मुक्तिहेतो समुद्धृतम् ॥३५

अतएव मनुष्य का परम कर्त्तव्य यही होना चाहिए कि समस्त सङ्कल्पो का परित्याग करके केवल सत्त्व मे ही चित्त को निवेशित करना चाहिए। सत्त्व मे अपने चित्त को समाविष्ट करके इसके अनन्तर वह कालजर हो जाता है ॥२६॥ चित्त के प्रसाद से यति इस ससार मे शुभ और अशुभ को त्याग दिया करता है। प्रसन्नात्मा आत्मा मे ही से सस्थिति बनाकर फिर अत्यन्ताधिक सुख की प्राप्त कर आनन्द का लाभ लिया करता है ॥३०॥ प्रसाद का लक्षण भी वैसा ही होता है जैसा कि स्वप्न म सुख हुआ करता है। जिस प्रकार से बिना वायु वाले स्थल मे दीपक दीप्यमान होता हुआ भी कम्पित नही हुआ करता है ॥३१॥ इसी प्रकार पूर्वापर रात्रि म आत्मा के द्वारा आत्मा को योगाभ्यास मे युक्त हुआ रहता है। बहुत हल्का भोजन करने वाला—विशुद्ध आत्मा वाला अपनी ही आत्मा में उस परमात्मा का दर्शन किया करता है ॥३२॥ हे पुत्र ! समस्त वेदो का रहस्य—अनैतिह्य-अनागम यह आत्मा का प्रत्यायन (विश्वास कराने वाला) अनुशासन ही शास्त्र है ॥३३॥ समस्त धर्माख्यानो मे और सत्याख्यानो मे जो वसु है दश सहस्र वर्ष तक निमन्थन करके अमृत का उद्धरण किया है ॥३४॥ दही से जिस तरह से नवनीत (मक्खन)

और काठ से जैसे अग्नि उद्धृत होता है उसी भाँति मुक्ति के लिये विद्वान् पुरुषों का ज्ञान समुद्धृत हुआ है ॥३५॥

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् ।
तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने ॥३६
नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च ।
नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च ।
श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ॥३८
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु ।
रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कथंचन ॥३९
यद्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नरः ।
इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥४०
अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम् ।
यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१
तद्युष्मभ्यं प्रयच्छामि यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ।
यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि संशयः ।
श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि वः ॥४२

किसी भी प्रकार से नहीं कहना चाहिए ।।३६।। मनुष्य भले ही रत्नों से परिपूर्ण इस भूमि को इसको दे देवे किन्तु यह ही उससे भी श्रेय है ऐसा तत्त्ववेत्ता को मानना चाहिए ।।४०।। इससे अधिक गुह्य वह अतिमानुष अध्यात्म है जिसको महर्षियों ने देखा है और वेदान्तों मे भी गाया जाता है ।।४१।। हे सत्तमो ! वह हम आपको देते हैं जिसको कि आप लोग मुझसे पूछ रहे हो। जो आपके हृदय मे सशय है वह मैं मन में जानता हूँ। आप लोगों ने वह सब सुन ही लिया है। अब मुझे यह बतलाओ कि आगे और मैं आपको क्या बतलाऊँ ।।४२।।

अध्यात्म विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः ।
यदध्यात्मं यथा विद्मो भगवन् ऋषिसत्तम ।।४३
अध्यात्म यदिदं विप्राः पुरुषस्येह पठ्यते ।
युष्मभ्य कथयिष्यामि तस्य व्याख्याऽवधार्यताम् ।।४४
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च ।
महाभूतानि यश्चैव सवभूतेषु भूतकृत् ।।४५
आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देह न पश्यति ।
आकाशाद्यं शरीरेषु कथ तदुपवर्णयेत् ।।
इन्द्रियाणा गुणाः केचित्कथ तानुपलक्षयेत् ।।४६
एतद्वो वर्णयिष्यामि यथावदनुदर्शनम् ।
शृणुध्व तदिहैकाग्र्या यथातत्त्व यथा च तत् ।।४७
शब्दः श्रोत्र तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम् ।
प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रयः ।।४८
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते ।
रसोऽथ रसन स्वेदो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसाम् ।।४६

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! आप तो ऋषियो मे परम श्रेष्ठ हैं। आप हमारे सामने यहा पर उस अध्यात्म को पुनः बतलाइये। जिससे कि हम लोग उस अध्यात्म को भली भाँति जान लेवे ।।४३।। श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रो ! यहा पर जो पुरुष का अध्यात्म पढा जाया करता है मैं आप लोगो को उसको व्याख्या कहूँगा। और लोग उसका

अवधारण कीजिए ॥४४॥ भूमि, जल, ज्योति, वायु, आकाश ये ही महा- भूत होते हैं और जो समस्त भूतों मे भूनकृत होता है ॥४५॥ मुनिगण ने कहा—जिसका ,आकार तो होता ही होगा किन्तु जिसमे देह को नही देखता है वह आकाश आदि शरीरो मे कैसे विद्यमान रहते हैं—इसका उप वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियो के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हे भी बतलाइये ॥४६॥ श्री व्यास जी ने कहा—यह मैं दर्शन के अनुसार ही यथावत् रीति से आपको वर्णन करके बतलादू गा। उसे यहा पर आप लोग एकाग्रचित्त वाले होकर तत्त्व के अनुसार जैसा भी वह है उसका श्रवण कीजिए ॥४७॥ शब्द अर्थात् ध्वनि का उत्पन्न होना—श्रोत्र उस ध्वनि को सुनने वाली इन्द्रिय और आकाश अर्थात् पोल का होना—यह ही तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण-चेष्टा-और स्पर्श ये ही तीन गुण वायु के होते हैं ॥४८॥ रूप-चक्षु इन्द्रिय और विपाक यह तीन प्रकार की ज्योति (तेज) होती है। रस-रसन और स्वेद ये तीन गुण जल के हुआ करते हैं ॥४९॥

घ्रेयं घ्राणं शरीरं च भूमेरेते गुणास्त्रयः ।
एतवानिन्द्रियग्रामा व्याख्यातः पाञ्चभौतिकः ॥५०
वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते ।
आकाशप्रभवः शब्दो गन्धो भूमिगुणाः स्मृतः ॥५१
मनो बुद्धिः स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजाः ।
ते गुणानतियतंन्ते गुणेभ्यः परमा मताः ॥५२
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसार्य सनियच्छति ।
एवमेवेन्द्रियग्राम बुद्धिश्रेष्ठो नियच्छति ॥५३
यदूर्ध्वं पादतलयोरर्वाकोर्ध्वं च(गघश्च) पश्यति ।
एतस्मिन्नेव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४
गुणैंस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्या भावात्कुतो गुणाः ॥५५
इन्द्रियाणि नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते ।
सप्तमी बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६

सूंघने के योग्य पदार्थ–घ्राण इन्द्रिय और शरीर ये तीन गुण भूमिके होते हैं ? इतना इन्द्रियों का ही समुदाय है जो कि पाञ्च भौतिक अर्थात् पाँचो महाभूतों से सम्पन्न बतलाया गया है ॥५०॥ वायु का स्पर्श–जल से रस और ज्योति से रूप कहा जाता है। आकाश से उत्पन्न होने वाला शब्द और गन्ध भूमि का गुण कहा गया है ॥५१॥ मन-बुद्धि और स्वभाव ये गुण स्वयोनि से समुत्पन्न होने वाले हैं। वे गुणो का अनिवर्तन कर देते हैं तो गुणो से भी परम माने गये हैं ॥५२॥ जिस प्रकार से एक कूर्म (कछुआ) अपने अङ्गो को फैलाकर पुन उनको अपने ही अन्दर सिकोड कर छुपा लेता है। इसी रीति से बुद्धि मे श्रेष्ठ पुरुष भी अपनी इन्द्रियो के समुदाय को अपने ही अन्दर अन्तर्मुखी वृत्ति वाली कर लिया करता है ॥५३॥ जो पाद तलो के ऊपर जो भाग है और नीचे जो भाग है इन दोनो को जो देखता है। इसी कर्म में ही वह उत्तम बुद्धि वर्त्तमान होती है ॥५४॥ गुणो से बुद्धि प्राप्त की जाया करती है और बुद्धि के द्वारा ही इन्द्रिया भी होती हैं। छटवाँ जिनमे मन होता है ऐसी सब इन्द्रियाँ बुद्धि ही से होती हैं गुणो के भाव से क्या कहा जावे ॥५५॥ नरों के द्वारा पाँच इन्द्रियाँ और छटवां मन ही कहा जाता है। सातवीं बुद्धि को कहते हैं तथा क्षेत्रज्ञ आठवाँ कहा जाता है ऐसा ही समझ लो ॥५६॥

चक्षुरालोकनायैव सशय कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७
रजस्तमश्च सत्त्व च त्रय एते स्वयोनिजः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ॥५८

तत्र यत्प्रीतिसयुक्त किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव सयुक्त सत्त्व तदुपधारयेत् ॥५९
यत्तु सतापसयुक्त काये मनसि वा भवेत् ।
प्रवृत्त रज इत्येव तत्र चाप्युपलक्षयेत् ॥६०
यत्तु समोहसयुक्तमव्यक्त विषम भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेय तमस्तदुपधारयेत् ॥६१

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्तता ।
अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान् ॥६२
अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि वर्त्तन्ते हेतुतत्वतः ॥६३

यह इन्द्रिय केवल देखने ही के लिये होती है—मन संशय किया करता है । बुद्धि अध्यवसान के लिये होती है और जो क्षेत्रज्ञ होता है वही साक्षी कहा जाता है ॥५७॥ रजोगुण-तमोगुण और सत्वगुण ये तीन स्वयोनिज होते हैं । ये गुण समस्त भूतों में सम होते हैं उन गुणों को उपलक्षित करना चाहिए ॥५८॥ वहाँ पर जो प्रीति से संयुक्त कुछ होता है उसे आत्मा में लक्षित करना चाहिए । प्रशान्त की ही तरह संयुक्त उस सत्व को उपधारित करे ॥५९॥ जो संताप से संयुक्त है वह शरीर अथवा मन में होता है । प्रवृत्त रज है इसी प्रकार से वहाँ पर भी उपलक्षित करना चाहिए ॥६०॥ जो संमोह से संयुक्त अव्यक्त है वह विषम होता है । वह अप्रतर्क्य और अभिज्ञेय है तम उसको उपधारित करे । प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य, स्वस्थात्म चित्तता अकस्मात अथवा यदि किसी से सात्त्विक गुणों को कहते हैं । अभिमान, मृषा (मिथ्या) वाद, लोभ, मोह, क्षमा, ये सब रजोगुण के चिह्न हैं और हेतु तत्व से होते हैं ॥६१-६३॥

तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्री निन्द्राऽप्रबोधिता ।
कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणाः ॥६४
मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी ।
हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना ॥६५
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः स्मृतः ॥६६
बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका ।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः ॥६७
इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विकुरुते ह्यनु ।
शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥६८

पश्यन्ति च भवेद्दृष्टी रसन्ती रसना भवेत् ।
जिघ्रन्ती भवति घ्राण बुद्धिर्विकुरुते पृथक् ॥६६
इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषा वृत्त्या वितिष्ठति ।
तिष्टति पुरुषे बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता ॥७०

उसी भाँति से मोह, प्रमाद, तन्द्री, निद्रा, अप्रबोधिता अर्थात् ज्ञान का सर्वथा अभाव ये किसी तरह से अभिवर्त्तित होते हैं और तामस अर्थात् तमोगुण के ही गुण होते हैं ॥६४॥ यह मन तो भाव का प्रसृजन किया करता है और बुद्धि अध्यवसाय करने वाली होती है और यहाँ पर हृदय प्रिय होता है इस रीति से कर्मों की प्रेरणा तीन प्रकार की हुआ करती है ॥६५॥ इन्द्रियों से पर तो अर्थ होते हैं और अर्थों से पर मन होता है। मन से भी परा बुद्धि होती है और बुद्धि से पर आत्मा कहा गया है ॥६६॥ मनुष्य की आत्मा, बुद्धि ही है और यह बुद्धि ही आत्मा की नायिका है। जिस समय मे वह भाव को विशेष या विकृत करती है तभी वह मन हो जाती है ॥६७॥ इन्द्रियो के पृथक् भाव से पीछे बुद्धि विकृत होती है। जब वह श्रवण करने वाली होती है तो श्रोत्र हो जाती है—स्पर्श करती हुई स्पर्श कही जाती है ॥६८॥ देखती हुई दृष्टि होती है—रसास्वादन करने वाली रसनेन्द्रिय—घ्राण करती हुई नासिकेन्द्रिय ऐसा पृथक् बुद्धि ही विकार किया करती है ॥६९॥ उनको ही इन्द्रियाँ कहते हैं क्यों कि यह बुद्धि ही उनकी वृत्ति से विशेष रूप से स्थित हुआ करती है। पुरुष मे बुद्धि बुद्धि के भाव मे व्यवस्थित होती हुई स्थित रहा करती है ॥७०॥

कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति ।
न सुखेन न दु खेन कदाचिदिह मुह्यते ॥७१
स्वय भावात्मिका भावास्त्रीनेतानविवर्तते ।
सरिता सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान् ॥७२
यदा प्रार्थयते किंचित्तदा भवति सा मन ।
अधिष्ठाने च वै बद्ध्या पृथगेतानि संस्मरेत् ॥७३

इन्द्रियाणि च मेध्यानि विचेतव्यानि कृत्स्नशः ।
सर्वाण्येवानुपूर्वेण यद्यदा च विधीयते ।।७४
अभिभागमना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते ।
प्रवर्तमानस्तु रजः सत्त्वमप्यतिवतते ।।७५
ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु ।
अन्वर्थान्संप्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव ।।७६
प्रदीपार्थं मनः कुर्यादिन्द्रियैर्बु द्धिसत्तमैः ।
निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ।।७७

किसी समय मे यह प्रीति को प्राप्त किया करती है और किसी समय मे शोक किया करती है । यहा पर यह न तो सुख से और न दु:ख से मोह को प्राप्त हुआ करती है ।।७१।। यह स्वय भावात्मिका अर्थात् भावो के स्वरूप वाली होती हुई इन तीन भावो का अतिवर्तन किया करती है । उर्मियो (लहरों) वाला सागर जो सरिताओ का भर्ता है जिस तरह से महा वेला को अति वर्तन किया करता है ।।७२।। जिस अवसर पर यह कुछ प्रार्थना किया करती है उस समय पर वही बुद्धि मन हो जाया करती है । और अधिष्ठान मे बुद्धि से इनको पृथक् इनका स्मरण किया करती है ।।७३।। मेध्य इन्द्रियो को पूर्णतया विशेष रूप से चेत वाली करना चाहिए । ये सभी आनुपूर्वी से जो भी जब किया जाता है ।।७४।। अविभाग मन वाली बुद्धि है और भाव मन मे रहता है । प्रवृत्तमान रजोगुण सत्वगुण का भी अतिवर्त्तन कर दिया करता है ।।७५।। वे सब इन तीनों मे (सत्त्व-रज-तम) जो भाव के द्वारा वर्त्तमान रहा करते हैं रथ की नेमि को अरो के ही समान अन्वर्थों को सप्रवृत्त हुआ करते है ।।७६।। यथायोग निश्चरण करने वाली और यदृच्छा से उदासीन बुद्धि सत्त्व इन्द्रियो से मन को प्रदीप के लिये करना चाहिए ।......

एवं स्वभावमेवेदमिति बुद्ध्वा न मुह्यति ।
अशोचन्सम्प्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ।।७८
न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैः कामगोचरैः ।

तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति ।
तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०
सर्वेषामेव भूताना तमस्युपगते यथा ।
प्रकाश भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् ।
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते ॥८२
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन् ।
असज्जमान सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३
त्यक्त्वा पूर्वकृत कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि ।
सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जत ॥८४

इस प्रकार स यह एक स्वभाव ही होता है—यही समझकर मोह को प्राप्त नही हुआ करता है । शोच न करते हुए और भली भांति प्रसन्न होते हुए तथा निरद मत्सरता से रहित होने वाला यह आत्मा कामगोचर अर्थात् स्वेच्छा से विचरण करने वाली—अनेक रूप मे प्रवर्त्तमान—दुर्धर और अकृतात्मा रूप वाली इन्द्रियो के द्वारा यह आत्मा देखा नही जा सकता है ॥७८-७९॥ मन के द्वारा उनकी बागडोरो को जिस समय में भली भाँति नियन्त्रित करता है उसी अवसर पर दीपक के द्वारा दीप्त जैसे आकृति होती है उसी तरह से इसका आत्मा प्रकाशित हुआ करता है ॥८०॥ जिस प्रकार से सभी भूतो को तम के उपगत हो जाने पर सब प्रकाश को प्राप्त होते हैं उसी तरह से अवधारण कर लीजिए ॥८१॥ जिस रीति से जल मे चरण करने वाला पक्षी जल मे सञ्चरण करता हुआ भी लिप्त नही होता है वैसे ही विमुक्त आत्मा वाला योगी भी गुणो के दोषों से कभी लिप्त नही हुआ करता है ॥८२॥ इसी प्रकार से प्रज्ञा को रखने वाला दोषो से विषयो मे चरणन करते हुए सब मे असज्जमान होता हुआ किसी भी प्रकार से प्रलिप्त नही हुआ करता है ॥८३॥ पूर्व में किये हुए कर्म को त्याग करके जिसकी रति सदा ही आत्मा मे होती है जो कि सब भूतो का आत्म भूत है और गुणो के सङ्ग से सज्जित रहता है ॥८४॥

स्वयमात्मा प्रसवति गुणेष्वपि कदाचन ।
न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५
परिदध्याद्गुणाना स द्रष्टा चैव यथातथम्।
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं लक्षयेन्नरः ॥८६
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग्भूतो प्रकृत्येतौ सप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७
यथाऽश्मना हिरण्यस्य सप्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदुम्बरौ वाऽपि सप्रयुक्तौ यथा सह ॥८८
इषिका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह ।
तथैव सहितावेतौ अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९

गुणो मे भी कभी भी स्वय आत्मा प्रसव किया करता है किन्तु गुण आत्मा को नही जानते हैं और वह सर्वदा गुणो का ज्ञान रखता है ॥८५॥ द्रष्टावह गुणो का यथातथ (ठीक २) परिध्यान करे । मनुष्य को सत्त्व और क्षेत्रज्ञ मे इसी प्रकार से अन्तर लक्षित करना चाहिए ॥८६॥ एक गुणों का सृजन करता है और एक गुणो को नही सजता है । प्रकृति से ये दोनो पृथक् भूत हैं और सर्वदा से प्रयुक्त ही रहते हैं ॥८७॥ जिस तरह से मशक और उदुम्बर सर्वदा साथ ही में प्रयुक्त रहा करते हैं। जैसे अश्म (पाषाण) के साथ हिरण्य होता है वैसे ही वे दोनो भी सप्रयुक्त हुआ करते हैं। जिस तरह से मशक औदुम्बर साथ मे सप्रयुक्त है ॥८८॥ जिस तरह से मूंज मे इषिका पृथक् भी है और साथ मे भी है ठीक उसी भाति ये दोनो परस्पर एक दूसरे में प्रतिष्ठित सहित हुआ करते हैं ॥८९॥

—※—

गुणसर्जनकथन

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति ।
गुणान्विक्रियतः सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥१
स्वभावयुक्तं तत्सर्वं यदिमान्सृजते गुणान् ।
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणास्तथा ॥२
प्रधूत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३
उभयं सम्प्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति ।
अनेनैव विधानेन भवेद्वै संशयो महान् ॥४
अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा विहरेन्नरः ।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५
इत्येवं हृदये सर्वो बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ।
अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं छिन्नसंशयः ॥६
तरयेत्प्रच्युता पृथ्वी यथा पूर्णां नदीं नराः ।
अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा ॥७

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इन गुणों का सृजन तो सत्त्व किया करता है और क्षेत्रज्ञ इन पर अधिष्ठित होता है। सब गुणों की विक्रिया करता हुआ ईश्वर उदासीन की ही भाँति होता है ॥१॥ वह सभी कुछ स्वभाव से ही युक्त होता है कि इन गुणों का सृजन करता है। जिस प्रकार से ऊर्णनाभि सूत्र का तथा उसके गुणों का सृजन किया करते हैं ॥२॥ जो प्रवृत्त हो जाते हैं वे निवृत्त नहीं हुआ करते हैं। और प्रवृत्ति उपलब्ध नहीं हुआ करती है। इसी प्रकार से कुछ लोग व्यवसित होते हैं और दूसरे लोग निवृत्ति की ओर जाते हैं ॥३॥ दोनों को इस प्रकार भली भाँति विचार करके अपनी बुद्धि के अनुसार ही अध्यवसाय करना चाहिए। इसी विधान से महान् संशय होता है ॥४॥ यह आत्मा अनादि निधन वाला है

नहीं हुआ करता है। तात्पर्य यही है कि आत्मा नित्य और अविनाशी है। उस आत्मा का इसी तरह से ज्ञान प्राप्त करके नर को विहार करना चाहिए। कभी भी क्रोध न करते रहना चाहिये ॥५॥ इसी प्रकार से हृदय मे सब बुद्धि चिन्ता भय–द्वन्द्व–अनित्य-अशोच्य सुख परसमासीन होता हुआ छिन्न संशय वाला होवे ॥६॥ जिस प्रकार से नर परिपूर्ण नदी को तैर जाया करता है उसी भाँति प्रच्युत पृथ्वी को अवगाहन करके हे विप्रो ! विद्वान् लोग इस अति चञ्चल को भी तैर जाया करते हैं ॥७॥

न तु तप्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् ।
एव विचिन्त्य चाऽऽत्मान केवल ज्ञानमात्मनः ॥८
ता[त] तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं प्रतिम् ।
समचेष्टश्च वै सम्यग्लभते शममुत्तमम् ॥९
एतद्द्विजन्मसामग्र्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम् ॥१०
तत्त्व बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ।
विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११
न भवति विदुषा महद्भय,
यदविदुषा सुमहद्भयं परत्र ।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचि-
द्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२
लोके मातरमसूयते नर-
स्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते ।
तत्र चेत्कुशलो न शोचते,
ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३
यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं,
तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम् ।
यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं,
तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४

विद्वान् कभी तप्त नही हुआ करता है और तत्वो का वेत्ता स्थल में चरण किया करता है इसी रीति से आत्मा का विशेष चिन्तन करे और उसको केवल आत्मा का ज्ञान समझ कर नर भूतो की आगति तथा जाति को जानकर समान चेष्टा वाला सम्यक् उत्तमशम् का लाभ किया करता है ॥८-९॥ यह समस्त द्विजन्माओ की सामग्री है और उनमें भी ब्राह्मण की विशेष रूप से होती है। आत्मज्ञान के समान स्नेह से पर्याप्त होकर उसी मे तत्पर रहना चाहिये ॥१०॥ तत्व का ज्ञान प्राप्त करके ही बुद्ध होता है इसके अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जान करके मनीषीगण कृत कृत्य होते हुये विमुक्ति प्राप्त किया करते हैं ॥११॥ जो विद्वान् पुरुष होते हैं उनको महान् भय नही हुआ करता है और विद्वत्ता हीन होते हैं उनको ही परलोक मे महान् भय हुआ करता है किसी की भी अधिक गति नही होती है जो कि विद्वान् पुरुषो की सनातनी गति हुआ करती है ॥१२॥ लोक मे नर माता की असूया किया करता है और वहा पर देव का दर्शन न प्राप्त कर सोच करता है। और उस विषय मे यदि कुशल होता है तो नही सोच करता है। जो लोग कृत और अकृत दोनो को जाना करते हैं ॥१३॥ जो कुछ भी अभिसन्धि (अभिप्राय एव ज्ञान) से रहित होकर किया करता है और जो कुछ भी पहिले जन्म मे किया है उसकी बुराई करता है। जो प्रिय हो या अप्रिय हो यह दोनो ही प्रियाप्रिय करते हुये उसको यहाँ पर समुदान्न किया करता है ॥१४॥

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन।
यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्‌वान्प्रब्रवीतु न. ॥१५
धर्मं च मप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभि स्तुतम्।
विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यः शृणुध्व मुनिसत्तमा. ॥१६
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या सयम्य तत्त्वत ।
सर्वतः प्रसृतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७
मनसश्चेन्द्रियाणा चाप्यैकाग्र्यं परम तपः।
विशे य: सर्वधर्मे [illegible]

तानि सर्वाणि सधाय मन षष्ठानि मेधया ।
आत्मतृप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९
गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि ।
तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मान पर द्रक्ष्यथ शाश्वतम् ॥२०
सर्वात्मान महात्मान विधूममिव पावकम् ।
प्रपश्यन्ति महात्मान ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥२१

मुनियो ने कहा—इस लोक मे जिस धर्म से पर अन्य कोई भी धर्म नहीं है और प्राणियो के लिये कोई विशिष्ट धर्म हो उसी को इस समय मे आप हम लोगो को बतलाइए ॥१५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं अब परमार्थिक पुराण धर्म की व्याख्या करूँगा जिसकी बडे २ महर्षियों ने प्रशसा की है । यह धर्म सभी धर्मों से विशेषता रखने वाला है । आप लोग समाहित होते हुए इसको सुनिए ॥१६॥ ये इन्द्रियाँ जो होती हैं वे बहुत ही प्रमथी हुआ करती है अर्थात् मनुष्य के सम्पूर्ण ज्ञान का मथन कर दिया करती हैं । अतएव इनको तात्त्विक दृष्टि से सयमित करे । ये इन्द्रियाँ अपने अपने विषयो की ओर सभी तरफ फैली हुई रहा करती हैं । इनका सयम उसी भाँति करे जिस तरह से पिता सर्वथा स्वेच्छाचारी अपने पुत्रो की देख भाल करते हुए सयत रखता करता है ॥१७॥ मन की और इन्द्रियो की एकाग्रता का रखना ही सबसे परमोत्कृष्ट तप होता है । समस्त धर्मों से पर उसी को धर्म जानना चाहिए और वही पर धर्म कहा जाता है ॥१८॥ उन समस्त इन्द्रियों को जिन पाँचो इन्द्रियों मे छटवाँ मन भी होता है भली भाँति मेधा से धारण करके अर्थात् सयमित बनाकर रहने वाला वह पुरुष ही बहुत सो चिन्तन करने के योग्य पदार्थों का चिन्तन कभी भी न करता हुआ ही आत्म तृप्त और अपने आत्म ज्ञान के द्वारा ही तृप्ति प्राप्त करने वाला था ॥१९॥ जिस समय मे इन्द्रियो के द्वारा प्रत्यक्ष मे दिखलाई देने वाले विषयो से निवृत्त हुई इन्द्रियाँ अपने ही घर मे अन्तर्मुखी वृत्ति वाली होकर स्थित रहा करती हैं उसी समय मे अपनी आत्मा से आत्मा को जो परम शाश्वत है देखोगे ॥२०॥ जो ब्राह्मण परमार्थिक मनीषी होते हैं वे ही धूम से रहित

अग्नि की ही भाँति सबकी आत्मा महान् आत्मा वाली उस आत्मा को देख लिया करते हैं अर्थात् आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।।२१।।

यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुम. ।
आत्मनो नाभिजानीते क मे पुष्प क मे फलम् ।।२२
एवमात्मा न जानीते क गमिष्ये कुतोऽन्वहम् ।
अन्योह्यस्यान्तरात्माऽस्ति यः सर्वमनुपश्यति ।।२३
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना ।
दृष्ट्वाऽऽत्मान तथा यूय विरागा भवत द्विजा. ।।२४
विमुक्ता. सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगा ।
परा बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वरा ।।२५
सर्वत स्रोतस घोरा नदी लोकप्रवाहिणीम् ।
पञ्चेन्द्रियग्राहवती मन सकल्पराधसम् ।।२६
लोभमोहतृणच्छन्ना कामक्रोधसरीसृपाम् ।
सत्यतीर्थानृतक्षोभा क्रोधपङ्का सरिद्वराम् ।।२७
अव्यक्तप्रभवा शीघ्रा कामक्रोधसमाकुलाम् ।
प्रतरध्व नदी बुद्ध्या दुस्तरामकृतात्मभि ।।२८

जिस प्रकार से पुष्पों तथा फलों से समन्वित बहुत सी शाखाओं वाला महान् द्रुम अपने विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है कि कितने और कहा किस प्रकार के फल तथा पुष्प वर्त्तमान है ।।२२।। उसी भाँति जो एकात्मा है वह नहीं जानता है कि मैं कहा से आया हूँ और कहा जाऊँगा । इसके अन्दर रहने वाला अन्य ही अन्तरात्मा है जो सभी कुछ को देखा तथा जाना करता है ।।२३।। परम प्रदीप्त ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा आत्मा से ही आत्मा को देखता है । हे द्विजो ! आप लोग भी उसी प्रकार से आत्मा का दर्शन करके राग से रहित हो जाओ ।।२४।। आप लोग समस्त पापों से विमुक्त होते हुए उरगों के समान ही मुक्त त्वचा वाले होकर परमाधिक बुद्धि को प्राप्त करके इस लोक में भी चिन्ता से

है। यह विधूत आत्मा वाला-आत्मवान् और पवित्र भी हो जाता है ॥३०॥ अत्युत्तम बुद्धि मे समास्थित होकर वह ब्रह्म के सदृश हो जाया करता है। फिर तो वह सभी क्लेशो से पार होकर प्रसन्न आत्मा वाला और कल्मषो से रहित हो जाया करता है ॥३१॥ बहुत अधिक भूतों को जो सभी जगहो पर स्थित हैं देखकर क्रोध न करते हुए नृशस मति वाला पुरुष प्रसन्न होकर फिर सभी प्राणियो के इस प्रभव को भी देखेगा। बुध गण इसी को समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म मानते थे ॥३२-३३॥ धर्म के धारण करने मे परम श्रेष्ठ सत्य को ही देखने वाले मुनिगण धर्म को ही उत्तम मानते हैं। हे विप्रो ! वे आत्माओ को व्यापी मानते हैं। हे पुत्र ! यही अनुशासन है ॥३४॥ यह आत्मज्ञान का विषय परम गोपनीय है और यह ऐसा महान् भी है जो जितनी भी गोपनीय बातें हैं उन सबसे अधिक गोपनीय है। इस आत्म ज्ञान के विषय को उसी के आगे बताना चाहिए जो प्रयत-स्थित और अपने अनुगत होवे ॥३५॥

अव्रव यदहू विप्रा आत्मसाक्षिकमञ्जसा।
नैव स्त्री न पुमानेव न चैवेद नपुंसकम् ॥३६
अदुःखमसुख ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम्।
नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७
यथा मतानि सर्वाणि तथतानि यथा तथा।
कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८
तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन,
पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन।
दृष्ट्वा हित प्रीतमना यदर्थं,
ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९
मोक्ष पितामहेनोक्त उपायाधानुपायत।
तमुपाय यथान्याय श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०
अस्मासु तन्महाप्राज्ञा युक्तं निपुणदर्शनम्।
यदुपायेन सर्वार्थान्मिगयध्व सदाऽनघाः ॥४१

घटोपकरणे बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता ।
एवं धर्माद्युपायार्थे नान्यधर्मेषु कारणम् ॥४२

हे विप्रो ! जो मैंने यह आत्म साक्षिक वृत्त ही तुम लोगो को बोल कर समझा दिया है। यह न तो स्त्री ही है-न पुमान् है और न यह नपुंसक ही है। यह यहा न दुःख स्वरूप है और न सुख रूप ही है तथा यह भूत भव्य भवात्मक है। इसका ज्ञान प्राप्त करके चाहे कोई पुरुष हो या स्त्री हो वह फिर ससार मे जन्म ग्रहण कर सासारिक बन्धन को नही प्राप्त किया करता है ॥३६-३७॥ जिस प्रकार से सबके माने हुए मत हैं उन सभी को जैसे-तैसे करके मैंने कह दिये है वे चाहे होते हो और न भी होते हैं ॥३८॥ सो उसकी प्रीति से युक्त-गुणो से समन्वित और सत्पुत्र पर दया से प्रयुत पुत्र के द्वारा हित देखकर प्रसन्न मन वाले को जिसके लिये इसको बोल देना चाहिए। यहा पर युत का यह युक्त ही धर्म होता है ॥३६॥ मुनिगण ने कहा—परमेष्ठी पितामह के द्वारा मोक्ष के विषय मे तो खूब अच्छी तरह से बता दिया गया है और अनुपाय से उसके उपायो को नही बताया है। हे मुनीन्द्रवर ! हम इस समय मे उस उपाय को न्यायानुसार श्रवण करने की उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं। श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे महाप्राज्ञो ! यह परम निपुण दर्शन है और युक्त है। हे अनघो ! जिसके उपाय से सदा सर्वार्थों की खोज करो ॥४०-४१॥ घटो के उपकरण मे जो बुद्धि होती है वह घट की उत्पत्ति मे नहीं मानी गयी है। इसी प्रकार से धर्मादिक उपायो के अर्थ में अन्य धर्मों मे कारण नहीं होता है ॥४२॥

पूर्वे समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम् ।
एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं मनानघाः ॥४३

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्काम सकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वससेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४

अप्रमादाद्भय रक्षेद्रक्षेत्क्षेत्र च सविदम् ।
इच्छा द्वेष च काम च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५

विद्रा च प्रतिभा चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित् ।
उपद्रवास्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६
लोभ मोह च सतोषाद्विपयास्तत्त्वदर्शनात् ।
अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७
आयत्या च जयेदाशा सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात् ।
अनित्यत्वेन च स्नेह क्षुधा योगेन पण्डितः ॥४८
कारुण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मान तृष्णा च परितोषत. ।
उत्थानेन जयेत्तन्द्रा वितर्क निश्चयाज्जयेत् ॥४९

पूर्व सागर मे जो मार्ग होता है अर्थात् पूर्व दिशा मे स्थित समुद्र का जो पथ होता है वह पूर्व ही दिशा वाला है कभी भी पश्चिम दिशा की ओर जाने वाला नही होता है। मोक्ष का अर्थात् ससार मे स्वकृत कर्मानुसार बारम्बार जन्ममरण जिसके बन्धन से छुटकारा पाने का एक ही मार्ग होता है। हे निष्पापो ! उसको अब आप लोग मुझसे भली-भाँति श्रवण कर लो ॥४३॥ यह क्रोध मनुष्य के हृदय मे रहने वाला एक महान् शत्रु है जिसके वश मे बडे बडे महामुनि भी आ जाया करते हैं और उसका त्याग करना बहुत ही कठिन है। क्रोध को क्षमा के ही द्वारा उच्छिन्न करना चाहिए। क्रोध के ही समान दूसरा मानसिक शत्रु काम होता है उस काम वासना का मन मे उठने वाले सङ्कल्पों के त्याग से जीतना चाहिए। यह काम वासनाभी अच्छे अच्छे तपस्वियो को सन्मार्ग से च्युत कर दिया करती है। यदि मन मे सभी काम की वासना का थोडा सा भी सङ्कल्प समुत्थित हो तभी उसको वर्जित कर देना चाहिए तभी काम को निर्जित किया जा सकता है। धीर पुरुष का महान् कर्त्तव्य है कि वह सत्त्व का ही सेवन किया करे और इसी के द्वारा वह निद्रा का उच्छेद करने के योग्य होता है। स्वास्थ्य की परमावश्यकता से अधिक निद्रा लेना भी उचित नही है ॥४४॥ भय प्रमाद से ही हुआ करता है अतएव प्रमाद का त्याग करने ही भय से अपनी सुरक्षा करनी चाहिए तथा सविद क्षेत्र की रक्षा करे। इच्छा, द्वेष और काम को धैर्य से धीरे २ विनिवर्तित करना चाहिए ॥४५॥ तत्त्व के ज्ञाता पुरुष

को चाहिए कि निद्रा तथा प्रतिभा को ज्ञान के अभ्यास से ही दूर करे। तथा योग के अभ्यास करने वाले पुरुष को सभी उपद्रवों को जो अभीष्ट मार्ग के बाधक हुआ करते है परम हितकर शीघ्र ही जीर्ण होने वाले और परिमित भोजन करके ही दूर कर देना चाहिए ॥४६॥ यह लोभ और मोह भी बहुत बडे शत्रु है और मुक्ति मार्ग के परम बाधक होते हैं। बडे बडे ज्ञानियो के हृदय मे भी लालच तथा मोह थोडी बहुत मात्रा मे अवश्य ही अपना घर बनाये रखते हैं। इससे निवृत्ति सन्तोष से ही हुआ करती है। जो भी जितना और जैसा प्राप्त है उसी मे सन्तुष्ट रह कर इन पर विजय की जा सकती है। संसार के अन्य सभी विषयो के ऊपर तत्त्व दर्शन से विजय प्राप्त करनी चाहिए सभी विषय क्षणिक आनन्द देने वाले विनाशील होते है और सतमार्ग से बहुत दूर पटक देते है अतः ये तत्त्व दृष्टि से विचार करके छोडे जा सकते हैं। अनुक्रोश से अर्थात् बुरा कर्म समक्ष कर अधर्म को तथा उपेक्षा भाव से धर्म को जीते ॥४७॥ आयति से आशा को जीते और सामर्थ्य को सङ्ग के वर्णन करके जीतना चाहिए क्योकि मानवो के सङ्ग के होने पर ही सामर्थ्य का प्रदर्शन किया जाता है। सभी पदार्थ और सामारिक सम्बन्ध जो मानवो के साथ होते हैं वे सभी अनित्य है और चाहे जब भी इनसे वियोग हो जाया करता है तथा ये कभी भी किसी के स्थायी नही रहा करते हैं अतएव इनके साथ जो स्नेह होता है उसे अनित्यता समझकर उसका त्याग करना चाहिए। तथा पण्डित पुरुष को योग के द्वारा क्षुधा पर विजय हासिल करना चाहिये क्योकि क्षुधा भी एक बड़ा ही भयानक रोग होता है जिसके हो जाने पर मनुष्य को कुछ भी भला-बुरा नही सूझता है ॥४८॥ करुणा की भावना से आत्मा के ही द्वारा अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करे अर्थात् स्वय ही अपने ऊपर दया करके अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये। पूर्णतया परितोष करके तृष्णा पर विजय प्राप्त करे। तन्द्रा को उत्थान के द्वारा जीते और जो वितर्क मन मे उठें उनको निश्चय करके ही जीत लेना चाहिए। जब निश्चय हो जायगा तो कोई भी वितर्क कभी उठेगा ही नहीं ॥४६॥

मौनेन बहुभाषा च शौर्येण च भयं जयेत् ।
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्धया तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०
ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः ।
तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्षणा ॥५१
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ।
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२
परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात् ।
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यह्रीरार्जवं क्षमा ॥५३
शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः ।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥५४
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते ।
धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मणः पदम् ।
अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः ।
एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः ॥
तथा वाक्कायमनसा नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७

उपर्युक्त नियमों एवं साधनों के अभ्यास से अनेक जटिल दोषों से छुटकारा पाया जा सकता है और इसीलिये स्पष्ट रूप से बतला दिये गये हैं। बहुत प्रकार की आर्गल बात चीत की भाषा पर मौन व्रत धारण करके विजय प्राप्त करे। यदि बिल्कुल मौन न भी किये तो बहुत ही कम और अत्यावश्यक बात बोलनी चाहिए। मौन रहने से बहुत से दोषों से बचा जा सकता है अतएव मौन धर्म का महत्व बहुत अधिक होता है। शूरता से जीतना चाहिए। बुद्धि के द्वारा वाणी और मन को देवे और उस बुद्धि को ज्ञान के नेत्र से देना चाहिए ॥५०॥ ज्ञान की आत्मा है उसे महान् को देवे और उस महान् को आत्मा की शान्ति को देवे। इस प्रकार से परम उपशान्त होकर शुचि कर्म के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए

॥५१॥ फिर योग के दोषो का समुच्छादन करे कि जिनको कि विद्वान् लोग सख्या मे पाँच बतलाया करते हैं। वे पाँच ये हैं–काम, क्रोध, लोभ, भय और इनमे पाँचवाँ स्वप्न होता है ॥५२॥ इन सब दोषो का परित्याग करके यथावत् योग के साधनो से निषेवण करे। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, आर्जव (सरलता), क्षमा, शौच, आचार से शुद्धि और समस्त इन्द्रियो का सयम। इन सबका सेवन करे। इनके सेवन से तेज की विशेष वृद्धि होती है और मनुष्य पाप का उपहनन कर दिया करता है ॥५३-५४॥ इस प्रकार से उपर्युक्त सद्गुणो के सेवन करने से मनुष्य के सभी सङ्कल्प सिद्ध हो जाया करते हैं तथा विज्ञान प्रवृत्त हो जाया करता है। पापो को धूत (क्षालित) कर देने वाला वह तेजस्वी हो जाता है तथा लघु आहार करने वाला और इन्द्रियो को जीत लेने वाला होता है ॥५५॥ काम और क्रोध इन दोनो महान् दोषो को वश मे करके ब्रह्म के परमपद मे प्रवेश करना चाहिए। मूढता का अभाव, असङ्गित्व अर्थात् किसी के भी सङ्ग का न करना, काम वासना और क्रोध का विशेष रूप से वर्जन करना, अदीनता, अनुदीर्णत्व, उद्वेग का अभाव वाली अवस्थिति, यह ही मोक्ष का मार्ग है जो प्रसन्न, विमल और शुचि है। तथा ये वाणी, काया और मन के नियम हैं और काम से अव्यय हैं ॥५६-५७॥

।❁।–

योगविधिनिरूपण

सांख्य योगस्य नो विप्र विशेष वक्तुमर्हसि ।
तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदित मुनिसत्तम ॥१

सांख्याः सांख्य प्रशंसन्ति योगान्योगविदुत्तमा ।
वदन्ति कारणं श्रेष्ठं स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२

अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं मुनिसत्तमाः ।
वदन्ति कारणैः श्रेष्ठं योगं सम्यङ्मनीषिणः ॥३
वदन्ति कारणं वेद सांख्यं सम्यग्द्विजातयः ।
विज्ञायेह गतीः सर्वा विरक्तो विषयेषु यः ॥४
ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा ।
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ॥५
स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम् ।
शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसमतैः ॥६
प्रत्यक्ष हेतवो योगाः सांख्याः शास्त्रविनिश्चयाः ।
उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमाः ॥७

मुनियों ने कहा—हे विप्र ! सांख्य और योग की जो विशेषता है उसे हम लोगों को आप बतलाने के योग्य हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप तो धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं और आपको सभी कुछ विदित है ॥१॥ श्रीव्यास-देवजी ने कहा—जो सांख्य के मानने वाले हैं वे सदा सांख्य शास्त्र के ही मार्ग की प्रशंसा किया करते हैं कि सर्वोत्तम सांख्य का ही मार्ग है और जो उत्तम योग के वेत्ता महापुरुष योगी होते हैं योग की प्रशंसा करते हैं । सभी अपने-अपने पक्ष की उद्भावना के लिये परम श्रेष्ठ कारण उप-स्थित करके ही उनके द्वारा कहा करते हैं ॥२॥ सांख्य शास्त्र अनीश्वर वादी नास्तिक दर्शन कहा जाता है क्योंकि वहाँ पर प्रकृति पुरुष के सिवाय ईश्वर की चर्चा ही नहीं है । मनीषीगण अनेक कारणों के द्वारा योग को ही अच्छा और श्रेष्ठ बताया करते हैं । द्विजातिगण वेद को कारण कह-कर सांख्य को ही उत्तम कहा करते हैं । यहाँ पर सब गतियों को समझ कर के ही जो पुरुष विषयों में विरक्त हो जाया करता है ॥३-४॥ वह देह त्याग के पश्चात् विमुक्त हो जाया करता है यह सुव्यक्त ही है और इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है । महान् प्राज्ञ लोग इस सांख्य को मोक्ष का दर्शन कहा करते हैं ॥५॥ अपने पक्ष में जो कारण हो उसे ग्रहण करना चाहिए क्योंकि जो समर्थन करने वाला वचन होता है वह हित प्रद हुआ करता [illegible]

[illegible] शिष्ट

पुरुषो का मत ग्राह्य होता है। योगी प्रत्यक्ष हेतु वाने होते हैं और साख्य के मानने वाले पुरुष शास्त्र के द्वारा विशेष निश्चय वाले हुआ करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! ये दोनो ही मत तत्व मे समवत हुआ करते है ॥६-७॥

उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्रा शिष्टसमते ।
अनुष्ठिते यथाशास्त्र नयेता परमा गतिम् ॥८
तुल्य शौच तयोर्युक्त दया भूतेषु चानघा ।
व्रताना धारण तुल्य दर्शन त्वसम तया ॥९
यदि तुल्य व्रत शौच दया चान महामुने ।
तुल्य तद्दर्शन कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०
राग मोह तथा स्नेह काम क्रोध च केवलम् ।
योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्च तान्प्राप्नुवन्ति तान् ॥११
यथा वाऽनिमिषा स्थूल जाल छित्वा पुनर्जलम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पद वीतकल्मषा ॥१२
तथैव वागुरा छित्वा बलवन्तो यथा मृगा ।
प्राप्नुर्युविमल मार्ग विमुक्ता सर्वबन्धनै ॥१३
लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्वित ।
छित्वा योगात्पर मार्ग गच्छन्ति विमल शुभम् ॥१४

हे मुनीन्द्र गणो ! शिष्ट पुरुषो के द्वारा सम्मत इन दोनो मतो का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर तथा शास्त्र के अनुसार इनको अनुष्ठित करने पर अर्थात् जिस प्रकार से शास्त्र की आज्ञा है उसी तरह से इन मतो का पूर्णतया पालन करने पर परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥८॥ हे अनघो ! उन दोनो ही मतो मे शौच समान ही है और प्राणियो पर दया का भाव रखना भी तुल्य ही है। समस्त व्रतो का धारण करना भी एक सा ही दोनों के सिद्धान्तो के अनुसार है। उन दोनो मतो का दर्शन तुल्य ही होता है ॥९॥ मुनियो ने कहा—हे महामुने ! यदि व्रतो का परिपालन शौच और दया तुल्य ही है तो हे द्विजोत्तमो ! वह फिर पृथक् दर्शन किस कारण से माना जाता है—यह आप हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—राग,

मोह, स्नेह, काम, और केवल क्रोध योग की अस्थिर कहे हुए उन इन पाँच दोषों को प्राप्त किया करते हैं ॥११॥ अथवा जिस तरह से अनिमिष स्थूल जन का छेदन करके पुन. जल को ही प्राप्त कर लिया करते हैं उसी भाँति योग से वीत कल्मष अर्थात् पाप रहित होते हुए योग के पद का पा लेते है ॥१२॥ ठीक उसी भाँति से ही जैसे बलवान् मृग वागुरा को छेदन कर सभी बन्धनो से मुक्त होते हुए विमल मार्ग को प्राप्त करते हैं ॥१३॥ हे विप्रो ! बल से समन्वित पुरुष लोभ से समुत्पन्न बन्धनो का छेदन करके योग के प्रभाव से शुभ-विमल मार्ग को जाया करते हैं ॥१४॥

अबलास्त्वाविला विप्रा वागुरासु तथाऽपरे ।
विनश्यन्ति न सदेहस्तद्वयोगबलादृते ॥१५
बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जाल गता द्विजाः ।
बन्ध न गच्छन्त्यनघा योगास्ते तु सुदुर्लभाः ॥१६
यथा च शकुनाः सूक्ष्म प्राप्य जालमरिन्दमा. ।
तत्राशक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः ॥१७
कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वयोगपरा द्विजा. ।
अबला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥१८
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्नि. शाम्यति दुर्बलः ।
आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वयोगबलः स्मृतः ॥१६
स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः ।
समीरणगतः कृत्स्ना दहेत्क्षिप्र महीमिमाम् ॥२०
तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः ।
अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्न सशोपयेज्जगत् ॥२१

अबल-आविल तथा दूसरे वागुराओं मे बद्ध रहकर हे विप्रो ! विनष्ट हो जाया करते है—इसमें सन्देह नहीं है उसी भाँति योग बल के बिना बल से हीन द्विज है विप्रेन्द्र ! जैसे जाल मे अनघ हो अनघ बन्धन को प्राप्त नहीं होते है वे योग तो बहुत ही सुदुर्लभ हैं ॥१५-१६॥ हे अरिन्दमो !

जिस तरह पक्षी सूक्ष्म जाल को प्राप्त करके वहां पर जो अशक्त होते हैं वे तो विपन्न हुआ करते हैं और जो बल से समन्वित हुआ करते हैं वे युक्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ कर्मज बन्धनो के द्वारा बन्धन मे बँधे हुए हो उसी भाँति योग मे तत्पर होते है तथा जो बल से हीन हुआ करते हैं वे विमुक्त नही होते हैं तथा जो बल से युक्त होते है वे छुटकारा पा जाया करते हैं तात्पर्य यह है कि मुक्त होने के लिये सबलता पूर्णतया अपेक्षित होती है ॥१८॥ हे द्विजो ! जिस रीति से बहुत थोडी सी अग्नि तो बहुत ही शीघ्र दुर्बल होने के कारण शमित हो जाती है अर्थात् बुझ जाया करती है । जो स्थूल इंधनो से आक्रान्त होती है वही योग बल कहा गया है ॥१९॥ हे विप्रो ! वही वह्नि उस समय मे पुनः प्राप्त बल वाली हो जाया करती है और यदि वही अग्नि वायु के द्वारा प्रज्वलित हो जावे तो फिर क्या कहना है फिर तो इस समस्त भूमि को ही बहुत शीघ्र दग्ध कर दिया करती है ॥२०॥ तत्वो के ज्ञान के बल वाला योगी दीप्त तेज वाला तथा महान् बल से सयुत होता है जिस प्रकार से अन्त काल मे सूर्य के समान ही सम्पूर्ण जगत् सशोषित कर दिया करता है ॥२१॥

दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्रियते नरः ।
बलहीनस्तथा योगी विषयैर्ह्रियते च सः ॥२२
तदेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारणः ।
तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विषयैर्हृतः ॥२३
विशन्ति या वशाद्वाऽथ योगाद्योगबलान्विताः ।
प्रजापतीन्मनून्सर्वान्महाभूतानि चेश्वराः ॥२४
न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः ।
विशन्ते तद्द्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥२५
आत्मना च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः ।
योगं कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥२६
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत् ।
संक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव ॥२७

बलस्थस्य हि योगस्य बलार्थं मुनिसत्तमाः ।
विमोक्षप्रभवं विष्णुमुपपन्नमसंशयम् ॥२८

बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः ।
निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजाः ॥२९

हे विप्रगण ! जैसे दुर्बल मनुष्य जल के सोते के द्वारा हरण किया जाया करता है उसी भाँति जो योग के बल से हीन योगी होता है अर्थात् जिसमे पूरी योग की शक्ति नहीं हुआ करती है ऐसा योगाभ्यासी विषयो के द्वारा हरण किया जाया करता है॥२२॥ जिस तरह से वारण (हाथी) उसी जल के सोते को विष्कम्भित करा दिया करता है उसी तरह से योगी योग के विशाल को प्राप्त करके फिर विषयो के द्वारा अपहृत नहीं हुआ करता है ॥२३॥ जो योग के विशाल बल से युक्त होते हैं वे योग के बल से समर्थ प्रजापति— मनुगण सब और महा भूतो मे प्रवेश कर जाया करते है ॥२४॥ जहाँ पर न यमराज-न क्रुद्ध मृत्यु जो भयानक विक्रम वाला होता है प्रवेश किया करते हैं वहाँ पर वे सब योग के अपरिमित तेज वाले हे द्विजो ! प्रवेश किया करते हैं ॥२५॥ हे द्विजसत्तमो ? बहुत सहस्र आत्माएँ योग के बल से युक्त हैं। अतएव योग का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए तथा उसके द्वारा बल की प्राप्ति भी करे। फिर उन सबके द्वारा इस सम्पूर्ण भूमि पर सञ्चरण करे ॥२६॥ यदि कोई उनमे से विषयो की प्राप्ति भी कर लेवे तो उसको फिर अत्यन्त उग्र तप का समाचरण करना चाहिए जिससे कि चित्त विषयों के बन्धनो से विमुक्त हो जावे। हे विप्रो ! पुनः संक्षिप्त करना चाहिये जैसे सूर्य तेज के गुणो को संक्षिप्त किया करता है ॥२७॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! बल में स्थित बल के लिये विमोक्ष प्रभव भगवान् विष्णु को उपपन्न हो जाता है, इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥ हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! ये बल मैंने आपको बतला दिये हैं ? हे द्विजो ! ये तो केवल निदर्शन के ही लिये मैंने आप लोगो को सूक्ष्म बताये हैं। उन्हें मैं कहूँगा ॥२९॥

कणाना भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भो द्विजाः ।
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥३०
भुञ्जानो यावक रूक्ष दीर्घकालं द्विजोत्तमाः ।
एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥३१
पक्षान्मासानृतू श्चित्रान्सचरश्च गुहास्तथा ।
अपः पीत्वा पयोमिश्रा योग। बलमवाप्नुयात् ॥३२
अखण्डमपि वा मास सतत मुनिसत्तमाः ।
उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥३३
काम जित्वा तथा क्रोध शीतोष्ण वर्षमेव च ।
भय शोक तथा स्वाप पौरुषान्विषयास्तथा ॥३४
अरतिं दुर्जया चैव घोरा हृष्ट्वा च भो द्विजा. ।
स्पर्श निद्रा तथा तन्द्रा दुर्जया मुनिसत्तमाः ॥३५
दीपयन्ति महात्मान सूक्ष्ममात्मानमात्मना ।
वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसपदा ॥३६

श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे द्विजो ! कणो के और पिण्याक के भक्षण मे योगी को युक्त होना चाहिये । जो स्नेह चाहे किसी भी प्रकार के हो सबको वेजित कर देवे ऐसा ही युक्त योगी बल को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ हे द्विजोत्तमो ! बहुत लम्बे समय तक रूखे यावक को खाने वाला—एक ही समय मे आहार को ग्रहण करने वाला विशुद्ध आत्मा से युक्त योगी बल की प्राप्ति किया करता है ॥३१॥ पक्ष मास और अद्भुत ऋतु मे सञ्चरण करते हुए तथा गुफाओ मे समय को व्यतीत करता है तथा पयोमिश्र जलों का पान कर लेता है ॥३२॥ पूरे मास पर्यन्त निरन्तर हे मुनिगणो ! अच्छी तरह से उपवास करके शुद्ध आत्मा वाला योगी बल को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥ काम-क्रोध-शीत-उष्ण-मेघ वर्षा इनको जीत कर भय-शोक-निद्रा-तृष्णा पुरुषो से सम्बन्धित विषयो को जीत लेना चाहिए ॥३४॥ परम घोर और कठिनाई से जय प्राप्त किये जाने वाली

थरति को देखकर हे द्विजो ! स्पर्श श्रेष्ठ दुर्जय निद्रा तथा तन्द्रा पर विजय पाकर योगी अभ्यास किया करते हैं। राग से रहित महान् प्राज्ञ लोग ध्यान और अध्ययन की सम्पत्ति के द्वारा अपनी आत्मा से सूक्ष्म आत्मा को जोकि महान् आत्मा है दीप्त किया करते है ॥३५-३६॥

दुर्गस्त्वेष मत. पन्था ब्राह्मणाना विपश्चिताम् ।
यः कश्चिद्व्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुंगवा· ॥३७
यथा कश्चिद्वन घोर बहुसर्पसरीसृपम् ।
श्वभ्रवत्तायहोन च दुर्गम बहुकण्टकम् ॥३८
अभक्तमटवीप्राय दावदग्धमहीरुहम् ।
पन्थान तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥३९
योगमार्ग समासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विजः ।
क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्वहुदोषोऽपि समन ॥४०
आस्थेय क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमाः ।
धारणा सा तु योगस्य दुर्गेयमकृतात्मभि. ॥४१
विषमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभा गतिम् ।
नेतृहीना यथा नाव. पुरुषाणा तु वै द्विजाः ॥४२
यस्तु तिष्ठति योगाद्यो धारणासु यथाविधि ।
मरण जन्म दुःखित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥४३

विद्वान् वाल्मणों का यह मार्ग दुर्गम माना गया है। हे मुनिश्रेष्ठो ! जो कोई भी क्षेम पूर्वक शीघ्र ही इस पथ पर गमन किया करता है। जिस तरह से कोई पुरुष अत्यन्त घोर—बहुत से सर्पों और सरीसृपों से युक्त दवभयम् जल से रहित-अधिक कण्टकों से समन्वित-दुर्गम-अभक्त-प्राय वनों से घिरे हुए—दावाग्नि के द्वारा दग्ध हुए वृक्षों से संयुत-तस्करों से संयुत ऐसे पथ को बहुत ही क्षेम के साथ पार कर जाता है ॥३७-३९॥ जो कोई द्विज योग मार्ग को प्राप्त करके उसके द्वारा गमन किया करता है बहुत दोषों वाला भी समत यह यद्यपि है तो भी उसको क्षेम पूर्वक

पार कर जाता है॥४०॥ हे द्विजोत्तमो ! यह अत्यन्त पैनी छुरों की धार के ही समान अकृत आत्मा वालो के द्वारा दुर्ज्ञेय (न जानने के योग्य) योग की धारणा होती है ॥४१॥ हे विप्रो ! यह धारणा बहुत ही विषम होती है और मनुष्य शुभ जाति को प्राप्त नही हुआ करते हैं। जिस तरह से पुरुषो मे जो नेत्रों से हीन अर्थात् अन्धे होते हैं वे नाव को प्राप्त नही किया करते हैं ॥४२॥ जो पुरुष योगाधि में और विधि पूर्वक धारणाओं में स्थित होता है वह मरण और जन्म ग्रहण कर दु खिश्च को सुखित्व में विशिष्ट कर दिया करता है ॥४३॥

पुराण के श्रवणपठन का फल प्राप्ति कथन

एवं पुरा मुनीव्यासः पुराणं श्लक्ष्णया गिरा।
दशाष्टदोषरहितैर्वाक्यैः सारतरैर्द्विजाः ॥१

पूर्णमस्तमलैः शुद्धैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः।
जातिशुद्धसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ॥२

पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम्।
श्रावयित्वा यथान्यायं विरराम महामतिः ॥३

तेऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठाः पुराणं वेदसम्मितम्।
आद्यं ब्रह्माभिधानं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥४

हृष्टा बभूवुः सुप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः।
प्रशशंसुस्तदा व्यासं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥५

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसम्मितम्।
सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं परम् ॥६

प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम् ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वै प्रभो ॥७

श्री लोमहर्षण मुनीन्द्र ने कहा—हे द्विजगणो ! इसी रीति पुरातन काल में भगवान् श्री व्यासदेवजी ने मुनिगणों के आगे परमाधिक लक्षण वाणी के द्वारा अट्ठारह प्रकार के दोषों से रहित सार वाले वाक्यों से कहा था। उनके वे वाक्य पूर्णरूप से मल रहित थे-परम शुद्ध थे और अनेक शास्त्रों के ज्ञान के समुदाय से समन्वित थे। वह ज्ञान भी जातियों की शुद्धि से समायुक्त और साधु शब्दों के द्वारा उपशोभित था। वह ज्ञान पूर्व पक्ष की उक्तियों के सिद्धान्तों की परिनिष्ठा से समन्वित था। ऐसे परमोत्तम ज्ञान का न्यायपूर्वक श्रवण करा कर महामुनि श्री व्यासदेव विरत हो गये थे अर्थात् मौन का अवलम्बन उन्होंने लेलिया था ॥१-३॥ उन परम श्रेष्ठ मुनियों ने भी उस वेदों से सम्मत पुराण का श्रवण करके जोकि सबसे आद्य है-'ब्राह्म'-इस नाम वाला है और सभी वाञ्छाओं के प्रदान करने वाला है ॥४॥ समस्त मुनिगण परम हर्षित हुए-अत्यन्त प्रसन्नता वाले हो गये और अत्यधिक विस्मय से भर गये थे। और फिर उन सबने श्री कृष्ण द्वैपायन मुनिवर व्यासदेवजी की प्रशंसा की थी ॥५॥ मुनियों ने कहा—अहो ! हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! आपने इस महापुराण को वर्णित किया है जो कि श्रुति (वेद) के ही समान है- समस्त मन के मनोरथों का पूर्ण फल प्रदान करने वाला है तथा प्राणियों के कृत सभी प्रकार के महान् पापों का विनाश कर देने वाला है। हमने ऐसे आपके मुखारविन्द से कथित महापुराण का श्रवण कर लिया है जिनमें अति अद्भुत पदावली और विचित्र अक्षर थे। हे प्रभो ! आप तो महान् ज्ञानी महापुरुष हैं आपके लिये तो इस त्रिभुवन में कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपको विदित न हो। अर्थात् त्रैलोक्य का सम्पूर्ण ज्ञान आप में भरा हुआ है ॥६ ७॥

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः ।
नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम् ॥८

येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः ।
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने ॥९
अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान्व्याकरणानि च ।
कृतवान्भारत शास्त्र तस्मै ज्ञानात्मने नम ॥१०
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे,
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्ण,
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीप ॥११
अज्ञानतिमिरान्धाना भ्रामिताना कुदृष्टिभि ।
ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२
एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यास चैव पूजिताः ।
जग्मुर्यथागत सर्वे कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३
तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथित हि सनातनम् ।
पुराण सुमहापुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

हे महाभाग ! आप तो देवगणो मे देवगुरु बृहस्पति के ही तुल्य सभी कुछ के परम ज्ञाता है । हम सभी लोग महान् प्राज्ञ प्रज्ञा मे स्थित और महामुनीन्द्र आपकी सेवा मे अपना नमस्कार समर्पित करते हैं ॥८॥ जिन आपने महाभारत महान् ग्रन्थ की रचना करके उसमे समस्त वेदो के ही अर्थों को प्रकट करके दिखला दिया है । हे महामुने ! आपके गुण-गण इतने अधिक एव महान् से भी महान् हैं कि उन आपके गुणो का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् किसी मे भी ऐसी शक्ति विद्यमान नही है जो आपके गुणो को बतला सके ॥९॥ जिन आपने अङ्ग शास्त्रो के सहित चारो वेदो का भली-भाति अध्ययन करके और व्याकरण आदि का भी ज्ञान प्राप्त कर इस भारत शास्त्र की रचना की है उन्ही परम ज्ञान के स्वरूप वाले प्रभु आपकी सेवा मे हम सब मुनिगण का प्रणाम समर्पित है ॥१०॥ हे विशाल बुद्धि के वैभव वाले ! हे व्यासदेवजी ! आपको हम सबका नमस्कार है । हे विकसित कमल के दलो के नेत्र वाले ! आपकी सेवा मे हमारा बारम्बार प्रणाम है जिन आपने महाभारत के य-

रूपी तैल से परिपूर्ण ज्ञान से भरा हुआ दीपक को प्रज्वलित कर दिया है। तात्पर्य यही है कि महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ आपने निर्मित कर दिया है जो साद्यन्त ज्ञान से परिपूर्ण है ॥११॥ जो अपनी दूषित दृष्टियो के द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार मे अन्धे होते हुए भ्रमित हो रहे हैं अर्थात् अज्ञान के होने के कारण से ही नाना योनियो मे बारम्बार अन्धों के समान टक्करें खाते रहा करते हैं उनके नेत्रो को आपने ज्ञान की शलाका के द्वारा खोल दिया है अर्थात् अज्ञानियो के हृदय मे ज्ञान की उत्पत्ति कर दी है ॥१२॥ इतना इस प्रकार से कहकर उन सबने भगवान् श्री व्यासदेवजी का अभ्यर्चन किया था और वे भी पूजित हुए थे। इसके अनन्तर वे सब अपने अपने आश्रमो मे यथा स्थान कृतकृत्य (सफल) होकर चले गये थे। जिस तरह से या मार्ग से वे आये थे उसी से वापिस चले गये ॥१३॥ हे मुनियों मे श्रेष्ठो ! मैंने भी उसी रीति से सुमहान् पुण्यो वाला सब पापो का विनाश कर देने वाला सनातन पुण्य को कह दिया है ॥१४॥

यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं सप्रश्न द्विजसत्तमाः ।
व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया सपरिकीर्तितम् ॥१५
इद गृहस्थै. श्रोतव्य यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
धनसौख्यप्रद नृणा पवित्र पापनाशनम् ॥१६
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः सुसयतैः ।
श्रोतव्य सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभि. ॥१७
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्या क्षत्रियो विजय रणे ।
वैश्यस्तु धनमक्षय्य शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१८
य य काममभिध्यायञ्शृणोति पुरुषः शुचि. ।
त त काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र सशयः ॥१९
पुराण वैष्णव त्वेतत्सर्वकिल्विषनाशनम् ।
विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥२०
एतद्वो यन्मयाऽऽख्यात पुराण वेदसम्मितम् ।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थ. पापराशिः प्रणश्यति ॥ १

हे द्विजसत्तमो ! जिस प्रकार से आप लोगों ने मुझसे यह प्रश्न पूछा है भगवान् व्यासदेवजी के प्रसाद से वह मैंने सब भली भाँति कीर्तित कर के सुना दिया है ॥१५॥ इस महापुराण को सदा गृहस्थो को श्रवण करना चाहिए तथा यति लोग और ब्रह्मचारियों को यह सुनना चाहिए। यह इस पुराण का श्रवण करना मनुष्यो के लिये धन और सौख्य के प्रदान करने वाला तथा परम पवित्र एव पापों का विनाश करने वाला है ॥१६॥ उसी भाँति जो श्रेय प्राप्त करने की अभिकाङ्क्षा रखने वाले पुरुष हैं जैसे ब्रह्म मे तत्पर विप्र और सुसयत ब्राह्मण आदि उन सभी के द्वारा भली भाँति सुन्दर प्रयत्न के साथ इसका श्रवण करना चाहिए ॥१७॥ इसके श्रवण करने से ब्राह्मण विद्या की प्राप्ति किया करता है। क्षत्रिय जो उसको सुनता है वह रण क्षेत्र मे विजय प्राप्त किया करता है। वैश्य वर्ण वाला यदि यह महापुराण को सुनता है तो उसको कभी भी क्षय न होने वाला धन प्राप्त होता है और शूद्र यदि इसको सुनता है तो उसे बड़ा भारी सुख मिलता है ॥१८॥ जो कोई भी पुरुष पवित्र होकर जिस-जिस कामनाको हृदय मे रखकर इसको सुनता है मनुष्य उसी-उसी मनोरथ को पूर्णतया प्राप्त कर लेता है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥१९॥ यह वैष्णव पुराण है और सभी किल्बषो का विनाश कर देने वाला है। यह महापुराण अन्य सभी शास्त्रो से भी अधिक विशेषता रखने वाला है और सब पुरुषार्थों का उपपादक है ॥२०॥ यह पुराण जिसको मैंने आपको बतला दिया है वह वेदों के ही सम्मत है। यह महापुराण के श्रवण कर लेने पर सब दोषो से उठी हुई पापो की राशि अर्थात् बहुत बड़ा पापो का समुदाय विनष्ट हो जाया करता है ॥२१॥

प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे ।
उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥२२
यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम् ।
महापुण्यमयं विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥२३
यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुरुषः फलम् ॥२४

तवाप्नोति भल सम्यक्समाधानेन कीर्तनात् ।
पुराणेऽस्य हितो [?] विप्राः केशवार्पितमानसः ॥२५
यत्फल कि(श्रि)यमलोक्य पुरुषोऽथ लभेन्नरः ।
यत्फल समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२६
इद यः श्रद्धया नित्य पुराण वेदसमितम् ।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः ॥२७
श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु सयतः ।
एकादश्या द्वादश्या च विष्णुलोक स गच्छति ॥२८

तीर्थराज प्रयाग मे-पुष्कर मे-कुरुक्षेत्र मे तथा अर्बुद गिरि मे निवास कर उपवास करते हुए पुरुष जो भी कुछ पुण्य-फल प्राप्त किया करता है वह सम्पूर्ण पुण्य-फल इस महापुराण के केवल श्रवण करके ही प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२२॥ जो भली भाँति से अग्नि होत्र के एक वर्ष पर्यन्त सुहुत करने पर भी जो पुण्य-फल नही प्राप्त हो पाता है। हे विप्रो ! वह फल महान् पुण्यमय इस महापुराण के एक बार श्रवण करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥२३॥ जो ज्येष्ठ मास मे शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन मे यमुना मे जल मे स्नान करके अथवा मथुरा मे श्रीहरि भगवान् के दर्शन करके जो फल नर प्राप्त किया करता है वही पुण्य-फल सम्यक् प्रकार से समाधान के द्वारा कीर्त्तन करने से प्राप्त कर लिया करता है। हे विप्रो ! इस पुराण मे भगवान् केशव मे अर्पित मन वाला पुरुष हितप्रद हुआ करता है ॥२४-२५॥ जिस पुण्य-फल को भगवती साक्षात् श्रीदेवी का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है वही फल मनुष्य इस महापुराण का पाठ या श्रवण करके पा लिया करता है ॥२६॥ जो पुरुष बड़ी श्रद्धा से नित्य ही इस वेद समित महापुराण का पाठ किया करता है या श्रवण करता है ॥२७॥ जो ब्राह्मण पर्वों में सदा संयत होकर इस महापुराण का श्रवण कराया करता है। वह श्रवण एकादशी या द्वादशी तिथि में कराता है वह मनुष्य विष्णु लोक को सीधा चला जाया करता है ॥२८॥

इद यशस्यमायुष्यं सुखद कीर्तिवर्धनम् ।
बलपुष्टिप्रद नृणा धन्य दु स्वप्ननाशनम् ।।२६
त्रिसध्य य. पठेद्विद्वाञ्श्रद्धया सुसमाहित· ।
इद वरिष्ठमाख्यान स सर्वमोप्सित लभेत् ।।३०
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयाद्विमुच्यते भीत आपदापन्न आपद. ।।३१
जातिस्मरत्व विद्या च पुत्रान्मेधा पशून्धृतिम् ।
धर्म चार्थं च काम च मोक्ष तु लभते नरः ।।३२
यान्यान्कामानभिप्रत्य पठत्प्रयतमानसः ।
तास्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र सशयः ।।३३
यश्चे द सतत शृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रद ।
विष्णु लोकगुरु प्रणम्य वरद भक्त्येकचित्त. शुचिः ।
भुक्त्वा चात्र सुख विमुक्तकलुष. स्वर्गे च दिव्य सुख ।
पश्चाद्याति हरेः पद सुविमल मुक्तो गुणै प्राकृतैः ।।३४
तस्माद्विप्रवरै. स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेप्सुभि·
स्तद्वत्क्षत्रियपु गवस्तु नियतैः श्रेयोर्थिभि. सर्वदा ।
वैश्यैश्चानुदिन विशुद्धकुलजै शूद्रैस्तथा धार्मिकैः ।
श्रोतव्य त्विदमुत्तम बहुफल धर्मार्थमोक्षप्रदम् ।।३५

यह महापुराण यश देने वाला—आयु के देने वाला अर्थात् बडी आयु कर देन वाला—सुख प्रदान करने वाला—कीर्ति की वृद्धि करन वाला—बल और पुष्टि के प्रदान करने वाला और मनुष्यो के लिये परम धन्य एव दु स्वप्नो का विनाश करने वाला है ।।२९।। जो कोई पुरुष विद्वान् महती श्रद्धा से सुसमाहित होकर तीनो सन्ध्याओ मे इस महापुराण को पढता है और वरिष्ठ आख्यान का श्रवण किया करता है वह सभी अभीप्सितों को प्राप्त करलिया करता है ।।३०।। जो कोई रोगसे आर्त हो वह रोग से मुक्त हो जाया करता है जो किसी बन्धन मे बद्ध होता है वह उसके बन्धन से बन्धन से मुक्त हो जाया करता है । जो भीत हो वह भय से छुटकारा पा जाता है और जो आपदाओं से आपन्न होता है वह आपदा से मुक्त हो

जाता है ॥३१॥ इस पुराण के पठन की बहुत बडी महिमा है—जाति में अमरत्व, विद्या, पुत्र, मेधा, पशु, धृति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ जिन-जिन कामनाओं का अभिप्राय लेकर प्रयत मन वाला होता हुआ इसको पढ़ता है उन-उन सभी को पुरुष प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३३॥ जो मनुज निरन्तर इसका श्रवण किया करता है जो कि स्वर्ग और अपवर्ग दोनों का देने वाला है। लोक गुरु-वरद भगवान् विष्णु को प्रणाम करके भक्ति से एक चित्त होकर एवं शुचि होकर इसको सुनता है वह सब कलुषों से विमुक्त होकर स्वर्ग में दिव्य सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर प्राकृत गुणों से मुक्त होकर सुविमल भगवान् श्रीहरि के पद को प्राप्त किया करता है ॥३४॥ इसका मुक्ति के ही एक मार्ग में इच्छा रखने वाले अपने धर्म में निरत विप्रों को तथा क्षत्रियों में श्रेष्ठों को और सर्वदा नियत श्रेय के चाहने वालों को-विशुद्ध कुल में समुत्पन्न वैश्यों को तथा धार्मिक शूद्रों को अनुदिन इस बहुत फल का देने वाले धर्मार्थ काम और मोक्ष के दाता उत्तम पुराण का श्रवण करना ही चाहिए ॥३५॥

धर्मे मतिर्भवतु व पुरुषोत्तमाना,
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धु ।
अर्था स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना,
नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६

धर्मेण राज्य लभते मनुष्य,
स्वर्गं च धर्मेण नर प्रयाति ।
आयुश्च कीर्ति च तपश्च धर्मं,
धर्मेण मोक्ष लभते मनुष्यः ॥३७

धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य,
धर्म सखा चात्र परे च लोके ।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च,
धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव ॥३८

इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम् ।
न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९

इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं,
पापापहं धर्मविवर्धनं च ।
श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्य-
माज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि ॥४०

पुरुषो में उत्तमों की आपकी धर्म मे मति होवे । वह ही एक परलोक मे गये हुए पुरुष का बन्धु होता है । स्त्रियाँ-इनका निपुणो के द्वारा सेवन भी किया जावे तो इनका कुछ भी परलोक मे प्रभाव नहीं होता है और इनकी स्थिरता भी कुछ नही है ॥३६॥ धर्म के द्वारा मनुष्य राज्यासन प्राप्त करता है और मे नर स्वर्ग लोक को भी गमन किया करता है । मनुष्य धर्म से ही आयु-कीर्त्तिनम-धर्म और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥३७॥ इस लोक में धर्म नर के माता पिता हैं । धर्म यहां पर और परलोक में भी मनुष्य का सखा होता है। यहां पर धर्म ही त्राण करने वाला है और मोक्ष के प्रदान करने वाला है । धर्म के बिना और कुछ भी नहीं हैं ॥३८॥ यह परम श्रेष्ठ रहस्यमय वेद सम्मित पुराण है । दुष्ट मति वाले के लिये इसको नही बताना चाहिए और विशेष रूप से नास्तिक को भी न देवें ॥३६॥ मैंने श्रेष्ठ पुराण बतला दिया है जो समस्त पापों का अपहरण करने वाला है । आप सब लोगों ने इस परम रहस्य का श्रवण किया है । अब हे मुनिगणो ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए । मैं अब जाता हूं ॥४०॥